महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनव्यासप्रणीत

महाभारत

दसवां भाग

भीष्मपर्व समाप्त, द्रोणपर्व अध्याय १ से अध्याय ४१ तक

अनुवादक—

श्री पं० गङ्गाप्रसादजी शास्त्री

प्रकाशक—

महाभारत-कार्यालय

मालीवाड़ा, गली लंगड़े वाली

दिल्ली।

प्रथमवार | सर्वाधिकार सुरक्षित १९९६ विक्रमी | मूल्य २॥)

चतुरसेन गुप्त
प्रबन्धक
महाभारत कार्यालय
दिल्ली

मुद्रकः—
पं० काशीप्रसाद बाजपेई
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स बाजार सीताराम
दिल्ली।

निवेदन

संसार का इतिहास रक्त के पृष्ठों से रंगा पड़ा है। कौन सा देश है, जिसमें रणचण्डी ने अपना खप्पर हाथ में लेकर उल्लास के साथ नृत्य नहीं किया। आज से हज़ारों लाखों वर्ष पूर्व जो मनुष्य, एक दूसरे के रक्त के पिपासु थे, आज भी वह भावना मनुष्य-हृदय में ज्यों की त्यों जागृत है।

वीरता की भावना मनुष्य का एक ऊंचा गुण है। जो जाति वीर (बहादुर) नहीं है, वह संसार में जीवित नहीं रह सकती और यदि जीवित रहती भी है, तो उसे अत्यन्त अपमान और तिरस्कार के साथ अपने जीवन के दिन काटने पड़ते हैं।

युद्ध अनिवार्य हैं और होने चाहिए। युद्ध के विना मनुष्य-जीवन निरर्थक है परन्तु इसी युद्ध को अपने अन्याय, अभिमान और कामवासना की पूर्ति के लिए किया जावे—तो इससे अधिक पैशाचिक कर्म अन्य नहीं हो सकता है।

भारत पर अनेक विजेताओं ने आक्रमण किये और इसको जीत भी लिया। सिकन्दर, महमूद, मुहम्मद ग़ोरी, बाबर या अंग्रेजों के सेनापति क्लाइब आदि ने भी भारत में रण भेरी बजाई और विजय प्राप्त की, परन्तु इन सबके उद्देश्य और युद्ध प्रकार को

देखकर यही कहना पड़ता है, कि ये युद्ध नहीं, निरे पैशाचिक कर्म थे, यह विजय नहीं, किन्तु इनकी नैतिक पराजय थी।

आज से बीस वर्ष पूर्व, जर्मन और इङ्गलैंड आदि देशों में रण भेरी बजी। महाभारत से भी अधिक विश्वव्यापी नर-संहार हुआ। आज भी वैसे ही युद्ध के बादल सिर पर उमड़ कर मँडला रहे हैं। परन्तु कहना होगा, कि यह केवल अपनी काम-वासना की पूर्ति के निमित्त थोथा नर-संहाररूप पैशाचिक कर्म है। इस युद्ध में उच्च उद्देश्य और उच्च सभ्यता का सौरभ नहीं है। यह निरा टेसू का फूल है, जिसमें ललाई है, सुगन्धि नहीं।

हे आर्यसन्तति! आ! और अपने प्राचीन अतीत गौरव की टिमटिमाती ज्योति को देख! महाभारत में एक वीर दूसरे वीर के रक्त का यद्यपि पिपासु है, परन्तु दूसरी ओर उसके हृदय में उसके ही प्रति सच्चे प्रेम की स्रोतस्विनी बह रही है। अर्जुन ने क्षत्रियोचित कठिन कर्म के वश में होकर भीष्म को शिखण्डी की सहायता से रणभूमि में गिरा दिया है, परन्तु इस के लिए वह कितना कातर होकर रोता है—यह आर्य-जाति के मधुर हृदय के देखने की ही वस्तु है।

हिन्दू-जाति के अतीत गौरव के कोशभूत महाभारत ग्रन्थ के प्रकाशन कर देने की हम को लगन सी लग गई है। विरोधी दैव ने हमको रोकने में कोई कसर नहीं छोड़ी यह हम ही

जानते हैं। पांच छः वर्ष से सारे कामों को छोड़कर इसके पीछे पड़े हैं और अभी तक इसे पूरा नहीं कर सके हैं। इससे आप भी अनुमान गा सकते हैं। अब युद्ध के कारण सारी चीजें महँगी होकर कागज़ की बहुत महंगी होगई है। इतनी बड़ी जिल्द का मूल्य २) रुपये हैं। हम पाठकों से क्षमा मांगते हुए यह निवेदन कर देना चाहते हैं, कि महंगी के कारण जो भी ग्रंथ पर भार बढ़ेगा, उसीके अनुसार पुस्तक में हमको कुछ फर्मे कम कर देने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। इस भाग में नाममात्र को चार फर्मे कम करने पड़े हैं, आशा है, कि पाठक क्षमा करेंगे।

गङ्गाप्रसाद शास्त्री
अध्यक्ष
महाभारत कार्यालय
दिल्ली।

॥ ओ३म् ॥

महाभारत के दशवें भाग
की
विषयानुक्रमणिका
भीष्मपर्व

अथभीष्मवधपर्व

द्रोणपर्व

द्रोणपर्वाभिषेकपर्व

संशप्तकवधपर्व

अभिमन्युवधपर्व

महाभारत चित्र संख्या ७८

भीष्म पितामह शूर शय्या पर

महाभारत

दसवां भाग

भीष्मपर्व

नवासीवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

दृष्ट्वा मे निहतान्पुत्रान्बहूनेकेन सञ्जय ।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अकेले भीम द्वारा मारे हुए मेरे अनेक पुत्रों को देखकर अब रण में भीष्म, द्रोण, कृपादि वीरों ने क्या किया ॥१॥

अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति सञ्जय ।
मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम् ॥२॥
यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत ।

हे सञ्जय ! दिन प्रतिदिन मेरे पुत्रों का विनाश होता जा रहा है । हे सूत ! अब तो यही समझना चाहिए, कि हमें दैव ने ही

सब तरह से मार रखा है, जिससे मेरे पुत्र पराजित ही होते जा रहे हैं, किसी की भी विजय नहीं होती है ॥२॥

यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ॥३॥
सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ।
अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनाम् ॥४॥
अन्येषां चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम ।
यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥५॥

जिस रण में भीष्म, द्रोण, महात्मा कृपाचार्य, सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा और राजा भगदत्त, अश्वत्थामा तथा युद्ध से पराङ्मुख नहीं होने वाले अन्य शूरवीरों के मध्य में भी मेरे पुत्र संग्राम में नित्य मारे जा रहे हैं। इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ॥३-५॥

न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत ।
वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ॥६॥
गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया ।
नाऽबुध्यत पुरा मोहात्तस्य प्राप्तमिदं फलम् ॥७॥
यद्भीमसेनः समरे पुत्रान्मम विचेतसः ।
अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् ॥८॥

हे तात! मन्द-बुद्धि दुर्योधन को मैंने भीष्म और विदुर तथा गान्धारी ने भी बहुत रोका, परन्तु यह दुर्बुद्धि कुछ नहीं समझा,

हमने तो सदा इसके हित की कामना से ही यह सबकुछ कहा था। जो इसने अज्ञान से हमारी बात को नहीं समझा-आज यह उसी का फल पा रहा है, यही कारण है, कि जो क्रोध में भराहुआ भीमसेन प्रतिदिन अज्ञान से मोहित मेरे पुत्रों को रण में मार २ कर यमराज के घर पहुंचा रहा है ॥६-८॥

सञ्जय उवाच—

इदं तत्समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम् ।
न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हितं तदा ॥६॥

संञ्जय ने कहा—हे विभो! महात्मा विदुर ने जो उत्तम वचन कहे थे, आज उनके पूरा होने का समय प्राप्त हो गया है, परन्तु उस समय तो उनके कहने पर तुमने कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥६॥

निवारय सुतान्द्यूतात्पाण्डवान्मा द्रुहेति च ।
सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत्तदेव च ॥१०॥
न शुश्रूषसि यद्वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधुभाषितम् ॥११॥

तुम्हारे हित चाहने वाले सुहृदों ने तुमसे बार २ कहा, कि तुम अपने पुत्रों को द्यूत से निवृत्त करो और पाण्डवों से द्रोह मत करो, परन्तु तुमने उनके कुछ भी वाक्य नहीं सुने, जैसे-मृत्यु के वश में हुआ प्राणी, हितकारी औषध को ग्रहण नहीं करता है। आज तुमको उन महात्मा के सुभाषित वचनों के सत्य होने का समय आ गया है ॥१०-११॥

विदुरद्रोणभीष्माणां तथाऽन्येषां हितैषिणाम् ।
अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः ॥१२॥

महात्मा विदुर, भीष्म और द्रोण तथा अन्य हितकारी मित्रों के हितकारी वचन को न मानकर आज कौरव अवश्य नष्ट होकर रहेंगे ॥१२॥

तदेतत्समनुप्राप्तं पूर्वमेव विशाम्पते ।
तस्मात्त्वं शृणु तत्त्वेन यथा युद्धमवर्तत ॥१३॥

हे विशाम्पते ! यह पूर्वकाल में जतलाई हुई बात ही तुम्हें प्राप्त हो रही है, अब तुम तत्व के साथ जैसे २ युद्ध प्रवृत्त हुआ-वह सुनते जाओ ॥१३॥

मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥१४॥

हे राजन् ! मध्यान्हकाल में वीर पुरुषों का नाश करने वाला, महाभयङ्कर युद्ध हुआ। मैं इसका वर्णन करता हूं, तुम ध्यान से सुनो ॥१४॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
संरब्धान्यभ्यवर्तन्त भीष्ममेव जिघांसया ॥१५॥

इस के पीछे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से भीष्म के मारने की इच्छा से सारी सेनाएँ आवेश में भरी हुई, सुसज्जित खड़ी थी ॥१५॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥१६॥

हे महाराज ! अब धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकि, अपनी २ सेना को लेकर भीष्म पर झपटे ॥१६॥

विराटो द्रुपदश्चैव सहिताः सर्वसोमकैः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम् ॥१७॥

इन के साथ ही विराट और राजा द्रुपद ने सारे सोमक वीरों को साथ लेकर रण में महारथी भीष्म पर आक्रमण किया ॥१७॥

केकया धृष्टकेतुश्च कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥१८॥

केकय देश के पांच राजकुमार, धृष्टकेतु, और सब भांति से सन्नद्ध राजा कुन्तिभोज भी सेना को साथ लेकर भीष्म पर ही दौड़े ॥१८॥

अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनसमादिष्टान्राज्ञः सर्वान्समभ्ययुः ॥१६॥

महारथी अर्जुन, द्रौपदी के पुत्र तथा वीर्यवान् चेकितान, राजा दुर्योधन के युद्ध के लिए प्रेरित किये हुए राजाओं पर झपटे।

अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः ।
भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेऽभ्यधावन्त कौरवान् ॥२०॥

महाशूरवीर अभिमन्यु और महारथी हिडिम्बा-पुत्र राक्षस राज घटोत्कच तथा भीमसेन भी क्रोध में भरा हुआ कौरवों पर आक्रमण कर रहा था ॥२०॥

त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि ।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥२१॥

हे राजन्! पाण्डवों की सेना के वीर तीन भागों में बँटकर रण में कौरवों को और कौरव भी इसी तरह तीन भागों में बंट कर पाण्डवों का वध कर रहे थे ॥२१॥

द्रोणस्तु रथिनः श्रेष्ठान्सोमकान्सृञ्जयैः सह ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥२२॥

द्रोणाचार्य भी, सृञ्जय वीरों के साथ २ सोमक वीरों के उत्तम २ रथियों को यमराज के घर भेजने के लिए क्रोध में भर कर आगे दौड़े ॥२२॥

तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्सृञ्जयानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्भारद्वाजेन धन्विना ॥२३॥

हे राजन्! जब भरद्वाज-पुत्र, धनुर्धर, द्रोण ने मार काट मचाई-तो वध को प्राप्त होने वाले सृञ्जय वीरों में हाहाकार मच गया ॥२३॥

द्रोणेन निहतास्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे ।
विचेष्टन्तो ह्यदृश्यन्त व्याधिक्लिष्टा नरा इव ॥२४॥

द्रोण द्वारा मार कर रणभूमि में बिछाये हुए, बहुत से क्षत्रिय, व्याधिग्रस्त मनुष्यों की तरह तड़फड़ाते हुए जहां तहां दृष्टि आ रहे थे ॥२४॥

कूजतां क्रन्दतां चैव स्तनतां चैव भारत ।
अनिशं शुश्रुवे शब्दः क्षुत्क्लिष्टानां नृणामिव ॥२५॥

हे भारत ! इस समय रणभूमि में अनेक पुरुषों के रोने चिल्लाने या गर्जने की ध्वनि, भूख से व्याकुल पुरुषों के आक्रन्दन की तरह सुनाई दे रही थी ॥२५॥

तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः ।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवाऽपरः ॥२६॥

इस तरह महाबली भीमसेन ने कौरवों की सेना में दूसरे क्रुद्ध हुए काल की तरह घोर विध्वंस मचा रखा था ॥२६॥

वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे ।
प्रावर्त्तत नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी ॥२७॥

इस महारण में परस्पर एक दूसरे के मारने से रुधिर के समूह के बहाने वाली घोर नदी बह निकली ॥२७॥

स संग्रामो महाराज घोररूपोऽभवन्महान् ।
कुरूणां पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥२८॥

हे महाराज ! कौरव और पाण्डवों का यह महाघोर संग्राम हो रहा था, जिस से यम के राज्य की प्रजा बढ़ती जा रहीथी ॥२८॥

ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः ।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥२६॥

अब भीमसेन रण में क्रुद्ध होकर बड़े वेग से विशेष करके हाथियों की सेना में पहुंचा और उन्हें मार २ कर मृत्यु के अधीन करने लगा ॥२६॥

तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः ।
पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः ॥३०॥

हे भारत ! भीमसेन के बाण से आहत हुए हाथी, रण-भूमि में गिरने लगे, कोई चिंघाड़ने लगे, कोई छटपटाने लगे और कोई दिशाओं में पागल की भांति भाग निकले ॥३०॥

छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष ।
क्रोञ्चवञ्यनदन्भीताः पृथिवीमधिशेरते ॥३१॥
नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ ।

हे आर्य ! किन्हीं हाथियों की सूंड कट गई। किन्हीं के शरीर छिन्न भिन्न हो गए। ये भयभीत होकर क्रौंच पत्ती की तरह चिल्लाने लगे और पृथिवी में लेट गए ॥३१॥

ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः ॥३२॥
वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतद्भिस्तुरगै राजन्समास्तीर्यत मेदिनी ॥३३॥

नकुल और सहदेव भी अश्वों की सेना में घुस पड़े। इस समय सैंकड़ों हज़ारों सुवर्ण की माला पहने हुए, सुवर्ण के आभू-

पणों से आभूषित, अनेक अश्व, नकुल और सहदेव से मारे हुए रणभूमि में दिखाई देने लगे। हे राजन्! इन पड़े हुए अश्वों से सारी रणभूमि आच्छादित हो गई ॥३२-३३॥

निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः ।
हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥३४॥

हे नरश्रेष्ठ! जिह्वारहित, श्वास लेते हुए, कहराते हुए, अनेक आकार धारी, मृत अश्वों से भूमि अद्भुत सी हो रही थी ॥३४॥

अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः ।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशाम्पते ॥३५॥

हे भारत! अर्जुन से मारे हुए अनेक क्षत्रिय वीरों से आच्छादित रण भूमि, बड़ी ही घोर और भयानक दिखाई दे रही थी।

रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैर्निकृत्तैश्च महायुधैः ।
चामरैर्व्यजनैश्चैवच्छत्रैश्च सुमहाप्रभैः ॥३६॥
हारैर्निष्कैः सकेयूरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैरपविद्धैश्च पताकाभिश्च सर्वशः ॥३७॥
अनुकर्षैः शुभै राजन्योक्त्रैश्चैव सरश्मिभिः ।
सङ्कीर्णा वसुधा भाति वसन्ते कुसुमैरिव ॥३॥

हे राजन्! टूटे हुए रथ, कटी हुई ध्वजा, खण्डित हुए शस्त्र, चामर, व्यजन (पंखे) चमकीले छत्र, हार, कण्ठभूषण, मुकुट और कुण्डलों से युक्त शिर, गिरी हुई उष्णीष (पगड़ी), पताका,

रथ के नीचे काष्ठ, योक्त्र (वृषादि के गले में बांधने के जोत) रश्मि (रस्सी) आदि वस्तुओं से रणभूमि इस तरह व्याप्त हो रही थी, जैसे—वसन्त में भूमि पुष्पों से व्याप्त हो रही हो ॥३६-३८॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डूनामपि भारत ।
क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे ॥३९॥
अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि ।
तथेतरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

हे भारत ! इसी तरह पाण्डुवों की सेना का भी नाश हो रहा था, क्योंकि तुम्हारी सेनाके वीर शान्तनु-पुत्र भीष्म, महारथीश्रेष्ठ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अन्य अनेक महावीर कुपित होकर पाण्डवों की सेनापर प्रहार कर रहे थे ।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में आठवें दिन के युद्ध का नवासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

नव्वेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन्वीरवरक्षये ।

शकुनिः सौबलः श्रीमान्पाण्डवान्समुपाद्रवत् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन ! इस भयानक वीरवरों के विनाश कारी युद्ध के प्रवृत्त होने पर सुबल-पुत्र शकुनि ने पाण्डवों पर आक्रमण किया ॥१॥

तथैव सात्वतो राजन्हार्दिक्यः परवीरहा ।

अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानां वरूथिनीम् ॥२॥

हे राजन् ! शत्रुवीर नाशक, यदुवंशश्रेष्ठ, हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने भी पाण्डवों की सेना पर आक्रमण (हमला) कर दिया ॥२॥

ततः काम्बोजमुख्यानां नदीजानां च वाजिनाम् ।

आरट्टानां महीजानां सिन्धुजानां च सर्वशः ॥३॥

वनायुजानां शुभ्राणां तथा पर्वतवासिनाम् ।

वाजिनां बहुभिः संख्ये समन्तात्परिवारयन् ॥४॥

ये चाऽपरे तित्तिरिजा जवना वातरंहसः ।

इन्होंने कम्बोज (क़ाबुल) देशोत्पन्न नदीज आरट्ट देशज महीज सिन्धुज, वनायुज, पर्वत-देशज, शुभ्र, वेगशील बहुत से अश्वों से रण में चारों ओर से घेर लिया । जो तित्तिरि देशोत्पन्न वेगशील वायु के समान दौड़ने वाले अश्व थे, वे भी साथ थे ॥३-४॥

सुवर्णालंकृतैरेतैर्वर्मवद्भिः सुकल्पितैः ॥५॥
हयैर्वातजवैर्मुख्यैः पाण्डवस्य सुतो बली ।
अभ्यवर्तत तत्सैन्यं हृष्टरूपः परन्तपः ॥६॥

सुवर्ण के अलङ्कार और सुन्दर रचित कवचों से युक्त, वायु के तुल्य वेग वाले मुख्य २ अश्वों से युक्त होकर पाण्डु पुत्र शत्रु-तापी महाबली अर्जुन का पुत्र इरावान् प्रसन्नता से इस सेना पर झपटा ॥५-६॥

अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान् ।
स्नुषायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥६॥
ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना ।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥८॥
भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम् ।

यह अर्जुन-पुत्र इरावान्, बड़ा पराक्रमी और ऐश्वर्य शाली था। यह नागराज ऐरावत की कन्या में अर्जुन द्वारा उत्पन्न किया गया था। नागराज महात्मा ऐरावत ने अपनी उलूपी कन्या को पुत्र हीन देखकर अर्जुन को प्रदान करदी थी, क्योंकि इसके पति को सुपर्ण (गरुड़) ने मार दिया, जिससे यह बिचारी बड़ी क्लेशित थी। अर्जुन ने भी युवावस्था सम्पन्न इस कन्या को अपनी भार्या बनाकर ग्रहण किया ॥७-८॥

एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः ॥९॥
स नागलोके संवृद्धो मात्रा च परिरक्षितः ।
पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद् दुरात्मना ॥१०॥

इस प्रकार अन्य की स्त्री के भार्या बनाने के अनन्तर अर्जुन द्वारा यह इरावान् पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसका पालन पोषण नागलोक में ही हुआ। वहीं इसकी माता इसकी रक्षा करती रही। इसके दुरात्मा पितृव्य (चाचा) ने अर्जुन से द्वेष होने के कारण इस पुत्र का परित्याग कर दिया ॥९-१०॥

रूपवान्बलसम्पन्नो गुणवान्सत्यविक्रमः ।
इन्द्रलोकं जगामाऽऽशु श्रुत्वा तत्राऽर्जुनं गतम् ॥११॥

यह इरावान् बड़ा रूपवान्, गुणवान्, और सत्य पराक्रमी था। अर्जुन को इन्द्रलोक में गया हुआ सुनकर यह उनसे मिलने को वहीं पहुंचा ॥११॥

सोऽभिगम्य महाबाहुः पितरं सत्यविक्रमः ।
अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृताञ्जलिः ॥१२॥
न्यवेदयत चाऽऽत्मानमर्जुनस्य महात्मनः ।
इरावानस्मि भद्रं ते पुत्रश्चाऽहं तव प्रभो ॥१३॥
मातुः समागमो यश्च तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।

इस सत्यपराक्रमी महाबाहु, इरावान् ने अपने पिता अर्जुन के पास पहुँचकर विनय से हाथ जोड़कर निर्भीक भाव से प्रणाम किया और महात्मा अर्जुन को अपना परिचय दिया-हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र इरावान् हूं। अपनी माता और अर्जुन के मिलने की घटना का भी स्मरण दिलाया ॥१२-१३॥

तच्च सर्वं यथावृत्तमनु सस्मार पाण्डवः ॥१४॥
परिष्वज्य सुतं चाऽपि आत्मनः सदृशं गुणैः ।
प्रीतिमाननयत्पार्थो देवराजनिवेशने ॥१५॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन को उस सारी घटना का स्मरण हो आया, इन्होंने अपने ही गुणों के सदृश वीर पुत्र को देखकर उसका आलिङ्गन किया और बड़ी प्रीति के साथ, अर्जुन, इरावान् को देवराज इन्द्र के भवन पर लेगए ॥१४-१५॥

सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप ।
प्रीतिपूर्वं महाबाहुः स्वकार्यं प्रति भारत ॥१६॥
युद्धकाले त्वयाऽस्माकं साह्यं देयमिति प्रभो ।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल इहाऽऽगतः ॥१७॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! अर्जुन ने देवलोक में ही महाबाहु इरावान् को अपने युद्ध में आने का प्रीति-पूर्वक निमन्त्रण दे दिया था और कहा था-हे शक्तिशालिन ! तुमको युद्ध के समय हमारी सहायता करनी चाहिए। इसने भी इस युद्ध के निमन्त्रण को स्वीकार किया और युद्ध उपस्थित होने पर यह भी उपस्थित हो गया ॥१६-१७॥

कामवर्णजवैरश्वैर्बहुभिः संवृतो नृप ।
ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः ॥१८॥
उत्पेतुः सहसा राजन्हंसा इव महोदधौ ।

हे नृप ! मन के हरने वाले अनेक वर्णों के अश्वों से यह इरावान, सम्पन्न है। इन अनेक वर्ण धारी, मन के समान वेग-शील, अश्वों के गलों में सुवर्ण की मालाएँ पड़ी हैं, जो समुद्र में हंस की भांति, भूमि पर उड़ते हैं ॥१८॥

ते त्वदीयान्समासाद्य हयसङ्घान्मनोजवान् ॥१९॥
क्रोडैः क्रोडानभिघ्नन्तो घोणाभिश्च परस्परम् ।
निपेतुः सहसा राजन्सुवेगाभिहता भुवि ॥२०॥

ये अश्व, तुम्हारे मनोवेगधारी अश्वों के समीप पहुंच कर शिर से शिर और नासिका से नासिका टकरा कर एक दूसरे को मारने लगे । हे राजन् ! एक दूसरे के वेग से आहत होकर अनेक अश्व, भूमि पर गिरने लगे ॥१९-२०॥

निपतद्भिस्तथा तैश्च हयसङ्घैः परस्परम् ।
शुश्रुवे दारुणः शब्दः सुपर्णपतने यथा ॥२१॥

इस अश्वसमूह के परस्पर टकरा कर भूमि में गिरने के समय इतना दारुण शब्द होता था, जैसे कहीं पर गरुड़ झपट रहा हो ॥२१॥

तथैव तावका राजन्समेत्याऽन्योन्यमाहवे ।
परस्परवधं घोरं चक्रुस्ते हयसादिनः ॥२२॥

हे राजन् ! अब तुम्हारे अश्वारोही सैनिक भी रण में एक दूसरे के सन्मुख पहुंच कर एक दूसरे का घोर वध कर रहे थे ।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् ।
उभयोरपि संशान्ता हयसङ्घाः समन्ततः ॥२३॥

इस प्रकार घोर अत्यन्त भयानक युद्ध के छिड़ने पर रणभूमि में सब ओर दोनों ओर के अश्व मरे पड़े दिखाई देते थे ॥२३॥

प्रक्षीणसायकाः शूरा निहताश्वाः श्रमातुराः ।
विलयं समनुप्राप्तास्तक्षमाणाः परस्परम् ॥२४॥

जिनके अश्व मारे गए, बाण सम्पूर्ण हो गए-ऐसे थके हुए शूरवीर, परस्पर एक दूसरे पर आघात करके मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे ॥२४॥

ततः क्षीणे हयानीके किञ्चिच्छेषे च भारत ।
सौबलस्याऽनुजाः शूरा निर्गता रणमूर्द्धनि ॥२५॥

हे भारत ! बहुत सी अश्वों की सेना के क्षीण हो जाने पर और कुछ शेष रहने के समय शकुनि के शूरवीर छोटे भाई, रण के अग्रभाग में आगे बढ़े ॥२५॥

वायुवेगसमस्पर्शाञ्जवे वायुसमांश्च ते ।
आरुह्य बलसम्पन्नान्वयःस्थांस्तुरगोत्तमान् ॥२६॥
गजो गवाक्षो वृषभश्चर्मवानार्जवः शुकः ।
षडेते बलसम्पन्ना निर्ययुर्महतो बलात् ॥२७॥

ये भी स्पर्श करते ही वायु के समान उड़ने वाले वायु तुल्य वेगधारी, बल सम्पन्न, तरुण अश्वों पर सवार होकर सन्मुख

आए। बज, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान, आर्जव और शुक ये छः महाबली शकुनि के भ्राता बड़ी भारी सेना के साथ इरावान् पर झपटे ॥२६-२७॥

वार्यमाणाः शकुनिना तैश्च योधैर्महाबलैः।
सन्नद्धाः युद्धकुशला रौद्ररूपा महाबलाः ॥२८॥

महाबली अनेक योद्धा और शकुनि ने इनको बहुत ही रोका, परन्तु महाबली बड़े भयानक रूप धारण करके युद्ध को सन्नद्ध हो ही गए। ये युद्ध में बड़े ही कुशल थे ॥२८॥

तदनीकं महाबाहो भित्वा परमदुर्जयम्।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः ॥२९॥
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः।

हे महाबाहो ! ये गान्धारदेशोतपन्न युद्धदुर्मद छःओं भ्राता, विजय की अभिलाषा से परम दुर्जय इरावान् की अश्व सेना को चीर कर बड़ी भारी सेना के साथ प्रसन्नता-पूर्वक उसीमें स्वर्ग प्राप्ति के लिए घुस गए ॥२९॥

तान्प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान् ॥३०॥
अब्रवीत्समरे योधान्विचित्रान्दारुणायुधान्।
यथैते धार्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः ॥३१॥
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम्।

इनको अपनी सेना में घुसे हुए देखकर वीर्यवान् इरावान् ने रण में अपने विचित्र और दारुण शस्त्रधारी योद्धाओं को आज्ञा

दी, कि जिस तरह अपने अनुचर और वाहनों के साथ ये धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनके योद्धा, मारे जावे, तुम लोग वही नीति स्वीकार करो।

बाढमित्येवमुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः ॥३२॥
जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्जयं समरे परैः ।

इरावान् के सारे योद्धा, इस आज्ञा को हर्ष पूर्वक स्वीकार करके अन्य से दुर्जय, इस सारी सेना का रण में विनाश करने लगे ॥३२॥

तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम् ॥३३॥
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्याऽऽत्मजा रणे ।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन् ॥३४॥

हे राजन्! शत्रुसेना द्वारा अपनी सेना को गिराई हुई देखकर सुबलपुत्र गवाक्षादि, रण में क्रुद्ध हो उठे और इन्होंने आक्रमण करके इरावान् को जा घेरा ॥३३-३४॥

ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम् ।
ते शूराः पर्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥३५॥

इन शूरवीरों ने तीक्ष्ण प्रास नामक शस्त्रों को लेकर बड़े वेग से आक्रमण किया और एक दूसरे योद्धा को आक्रमण के लिए उकसाया। इन्होंने इस समय रणाङ्गण में बहुत ही हल-चल मचा दी ॥३५॥

इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः ।
स्रवता रुधिरेणाऽक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः ॥३६॥

इन विरोधी महावीरों ने तीक्ष्ण प्रासों से इरावान् को क्षत-विक्षत कर दिया। तीव्र शस्त्र से विद्ध हाथी की भांति, इरावान् रुधिर में भीग गया ॥३६॥

पुरतोऽपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः ।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद्राजन्न विव्यथे ॥३७॥

हे राजन्! इरावान् अकेला था और आक्रमण करने वाले विरोधी वीर बहुत थे। यह आगे पीछे दोनों पार्श्व, (अगलबगल) में आहत हो रहा था ॥३७॥

इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः ।
मोहयामास समरे विध्वा परपुरञ्जयः ॥३८॥

शत्रुपुरविजयी इरावान् ने क्रोध में भर कर अपने तीक्ष्ण बाणों से सबको बींध कर मोहित कर दिया ॥३८॥

प्रासानुत्कृष्य तरसा स्वशरीरादरिन्दमः ।
तैरेव ताडयामास सुबलस्याऽऽत्मजात्रणे ॥३९॥

अरिमर्दन इरावान् ने अपने शरीर पर लगाए हुए प्रासों (बाण विशेषों) में से कुछ प्रास निकाल कर सुबल पुत्रों पर रण में बड़े वेग से आक्रमण किया ॥३९॥

विकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम् ।
पदातिर्द्रुतमागच्छज्जिघांसुः सौबलान्युधि ॥४०॥

अब इरावान् ने तीक्ष्ण खड्ग खैंचा और कवच ठीक किया। यह सुबल पुत्रों को रण में मार गिराने के उद्देश्य से पैदल ही बड़े तीव्र वेग से उन पर झपटा ॥४०॥

ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः ॥४१॥

इरावान् के आघात से मोहित हुए सुबलपुत्रों के शरीर में कुछ देर में प्राण आए और वे फिर क्रोधाविष्ट होकर इरावान् पर झपटे ॥४१॥

इरावानपि खड्गेन दर्शयन्पाणिलाघवम्।
अभ्यवर्तत तान्सर्वान्सौबलान्बलदर्पितः ॥४२॥

बलोन्मत्त इरावान् भी खड्ग द्वारा अपने हाथों का कौशल दिखाता हुआ, उन सारे सुबल-पुत्रों से टक्कर लेने लगा ॥४२॥

लाघवेनाऽथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
अन्तरं नाऽभ्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगैर्हयैः ॥४३॥

इरावान् इतने लाघव (फ़ुर्ती) से खड्ग के हाथ फैंक रहा था, कि शीघ्रगामी अश्वों पर दौड़ने वाले भी सुबल-पुत्र, इस पर प्रहार करने का अन्तर (मौका) नहीं पाते थे ॥४३॥

भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः।
परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः ॥४४॥

इन सब वीरों ने इरावान् को भूमि में स्थित देखकर, सब ओर से अच्छी तरह घेरकर पकड़ लेना चाहा ॥४४॥

अथाऽभ्याशगतानां स खड्गेनाऽमित्रकर्शनः ।
असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत ॥४५॥

शत्रुविजयी, इरावान् ने जब इनको पास आते देखा-तो अपने खड्ग के ऐसे हाथ निकाले, कि जिनसे उनके शरीर कटकर लोहू-लुहान होगए ॥४५॥

आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि विभूषितान् ।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा मृता भूमौ गतासवः ॥४६॥

इन सबके हाथों से शस्त्र, छूट पड़े । इनकी विभूषित भुजाएँ काटकर गिरा दी गई । इन सबके शरीर बहुत ही कट गए थे, अतएव ये प्रांण विहीन होकर रणभूमि में गिर पड़े ॥४६॥

वृषभस्तु महाराज बहुधा विपरिक्षतः ।
अमुच्यत महारौद्रात्तस्माद्वीरावकर्तनात् ॥४७॥

हे महाराज ! इनमें वृषभ नामक सुबल-पुत्र यद्यपि बहुत आहत हो गया था, परन्तु तो भी इरावान् की महान् भीषण मार काट से उसने अपने को बचा लिया ॥४७॥

तान्सर्वान्पतितान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम् ॥४८॥
आर्ष्यश्रृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिन्दमम् ।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै ॥४९॥

इन सारे सुबल-पुत्रों को रण में गिरते देखकर राजा दुर्योधन भयभीत हो उठा। यह क्रोधाविष्ट हुआ, ऋष्यशृङ्ग के पुत्र, महा-धनुर्धर, मायावी, बकासुर के वध के कारण भीमसेन के शत्रु, भयङ्कर आकारवाले राक्षसराज अलम्बुष के पास पहुंचा और कहने लगा ॥४८-४९॥

पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली।
मायावी विप्रियं कर्तुमकार्षीन्मे बलक्षयः ॥५०॥

हे वीर! तुम देख नहीं रहे हो—यह अर्जुन का बलवान् पुत्र, मायावी इरावान्, मेरे अहित में तत्पर होकर मेरी सेना का विनाश कर रहा है ॥५०॥

त्वं च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः।
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि ॥५१॥

हे तात! तुम कामचारी और माया के अस्त्र फैंकने में कुशल हो। तुम्हारा तो पाण्डवों से स्वयं वैर है, इससे अब शीघ्र इसका रण में वध करो ॥५१॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः।
प्रययौ सिंहनादेन यत्राऽर्जुनसुतो युवा ॥५२॥

यह घोर-स्वरूप-धारी, राक्षसराज, अलम्बुष, "अच्छी बात है" इस तरह कह कर सिंहनाद करता हुआ उसी स्थान पर पहुँचा, जहां युवा अर्जुन पुत्र इरावान् युद्ध कर रहा था ॥५२॥

आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः ।
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तैः स्वैरनीकैः समावृतः ॥५३॥

अश्व आदि वाहनों पर चढ़े हुए, चमकते हुए प्रास आदि शस्त्रों के धारण करने वाले, युद्ध कुशल, प्रहार करने में तत्पर अनेक योग्य वीरों की सेना से राक्षसराज अलम्बुष समन्वित था ॥५३॥

हतशेषैर्महाराज द्विसाहस्रैर्हयोत्तमैः ।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम् ॥५४॥

हे महाराज ! इस समय मारने से दो सहस्र अश्व, बचे हुए थे। राक्षसराज इनको लेकर महाबली इरावान् के मारने की कामना से बड़े वेग से दौड़ा ॥५४॥

इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी ।
हन्तुकामममित्रघ्नो राक्षसं प्रत्यवारयत् ॥५५॥

शत्रु-नाशक, महा पराक्रमी इरावान् ने भी क्रोध में भर कर बड़ी शीघ्रता से राक्षसराज अलम्बुष के वध के ध्यान से उसे वहीं रोक दिया ॥५५॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः ।
त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे ॥५६॥

इरावान् को झपट कर आता देखकर महाबली राक्षस अलम्बुष ने बड़ी शीघ्रता से माया फैलाना आरम्भ किया ॥५६॥

माया हि सहजा तेषां वयो रूपं च कामजम् ॥६५॥
एवं तद्राक्षसस्याऽङ्गं छिन्नं छिन्नं बभूव ह ।

इन राक्षसों के साथ तो माया (छल) स्वभाव से उत्पन्न होती है। अपनी इच्छानुसार अवस्था और रूप बना लेना, तो इनका साधारण कार्य है। इतना होने पर भी उस राक्षस का शरीर टुकड़े २ हो गया ॥६५॥

इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ॥६६॥
परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः ।

इरावान, क्रोध में भरा हुआ था, इसने इस महाबलवान् राक्षस अलम्बुष को तीक्ष्ण परशु से बार २ आहत किया ॥६६॥

स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इरावता ॥६७॥
राक्षसोऽप्यनदद्घोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।

राक्षसराज अलम्बुष भी, इस महावीर इरावान द्वारा क्षत-विक्षत होकर भी बड़ी भारी गर्जना करने लगा-जिस का शब्द बहुत विस्तृत हो गया ॥६७॥

परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव बहुशोणितम् ॥६८॥
ततश्चुक्रोध बलवाँश्चक्रे वेगं च संयुगे ।

इरावान् के परशु से क्षत-विक्षत राक्षस अलम्बुष के शरीर से बहुत सा रुधिर बह गया, जिससे यह बलवान, बड़ा कुपित हुआ और इसने रण में बड़ा वेग दिखाया ॥६८॥

आर्ष्यशृङ्गिस्तथा दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ॥६९॥
कृत्वा घोरं महद्रूपं ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
अर्जुनस्य सुतं वीरमिरावन्तं यशस्विनम् ॥७०॥
संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम् ।

ऋष्यशृङ्ग के पुत्र, अलम्बुष ने अपने प्रतिपक्ष में बलवान् शत्रु देखकर रण में बड़ा विकराल रूप बनाया और अर्जुन के पुत्र, यशस्वी, वीर इरावान् को भीषण संग्राम के मध्य में सारी सेना ने देखते २ पकड़ लेना चाहा ॥६९-७०॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ॥७१॥
इरावानपि संक्रुद्धो मायां स्रष्टुं प्रचक्रमे ।

इस दुरात्मा राक्षसराज अलम्बुष की इस माया को देखकर इरावान् ने भी क्रोध में भर कर माया रचना आरम्भ किया ।७१॥

तस्य क्रोधाभिभूतस्य समरेष्वनिवर्तिनः ॥७२॥
योऽन्वयो मातृकस्तस्य स एनमभिपेदिवान् ।

जब क्रोध में भरा हुआ, इरावान्, किसी भी प्रकार युद्ध से निवृत्त नहीं हुआ-तो अब इसके माता के वंश के नाग वीर इसके पास आए ॥७२॥

स नागैर्बहुभी राजान्निरावान्संवृतो रणे ॥७३॥
दधार सुमहद्रूपमनन्त इव भोगवान् ।

हे राजन्! अब इरावान् को मातृवंशोद्भव, अनेक नागों ने रक्षार्थ घेर लिया। इस समय इसने अनेक फणाधारी शेष जी के तुल्य महान् रूप धारण किया ॥७३॥

ततो बहुविधैर्नागैश्छादयामास राक्षसम् ॥७४॥

छाद्यमानस्तु नागैः स ध्यात्वा राक्षसपुङ्गवः ।

सौपर्णं रूपमास्थाय भक्षयामास पन्नगान् ॥७५॥

इसके अनन्तर अनेक नागों ने लिपट कर राक्षसराज का शरीर ढक दिया। जब इस प्रकार नागों ने राक्षसराज को जकड़ दिया-तो उसने विचार किया और वह गरुड़ का आकार धारण करके सर्पों का भक्षण करने लगा ॥७४-७५॥

मायया भक्षिते तस्मिन्नन्वये तस्य मातृके ।

विमोहितमिरावन्तं न्यहनद्राक्षसोऽसिना ॥७६॥

जब राक्षसराज ने अपनी माया से इरावान् के मातृवंशज नागों का भक्षण कर लिया, तो इस शोक से इरावान् मोहित हो गया और इसी समय राक्षस ने इस पर खड्ग लेकर प्रहार किया।

सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम् ।

इरावतः शिरो रक्षः पातयामास भूतले ॥॥७७॥

कुण्डल और मुकट से सुशोभित, कमल और चन्द्रमाके तुल्य सुन्दर, इरावान् के मस्तक को इस प्रकार राक्षस अलम्बुष ने-रण-भूमि में गिरा दिया ॥७७॥

तस्मिंस्तु विहते वीरे राक्षसेनाऽर्जुनात्मजे ।
विशोकाः समपद्यन्त धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥७८॥

अर्जुन-पुत्र वीर इरावान् को राक्षसराज अलम्बुष द्वारा मार लेने पर सारे धृतराष्ट्र-पुत्र, अपने साथी राजाओं के सहित बड़े प्रसन्न हुए ॥७८॥

तस्मिन्महति संग्रामे तादृशे भैरवे पुनः ।
महान्व्यतिकरो घोरः सेनयोः समपद्यत ॥७९॥

इस प्रकार महान् रण के भीषण होनेपर फिर दोनों सेनाओं में घोर भयानक युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥७९॥

गजा हयाः पदाताश्च विमिश्रा दन्तिभिर्हताः ।
रथाश्वा दन्तिनश्चैव पत्तिभिस्तत्र सूदिताः ॥८०॥

हाथी, अश्व, पैदल सैनिक, बहुत सी संख्या में हाथियों ने एक साथ कुचल डाले और अनेक रथ, घोड़े, तथा हाथियों को पैदल सैनिकोंने नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥८०॥

तथा पत्तिरथौघाश्च हयाश्च बहवो रणे ।
रथिभिर्निहता राजंस्तव तेषां च सङ्कुले ॥८१॥

हे राजन्! इसी तरह पैदल सैनिक रथों के संघ और बहुत से अश्वों को रथियों ने तुम्हारी और पाण्डवों की सेना में परस्पर मार डाले ॥८१॥

अजानन्नर्जुनश्चाऽपि निहतं पुत्रमौरसम् ।
जघान समरे शूरान्राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः ॥८२॥

अपने औरस पुत्र इरावान् के मरने की अर्जुन को सूचना नहीं मिली। वह तो भीष्म के रक्षक शूरवीरों के रण में मारने में दिन भर लगा रहा ॥८२॥

तथैव तावका राजन्सृञ्जयाश्च सहस्रशः।
जुह्वतः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥८३॥

हे राजन्! इसी प्रकार तुम्हारे वीर और सृञ्जय वीरों ने सहस्रों की संख्या में रणाग्नि में अपने प्राणों का हनन कर दिया। इन्होंने परस्पर एक दूसरे के वध करने में कुछ उठा नहीं रखा ॥८३॥

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः।
बाहुभिः समयुध्यन्त समवेताः परस्परम् ॥८४॥

इन वीरों के बाल खुल रहे थे, कवच कट गए थे, रथ नष्ट भ्रष्ट हो चुके थे, धनुष कट चुके थे, तो भी ये इकट्ठे होकर बाहुओं द्वारा परस्पर युद्ध करने में जुटे हुए थे ॥८४॥

तथा मर्मातिगैर्भीष्मो निजघान महारथान्।
कम्पयन्समरे सेनां पाण्डवानां परन्तपः ॥८५॥

इधर परन्तप भीष्म भी मर्म स्थान को काट देने वाले बाणों से विरोधी महारथियों को मारकर रण में पाण्डवों की सेना को विकम्पित कर रहे थे ॥८५॥

तेन यौधिष्ठिरे सैन्ये बहवो मानवा हताः।
दन्तिनः सादिनश्चैव रथिनोऽथ हयास्तथा ॥८६॥

भीष्म ने राजा युधिष्ठिर की सेना के बहुत से वीर मनुष्य मार दिए–तथा हाथी, अश्वरोही रथी और अश्वों को मार २ बिछा दिया।

तत्र भारत भीष्मस्य रणे दृष्ट्वा पराक्रमम्।
अत्यद्भुतमपश्याम शक्रस्येव पराक्रमम् ॥८७॥

हे भारत ! रण में भीष्म का हमने जो पराक्रम देखा–वह इन्द्र के पराक्रम के सदृश बड़ा ही अद्भुत था ॥८७॥

तथैव भीमसेनस्य पार्षतस्य च भारत ।
रौद्रमासीद्रणे युद्धं सात्यकस्य च धन्विनः ॥८८॥

हे राजन् ! इसी तरह भीमसेन, पर्वतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न तथा धनुर्धर सात्यकि का युद्ध भी रणभूमि में महान् भीषण था ॥८८॥

दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रान्तं पाण्डवान्भयमाविशत् ।
एक एव रणे शक्तो निहन्तुं सर्वसैनिकान् ॥८९॥
किं पुनः पृथिवीशूरैर्योधव्रातैः समावृतः ।
इत्यब्रुवन्महाराज रणे द्रोणेन पीडिताः ॥९०॥

हे महाराज ! द्रोणाचार्य के पराक्रम को देखकर तो सारे पाण्डव, भयभीत हो उठे। यह तो अकेला ही, रण में सारे सैनिकों के मारने में समर्थ है और अब जब इसके साथ अनेक प्रसिद्ध कौरव वीरों का समूह है, तब तो इसका कहना ही क्या है। इस प्रकार रण में द्रोण से पीड़ित हुए सारे प्रतिपक्षी वीर कह रहे थे।

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे भरतर्षभ ।
उभयोः सेनयोः शूरा नाऽमृष्यन्त परस्परम् ॥९१॥

आविष्टा इव युध्यन्ते रक्षोभूता महाबलाः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च संरब्धास्तात धन्विनः ॥६२॥

हे भरतर्षभ ! जब इस प्रकार महारौद्र संग्राम हो रहा था और दोनों सेना के वीर एक दूसरे के आह्वान को सह नहीं रहे थे-ये महाबली, भूताविष्ट हुए से राक्षस बनकर युद्ध कर रहे थे । हे तात ! यह तुम्हारी और पाण्डव दोनों सेना के क्रुद्ध हुए धनुर्धरों की दशा थी ॥६१॥

न स्म पश्यामहे कश्चित्प्राणान्यः परिरक्षति ।
संग्रामे दैत्यसङ्काशे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि इरावद्वधे नवतितमोध्याय ।

इस देव दानव संग्राम के तुल्य वीर नाशक संग्राम में हमने कोई मनुष्य नहीं देखा-जो अपने प्राणों का मोह करके उसके बचाने की चेष्टा में हो ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में इरावान् के वध का नव्वेवां अध्याय समाप्त हुआ ।

इक्यानवेवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

इरावन्तं तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः ।
संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! इरावान् को मारा हुआ देखकर महारथी पाण्डवों ने संग्राम में क्या किया, यह सब मुझे सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः ।
व्यनदत्सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इरावान् को रण में मृत देखकर भीमसेन-पुत्र, राक्षस, घटोत्कच ने बड़े उच्चस्वर के साथ गर्जना की।

नदतस्तस्य शब्देन पृथिवी सागराम्बरा ।
सपर्वतवना राजंश्चचाल सुभृशं तदा ॥३॥
अन्तरिक्षं दिशश्चैव सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।

हे राजन् ! इस प्रकार उच्च-स्वर में घटोत्कच के गर्जना करने पर सागर के वसनों वाली, पृथिवी, पर्वत और वनों के सहित अत्यन्त डग-मगाने लगी तथा सारी दिशा, प्रदिशा और आकाश काँप उठा ॥३॥

तं श्रुत्वा सुमहानादं तव सैन्यस्य भारत ॥४॥
ऊरुस्तम्भः समभवद्वेपथुः स्वेद एव च ।

हे भारत ! इसके इस महानाद को सुनकर तुम्हारी सेना जकड़ गई और काँपने लगी—सारे वीरों को शरीर पसीने में भर गए ॥४॥

सर्व एव महाराज तावका दीनचेतसः ॥५॥
सर्वतः समचेष्टन्त सिंहभीता गजा इव ।

हे महाराज ! तुम्हारी सेना के प्रायः वीर, उदास और आतुर हो गए। इनकी सारी चेष्टाएँ सिंह से भयातुर गजकी सी दिखाई देने लगी ॥५॥

नर्दित्वा सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः ॥६॥
ज्वलितं शूलमुद्यम्य रूपं कृत्वा विभीषणम् ।
नानारूपप्रहरणैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः ॥७॥
आजघान सुसंक्रुद्धः कालान्तकयमोपमः ।

यह राक्षस-राज घटोत्कच, अनेक रूप और शस्त्रधारी, बड़े २ वीर राक्षसों से युक्त होकर बड़े भीषण शब्द से गर्जना करने लगा, जो बिजली की कड़क सी प्रतीत होती थी। इसने भीषण आकार बनाकर प्रदीप्त शूल को उठाया। यम और कालान्तक के तुल्य क्रोध में भर कर घटोत्कच ने तुम्हारी सेना का नाश करना आरम्भ किया ॥६-७॥

तमापन्ततं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ॥८॥
स्वबलं च भयात्तस्य प्रायशो विमुखीकृतम् ।

ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥९॥
प्रगृह्य विपुलं चापं सिंहवद्विनदन्मुहुः ।

भयानक आकार धारी, क्रोध-पूर्ण राक्षसराज को झपटते हुए तथा उसके भय से अपनी सेना को भयातुर देखकर राजा दुर्योधन ने स्वयं घटोत्कच पर आक्रमण किया। दुर्योधन के पास इस समय विशाल धनुष था और यह सिंह की भांति गर्जना कर रहा था।

पृष्ठतोऽनुययौ चैनं स्रवद्भिः पर्वतोपमैः ॥१०॥
कुञ्जरैर्दशसाहस्रैर्वङ्गानामधिपः स्वयम् ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य गजानीकेन संवृतम् ॥११॥
पुत्रं तव महाराज चुकोप स निशाचरः ।

इसके पीछे २ दश सहस्र पर्वत के समान उच्च आकार धारी मदस्रावी गजराजों को लेकर वङ्ग-देशका अधिपति, चला ॥१०॥ हे महाराज ! गज सेना से आवृत हुए वंगदेशाधिपति को झपटते देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन पर राक्षसराज घटोत्कच बड़ा कुपित हुआ ॥११॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१२॥
राक्षसानां च राजेन्द्र दुर्योधनबलस्य च ।

हे राजेन्द्र ! अब राक्षस वीर और राजा दुर्योधन की सेना में बड़ा लोमहर्षण, घोर युद्ध होने लगा ॥१२॥

गजानीकंच सम्प्रेक्ष्य मेघवृन्दमिवोदितम् ॥१३॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा राक्षसाः शस्त्रपाणयः ।
नदन्तो विविधान्नादान्मेघा इव सविद्युतः ॥१४॥

मेघ समूह के समान उमड़ती हुई गज सेना को देखकर राक्षस वीर, अनेक शस्त्र हाथ में लेकर क्रोध के साथ उन पर झपटे। ये सारे बिजली के साथ चढ़े हुए मेघ के तुल्य अनेक भांति से गर्जना कर रहे थे ॥१३-१४॥

शरशक्त्यृष्टिनाराचैर्निघ्नन्तो गजयोधिनः ।
भिन्दिपालैस्तथा शूलैर्मुद्गरैः सपरश्वधैः ॥१५॥
पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च निजघ्नुस्ते महागजान् ।

इन्होंने गजों पर बैठकर युद्ध करने वाले वीर और बड़े गजों को बाण, शक्ति, ऋष्टि, नाराच, भिन्दिपाल, शूल, मुद्गर, परशु, पर्वत के शिखर, वृक्ष आदि से मारना आरम्भ किया ॥१५॥

भिन्नकुम्भान्विरुधिरान्भिन्नगात्रांश्च वारणान् ॥१६॥
अपश्याम महाराज वध्यमानान्निशाचरैः ।

हे महाराज ! हमने रणभूमि में मस्तक फटे हुए, रुधिर में भीगे हुए, कटे गात्रवाले, राक्षसों से मारे हुए अनेक हाथी देखे।

तेषु प्रक्षीयमाणेषु भग्नेषु गजयोधिषु ॥१७॥
दुर्योधनो महाराज राक्षसान्समुपाद्रवत् ।

हे महाराज ! इस गज-सेना के क्षीण होकर भाग निकलने पर राजा दुर्योधन ने राक्षसों पर आक्रमण किया ॥१७॥

अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥१८॥
मुमोच निशितान्बाणान्राक्षसेषु परन्तप ।

हे परन्तप ! राजा दुर्योधन इस समय बड़े क्रोध में भरा हुआ था। इसने अपने प्राणों का मोह भी छोड़ रखा था। यह बड़े २ तीखे बाण राक्षसों पर छोड़ने लगा ॥१८॥

जघान च महेष्वासः प्रधानांस्तत्र राक्षसान् ॥१९॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।

हे भरतश्रेष्ठ ! इस महाधनुर्धर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने, क्रोधाविष्ट होकर प्रधान २ राक्षसों को मार गिराया ॥१९॥

वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम् ॥२०॥
शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान महाबलः ।

महाबली दुर्योधन ने चार बाण छोड़ कर वेगवान, महारौद्र, विद्युज्जिह्व और प्रमाथी इन चार राक्षसों को मार गिराया ॥२०॥

ततः पुनरमेयात्मा शरवर्षं दुरासदम् ॥२१॥
मुमोच भरतश्रेष्ठो निशाचरबलं प्रति ।

अपरिमित बलशाली, भरतवंशश्रेष्ठ राजा दुर्योधन ने अत्यन्त घोर बाण-वर्षा, राक्षसराज घटोत्कच की सेना पर करना आरम्भ की ॥२१॥

तत्तु दृष्ट्वा महत्कर्म पुत्रस्य तव मारिष ॥२२॥
क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः ।

हे आर्य ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के इस महान् कर्म को देखकर महाबली भीमसेन-पुत्र, घटोत्कच, बड़े कुपित हुए ॥२२॥

स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ॥२३॥
अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिन्दमम् ।

इसने अब बड़ा भारी धनुष चढ़ाया, जो इन्द्र के समान कान्तिशाली था। इसको चढ़ाकर घटोत्कच ने अरिविजयी राजा दुर्योधन पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥२३॥

तमापतन्तमुद्वीक्ष्य कालसृष्टमिवाऽन्तकम् ॥२४॥
न विव्यथे महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ।

हे महाराज ! समय पर लपकते हुए काल के तुल्य राक्षसराज घटोत्कच को देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन का चित्त कुछ भी व्यथित नहीं हुआ ॥२४॥

अथैनमब्रवीत्क्रुद्धः क्रूरः संरक्तलोचनः ॥२५॥
अद्याऽऽनृण्यं गमिष्यामि पितॄणां मातुरेव च ।

क्रूर, राक्षसराज घटोत्कच, लाल आंखें करके राजा दुर्योधन से कहने लगा—हे राजन् ! आज मैं तुमको मार कर अपने माता पिता के ऋण से मुक्त होना चाहता हूं ॥२५॥

ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः ॥२६॥
यच्च ते पाण्डवा राजञ्छलद्यूते पराजिताः ।
यच्चैव द्रौपदी कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ॥२७॥
सभामानीय दुर्बुद्धे बहुधा क्लेशिता त्वया ।
तव च प्रियकामेन आश्रमस्था दुरात्मना ॥२८॥

सैन्धवेन परामृष्टा परिभूय पितॄन्मम ।
एतेषामपमानानामन्येषां च कुलाधम ॥२८॥
अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ।

जिन मेरे पिता आदि को तुम क्षुद्र विचार वाले ने बहुत दिन तक बनवास में रखा और जिन (पाण्डव) मेरे पिताओं को द्यूत में छल करके पराजित कर दिया, जो द्रौपदी एक वस्त्र धारण करने वाली रजस्वला थी, हे दुर्बुद्धे! उसको भी सभा में लाकर तूने बहुत क्लेशित किया। तुम्हारे प्रिय करनेवाले, दुरात्मा सिन्धुराज जयद्रथ ने वन में जिसका अपहरण किया और मेरे पिता आदि का कुछ संकोच नहीं किया, हे कुलाधम ! इन अपमानों का आज मैं परिमार्जन कर लूंगा, जो तुम रण छोड़ कर भाग नहीं निकले ॥२६-२९॥

एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥३०॥
सन्दश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन् ।

हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच ने इतना कह कर अपने विशाल धनुष को खैंचा, और ओठों को दांतों से चाब कर ओष्ठ प्रान्तों को जिह्वा से चाट कर महान् क्रोध का भाव प्रकट किया ॥३०॥

शरवर्षेण महता दुर्योधनमवाकिरत् ॥
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्धे एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

इसने वर्षा ऋतु में पर्वत पर जल धारा से बरसने वाले मेघ की भांति राजा दुर्योधन पर बाण- वर्षा की झड़ी लगा दी ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घटोत्कच के युद्ध का इक्यानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ।

बानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततस्तद्बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि ।
दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतवंशश्रेष्ठ ! जिस बाण-वर्षा को दानव भी नहीं सह सकते थे, उसको राजा दुर्योधन, इस तरह सहते रहे, जैसे-मदोन्मत्त हाथी, जल वर्षा को सहता रहता है ॥१॥

ततः क्रोधसमाविष्टो निःश्वसन्निव पन्नगः ।
संशयं परमं प्राप्तः पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥२॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को बड़ा ही क्रोध चढ़ रहा था। वह सर्प की भांति श्वास ले रहा था। इस समय इसको अपने जीवन के विषय में भी संशय उत्पन्न हो गया ॥२॥

मुमोच निशितांस्तीक्ष्णान्नाराचान्पञ्चविंशतिम् ।
तेऽपतन्सहसा राजंस्तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ॥३॥
आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गन्धमादने ।
स तैर्विद्धः स्रवन्रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥४॥

हे राजन्! अब राजा दुर्योधन ने बड़े तीक्ष्ण, शाण पर धरे हुए, पच्चीस बाण छोड़े, जो एक दम राक्षसराज घटोत्कच के शरीर में जाकर लगे। ये बाण, गन्धमादन पर्वत पर रहने वाले तीक्ष्ण विषधारी क्रुध सर्पों के सदृश भयङ्कर थे। इन बाणों से विद्ध होकर राक्षसराज घटोत्कच के शरीर से रक्त इस तरह बह रहा था। जैसे--मदस्रावी हाथी के शरीर से मद टपक रहा हो ॥३-४॥

दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः ।
जग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारिणीम् ॥५॥

अब राक्षसराज, घटोत्कच ने राजा के वध करने का विचार किया। इसने पर्वतों को भी चीर देने वाली महाशक्ति को ग्रहण किया ॥५॥

सम्प्रदीप्तां महोल्काभामशनिं ज्वलितामिव ।
समुद्यच्छन्महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव ॥६॥

महाबाहु घटोत्कच ने महान् उल्का की तरह प्रदीप्त, वज्र के सदृश देदीप्यमान, इस शक्ति का प्रयोग तुम्हारे पुत्र के वध के लिए किया ॥६॥

तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वङ्गानामधिपस्त्वरन् ।
कुञ्जरं गिरिसङ्काशं राक्षसं प्रत्यचोदयत् ॥७॥

इस गदा को उठी हुई देखकर वङ्ग के अधिपति ने शीघ्रता से पर्वत के सदृश हाथी को राक्षसराज घटोत्कच की ओर चलाया।

स नागप्रवरेणाऽऽजौ बलिना शीघ्रगामिना ।
यतो दुर्योधनरथस्तं मार्गं प्रत्यवर्तत ॥८॥
रथं च वारयामास कुञ्जरेण सुतस्य ते ।

वङ्गाधिपति, अपने बलवान् शीघ्रगामी हाथी को उसी मार्ग से रण में ले गया, जिधर राजा दुर्योधन का रथ घूम रहा था। इसने तुम्हारे पुत्र के रथ को अपने हाथी से छुपा दिया ॥८॥

मार्गमावारितं दृष्ट्वा राज्ञा वङ्गेन धीमता ॥९॥
घटोत्कचो महाराज क्रोधसंरक्तलोचनः ।

हे महाराज! बुद्धिमान, वङ्गदेश के अधिपति द्वारा मार्ग को रुका हुआ देखकर घटोत्कच को बड़ा ही क्रोध हो आया और उसकी आंखें लाल हो गई ॥९॥

उद्यतां तां महाशक्तिं तस्मिंश्चिक्षेप वारणे ॥१०॥
स तयाऽभिहतो राजंस्तेन बाहुप्रमुक्तया ।
सञ्जातरुधिरोत्पीडः पपात च ममार च ॥११॥

घटोत्कच ने उठी हुई उस शक्ति को इस मदोन्मत्त हाथी पर छोड़ दी। हे राजन्! राक्षसराजकी बाहु द्वारा छोड़ी हुई उस शक्ति से आहत

हुए हाथी के शरीर से रुधिर की धारा बह निकली। इसके आघात से वह गिर गया और मर गया ॥१०-११॥

पतत्यथ गजे चाऽपि वङ्गानामीश्वरो बली।
जवेन समभिद्रुत्य जगाम धरणीतलम् ॥१२॥

जब वह हाथी गिर गया—तो वह महाबली वङ्गाधिपति, बड़े वेग से पृथिवी पर भाग निकला ॥१२॥

दुर्योधनोऽपि सम्प्रेक्ष्य पतितं वरवारणम्।
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा जगाम परमां व्यथाम् ॥१३॥

जब राजा दुर्योधन ने देखा, कि हाथी गिर गया और सेना भाग निकली--तो इसको बड़ा ही क्लेश हुआ ॥१३॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य आत्मनश्चाऽभिमानिताम्।
प्राप्तेऽपक्रमणे राजा तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥१४॥

यह क्षत्रिय धर्मके गौरव और अपने अभिमानको आगे करके भागने के समय में भी पर्वत की भांति अचल खड़ा रहा ॥१४॥

सन्धाय च शितं बाणं कालाग्निसमतेजसम्।
मुमोच परमक्रुद्धस्तस्मिन्घोरे निशाचरे ॥१५॥

इसने कालाग्नि के सदृश तेजस्वी, तीक्ष्ण बाण, धनुष पर चढ़ाया और अत्यन्त क्रुध होकर इस भयानक राक्षस पर छोड़ा।

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य बाणमिन्द्राशनिप्रभम्।
लाघवान्मोचयामास महात्मा वै घटोत्कचः ॥१६॥

इन्द्र के वज्रोपम इस राजा दुर्योधन के बाण को आता देखकर महावीर घटोत्कच ने अपने लावव (फुर्ती) के कारण उस बाण को निष्फल कर दिया ॥१६॥

भूयश्च विननादोग्रं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
त्रासयामास सैन्यानि युगान्ते जलदो यथा ॥१७॥

इसकी क्रोध में लाल आंखें हो गई और यह बड़ा उग्र सिंहनाद तथा प्रलयकाल के मेघ के तुल्य, सारी सेना को अत्यन्त त्रासित करने लगा ॥१७॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तस्य भीमस्य रक्षसः ।
आचार्यमुपसङ्गम्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥१८॥

उस भीषण राक्षस की घोर गर्जना को सुनकर शान्तनु-पुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य के समीप जाकर कहने लगे ॥१८॥

यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः ।
हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह ॥१९॥

यह तो राक्षसराज घटोत्कच का किया हुआ घोर चीत्कार सुनाई दे रहा है, जिससे ज्ञात होता है, कि राक्षसराज और कुरुराज दुर्योधन का युद्ध कहीं पर हो रहा है ॥१९॥

नैष शक्यो हि संग्रामे जेतुं भूतेन केनचित् ।
तत्र गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥२०॥

इसको कोई भी प्राणी संग्राम में जीत नहीं सकता है, तुम शीघ्र जाओ और राजा दुर्योधन की रक्षा करो ॥२०॥

अभिद्रुतो महाभागो राक्षसेन महात्मना ।
एतद्धि वः परं कृत्यं सर्वेषां नः परन्तपाः ॥२१॥

इस महावीर राक्षस ने महाभाग राजा दुर्योधन को घेर रखा है-ऐसा प्रतीत होता है। हे परन्तप! अब तुम्हारा और हमारा सबका राजा दुर्योधन की रक्षा करना ही सबसे प्रथम कर्तव्य है।

पितामहवचः श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ।
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र कौरवः ॥२२॥
द्रोणश्च सोमदत्तश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः ।

भीष्म पितामह के वचन सुनकर सारे महारथी, वेग से दौड़े और ये इतनी तीव्रता से गए, कि झटपट वहां पहुंच गए-जहां राजा दुर्योधन था ॥२२॥

कृपो भूरिश्रवाः शल्य आवन्त्यः सबृहद्बलः ॥२३॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।
रथाश्चाऽनेकसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः ॥२४॥
अभीद्रुतं परीप्सन्तः पुत्रं दुर्योधनं तव ।

द्रोण, सोमदत्त, बाल्हीक, जयद्रथ, कृप, भूरिश्रवा, शल्य, अवन्ति राजकुमार विन्द और अनुविन्द, बृहद्वल, अश्वत्थामा, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति, कई सहस्र रथियों और उनकी सेना को लेकर घिरे हुए तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की सहायता को पहुंचे ॥२३-२४॥

तदनीकमनाधृष्यं पालितं तु महारथैः ॥२५॥
आततायिनमायान्तं प्रेक्ष्य राक्षससत्तमः ।
नाऽकम्पत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ॥२६॥

आक्रमण के अयोग्य, महारथियों से सुरक्षित, मारने के विचार से आई हुई, इस सेना को देख कर भी राक्षसराज महाबाहु, घटोत्कच, कुछ भी कम्पित नहीं हुआ और मैनाक पर्वत की तरह वहीं डटा रहा ॥२५-२६॥

प्रगृह्य विपुलं चापं ज्ञातिभिः परिवारितः ।
शूलमुद्गरहस्तैश्च नानाप्रहरणैरपिः ॥२७॥
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
राक्षसानां च मुख्यस्य दुर्योधनबलस्य च ॥२८॥

इसने विशाल धनुष उठा लिया और शूल, मुद्गर आदि अनेक शस्त्रधारी अपने साथी राक्षसों को साथ लेकर घटोत्कच युद्ध करने लगा। अब राजा दुर्योधन की सेना और राक्षसराज घटोत्कच में बड़ा घोर लोमहर्षण युद्ध होने लगा ॥२७-२८॥

धनुषां कूजतां शब्दः सर्वतस्तुमुलो रणे ।
अश्रूयत महाराज वंशानां दह्यतामिव ॥२९॥

हे महाराज ! इस समय रण में धनुष के कूजन का ऐसा घोर शब्द हो रहा था, जैसे बांसों के वन में कहीं आग लग गई हो ।

अस्त्राणां पात्यमानानां कवचेषु शरीरिणाम् ।
शब्दः समभवद्राजन्गिरीणामिव भिद्यताम् ॥३०॥

हे राजन् ! वीरों के शरीर पर धारण किये हुए कवचों पर पड़ने वाले शस्त्रों का ऐसा घोर शब्द हो रहा था, जैसे-कहीं पर्वत फट रहे हों ॥३०॥

वीरबाहुविसृष्टानां तोमराणां विशाम्पते ।
रूपमासीद्वियत्स्थानां सर्पाणामिव सर्पताम् ॥३१॥

हे विशाम्पते ! वीरों की भुजाओं से फेंके हुए, तोमरों का आकार आकाश में दौड़ने वाले सर्पों के सदृश दिखाई देता था।

ततः परमसंक्रुद्धो विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
राक्षसेन्द्रो महाबाहुर्विनदन्भैरवं रवम् ॥३२॥
आचार्यस्याऽर्द्धचन्द्रेण क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
सोमदत्तस्य भल्लेन ध्वजं चोन्मथ्य चाऽनदत् ॥३३॥

अब महाबाहु राक्षसेन्द्र घटोत्कच बड़ा कुपित हुआ और उसने विशाल धनुष को उठाकर बड़ा घोर भीषण शब्द किया और यह इसी क्रोध में द्रोणाचार्य का धनुष, तथा सोमदत्त की ध्वजा को काट कर गर्जना करने लगा ॥३२-३३॥

बाह्लीकं च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
कृपमेकेन विव्याध चित्रसेनं त्रिभिः शरैः ॥३४॥

घटोत्कच ने राजा बाल्हीक के वक्ष स्थल में तीन बाण मारे, कृप को एक बाण से बींध डाला, और चित्रसेनके तीन बाण मारे।

पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च ।
जत्रुदेशे समासाद्य विकर्णं समताडयत् ॥३५॥
न्यषीदत्स्वरथोपस्थे शोणितेन परिप्लुतः ।

राक्षसेन्द्र ने धनुष को अच्छी तरह चढ़ा कर और अत्यन्त खैंच कर जत्रु-प्रदेश को लक्ष्य करके विकर्ण के बाण मारा। वह रक्त से आप्लुत होकर रथ के मध्य में अचेत सा बैठ गया ॥३५॥

ततः पुनरमेयात्मा नाराचान्दश पञ्च च ॥३६॥
भूरिश्रवसि संक्रुद्धः प्राहिणोद्भरतर्षभ।
ते वर्म भित्वा तस्याऽऽशु विविशुर्धरणीतलम् ॥३७॥

हे भरतर्षभ! इसके अनन्तर इस अपरिमित बल शाली घटोत्कच ने क्रुद्ध होकर पन्द्रह बाण, भूरिश्रवा पर छोड़े। ये बाण भूरिश्रवा का कवच बींध कर शीघ्र ही पृथिवी में घुस गये ॥३६॥

विविंशतेश्च द्रोणेश्च यन्तारौ समताडयत्।
तौ पेततू रथोपस्थे रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ॥३८॥

घटोत्कच ने विविंशति और अश्वत्थामा के सारथियों को आहत किया, ये अश्वों की रश्मि (रास) छोड़कर रथ के मध्य में गिर गए ॥३८॥

सिन्धुराज्ञोऽर्द्धचन्द्रेण वाराहं स्वर्णभूषितम्।
उन्ममाथ महाराज द्वितीयेनाऽच्छिनद्धनुः ॥३९॥

हे महाराज! घटोत्कच ने अर्धचन्द्र बाण से राजा जयद्रथ की वराह चिह्नसे युक्त, स्वर्ण-भूषित ध्वजा को काट गिराया और दूसरे बाण से इसने धनुष को काट डाला ॥३९॥

चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः ।
जघान चतुरो वाहान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥४०॥

क्रोधाविष्ट घटोत्कच ने चार बाण छोड़कर महावीर अवन्ति-देशोत्पन्न वीर विन्द के चारों अश्वों को मार डाला ॥४०॥

पूर्णायतविसृष्टेन पीतेन निशितेन च ।
निर्बिभेद महाराज राजपुत्रं बृहद्बलम् ॥४१॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
भृशं क्रोधेन चाऽऽविष्टो रथस्थो राक्षसाधिपः ॥४२॥

हे महाराज ! अत्यन्त बल के साथ खैंचे हुए, विष में बुझे हुए तीक्ष्ण बाण से घटोत्कच ने राजपुत्र बृहद्बल को क्षत विक्षत कर दिया। इस बाण से इसके इतना गहरा आघात पहुंचा, कि वह पीड़ित होकर रथ के मध्य में अचेत होकर बैठ गया ॥४१॥

चिक्षेप निशितांस्तीक्ष्णाञ्छरानाशीविषोपमान् ।
बिभिदुस्ते महाराज शल्यं युद्धविशारदम् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्धे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

हे महाराज ! अत्यन्त क्रोध से पूर्ण, रथ में स्थित राक्षसेन्द्र, घटोत्कच ने सर्प के सदृश, तीक्ष्ण और भीषण बाण छोड़े, जिनसे युद्ध-विशारद मद्रराज शल्य अत्यन्त क्षत विक्षत हो गए ।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घटोत्कच के युद्ध का बानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

तिरानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

विमुखीकृत्य सर्वांस्तु तावकान्युधि राक्षसः ।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनमुपाद्रवत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! राक्षसराज घटोत्कच, इस प्रकार तुम्हारे सारे महारथियों को युद्ध में पराङ्मुख करके राजा दुर्योधन के मारने की इच्छा से उसके ऊपर झपटा ॥१॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राजानं प्रति वेगितम् ।
अभ्यधावञ्जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः ॥२॥

जब तुम्हारे युद्धदुर्मद महारथियों ने इस राक्षसेन्द्र को वेग पूर्वक राजा दुर्योधन पर आक्रमण करते देखा-तो इसके मारने की इच्छा से वे सारे दौड़ पड़े ॥२॥

तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ।
तमेकमभ्यधावन्त नदन्तः सिंहसङ्घवत् ॥३॥

इन महारथियों ने ताल वृक्ष के सदृश लम्बे चौड़े धनुष खैंच कर सिंहसंघ की भांति गर्जना करते हुए इस अकेले घटोत्कच पर आक्रमण किया ॥३॥

अथैनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवाकिरन् ।
पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकाः ॥४॥

इन महारथियों ने अपनी बाण-वर्षा से शरद् ऋतु में जल धारा से पर्वत पर बरसने वाले मेघ समूह की भांति झड़ी लगा दी।

स गाढविद्धो व्यथितस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
उत्पपात तदाऽऽकाशं समन्ताद्वैनतेयवत् ॥५॥

तोत्र नामक शस्त्र से आहत हुए गजराज की भांति यह अत्यन्त और व्यथित आहत होकर वैनतेय (गरुड़) की भांति आकाश में उड़कर चक्कर लगाने लगा ॥५॥

व्यनदत्सुमहानादं जीमूत इव शारदः ।
दिशः खं विदिशश्चैव नादयन्भैरवस्वनः ॥६॥

इसने शरद् ऋतु के मेघ के समान गर्जना करना आरम्भ किया, जिससे दिशा, विदिशा और आकाश भीषण शब्द से भर गया ॥६॥

राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिन्दमम् ॥७॥
युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
यथाऽस्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवं स्वनम् ॥८॥

हे भरतश्रेष्ठ ! राक्षसराज, घटोत्कच के इस शब्द को सुनकर राजा युधिष्ठिर अरिन्दम भीमसेन से कहने लगे—हे भीम ! ज्ञात होता है, कि राक्षस राज घटोत्कच का कौरवों के महारथियों से संग्राम हो रहा है, जब ही तो यह उसका भैरवनाद सुनाई दे रहा है।

अतिभारं च पश्यामि तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ।
पितामहश्च संक्रुद्धः पञ्चालान्हन्तुमुद्यतः ॥९॥

तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् ॥१०॥
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम् ।

इस समय राक्षसेन्द्र घटोत्कच पर बहुत भार आ पड़ा है। इधर क्रोध में भरे हुए भीष्म पितामह, पाञ्चालवीरों का विध्वंस उड़ा रहे हैं। उनकी रक्षा के निमित्त अर्जुन इधर युद्ध कर रहे हैं। हे महाबाहो! अब दोनों ओर महान् कार्य उपस्थित हो गया, इससे तुमही जाओ और हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच की रक्षा करो-वह बड़े प्राण-संकट में फँस गया है ॥९-१०॥

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः ॥११॥
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन्सर्वपार्थिवान् ।
वेगेन महता राजन्पर्वकाले यथोदधिः ॥१२॥

अपने भ्राता राजा युधिष्ठिर के वचन सुनकर वृकोदर भीम, सिंहनाद से सारे विरोधी राजाओं को भयभीत करता हुआ घटोत्कच की रक्षा को चल पड़ा। यह इतने वेग से चला, जैसे प्रलयकाल में समुद्र उछलता है ॥११-१२॥

तमन्वगात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥१३॥
अभिमन्युमुखाश्चैव द्रौपदेया महारथाः ।
क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्रधर्मा तथैव च ॥१४॥

अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमास्थितः ।
महता रथवंशेन हैडिम्बं पर्यवारयन् ॥१५॥

इसके पीछे सुचित्तका-पुत्र, युद्धदुर्मद सत्यधृति, श्रेणिमान्, वसुराज, काशिराज-पुत्र अभिभू, अभिमन्यु और महारथी द्रौपदी-पुत्र, महापराक्रमी क्षत्रदेव और क्षत्रधर्म तथा अनूप प्रदेश का अधिपति राजा नील, अपनी २ सेना लेकर बड़े भारी रथियों के समूह के साथ पहुंचे और घटोत्कच को घेरकर उसकी रक्षा करने लगे ॥१३-१५॥

कुञ्जरैश्च सदा मत्तैः षट्सहस्रैः प्रहारिभिः ।
अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥१६॥

इनके साथ छः हज़ार मदोन्मत्त गज और गजपति थे, जो प्रहार करने में कुशल थे। इनसे वे महारथी, राक्षसराज घटोत्कच की रक्षा में तत्पर हुए ॥१६॥

सिंहनादेन महता नेमिघोषेण चैव ह।
खुरशब्दनिपातैश्च कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥१७॥

महान सिंहनाद रथ की नेमियों का घोष, अश्वों के खुरों की ध्वनि से ये वीर, पृथिवी को कँपा रहे थे ॥१७॥

तेषामापततां श्रुत्वा शब्दं तं तावकं बलम् ।
भीमसेनभयोद्विग्नं विवर्णवदनं तथा ॥१८॥

इनके आक्रमण को जब तुम्हारी सेना ने सुना-तो वह भीमसेन के भय से उद्विग्न हो उठी और उसके मुख की रंगत फीकी पड़ गई ॥१८॥

परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तत्र तेषां महात्मनाम् ॥१९॥
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।

हे महाराज ! अब लौट कर आये हुए घटोत्कच को छोड़कर तुम्हारी सेना इन आये हुए पाण्डव वीरों के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुई । तुम्हारे और पाण्डवों के वीर जुटे हुए थे, कोई भी युद्ध से निकल जाने की इच्छा नहीं करता था ॥१९॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥२०॥
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
व्यतिष्वक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम् ॥२१॥

ये सारे महारथी, अनेक भांति के शस्त्रों को लेकर चला रहे थे और एक दूसरे पर आक्रमण करके गाढ़ प्रहार कर रहे थे । इस युद्ध का इतने महाभयानक ढंग से आरम्भ हुआ, कि जिसको देखकर भीरु लोग भयभीत हो जाते थे ॥२०-२१॥

हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रार्थयानाः समभ्ययुः ॥२२

अश्वारोही, गजपतियोंसे और पैदल सैनिक रथियोंसे भिड़ गए । हे राजन् ! रण में एक दूसरे को ललकार कर वीर, युद्ध कर रहे थे

सहसा चाभवत्तीव्रं सन्निपातान्महद्रजः।
गजाश्वरथपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम् ॥२३॥

इस समय गज, अश्व, रथ और पैदल सैनिकों के पद और रथ की नेमि से उठाई हुई धूलि, सेना की भाग दौड़ से बड़ी ही तीव्र होगई ॥२३॥

धूम्रारूणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत् ।
नैव स्वे न परे राजन्समजानन्परस्परम् ॥२४॥

धूम्रवर्ण की धूलि इतनी तीव्र हुई, कि इसके अन्धकार ने सारी रणभूमि को ढ़क लिया। हे राजन् ! इस समय युद्ध में अपने और पराये का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था ॥२४॥

पिता पुत्रं न जानीते पुत्रो वा पितरं तथा ।
निर्मर्यादे तथा भूते वैशसे लोमहर्षणे ॥२५॥

पिता, पुत्र को और पुत्र, पिता को नहीं पहचान पाता था। इस समय युद्ध सीमा से बाहर हो चुका था और इसमें बड़ी ही लोमहर्षण मार काट मची हुई थी॥२५॥

शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां च गर्जताम् ।
सुमहानभवच्छब्दः प्रेतानामिव भारत ॥२६॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इस समय शस्त्रों के आघात और मनुष्यों की गर्जना का इतना तीव्र शब्द हो रहा था, कि जैसे-कहीं भूतगण, हल्ला गुल्ला मचा रहे हों ॥२६॥

गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।
प्रावर्तत नदी तत्र केशशैवलशाद्वला ॥२७॥

अब हाथी, अश्व और मनुष्या के रक्त की नदी बह निकली, जिसमें इनकी आँतें, तरङ्ग के सदृश दिखाई दे रहीं थी । इसमें इनके बाल, शिवाल और हरी २ घास से दिखाई दे रहे थे ॥२७॥

नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां पततां रणे ।
शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दः पततामश्मनामिव ॥२८॥

मनुष्यों की देहों से पृथक् होकर गिरते हुए शिरों का रण में इतना भीषण शब्द सुनाई देता था, जैसे-कहीं पत्थर बरस रहे हों ।

विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च च्छिन्नगात्रैश्च वारणैः ।
अश्वैः सम्भिन्नदेहैश्च सङ्कीर्णाऽभूद्वसुन्धरा ॥२६॥

शिर विहीन मनुष्य, छिन्न-भिन्न शरीर वाले हाथी और इसी तरह के क्षत-विक्षत अश्वों से सारी रणभूमि व्याप्त हो रही थी ॥२६॥

नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारार्थमुद्यताः ॥३०॥

महारथीगण, अनेक भांति के शस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे । ये प्रहार की आकांक्षा से एक दूसरे पर बड़े ही वेग से आक्रमण करते थे ॥३०॥

हया हयान्समासाद्य प्रेषिता हयसादिभिः ।
समाहत्य रणेऽन्योन्यं निपेतुर्गतजीविताः॥३१॥

अश्वारोहियों से चलाए हुए अश्व, अन्य अश्वों के पास पहुंच कर और एक दूसरे पर आघात करके रणभूमि में मृतक होकर गिर जाते थे ।।३१।।

नरा नरान्समासाद्य क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ।
उरांस्युरोभिरन्योन्यं समाश्लिष्य निजघ्निरे ।।३२।।

क्रोध से अत्यन्त लाल नेत्रधारी, मनुष्य, अन्य सैनिकों के समीप पहुंच कर छाती से छाती रगड़ कर एक दूसरे को यमधाम पहुंचा रहे थे ।।३२।।

प्रेषिताश्च महामात्रैर्वारणाः परवारणैः ।
अभ्यघ्नन्त विषाणाग्रैर्वारणानेव संयुगे ।।३३।।

शत्रु घातक महावतों से आगे बढ़ाए हुए हाथी, शत्रु के हाथियों को रण में अपने दाँतों के अग्रभागसे अत्यन्त आहत कर रहे थे ।

ते जात रुधिरोत्पीडाः पताकाभिरलंकृताः ।
संसक्ताः प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः।।३४।।

इनके गले में रुधिर धारा की माला सी पड़ी थी और ये पताकाओं से विभूषित थे, जो बिजली के साथ लगातार चढ़ी आती हुई मेघ माला के सदृश प्रतीत होती थी ।।३४।।

केचिद्भिन्ना विषाणाग्रैर्भिन्नकुम्भाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त गर्जमाना घना इव ।।३५।।

कुछ हाथियों के मस्तक अन्य हाथियों के दांत या तोमर शस्त्रों से फट गए थे । वे रणभूमि से चिंघाड़ते हुए गर्जते हुए मेघ की भांति भाग रहे थे ।।३५।।

केचिद्धस्तैर्द्विधा च्छिन्नैश्छिन्न गात्रास्तथापरे ।
निपेतुस्तुमुले तस्मिंश्छिन्नपक्षा इवाऽद्रयः ॥३६॥

कितने ही हाथियों के हाथ (सूंड) कट गए और कितनो के शरीर छिन्न-भिन्न हो गए। ये इस भीषण रणभूमि में पक्ष कटे हुए पर्वतों के सदृश गिरे हुए दिखाई दे रहे थे ॥३६॥

पार्श्वैस्तु दारितैरन्ये वारणैर्वरवारणाः ।
मुमुचुः शोणितं भूरि धातूनिव महीधराः ॥३७॥

अन्य हाथियों ने विरोधी हाथियों के पार्श्व भाग को इस तरह चीर फाड़ दिया, कि पर्वतों से गेरु आदि धातुओं के प्रवाह की भांति रक्त धारा छोड़ रहे थे ॥३७॥

नाराचनिहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥३८॥

बाण से बिद्ध हुए तथा तोमर शस्त्र से आहत हुए अनेक हाथी चिंघाड़ मार कर शिखर-हीन पर्वत की भांति दौड़े चले जाते थे।

केचित्क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः ।
रथान्हयान्पदातींश्च ममृदुः शतशो रणे ॥३९॥

मदोन्मत्त हुए, विना किसी रुकावट के उच्छृङ्खलता से दौड़ने वाले, क्रोधाविष्ट अनेक गजराज, रणभूमि में सैंकड़ों रथ हाथी और पैदल सैनिकों का चूरा कर रहे थे ॥३९॥

तथा हया हयारोहैस्ताडिताः प्रासतोमरैः ।
तेन तेनाऽभ्यवर्तन्त कुर्वन्तो व्याकुला दिशः ॥४०॥

एक अश्वारोही दूसरे अश्व पर प्रास तोमर आदि शस्त्रों से आघात कर रहे थे। ये प्रसिद्ध प्रसिद्ध योद्धा, सारी दिशाओं को व्याकुल करते हुए घोर युद्ध में प्रवृत्त थे ॥४०॥

रथिनो रथिभिः सार्धं कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
परां शक्तिं समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥४१॥

एक रथी योद्धा, दूसरे रथी वीर से बड़ी शक्ति लगाकर निर्भयता के साथ युद्ध कर्म कर रहे थे, क्योंकि ये सारे उत्तम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने से युद्ध में प्राणों का मोह नहीं कर रहे थे ॥४१॥

स्वयंवर इवाऽऽमर्दे प्रजह्नुरितरेतरम् ।
प्रार्थयाना यशो राजन्स्वर्गं वा युद्धशालिनः ॥४२॥

हे राजन् ! रणभूमि में स्वयम्वर का सा कोलाहल था। जहां पर युद्धशाली एक वीर, दूसरे वीर पर लौकिक यश की आकांक्षा या युद्ध में मृत्यु होने से स्वर्ग की कामना से प्रहार कर रहे थे ॥४२

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
धार्तराष्ट्रं महत्सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥६३॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार का घमसान लोमहर्षण, युद्ध हो रहा था, तो कौरवों की विशाल सेना प्रायः युद्ध से विमुख होकर चल पड़ी ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घटोत्कच आदि के घोर युद्ध का तिरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।
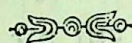
चौरानवेवां अध्याय

संजय उवाच—

स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! जब राजा दुर्योधन ने अपनी सेना का विनाश देखा-तो क्रोध में भरकर स्वयं अरिमर्दन भीम पर झपटा ॥१॥

प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥२॥

इसने इन्द्र-वज्र के समान ध्वनि करने वाला, विशाल धनुष लिया और उसके द्वारा भीषण बाण वर्षा से पाण्डु-पुत्र भीमसेन को पाट दिया ॥२॥

अर्धचन्द्रं च सन्धाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम् ।
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः ॥३॥

राजा दुर्योधन ने क्रोधाविष्ट होकर अर्धचन्द्र संज्ञक लोमधारी तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाया, जिससे इसने भीमसेन का धनुष काट कर भूमि पर डाल दिया ॥३॥

तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः ।
प्रसन्दधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥४॥
तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत् ।

इसके अनन्तर ध्यान से विचार कर के महारथी राजा दुर्योधन ने, बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) से पर्वतों को भी चीर देने वाला तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाया और उससे उन्होंने भीमसेन के वक्ष-स्थल पर प्रहार किया ॥४॥

स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥५॥
समाललम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।

इस बाण से भीमसेन के इतनी गहरी चोट बैठी, कि वह बड़ा ही पीड़ित हुआ और क्रोध से ओष्ठ प्रान्त चाटकर रह गया। इस समय तेजस्वी भीम, सुवर्ण से उज्ज्वल ध्वजा के दण्ड को पकड़ कर जैसे तैसे स्थित रहा ॥५॥

तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ॥६॥
क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः ।

जब घटोत्कच ने इस प्रकार भीमसेन को क्रोशित देखा-तो तृण-राशि को जलाने की इच्छा वाले अग्नि की भांति, यह प्रज्वलित हो उठा ॥६॥

अभिमन्युमुखाश्चापि पाण्डवानां महारथाः ॥७॥

समभ्यधावन्क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः ।

अब अभिमन्यु आदि पाण्डवों के महारथी, हड़बड़ा, कर गर्जना करते हुए राजा दुर्योधन पर झपटे ॥७॥

सम्प्रेक्ष्यैतान्सम्पततः संक्रुद्धाञ्जातसम्भ्रमान् ॥८॥

भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् ।

बड़ी तीव्रता से क्रोध में भर कर आक्रमण करते हुए, इन महारथियों को देखकर तुम्हारे महारथियोंसे द्रोणाचार्य कहने लगे।

क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥९॥

संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।

हेमहारथियो ! शीघ्र दौड़ो और राजा की रक्षा करो । इस समय घोर विपत्ति में राजा दुर्योधन फँस गया है-उसके प्राण भी संकट में पड़ गए हैं ॥९॥

एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥१०॥

भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन् ।

ये क्रोध में भरे हुए महाधनुर्धर, पाण्डवों के महारथी, भीमसेन को आगे करके राजा दुर्योधन पर बड़े वेग से दौड़े ॥१०॥

नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः ॥११॥
नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् ।

ये विजय की अभिलाषा में भरे हुए, अनेक भांति के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए पाण्डवों के महारथी, अनेक तरह के भीषण नाद कर रहे थे, जिन को सुनकर राजा भयभीत होते थे ॥११॥

तदाचार्यवचः श्रुत्वा सोमदत्तिपुरोगमाः ॥१२॥
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ।

आचार्य द्रोण के वचन सुनकर भूरिश्रवा आदि तुम्हारे महारथी भी पाण्डवों की सेना पर चढ़ दौड़े ॥१२॥

कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ॥१३॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥१४॥
ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः ॥१५॥

कृप, भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण सिन्धुराज जयद्रथ, बृहद्बल, महाधनुर्धर अवन्ती राजकुमार विन्दानुविन्द, आदि महारथियों ने कुरुराज दुर्योधन को घेर कर रक्षा करना आरम्भ किया। ये कोई बीस ही पद (कदम) आगे बढ़े थे, कि पाण्डवों और कौरवों के वीर, परस्पर एक दूसरे को मारने की आकांक्षा से प्रहार करने लगे ॥१३-१५॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥१६॥

इतना कह कर महाबाहु द्रोणाचार्य ने एक विशाल धनुष खैंचा और उसने छब्बीस बाण भीम पर छोड़े ॥१६॥

भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥१७॥

महाबाहु द्रोणाचार्य ने वर्षा-काल में मेघ की तरह भीम पर जल-धारा की भांति बाणों की झड़ी लगा कर उसको ढ़क दिया ।

तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।
त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥१८॥

महाधनुर्धर भीमसेन ने भी द्रोणाचार्य के बायें पार्श्व में दश बाण मार कर उसको आहत कर दिया ॥१८॥

स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत ।
प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥१६॥

हे भारत ! इस गाढ़े प्रहार से वृद्ध शरीर धारी द्रोणाचार्य बड़े क्लेशित हुए और वे मूर्च्छित होकर रथ के एक प्रदेश में चुप-चाप बैठ गए ॥१६॥

गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ ॥२०॥

गुरु द्रोणाचार्य को व्यथित देखकर राजा दुर्योधन और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा क्रोधाविष्ट होकर भीमसेन पर झपटे ॥२०॥

तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् ॥२१॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥२२॥

कालान्तक और यमराजोपम इन दोनों वीरों को झपटते देखकर महाबाहु भीमसेन भी शीघ्रता से गदा उठा कर रथ से कूद पड़ा और अचल, पर्वत की भांति खड़ा हो गया। इसने इस समय रणभूमि में यमराज के दण्ड के तुल्य भीषण गदा को उठा रखा था ॥२१-२२॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥२३॥

शिखरधारी कैलास पर्वत की भांति उठाई हुई गदा के धारी भीमसेन को देखकर कुरुराज दुर्योधन और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, एक साथ ही बड़े वेग से भीमसेन पर दौड़े ॥२३॥

तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ ।
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः ॥२४॥

बलवानों में श्रेष्ठ इन दोनों वीर दुर्योधन और अश्वत्थामा को शीघ्रता के साथ आक्रमण करते हुए देखकर वृकोदर भीम भी बड़े वेग से शीघ्रता के साथ आगे बढ़े ॥२४॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥२५॥
भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।
नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन् ॥२६॥

क्रोध में भरे हुए, भीष्म आकारधारी भीम को झपटते देकर कौरवों के महारथी, द्रोणाचार्य आदि, भीमसेन के मारने की अभिलाषासे बड़े वेग केसाथ दौड़े । इन्होंने भीमसेन की छाती में अनेक भांति के शस्त्रों का प्रहार किया ॥२५॥२६॥

सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः ।
तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीड्यमानं महारथम् ॥२७॥
अभिमन्युप्रभृतयः पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यधावन्परीप्सन्तः प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥

इन सबने मिलकर पाण्डु-पुत्र भीमसेन को सब ओर से क्लेशित करना आरम्भ किया । इस तरह महारथी भीमसेन को पीड़ित और उसके जीवन को संकटावस्था में देख कर अभिमन्यु आदि पाण्डवों के महारथी अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह छोड कर भीमसेन की रक्षा को दोड़ पड़े ॥२७-२८॥

अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा ।
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् ॥२९

अनूप (जलप्रदेश) देश का अधिपति, मेघ के समान आकारधारी शूरवीर राजा नील, भीमसेन के सखा थे, इन्होंने क्रोध में भरकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर आक्रमण किया ॥२६॥

स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः ।
स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ॥३०॥
यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ।
विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयङ्करम् ॥३१॥
येन लोकत्रयं क्रोधात्त्रासितं स्वेन तेजसा ।
तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुक्तेन पतत्रिणा ॥३२॥

यह महाधनुर्धर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, टक्कर लेकर उससे बराबरी करने की सदा स्पर्धा (इच्छा) किया करता था। इसने अपने बड़े धनुष को खैंचकर अश्वत्थामा को अपने बाण से इस प्रकार बींध दिया, जिस तरह देवासुर संग्राम में इन्द्र ने दुराधर्ष, देवों को भय उत्पन्न करने वाले, विप्रचित्ति दानव को बींध दिया था। इस दैत्य ने अपने तेज से तीनों लोकों को क्रोध के साथ वित्रासित कर रखा था। इसी तरह राजा नील ने भी बड़ी प्रक्रिया से छोड़े हुए बाण से इस को आहत किया ॥३०-३२॥

सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः।
स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥३३॥
दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः ।

इस बाण से अश्वत्थामा के रुधिर धारा बहने लगी और वह क्रोध में भर गया। इधर बुद्धिमान् अश्वत्थामा ने भी अब इन्द्रवज्र के समान ध्वनि करने वाले, धनुष को खैंचा और राजा नील के वध की आकांक्षा से उस पर बाण चढ़ाया ॥३३॥

ततः सन्धाय विमलान्भल्लान्कर्मारमार्जितान् ॥३४॥
जघान चतुरो वाहान्पातयामास च ध्वजम् ।
सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ॥३५॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।

बाणों को तीक्ष्ण करने वाले कारीगर द्वारा तीक्ष्ण किये हुए, चमकीले बाणों को चढ़ाकर अश्वत्थामा ने राजा नील के चारों अश्व और ध्वजा को काट गिराया। इन छः बाण के अनन्तर सातवां बाण और छोड़ा, जिससे इसने राजा नील की छाती में प्रहार किया। यह इस बाण से इतना गाढ़ पीड़ित हुआ, कि अचेत होकर रथ के कोने में बैठ गया ॥३४-३५॥

मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ॥३६॥
घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो ज्ञातिभिः परिवारितः ।
अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥३७॥
तथेतरे चाऽभ्यधावन्राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।

नील मेघ के तुल्य आकारधारी, राजा नील को इस प्रकार मूर्च्छित देखकर अपने जाति वीर राक्षसों को साथ लेकर घटोत्कच ने क्रोध-पूर्वक युद्ध में शोभा पानेवाले अश्वत्थामा पर वेग से

आक्रमण किया। इसी तरह अन्य भी युद्धदुर्मद राक्षस, इसके साथ द्रोण-पुत्र पर झपटे ॥३६-३७॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥३८॥
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन्।

भयङ्कर आकारधारी राक्षसराज घटोत्कच को झपटता हुआ देखकर तेजस्वी, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, बड़ी शीघ्रता से उसकी ओर दौड़े ॥३८॥

निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान्भीमदर्शनान् ॥३९॥
येऽभवन्नग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः।

जो क्रोधाविष्ट राक्षस, राक्षसराज घटोत्कचके आगे चल रहे थे, उन भयङ्कर राक्षसों को अश्वत्थामा ने क्रोधातुर होकर आहत कर दिया ॥३९॥

विमुखांश्चैव तान्दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः ॥४०॥
अक्रुद्ध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः।

द्रोणसुत अश्वत्थामा के धनुष से छुटे हुए बाणों से अपनी राक्षसी सेना को रण-विमुख होती हुई देखकर महाशरीरधारी भीमसेन-पुत्र, घटोत्कच, बड़ा कुपित हुआ ॥४०॥

प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥४१॥
मोहयन्समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः।

अब मायावी राक्षसराज ने घोर और दारुण माया खड़ा कर के रणाङ्गण में द्रोण-सुत अश्वत्थामा को चकित कर दिया ॥४१॥

ततस्ते तावकाः सर्वे मायया विमुखीकृताः ॥४२॥
अन्योन्यं समपश्यन्त निकृत्ता मेदिनीतले ।
विचेष्टमानाः कृपणाः शोणितेन परिप्लुताः ॥४३॥
द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।

इस समय तुम्हारे सेना के महावीरों को माया ने युद्ध से विपरीत कर दिया। इन्होंने एक दूसरे को कटे हुए पृथिवी में पड़े हुए देखा जो, रक्त में सने हुए थे और बड़ी दीन दशा में चेष्टा कर रहे थे, द्रोण, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा आदि सारे महा रथियों को भी इसी भांति भूमि में पड़े देखा ॥४२-४३॥

प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाः स्म कौरवाः ॥४४॥
विध्वस्ता रथिनः सर्वे राजानश्च निपातिताः ।
हयाश्चैव हयारोहाः सन्निकृत्ताः सहस्रशः ॥४५॥

जो कौरवों की सेना में प्रधान महाधनुर्धर वीर थे, वे सारे महारथी प्रायः नष्ट भ्रष्ट होकर रणभूमि में पड़े थे और यही दशा सारे राजाओं की दिखाई देती थी। सैंकड़ों हजारों की संख्या में अश्व और अश्वारोही कटे हुए माया से दिखाई दे रहे थे ॥४५

तद् दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिबिरं प्रति ।
मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ॥४६॥
युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे ।
घटोत्कचप्रमुक्तेति नाऽतिष्ठन्त विमोहिताः ॥४७॥
नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः ।

इस दशा को देखकर तुम्हारी सेना अपने शिविरों की ओर भाग खड़ी हुई। हे राजन्! उस समय मैं और देवव्रत भीष्म, सेना को पुकार २ कर समझाते ही रह गए, कि भागो मत-युद्ध करो। यह तो रण में राक्षसी माया घटोत्कच ने फैलायी है; तो भी वे लोग इतने विमोहित होगए थे, कि कोई भी नहीं ठहरा हमने सब कुछ कहा—परन्तु भयभीत हुए वीरों ने हमारे वचनों में श्रद्धा ही नहीं की ॥४७॥

तांश्च प्रद्रवतो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पाण्डवाः ॥४८॥
घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान्प्रचक्रिरे।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः समन्तान्नेदिरे भृशम् ॥४९॥

इस प्रकार सेना को भागी हुई देखकर पाण्डवों ने अपने को विजयी समझा और वे घटोत्कच के साथ सिंहनाद करने लगे तथा शङ्ख दुन्दुभि, आदि बाजों को अत्यन्त आवेग से बजाने लगे।

एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमयुद्धदिवसे घटोत्कचयुद्धे चतुरधिकनवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

इस प्रकार तुम्हारी सारी सेना दुरात्मा घटोत्कच ने सूर्य के छुपते २ छिन्न भिन्न करके दिशाओं को भगा दी ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घटोत्कच के युद्ध का चौरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

पिच्चानवेवां अध्याय

संजय उवाच—

तस्मिन्महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा ।

गाङ्गेयमुपसङ्गम्य विनयेनाऽभिवाद्य च ॥१॥

तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब इस प्रकार घोर युद्ध हुआ तो राजा दुर्योधन, गङ्गा-पुत्र भीष्म के पास पहुंचे और उनको बड़े विनयसे प्रणाम करके घटोत्कच का सारा वृत्तान्त सुनाने लगे।

घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥२॥

कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।

दुर्धर्ष राजा दुर्योधन ने राक्षसराज घटोत्कच की विजय और अपनी पराजय को बार २ श्वास लेकर सुनाया॥२॥

अब्रवीच्च तदा राजन्भीष्मं कुरुपितामहम् ॥३॥

भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।

पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥४॥

एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।

निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परन्तप ॥५॥

सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।

घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥६॥

तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवाऽनलः।
तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात्परन्तप ॥७॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥८॥

हे राजन्! राजा दुर्योधन ने उस समय भीष्म पितामह से कहा—हे पितामह! पाण्डवों ने जिस तरह वासुदेव-पुत्र कृष्ण का अवलम्ब लेकर युद्ध छेड़ा—उसी तरह हमने आपका आश्रय लिया था। हे प्रभो! हमने आपके बल पर ही पाण्डवों के साथ इस घोर युद्ध का आरम्भ किया था। मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। हे परन्तप! वह सब तुम्हारी आज्ञा में रहती है। हे भरतवंश शार्दूल! तो भी भीमसेन के साथ घटोत्कच को आगे करके आज पाण्डवों ने हमको परास्त कर दिया। यह बात मेरे शरीर रूपी शुष्क वृक्षको अग्नि की भांति जला रही है। हे शत्रुतापी! महाभाग! पितामह। मैं आपके अनुग्रह से इस नीच राक्षस घटोत्कच को मारना चाहता हूं। मुझे तो आप ही एक दुर्धर्ष वीर का सहारा है। आप मेरे इस कार्य को पूरा करवा दीजिए ॥३-८॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥९॥

हे भरतसत्तम! इस प्रकार राजा दुर्योधन के वचन सुनकर शान्तनु-तनय भीष्म, उनसे कहने लगा ॥९॥

शृणु राजन्मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परन्तप ॥१०॥

हे कुरुराज ! परन्तप ! महाराज ! जो वचन मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम उसको ध्यान से सुनो । जिस तरह अब तुमको कार्य करना चाहिए मैं वही ढंग बताता हूं ॥१०॥

आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिन्दम ।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदाऽनघ ॥११॥
अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्च्छति ॥१२॥

हे अरिन्दम ! तुमको रण में सर्वथा अपनी रक्षा करनी चाहिए। हे अनघ ! तुम यदि संग्राम करो--तो धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन या नकुल सहदेव से किया करो, क्योंकि राजा को राजधर्मानुसार राजा से ही युद्ध करना उचित है ॥११-१२॥

अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः ।
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथाः ॥१३॥
तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः ।
त्वदर्थे प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥१४॥

मैं द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, यदुश्रेष्ठ कृतवर्मा, शल्य, सोमदत्त सुत भूरिश्रवा, विकर्ण तथा दुःशासन आदि महारथी तुम्हारे भ्राता, तुम्हारे प्रयोजन के लिए इस महाबली राक्षस से युद्ध करते रहेंगे।

रौद्रे तस्मिन्राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान् ।
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ॥१५॥
भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि ।

यदि इस महाभयङ्कर राक्षसराज घटोत्कच का तुमको अधिक ध्यान है, तो इस दुष्ट-मति से युद्ध करने को इन्द्र के समान पराक्रमी राजा भगदत्त अभी रणभूमि में चले जाते हैं ॥१५॥

एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाऽब्रवीत् ॥१६॥
समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।

राजा दुर्योधन से इतना कह कर बोलने वालों में कुशल, भीष्म, सारे राजाओं के सन्मुख राजा भगदत्त से कहने लगे ॥१६॥

गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥१७॥
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥१८॥
तव दिव्यानि चाऽस्त्राणि विक्रमश्च परन्तप ।
समागमश्च बहुभिः पुराऽभूदमरैः सह ॥१९॥

हे महाराज ! भगदत्त ! तुम शीघ्र, युद्धदुर्मद हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच से युद्ध करने जाओ और सारे धनुर्धरों के देखते २ बड़ी सावधानी से उसे क्रूर—कर्म राक्षस को तारका सुर को इन्द्र के तुल्य वहीं रोक दो। हे परन्तप ! तुम्हारे पास बहुत से दिव्य अस्त्र हैं और तुम्हारा अद्भुत पराक्रम है।

तुम्हारा तो पूर्व काल में अनेक देवों के साथ भी संग्राम हो चुका है ॥१७-१९॥

त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेनोच्छ्रितो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥२०॥

हे नृपशार्दूल ! इस महारण में उसके प्रति-द्वन्द्वी योद्धा तो तुम ही हो, क्योंकि तुम अपने बल में बढ़े हुए हो । हे राजन् ! अब तुम इस राक्षसराज का वध करो ॥२०॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥२१॥

इस प्रकार सेनापति भीष्म के वचन सुनकर सिंहनाद करता हुआ राजा भगदत्त, शत्रुओं के समक्ष बड़े वेग से चल दिया ॥२१॥

तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥२२॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत ॥२३॥
चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुप्रतीकेन तांश्चाऽपि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् ॥२४॥

मेघ के समान गर्जना करके उमड़ कर आते हुए राजा भगदत्त को देखकर पाण्डवों के महारथी, बड़े क्रुद्ध हुए । हे भारत ! भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षसराज घटोत्कच, द्रौपदी पुत्र, सत्यधृति, क्षत्रदेव, चेदिराज, वसुदान, दशार्ण देशाधिपति, बड़े आवेश में

दौड़े। इधर राजा भगदत्त ने भी अपने सुप्रतीक हाथी पर चढ़ कर उन पर आक्रमण किया ॥२२-२४॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥२५॥

इसके अनन्तर पाण्डवों के साथ भगदत्त का यमराज्य के वृद्धि करने वाला संग्राम होने लगा ॥२५॥

प्रयुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥२६॥

हे महाराज ! महारथियों के छोड़े हुए बाण, बड़ी तीव्र-गति और भयङ्कर वेग से जाकर हाथी और रथियों के अङ्गों में लगने लगे ॥२६॥

प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
परस्परं समासाद्य सन्निपेतुरभीतवत् ॥२७॥

हाथियों के सवार महावतों से सिखाये हुए मदस्रावी हाथी, निर्भयता के साथ आगे बढ़कर दूसरे हाथियों से परस्पर टक्कर लेने लगे ॥२७॥

मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे ।
बिभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥२८॥

मद से अन्धे हुए, क्रोध में भरे हुए हाथी, इस महारण में अपने मूसल के समान दांतों के अग्रभाग से एक दूसरे हाथी को आहत (घायल) करने लगे ॥२८॥

हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः ।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥२६॥

अपनी ग्रीवा के बालों की मालाधारी, प्रास शस्त्रवाले सवारों से युक्त, अश्व, अपने अश्वारोही (सवारों) द्वारा आगे बढ़ाए हुए एक दूसरे पर झपटने लगे ॥२६॥

पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥३०॥

शक्ति, तोमर आदि शस्त्रधारी पैदल सैनिक, परस्पर एक दूसरे पर इस तरह प्रहार कर रहे हैं, जिससे सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में पदातिगण, रणभूमि में लेटे हुए दिखाई देने लगे ॥३०॥

रथिनश्च रथै राजन्कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान्सिंहनादान्विनेदिरे ॥३१॥

हे राजन् ! रथी वीर, अपने २ रथों से आगे बढ़ कर कर्ण, नालीक और सायक आदि विशेष २ बाणों से रण में विरोधी वीर को मार कर सिंहनाद कर रहे हैं ॥३१॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाऽद्रवत ॥३२॥

जब इस प्रकार लोमहर्षण महा भयानक संग्राम हो रहा था, तो इसी समय राजा भगदत्त ने भीमसेन पर आक्रमण किया ।

कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम् ।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः ॥३३॥

किरञ्छरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः ।
ऐरावतस्थो मघवान्वारिधारा इवाऽनघ ॥३४॥

हे अनघ ! राजा भगदत्त, सुप्रतीक नामक हाथी के मस्तक पर बैठे हुए थे। इस गज के सात स्थानों से मद चू रहा था, जैसे पर्वत से अनेक स्थानों से जल धारा गिर रही हो। ऐरावत हाथी पर बैठे हुए इन्द्र, जैसे-जल धारा वर्षाते हैं, इसी तरह राजा भगदत्त भी अपने हाथी पर बैठा हुआ बाण-धारा बरसाने लगा।

स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः ।
पर्वतं वारिधाराभिस्तपान्ते जलदो यथा ॥३५॥

इस राजा ने बाणधारा से भीमसेन को इस तरह पाट दिया, जैसे-बर्षा काल में मेघ, जलधारा से पर्वत को भर देता है ॥३५॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान्परःशतान् ।
निजघान महेष्वासः संरब्ध शरवृष्टिभिः ॥३६॥

महाधनुर्धर भीमसेन भी आवेश में भर गया, और उसने क्रोध पूर्वक अपनी बाण वर्षा करके सैंकड़ों पादरक्षक मार गिराए।

तान्दृष्ट्वा निहतान्क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान् ।
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥३७॥

प्रतापी राजा भगदत्त ने अपने पादरक्षकों को मारे हुए देखकर क्रोधाविष्ट होकर, अपने गजराज को भीमसेन की ओर चलाया।

स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा ।
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिन्दमम् ॥३८॥

धनुष की डोरी से छोड़े हुए बाण की भांति, वह हाथी, बड़े वेग से अरिमर्दन भीमसेन पर झपटा ॥३८॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यवर्त्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥३९॥

इस प्रकार इस गज-राज को आक्रमण करता देखकर पाण्डवों के महारथी, भीमसेन आदि बड़े वेग से आगे बढ़े ॥३९॥

केकयाश्चाऽभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥४०॥
उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ॥४१॥

हे आर्य ! केकय राजकुमार, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाचों पुत्र शूर-वीर, दशार्णाधिपति, क्षत्रदेव, चेदिराज, चित्रकेतु आदि महारथी, सारे ही आवेश में भरे हुए चले । ये महाबली इस समय अपने दिव्य-शस्त्र-कौशल को दिखा रहे थे ॥४०-४१॥

तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात्पर्यवारयन् ।
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः ॥४२॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाऽद्रिराट् ।

इन सारे महारथियों ने उस हाथी को सब ओर से घेर लिया। इन महारथियों के अनेक बाणों से बिंधे हुए इस गज-राज के शरीर पर रुधिर माला सी दिखाई देती थी, और स्वयं हाथी धातुओं से चित्रित पर्वत-राज सा प्रतीत होता था ॥४२॥

दशार्णाधिपतिश्चाऽपि गजं भूमिधरोपमम् ॥४३॥
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् ।

दशार्ण देशाधिपति भी पर्वत के समान आकारधारी हाथी पर बैठ कर राजा भगदत्त के हाथी पर टूट पड़ा ॥४३॥

तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ॥४४॥
दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम् ।

इस आक्रमणकारी हाथी को आता हुआ देखकर राजा भगदत्त के हाथी ने उस हाथी को वहीं इस तरह रोक दिया, जैसे वेला (मर्यादा) समुद्र को रोक देती है ॥४४॥

वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ॥४५॥
साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयान्यपूजयन् ।

महावीर, दशार्णाधिपति के हाथी को रोका हुआ देखकर पाण्डवों के सैनिक भी, भगदत्त के हाथी की प्रशंसा करने लगे।

ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥४६॥
प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम ।

हे नृपश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर राजा भगदत्त ने क्रुद्ध होकर चौदह तोमर (बाणविशेष) इस गजराज पर छोड़े ॥४६॥

वर्ममुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ॥४७॥
विदार्य प्राविशन्क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः ।

सुवर्ण से विभूषित, कवचों में श्रेष्ठ, हाथी के कवच को चीर कर यह बाण, वल्मीक में सर्प की तरह शीघ्र उस हाथी के शरीर में घुस गया ॥४७॥

स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥४८॥
उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः ।

हे भरतसत्तम ! राजा भगदत्त के बाणों से अत्यन्त आहत हुआ दशार्णाधिपति का हाथी, बड़ा ही व्यथित हुआ उस की मद की चेष्टाएँ नष्ट हो गई और वह वेग से उलटा लौट पड़ा ॥४८॥

स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन्भैरवं रवम् ॥४९॥
सम्मर्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ।

यह बुरी तरह चिंघाड़ मारता हुआ, बड़े वेग से दौड़ पड़ा। जिस तरह वायु, वृक्षों को नष्ट भ्रष्ट कर डालती है, इसी तरह यह भी अपनी सेना का चूरा करता हुआ भागा ॥४९॥

तस्मिन्पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ॥५०॥
सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।

इस हाथी के पराजित होकर भाग जाने पर भी पाण्डवों के महारथी, वहीं डटे रहे और सिंह के समान गर्जना करके युद्ध करने लगे ॥५०॥

ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ॥५१॥
किरन्तो विविधान्बाणाञ्शस्त्राणि विविधानि च ।

अब पाण्डवों के महारथी, अनेक प्रकार बने हुए भीम को आगे करके राजा भगदत्त पर चढ़ दौड़े ॥५१॥

तेषामापततां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ॥५२॥
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद्गतसाध्वसः ।
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥५३॥

हे राजन् ! क्रोधाविष्ट इन महारथियों को अपने ऊपर आक्रमण करता देखकर तथा उनकी घोर गर्जना को सुनकर भी महाधनुर्धर राजा भगदत्त, कुछ भी नहीं घबराया और उसी तरह आवेश में भरकर इसने अपना हाथी आगे बढ़ाया ॥५३॥

अङ्कुशांगुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
तस्मिन्क्षणे समभवत्सांवर्तक इवाऽनलः ॥५४॥

अंकुश के आकड़े से प्रेरित किया हुआ वह गज-प्रवर, रणाङ्गण में उस समय प्रलय-कालीन अग्निके तुल्य भीषण दिखाई देने लगा।

रथसङ्घांस्तथा नागान्हयांश्च हयसादिभिः ।
पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥५५॥
अमृद्गात्समरे नागः सम्प्रधावंस्ततस्ततः ।

रणभूमि में इधर उधर दौड़ते हुए इस गजराज ने रथ समूह, हाथी, अश्व, अश्वारोही और पैदल-सैनिक सैंकड़ों हजारों की संख्या में कुचल डाले ॥५५॥

तेन संलोमानं तु पाण्डवानां बलं महत् ॥५६॥
सञ्चुकोच महाराज चर्मेवाऽग्नौ समाहितम्

हे महाराज ! राजा भगदत्त द्वारा आलोडित की हुई पाण्डवों की विशाल सेना, अग्नि में डाले हुए चर्म के समान सुकड़ कर एक ओर खड़ी होगई ॥५६॥

भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥५७॥

घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् ।

राक्षसराज घटोत्कच ने जब राजा भगदत्त द्वारा अपनी सेना का पराजय देखा तो वह क्रोध से जल उठा और उसने राजा भगदत्त पर आक्रमण कर दिया ॥५७॥

विकटः पुरुषो राजन्दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ॥५८॥

रूपं बिभीषणं कृत्वा रोषेण प्रज्वलन्निव ।

हे राजन् ! इस समय घटोत्कच का रूप बड़ा विकट और कठोर था। इसका मुख और आंखे प्रदीप्त हो रही थी। इसने इतना भीषण रूप बनाया कि वह क्रोध से आग सा दिखाई दे रहा था ॥५८॥

जगाह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥५९॥

नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः ।

स विस्फुलिङ्गमालाभिः समन्तात्परिवेष्टितः ॥६०॥

इस महाबली ने इस गजराज के मारने के निमित्त पर्वतों को भी फाड़ देने वाला शूल उठाया और उसको बड़े वेग से इस पर छोड़ दिया। यह शूल अग्नि की सी चिनगारियोँ की माला से सब ओर से घिरा हुआ था ॥५९-६०॥

तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः।
चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम् ॥६१॥
चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान्।

राजा भगदत्त ने जब इस भीषण शूल को अपने ऊपर गिरते देखा-तो इसने एक दारुण तीक्ष्ण और सुन्दर अर्धचन्द्र नामक बाण चलाया और बड़े वेगशाली इस राजाने इस बाण से उस शूल को भी वहीं काट गिराया ॥६१॥

उत्पपात द्विधा च्छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥६२॥
महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता।

सुवर्ण जटित उस शूल के जब दो टुकड़े हो गए-तो वह आकाश में इस तरह उछटा, कि मानो इन्द्र का फैंका हुआ वज्र आकाश से गिर रहा है ॥६२॥

शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृत्तं च पार्थिवः ॥६३॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाऽग्निशिखोपमाम्।
चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥६४॥

दो टुकड़े होकर जब शूल गिर गया-तो राजा भगदत्त ने अग्नि की शिखा के तुल्य प्रदीप्त, सुवर्ण के खण्ड से युक्त, महाशक्ति उठाई और उसको राक्षसराज पर फैंक कर ठहर! ठहर! इस तरह राक्षसराज को ललकारा ॥६३॥-६४॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव।
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ॥६५॥

आकाश में स्थित वज्र की तरह उस महाशक्ति को आती देखकर राक्षसराज घटोत्कच ने उछल कर शीघ्र ही उसे पकड़ लिया और फिर बड़े वेग से गर्जना की ॥६५॥

बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत ।
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६६॥

हे भारत ! फिर घटोत्कच ने उस शक्ति को जानु (गोडे) में अड़ाकर शीघ्र तोड़ डाला। राजा भगदत्त देखता ही रह गया-यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था ॥६६॥

तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा ।
दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चाऽपि विस्मिताः ॥६७॥

बलवान् राक्षसराज घटोत्कच द्वारा इस अद्भुत कृत्य को देखकर आकश में स्थित, देवता, गन्धर्व और मुनिगण बड़े ही चकित हुए ॥६७॥

पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः ।
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन् ॥६८॥

हे महाराज ! भीमसेन आदि पाण्डव तो इस कर्म को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने धन्य धन्य की ध्वनि से सारी पृथिवी को गुँजा दिया ॥६८॥

तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् ।
नाऽमृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥६९॥

प्रसन्नता में भरे हुए महावीर पाण्डवों की इस सिंह गर्जना को सुनकर महाधनुर्धर प्रतापी राजा भगदत्त सह नहीं सका ॥६९॥

स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ।
तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ॥७०॥

इसने इन्द्र के वज्र के तुल्य भीषण धनुष चढ़ा कर पाण्डवों के महारथियों को ललकारना आरम्भ किया ॥७०॥

विसृजन्विमलांस्तीक्ष्णान्नाराचाञ्ज्वलनप्रभान् ।
भीममेकेन विव्याध राक्षसं नवभिः शरैः ॥७१॥
अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान्पञ्चभिस्तथा ।

इस धनुष से राजा भगदत्त, बड़े चमकते हुए अग्नि के सदृश प्रदीप्त, तीक्ष्ण, बाणों को छोड़ने लगा। इसने एक बाण से भीम, नौ बाणों से राक्षसराज घटोत्कच, तीन से अभिमन्यु और पांच से केकय राजकुमारों को आहत कर डाला ॥७१॥

पूर्णायतविसृष्टेन शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥७२॥
बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाऽऽहवे ।
पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ॥७३॥

झुकी पर्व वाले अत्यन्त बल से खैंचे हुए बाण से राजा भगदत्त ने रण में राजा क्षत्रदेव की दाँयी भुजा को बींध दिया। इसके बिंध जाने से उसके हाथ से एक दम बाण सहित धनुष छूट पड़ा ॥७२-७३॥

द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत्।
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥७४॥
ध्वज केसरिणं चाऽस्यचिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः।
निर्बिभेद त्रिभिश्चाऽन्यैः सारथिं चाऽस्य पत्रिभिः ॥७५
स गाढविद्धो व्यथिता रथोपस्थ उपाविशत् ।
विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥७६॥

इसने पाचों द्रौपदी पुत्रों को पांच बाणों से बींध डाला और क्रोध-पूर्ण होकर भीमसेन के अश्वों को भी मार दिया। भीमसेन की सिंह के चिन्ह से अङ्कित ध्वजा को भी इसने तीन बाणों से काट डाला तथा तीन बाणों से इसने सारथि को आहत किया॥ हे भरतश्रेष्ठ ! भीम के सारथि विशोक के बड़ी गाढ़ी चोट लगी, जिससे यह रथ के एक भाग में चुपचाप बैठ गया। यह सारा कृत्य राजा भगदत्त ने रण में बड़ी कुशलता से दिखाया ॥७४-७६॥

ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः।
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥७७॥

अब, रथियों में उत्तम, रथी, महाबाहु भीम, रथ-विहीन हो गया, तो यह, गदा लेकर अपने टूटे हुए रथ से कूद पड़ा ॥७७॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम्।
तावकानां भयं घो समपद्यत भारत ॥७८॥

हे भारत ! शिखर धारी पर्वत के आकार को धारण करने वाले भीम को गदा धारण किये हुए देखकर तुम्हारी सेना के वीरों को घोर भय उत्पन्न हुआ ॥७८॥

एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
आजगाम महाराज निघ्नञ्शत्रून्समन्ततः ॥७६॥
यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ ।
प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥८०॥

हे महाराज ! इसी समय, कृष्ण को सारथि बनाए हुए, पाण्डु-पुत्र अर्जुन, सब ओर से शत्रुओं का वध करता हुआ वहीं पहुंचा। जहां पर दोनों महाबली पिता-पुत्र, भीमसेन और घटोत्कच, राजा भगदत्त से युद्ध कर रहे थे ॥७६-८०॥

दृष्ट्वा च पाण्डवो भ्रातॄन्युध्यमानान्महारथान् ।
त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्राऽयुध्यत्किरञ्छरान् ॥८१॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अर्जुन, अपने महारथी भाईयों को यहां युद्ध करते देखकर आप भी बाण वर्षा करता हुआ, युद्ध में प्रवृत्त हुआ।

ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः ।
सेनामचोदयत्क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥८२॥

अब महारथी राजा दुर्योधन ने भी बड़ी शीघ्रता में आकर अपनी रथ, हाथी और अश्वों की सैना को शीघ्र आगे बढ़ने की आज्ञा दी ॥८२॥

तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः ॥८३॥

कौरवों की इस सेना को आगे बढ़ती देखकर श्वेत वाहन धारी अर्जुन ने उस पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥८३॥

भगदत्तश्च समरे तेन नागेन भारत।
विमृद्नन्पाण्डवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥८४॥

हे भारत! इस महायुद्ध में राजा भगदत्त अपने हाथी से पाण्डवों की सेना को कुचलता हुआ राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचा।

तदाऽऽसोत्सुमहद्युद्धं भगदत्तस्य मारिष।
पाञ्चालैः पाण्डवेयैश्च केकयैश्चोद्यतायुधैः ॥८५॥

हे आर्य-गुण-सम्पन्न! राजन्! यहां धर्मराज, पञ्चाल, पाण्डव-पुत्र और केकय राजकुमारों के साथ राजा भगदत्त का युद्ध होने लगा। इन सारे पाण्डव वीरों ने, अपने २ शस्त्र उठा रखे थे ॥८५॥

भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ।
अश्रावयद्यथावृत्तमिरावद्वधमुत्तमम् ॥८६॥

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
भगदत्तयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

भीमसेन ने भी श्रीकृष्ण और अर्जुन को बड़ी वीरता के साथ युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त इरावान् का सारा वृत्तान्त सुनाया ॥८६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में राजा भगदत्त के युद्ध का पिचानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

छियानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनञ्जयः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्पन्नगो यथा ॥१॥
अब्रवीत्समरे राजन्वासुदेवमिदं वचः ।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब धनञ्जय (अर्जुन) अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुना कर बड़ा दुःखी हुआ और सर्प की भांति क्रोध-पूर्ण श्वास लेने लगा और रणभूमि में श्रीकृष्ण से यह वचन बोला ॥१॥

इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ॥२॥
कुरूणां पाण्डवानां चाक्षयं घोरं महामतिः ।
स ततो निवारितवान्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥३॥

इस सारे कौरव और पाण्डवों के घोर विनाश को महाबुद्धिमान् विदुर ने प्रथम ही देख लिया था । इस बुद्धिमान् ने राजा धृतराष्ट्र को बार बार इस युद्ध से निवृत्त करना चाहा ॥२-३॥

अन्ये च बहवो वीराः संग्रामे मधुसूदन ।
निहताः कौरवैः संख्ये तथाऽस्माभिश्च कौरवाः ॥४॥

हे मधुसूदन ! हमारे बहुत से वीरों को कौरवों ने रण में मार दिया और हमने भी कौरवों के बहुत से वीर, नष्ट कर डाले ॥४॥

अर्थहतोर्नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म कुत्सितम् ।
धिगर्थान्यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसङ्क्षयः ॥५॥
अधनस्य मृतं श्रेयो न च ज्ञातिवधाद्धनम् ।

हे नरश्रेष्ठ ! यह सारा कुत्सित कर्म, ऐश्वर्य की लालसा में हो रहा है। इस धन की लालसा को धिक्कार है, जिसके आधार पर इस तरह जाति का वध करना पड़ता है मनुष्य का निर्धन मर जाना अच्छा है, परन्तु जाति के विनाश से धन बटोरना अच्छा नहीं है ॥५॥

किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातिन्समागतान् ॥६॥
दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ॥७॥

हे कृष्ण ! हम इन रण में आये हुए बन्धुबांधवों को मार कर क्या लेंगे। ये सारे क्षत्रिय, दुर्योधन के दोष तथा सुबल-पुत्र शकुनि और कर्ण की दुर्मन्त्रणा से विनाश को प्राप्त हो रहे हैं।६-७।

इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन ।
कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम् ॥८॥
राज्यार्धं पञ्च वा ग्रामान्नाऽकार्षीत्स च दुर्मतिः ।

हे महाबाहो ! मधुसूदन ! मुझे तो अब पता लगा, कि राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन से आधा राज या पांच गांव मांग कर जो सन्धि करना चाहा था, वह बहुत ही अच्छा था, परन्तु दुरात्मा दुर्योधन ने वह भी न माना ॥८॥

दृष्ट्वा हि क्षत्रियाञ्शूराञ्शयानान्धरणीतले ॥९॥
निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ।
अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे ॥१०॥
युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ।

अब मैं पृथिवीतल में शूरवीर क्षत्रियों को सोते हुए देखकर अपनी आत्मा की अत्यन्त ही निन्दा करता हूं और इस क्षत्रिय कर्म को भी मैं तो धिक्कार ही देता हूं। यदि मैं इस युद्ध का परित्याग करता हूं तो क्षत्रिय लोग मुझे अशक्त समझेंगे, अन्यथा मुझे तो बान्धवों से यह युद्ध उत्तम प्रतीत होता नहीं है ।

सञ्चोदय हयाञ्शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ॥११॥
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।
नाऽयं यापयितुं कालो विद्यते माधव कचित् ॥१२॥

हे माधव ! अब तुम शीघ्र कौरवों की सेना की ओर मेरे अश्वों को चलाओ; मैं अपनी भुजाओं के बल से इस अपार रण समुद्र को पार कर जाना चाहता हूं। अब इस तरह समय खोना उचित नहीं है ॥११-१२॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
चोदयामास तानश्वान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥१३॥

जब अर्जुन मे इतना कहा-तो शत्रुवीर नाशक श्रीकृष्ण ने भी वायु के समान वेंगशील अपने श्वेत अश्वों को रण में आगे बढ़ाया ॥१३॥

अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥१४॥

हे भारत ! अब तुम्हारी सेना में बड़ा कोलाहल मचा, जैसा वायु से उछाले हुए समुद्र में पर्व काल में कोलाहल मच जाता है।

अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥१५॥

हे महाराज ! दोपहर दिन के अनन्तर भीष्म और पाण्डवों का बड़ा भीषण संग्राम हुआ, जिसमें मेघ समान गर्जना हो रही थी ॥१५॥

ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा ॥१६॥

हे राजन् ! अब तुम्हारे पुत्रों ने द्रोण की रक्षा करते हुए, भीमसेन पर आक्रमण किया । ये द्रोण को इस तरह घेर कर चल रहे थे, जैसे वसु, इन्द्र को घेर कर चलते हैं ॥१६॥

ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥१७॥

अब शान्तनु-पुत्र भीष्म, रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य और राजा भगदत्त और सुशर्मा ने धनञ्जय अर्जुन पर आक्रमण किया ॥१७॥

हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ ।
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवस्थितः ॥१८॥

हृदिक पुत्र कृतवर्मा और वाल्हिक ने सात्यकि पर आक्रमण किया और राजा अम्बष्ठ, अभिमन्यु पर झपटा ॥१८॥

शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥१९॥

हे महाराज ! इसी तरह अन्य महारथी भी, अन्य महारथियों पर आक्रमण करने लगे । इसके अनन्तर महाघोर भयानक युद्ध होने लगा ॥१९॥

भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव ॥२०॥

हे जनेश्वर ! भीमसेन रण भूमि में तुम्हारे पुत्रों को सन्मुख देखकर घृत से अग्नि की भांति प्रज्वलित हो उठा ॥२०॥

पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः ।
प्रावृषीव महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥२१॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रों ने भी अपने बाणों से कुन्ती-पुत्र भीमसेन को इस तरह पाट दिया, जैसे वर्षाकाल में मेघ, पर्वत को अपनी जलधारा से ढ़क लेता है ॥२१॥

स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशाम्पते ।
सृक्किणी संलिहन्वीरः शार्दूल इव दर्पितः ॥२२॥

हे विशाम्पते ! जब तुम्हारे पुत्रों ने भीमसेन को अनेक भांति से बाणों से आच्छादित कर दिया, तो यह वीर भी सिंह की तरह बिगड़ उठा और अपने ओष्ठ-प्रान्त चाटने लगा ॥२२॥

व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्धतजीवितः ॥२३॥

हे भारत ! अब भीमसेन ने क्षुर के समान एक तीक्ष्ण बाण का प्रयोग किया, जिससे तुम्हारा पुत्र व्यूढोरस्क रणभूमि में गिर गया और उसका उसी समय जीवनान्त हो गया ॥२३॥

अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु ।
अपातयत्कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥२४॥

जिस तरह सिंह, क्षुद्र मृग को मार लेता है, इसी तरह एक विष-पीत तीक्ष्ण बाण से भीमसेन ने तुम्हारे पुत्र कुण्डली को मार गिराया ॥२४॥

ततः सुनिशितान्पीतान्समादत्त शिलीमुखान् ।
ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥२५॥

हे आर्य ! अब भीमसेन ने अन्य अनेक विष में बुझे हुए बाण उठाए और उनको वह तुम्हारे अन्य पुत्रों पर छोड़ने लगा ॥२५॥

प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥२६॥

दृढ़ धनुर्धर भीमसेन के छोड़े हुए बाण, तुम्हारे महारथी पुत्रों को रथ से नीचे गिराने लगे ॥२६॥

अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् ॥२७॥

प्रापतन्त स्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ ।
वसन्ते पुष्पशबलाश्च्युताः प्रपतिता इव ॥२८॥

हे भरतर्षभ ! अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज, नामक तुम्हारे वीरपुत्र, रणभूमि में गिरे हुए इस तरह प्रतीत होते थे, जैसे वसन्त ऋतु में अनेक रंग के पुष्प वृक्ष से झड़कर पृथिवी पर पड़े हों ॥२७-२८॥

ततः प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे ।
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥२९॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर तुम्हारे शेष पुत्र, महाबली भीमसेन को काल के समान मान कर रणभूमि से भाग निकले ॥२९॥

द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
यथाऽद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः ॥३०॥

जब द्रोणाचार्य ने देखा, कि भीमसेन, तुम्हारे पुत्रों को भस्म कर रहा है, तो वे पर्वत पर जलधारा की भांति भीमसेन पर बाण वर्षा करने लगे ॥३०॥

तत्राऽऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥३१॥

इसी समय कुन्ती-पुत्र भीमसेन का अद्भुत पुरुषार्थ दिखाई दिया, जो उसने द्रोणाचार्य के आघात करने पर भी तुम्हारे पुत्रों को मार डाला ॥३१॥

यथा गोवृषभो वर्षं सन्धारयति खात्पतत् ।
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत् ॥३२॥

जैसे-बलवान्, वृषभ (सांड) आकाश से पड़ने वाली जलधारा को सहता रहता है, इसी तरह भीमसेन भी, द्रोण-द्वारा की हुई बाण वर्षा को सहता रहता ॥३२॥

अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
यत्पुत्रांस्तेऽवधीत्संख्ये द्रोणं चैव न्यवारयत् ॥३३॥

हे महाराज ! वृकोदर भीम ने जो अद्भुत पराक्रम दिखाया वह यह था, कि उसने एक ओर तुम्हारे पुत्रों का वध किया और दूसरी ओर से उसने द्रोणाचार्य के आघातों को निष्फल बनाया।

पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडाऽर्जुनपूर्वजः ।
मृगेष्विव महाराज चरन्व्याघ्रो महाबलः ॥३४॥

हे महाराज ! मृगों के मध्य में जैसे-सिंह खेलता है वैसे ही तुम्हारे पुत्रों के बीच में महाबली भीमसेन क्रीड़ा कर रहा था ॥३४॥

यथा हि पशुमध्यस्थो दारयेत पशून्वृकः ।
वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥३५॥

जिस तरह पशुओं के मध्य में स्थित हुआ भेड़िया चाहे जिस पशु को मार गिराता है, वैसे ही वृकोदर भीम ने रण में तुम्हारे पुत्रों को मार भगाया ॥३५॥

गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथाः ।
पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम् ॥३६॥

गङ्गापुत्र भीष्म, राजा भगदत्त और गौतम वंशोत्पन्न कृपाचार्य ने बड़े वेग से आगे बढ कर युद्ध में पाण्डु-पुत्र, अर्जुन को रोका।

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे।
प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥३७॥

यह अतिरथी अर्जुन, रण में इन महारथियों के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से रोक कर तुम्हारी सेना के वीरों को मृत्यु के अधीन करने लगा। ॥३७॥

अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठो लोकविश्रतम्।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं वारयामास सायकैः ॥३८॥

अभिमन्यु ने लोक-प्रसिद्ध रथियों में श्रेष्ठ, रथविहीन राजा अम्बष्ठ को अपने बाणों से रोक लिया ॥३८॥

विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णमम्बष्ठो वसुधाधिपः ॥३९॥
असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः।
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः ॥४०॥

जब यशस्वी, सुभद्रापुत्र, अभिमन्यु ने रथविहीन, राजा अम्बष्ठ पर आक्रमण किया, तो वह रथ से कूद पड़ा और उस महाबली ने तलवार लेकर महावीर अभिमन्यु पर आक्रमण किया, और आप उछल कर कृतवर्मा के रथ पर जा बैठा ॥३९-४०॥

आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः।
लाघवाद्व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा ॥४१॥

जब शत्रुविजयी, युद्ध में कुशल, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने अम्बष्ठ का खड्ग अपने उपर आता देखा, तो लाघव (फुर्ती) से उसने झट-पट उसे काट गिराया ॥४१॥

व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा ।
साधु साध्विति सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशाम्पते ॥४२॥

हे विशाम्पते! जब अभिमन्यु द्वारा काट कर खड्ग गिरा दिया गया, तो इसको देख कर सारी सेना के वीर, धन्य धन्य की ध्वनि करने लगे ॥४२॥

धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन् ।
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥४३॥

धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव महारथी, तुम्हारी सेना से और तुम्हारे वीर, पाण्डव सेना से घोर युद्ध करने लगे ॥४३॥

तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
निघ्नतां दृढमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥४४॥

हे भारत! इस समय तुम्हारी सेना-और पाण्डव सेना में कोलाहल मच रहा था। ये एक दूसरे पर दृढ़ प्रहार करके दुष्कर कर्म करके दिखा रहे थे ॥४४॥

अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वाक्षिप्य मानिनः ।
नखदन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥४५॥

समय पड़ने पर युद्ध का अभिमान रखने वाले- शूर वीर, रण में एक दूसरे के बाल पकड़ कर नख, दाँत, मुष्टि और जानु (गोडों) की टक्कर से बराबर युद्ध करते थे ॥४५॥

तलैश्चैवाऽथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः ।
विवरं प्राप्य चाऽन्योन्यमनयन्यमसादनम् ॥४६॥

एक वीर को दूसरी ओर जब कुछ भी त्रुटि दिखाई देती थी, तो वे शीघ्र ही चपेट, खड्ग, सुन्दर बाहु आदि से आघात करके विरोधी वीर को यमघाट भेज देते थे ॥४६॥

न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥४७॥

इस युद्ध में पिता, पुत्र को और पुत्र, पिता को मार रहे थे । सारे वीरों के शरीर क्षत-विक्षत हो रहे थे, परन्तु वे युद्ध से पीछे नहीं हटते थे ॥४७॥

रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष ।
हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ॥४८॥
जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशिताः शराः ।
तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ॥४९॥

हे आर्य ! सुवर्ण की पृष्ठ वाले, उत्तम २ धनुष, मरे हुए वीरों के रण भूमि में पड़े थे और बड़े २ मूल्य के आभूषणों की भी यही दशा थी सुवर्ण और चांदी के मूल वाले, तेल से तीव्र किये हुए, कांचुली से मुक्त सर्पों के समाम तीक्ष्ण बाण, रण में सुशोभित हो रहे थे ॥४८-४९॥

हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
चर्माणि चाऽपविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम् ॥

इन धनुषधारी वीरों के हाथी दाँतकी मूठवाले, सुवर्ण-जटित खड्ग और सुवर्ण से चित्रित ढाल, रणभूमि में बिखरी पड़ी थीं ॥५०॥

सुवर्णविकृतप्रासान्पट्टिशान्हेमभूषितान् ।
जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः ॥५१॥
सुसन्नाहाश्च पतिता मुसलानि गुरूणि च ।

सुवर्ण के बने हुए प्रास, तथा सुवर्ण से विभूषित पट्टिश, सुवर्ण मय ऋष्टि, एवं सुवर्णोज्ज्वल शक्ति, सुन्दर कवच, भारी मुसल, सर्वत्र रणभूमि में पड़े दिखाई देते थे ॥५१॥

परिघान्पट्टिशांश्चैव भिन्दिपालांश्च मारिष ॥५२॥
पतितान्विविधांश्चापांश्चित्रान्हेमपरिष्कृतान् ।

हे आर्य ! परिघ पट्टिश, भिन्दिपाल आदि अनेक भांति के शस्त्र और सुवर्ण से जटित अनेक धनुष रण मे फैले पड़े थे ।

कुथा बहुविधाकाराश्चामरा व्यजनानि च ॥५३॥
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः ।

हाथियों की अनेक भांति की झूले, चमर पंखे तथा अनेक ढंग के शस्त्रों को लिये हुए, मनुष्य रणभूमि में पड़े थे ॥५४॥

जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्वा महारथाः ॥५४॥
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।

गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ॥५५॥
तथैवाऽश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा ।

ये महारथी मर चुके थे, परन्तु जीवित से दिखाई देते थे। गदाओं से चकनाचूर अङ्ग वाले, मुसलों से भिन्न मस्तक धारी तथा हाथी घोड़े और रथों से कुचले हुए वीर नर, रणभूमि में सोये पड़े थे ॥५५॥

सञ्छन्ना वसुधा राजन्पर्वतैरिव सर्वशः ॥५६॥
समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः ।

हे राजन् ! पर्वतों के समान आकार धारी हाथी, अश्व और वीर मनुष्यों के शरीरों से आच्छन्न हुई भूमि, सब ओर दिखाई दे रही थी ॥५६॥

निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥५७॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिश्च मारिष ।
शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥५८॥

हे आर्यगुणोपेत ! राजन् ! रणभूमि में पड़े हुए, शक्ति, ऋष्टि, बाण, तोमर, खड्ग, पट्टिश, प्रास, अयस्कुन्त- (लोहे के भाले) परशु परिघ, भिन्दपाल, शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्र, तथा शस्त्रों से क्षत-विक्षत गजादि वाहन और वीरों के शरीरों से पृथिवी भरी पड़ी थी।

विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही ॥५९॥

हे शत्रु-नाशक ! रुधिर के प्रवाह से व्याप्त, विकृतस्वर या अल्प-स्वर में कहराते हुए वीर या मृत वीरों से भूमि व्याप्त हो रही थी।

सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥६०॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
पातितैर्ऋषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ॥६१॥

करतल त्राण, मुकुट, चन्दन चर्चित बाहु तथा वेगशील वीरों की हाथी के सूंड के तुल्य कटी हुई जङ्घा, चूड़ामणियों से युक्त कुण्डल सहित वृषभों के आंखों के समान आंख वाले वीरों के शिरों से पृथिवी व्याप्त हो रही थी ॥६०-६१॥

कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः।
रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवाऽनलैः ॥६२॥

रुधिर से भीगे हुए सुवर्ण मय कवचों से रणभूमि, ज्वाला से हीन अङ्गार भूत, अग्नि के सदृश चमक रही थी ॥६२॥

विप्रविद्धैः कलापैश्च पतितैश्च शरासनैः।
विप्रकीर्णैः शरैश्चैव रुक्मपुङ्खैः समन्ततः ॥६३॥
रथैश्च सर्वतोभग्नैः किङ्किणीजालभूषितैः।
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥६४॥
अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि।
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥६५॥

स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही ।
नानारूपैरलङ्कारैः प्रमदेवाऽभ्यलंकृता ॥५६॥

इधर उधर विखरे हुए आभूषण, जहां तहां पड़े हुए धनुष, चारों ओर सुवर्ण की पुङ्ख वाले, विखरे हुए बाण, सब तरह से चकना चूर हुए, किङ्किणी जाल से व्याप्त रथ, रक्त में भीगे हुए जीभ निकाले हुए बाणों से हत अश्व, रथ के नीचे का काष्ठ, पताका, तूणीर, ध्वजा, महावीरों के बड़े २ विखरे हुए श्वेत शङ्ख, शिथिल सूंड वाले, पड़े हुए हाथियों से रणभूमि, अनेक भांति के अलङ्कारों से युक्त युवति के तुल्य सुशोभित हो रही थी ॥६३-६६॥

दन्तिभिश्चाऽपरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ॥६७॥
विबभौ तद्रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाऽचलैः ।

बहुत से हाथियों के शरीरों में प्रास नामक शस्त्र गड़े हुए थे, जो बड़ी गाढ़ी वेदना से युक्त हुए अपनी सूंड से शब्द कर रहे थे और बार २ शीकर-समूह, (बूंदें) फैंक रहे थे । जिससे वह रणस्थल झरनों से युक्त पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था।६७।

नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ॥६८॥
वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ।
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ॥६९॥
विपाटितविचित्राभिः कुथाभिरङ्कुशैस्तथा ।
ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ॥७०॥

यन्त्रैश्च बहुधा च्छिन्नैस्तोमरैश्चाऽपि काञ्चनैः ।
अश्वानां रेणुकपिलै रुक्मच्छन्नैरुरश्छदैः ॥७१॥
सादिनां भुजगैश्छिन्नैः पतितैः साङ्गदैस्तथा ।
प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिस्तथर्ष्टिभिः ॥७२॥
उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः ।
विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥७३॥
अश्वास्तरपरिस्तोमैराङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥७४॥
छत्रैस्तथाऽपविद्धैश्च चामरैर्व्यजनैरपि ।
पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥७५॥
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ।
अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ॥७६॥
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवाऽऽसीद्वसुन्धरा ।

हे महाराज ! अनेक रङ्ग के कम्बल, हाथियों के आस्तरण (वस्त्र) नीलमणियों से जटित दण्ड वाले पड़े हुए सुन्दर २ अंकुश, सब ओर गिरी हुई हाथियों की घंटा, विचित्र २ फटी हुई झूलें, साधारण अंकुश, विचित्र २ हार, सुवर्ण की जञ्जीर, छिन्न-भिन्न हुए, यन्त्री, (मशीनें) सुवर्ण मय तोमर, रेणु से भरे हुए सुवर्ण के तन्तुओं से गुम्फित अश्वों के हृदय के ऊपर धारण करने के वस्त्र, अश्वारोहियों की भुजाओं में धारण किये हुए खण्डित बाहु भूषण, तीक्ष्ण चमकते हुए प्रास, चमकती हुई ऋष्टि, इधर उधर पड़ी

हुई विचित्र पगड़ी, सुवर्ण जटित बाण समूह, अश्वों की झूल आदि ओढ़ने के वस्त्र, मृग-विशेष के रोमों से बने कोमल २ कम्बल, राजाओं की महा मूल्यवान विचित्र २ चूड़ामणि, टूटे फूटे छत्र, चँवर और पंखे कमल, और चन्द्रमा की कान्ति वाले कुण्डलों से युक्त वीरों के खड़ी मूछों वाले, विभूषित मस्तक, तथा उज्ज्वल सुवर्ण के इधर उधर पड़े हुए कुण्डलों से युक्त पृथिवी ग्रह और नक्षत्रों से युक्त द्यौ (आकाश) की भांति दिखाई पड़ती थी।

एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत। ॥७७॥

परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे।

हे भारत! इस प्रकार दोनों ओर की सेना परस्पर एक दूसरे से युद्ध करके चकनाचूर हुई रण भूमि में पड़ीथी ॥७७॥

तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥७८॥

रात्रिः समभवत्तत्र नाऽपश्याम ततोऽनुगान्।

हे भारत! इन वीरों के थक जाने भाग जाने और कुचल जाने पर रात हो गई। इस समय हम को अपने अनुचर भी दिखाई नहीं दे रहे थे ॥७८॥

ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥७९॥

रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।

अब कौरव और पाण्डवों ने अपनी २ सेना को पीछे हटाया इस समय महाभयङ्कर रात हो चुकी थी, जिसमें अनेक भयके कारण उपस्थित थे ॥७९॥

अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ।।८०।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ।।९६।।

हे राजन् ! कौरव और पाण्डवों ने अपनी २ सेना का अवहार (युद्ध से हटा) कर के समयानुसार अपने २ शिविरों में विश्राम के लिए प्रयाण किया ।।८०।।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वन्तार्गत भीष्मवधपर्व में अष्टमदिन के युद्ध की समाप्ति का छियानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्तानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चाऽपि सौबलः ।
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः ॥१॥
समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम् ।
कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति ॥२॥

सञ्जय कहने लगे-हे महाराज ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, तुम्हारा पुत्र दुःशासन और सुदुर्जय सूतपुत्र कर्ण, इकट्ठे होकर आगे कथनीय मन्त्रणा को करने लगे, कि किस प्रकार सेना सहित पाण्डवों को पराजित किया जावे ॥१-२॥

ततो दुर्योधनो राजो सर्वास्तानाह मन्त्रिणः ।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम् ॥३॥
द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे ।
न पार्थान्प्रतिबाधन्ते न जाने तच्च कारणम् ॥४॥

अब राजा दुर्योधन ने सूतपुत्र कर्ण और सुबल पुत्र शकुनि को सम्बोधित करके अपने सारे मन्त्रियों से कहा-द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कृप, शल्य, और सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा, पाण्डवों को कुछ भी बाधा नहीं पहुंचा रहे हैं,-इसका क्या कारण है; कुछ समझ में नहीं आता ॥४॥

अवध्यमानास्ते चाऽपि क्षपयन्ति बलं मम ।
सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे ॥५॥

हे कर्ण ! जब पाण्डवों को कोई पीड़ा ही नहीं पहुंच सकी, तो फिर वे मेरी सेना का विनाश करेंगे ही । अब मेरी बहुत सी सेना क्षीण हो चुकी और मेरे पास शस्त्र भी कम होते जा रहे हैं ॥५॥

निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्दैवतैरपि ।
सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे ॥६॥

अवध्य देवताओं की भांति शूरवीर पाण्डवों ने मुझे बड़ी हानि पहुंचायी है । अब मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है, कि मैं उनपर कैसे प्रहार करने में सफल हो सकूंगा ॥६॥

कर्ण उवाच—

तमब्रवीन्महाराज सूतपुत्रो नराधिपम् ।
मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव ॥७॥

सञ्जय ने कहा- हे महाराज ! राजा दुर्योधन से सूतपुत्र कर्ण ने कहा-हे भरत-श्रेष्ठ ! चिन्ता न करो;तुम्हारा मनोरथ मैं सफल करूंगा ॥७॥

भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात् ।
निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत ॥८॥
अहं पार्थान्हनिष्यामि सहितान्सर्वसोमकैः ।
पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप ॥९॥
पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै ।
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान्महारथान् ॥१०॥

हे भारत ! शान्तनु-पुत्र भीष्म इस महायुद्ध से अपना हाथ खैंचकर कर हट जावे। जब भीष्म, युद्ध से हट जावेंगे और शस्त्र छोड़ देंगे-तब मैं, सारे सोमक-वीरों के साथ भीष्म के देखते २ युद्ध में सारे पाण्डवों को मार गिराऊंगा; इसके लिए में सत्य की शपथ खाता हूँ ॥८-९॥ भीष्म रण में पाण्डवों पर दया दिखाते रहते हैं, इससे वे महारथी, पाण्डवों के जीतने में सर्वदा अशक्त रहेंगे ॥१०॥

अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः।
स कथं पाण्डवान्युद्धे जेष्यते तात सङ्गतान् ॥११॥

भीष्म को युद्ध का बड़ा अभिमान है और वह नित्य युद्ध करना चाहता है। हे तात ! फिर कैसे यह इकट्ठे पाण्डवों को जीतने में प्रवृत्त हो सकता है ॥११॥

स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति।
अनुमान्य गुरुं वृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत ॥१२॥

हे भारत ! अब तुम शीघ्र भीष्म के शिबिर में जाओ और अपने वृद्ध भीष्म पितामह की प्रार्थना करके उनसे शस्त्र रखवालो।

न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान्पश्य पाण्डवान् ।
मयैकेन रणे राजन्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥१३॥

ज्योंही भीष्म शस्त्र रख देंगे-तुम उसी क्षण पाण्डवों को मृत समझो। मैं अकेला ही रण में सारे मित्र और सैनिकों के साथ पाण्डवों को मार लूंगा ॥१३॥

एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीद्भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥१४॥

जब सूतपुत्र कर्ण ने इतना कहा तो राजा दुर्योधन अपने भाई दुःशासन से यह वचन बोले ॥१४॥

अनुयात्रं यथा सर्वं सज्जीभवति सर्वशः ।
दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥१५॥

हे दुःशासन ! जिस तरह सारी सेना शीघ्र सुसज्जित हो जावे, तुम वही प्रयत्न करो ॥१५॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्कर्णमाह जनेश्वरः ।
अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदां वरम् ॥१६॥
आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिन्दम ।
अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे ॥१७॥

हे राजन ! अपने भ्राता दुःशासन से इतना कह कर राजा दुर्योधन कर्ण से बोले-हे अरिन्दम ! मैं भीष्म से शस्त्र रखने की प्रार्थना करके बहुत शीघ्र तुम्हारे पास आता हूँ । जब भीष्म रण से हट जावेंगे-तुम तभी तो प्रहार कर सकोगे ॥१६-१७॥

निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशाम्पते ।
सहितो भ्रातृभिस्तैस्तु देवैरिव शतक्रतुः ॥१८॥

हे विशाम्पते ! इतना कह कर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन देवों के साथ इन्द्र की भांति अपने भाइयों के साथ बड़ी तीव्र गति से चल गया।

ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा ॥१९॥

सिंह के समान पराक्रमी, राजाओं में श्रेष्ठ, राजा दुर्योधन को तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने बड़े वेग से घोड़े पर चढ़ाया ॥१९॥

अङ्गदी बद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्नृप ।
धार्तराष्ट्रो महाराज विबभौ स पथि व्रजन् ॥२०॥

हे राजन् ! राजा दुर्योधन ने अपनी भुजाओं में अङ्गद नामक बाहुभूषण पहने हुए थे । मस्तक पर मुकुट था, हाथों में कड़े पहने हुए थे । हे महाराज ! इस प्रकार मार्ग में जाता हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, बड़ा ही ऐश्वर्य शाली प्रतीत होता था ॥२०॥

भण्डोपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च ।
अनुलिप्तः परार्द्ध्येन चन्दनेन सुगन्धिना ॥२१॥

मजीठ के पुष्प के समान उज्जवल, सुवर्ण, सदृश उत्तम, सुगन्धित, और केशर मिश्रित चन्दन से राजा दुर्योधन का गात्र चर्चित हो रहा था ॥२१॥

अरजोम्बरसंवीतः सिंहखेलगतिर्नृप ।
शुशुभे विमलार्चिष्मान्नभसीव दिवाकरः ॥२२॥

हे नृप ! राजा दुर्योधन ने स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे और वह सिंह की सी चाल से चल रहा था । यह अपने तेज से इतना सुशोभित हो रहा था, जैसे-आकाश में सूर्य सुशोभित होता है ॥२२॥

तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिबिरं प्रति ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥२३॥
भ्रातरश्च महेष्वासास्त्रिदशा इव वासवम् ।

जब ये नरश्रेष्ठ, दुर्योधन, भीष्म के शिबिर की ओर जा रहे थे, तब सारी पृथिवी के प्रसिद्ध धनुषधारी, तथा महाधनुर्धर, दुःशासन आदि भ्राता, इस तरह साथ चले, जैसे-देवता, इन्द्र के साथ जा रहे हों ॥२३॥

हयानन्ये समारुह्य गजानन्ये च भारत ॥२४॥
रथानन्ये नरश्रेष्ठं परिवव्रुः समन्ततः ।

हे भारत ! कुछ महारथी तो अश्वों पर कुछ हाथियों पर और कुछ रथों पर चढ़ कर सब ओर से राजा दुर्योधन को घेर कर चल दिए ॥२४॥

आत्तशस्त्राश्च सुहृदो रक्षणार्थं महीपतेः ॥२५॥
प्रादुर्बभूवुः सहिताः शक्रस्येवाऽमरा दिवि ।

राजा दुर्योधन के सारे सुहृद् राजा की रक्षा के निमित्त शस्त्र लेकर, ऐसे आ खड़े हुए, जैसे-स्वर्ग लोक में देवगण आ उपस्थित होते हैं ॥२५॥

स पूज्यमानः कुरुभिः कौरवाणां महाबलः ॥२६॥
प्रययौ सदनं राजा गाङ्गेयस्य यशस्विनः ।
अन्वीयमानः सततं सोदरैः परिवारितः ॥२७॥

ये महाबली कुरुराज, कौरवों से आज्ञा पाकर यशस्वी भीष्म के शिविर को चल दिए। इनके साथ घेरा डाले हुए, सारे भ्राता चल रहे थे ॥२६-२७॥

दक्षिणं दक्षिणः काले सम्भृत्य स्वभुजं तदा।
हस्तिहस्तोपमं शैक्षं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥२८॥

प्रगृह्णन्नञ्जलीन्नृणामुद्यतान्सर्वतोदिशः।
शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥२९॥

अस्त्रविद्या में कुशल, राजा दुर्योधन, हाथी की सूंड के समान आकार धारी, सब शत्रुओं के रोकने में समर्थ, सेना शिक्षा से युक्त अपनी दांयी भुजा को उठाकर सब दिशाओं से अनेक देश वासी वीरों की प्रणामाञ्जलि स्वीकार करता हुआ और मधुर वाणी सुनता हुआ चला जा रहा था ॥२८-२९॥

संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः।
पूजयानश्च तान्सर्वान्सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥३०॥

सारे लोकों के स्वामी महायशस्वी दुर्योधन, सूत, मागध बन्दियों से स्तुति प्राप्त करते हुए और यथा योग्य सब को पुरस्कार देते हुए आगे बढ़े जा रहे थे ॥३०॥

प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचितैः।
परिवव्रुर्महाराजं प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥३१॥

सुवर्णके पात्रों में सुगन्धित तैल डाल कर, प्रदीपों को प्रदीप्त करके चारों ओर से महाराज दुर्योधन को घेर कर सैनिक चल रहे थे।

स तैः परिवृतो राजा प्रदीपैः काञ्चनैर्ज्वलन् ।
शुशुभे चन्द्रमा युक्तो दीप्तैरिव महाग्रहैः ॥३२॥

सुवर्ण के पात्रों में प्रज्वलित दीपों से घिरे हुए, राजा दुर्योधन चमकते हुए महाग्रहों से चन्द्रमा के सदृश, देदीप्यमान हो रहे थे।

काञ्चनोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
प्रोत्साहयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतोदिशम् ॥३३॥

सुवर्ण तन्तुओं से गुम्फित पगड़ी वाले, बेंत और छड़ी आदि लेकर सैनिक, धीरे २ सब ओर से जन समूह को हटा रहे थे, या जयादि घोषणा को उत्साहित कर रहे थे ॥३३॥

समप्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम् ।
अवतीर्य हयाच्चापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वरः ॥३४॥

अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने ।
काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पर्द्ध्यास्तरणसंवृते ॥३५॥
उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।

अब राजा दुर्योधन. भीष्म के सुन्दर शिबिर पर पहुंचे। वहां अश्व से उतर कर कुरुराज भीष्म के समीप गए। ये भीष्म को प्रणाम करके अमूल्य आस्तरणों (बिछोनों) से युक्त सुवर्ण के सिंहासन पर बैठ गए और आंखों में आंसू भर कर गद्गद वाणी द्वारा भीष्म पितामह से कहने लगे ॥३४-३५॥

त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ॥३६॥
उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ।

किमु पाण्डुसुतान्वीरान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥३७॥
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो ।

हे शत्रुसूदन ! हम रण में आपकी सहायता से सुर और असुरों के सहित, इन्द्र को भी जीत सकते हैं, फिर बन्धु-बान्धव या सुहृद्गण के साथ पाण्डवों का जीत लेना क्या कठिन है । हे गाङ्गेय ! महाबाहो ! आपको केवल हमारे ऊपर कृपा कर देनी चाहिए ॥३६-३७॥

जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान् ॥३८॥
अहं सर्वान्महाराज निहनिष्यामि सोमकान् ।
पञ्चालान्केकयैः सार्धं करूषांश्चेति भारत ॥३९॥

हे महाराज ! दानवों को इन्द्र की भांति अब तुम पाण्डु-पुत्रों का वध कर डालो । मैं फिर सारे सोमकों का तथा केकय वीरों के साथ पाञ्चाल और करूष देश के वीरों का विनाश करूंगा।

त्वद्वचः सत्यमेवाऽस्तु जहि पार्थान्समागतान् ।
सोमकांश्च महेष्वासान्सत्यवाग्भव भारत॥४०॥

हे भारत ! अब तुम संग्राम में सन्मुख आये हुए पाण्डवों को मार कर अपनी प्रतिज्ञा को सत्य कर दिखाओ तथा महाधनुर्धर सोमकों का नाश करके अपने सत्यवादीपन की रक्षा करो ॥४०॥

दयया यदि वा राजन्द्वेष्यभावान्मम प्रभो ।
मन्दभाग्यतया चापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥४१॥

अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
स जेष्यति रणे पार्थान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥४२॥

हे प्रभो ! जो तुम पाण्डवों पर दया या मेरे द्वेष तथा मेरी मन्दभाग्यता से पाण्डवों को बचा रहे हो-तो रण में प्रशंसा पाने वाले कर्ण को युद्ध की अनुज्ञा (इजाज़त) दो । यह मित्र तथा बन्धु-बान्धवों के सहित पाण्डवों को अवश्य जीत लेगा ॥४१-४२॥

स एवमुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं सत्यपराक्रमम् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मं प्रति दुर्योधनवाक्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

हे राजन् ! इतना कहकर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, सत्यपराक्रमी भीष्म से कुछ न बोला और चुप हो गया ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म के प्रति दुर्योधन की प्रार्थना का सत्तानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

अट्ठानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच

वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो नोवाचाऽप्रियमण्वपि ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार तुम्हारे पुत्र द्वारा वाणी के बाण से बिद्ध हुआ महामनस्वी भीष्म बड़ा दुःखी हुआ, परन्तु राजा दुर्योधन से कुछ भी अप्रिय वचन नहीं बोला ॥१॥

स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः ।
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया ॥२॥

लोहे की शलाका से व्याकुल हुए सर्प की भांति दुर्योधन की वाणी से दुःख और रोष से व्याप्त होकर भीष्म, बहुत देर तक विचारते हुए उष्ण श्वास लेते रहे ॥२॥

उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ।
सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः ॥३॥

हे भारत ! इनकी क्रोध से आंखें चढ़ गईं, जिन से ऐसा प्रतीत होने लगा, कि ये महात्मा देव, असुर और गन्धर्वों के साथ सारे लोकों को अभी भस्म किये देते हैं ॥३॥

अब्रवीत्तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः ।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि ॥४॥

अब भीष्म पितामह तुम्हारे पुत्र दुर्योधन से इस प्रकार शान्ति युक्त वचन बोले-हे दुर्योधन, तू क्यों मुझे अपनी वाणी के बाणों से छेदता रहता है ॥४॥

घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम् ।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया ॥५॥

मैं अपनी शक्ति के अनुसार सब कुछ कर रहा हूं और तेरे हित में लगा हूं । मैं तो तेरे कल्याण के लिए अपने प्राणों को भी रण में हवन कर देने को उद्यत हूं ॥५॥

यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥६॥

जब पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया और रण में इन्द्र को पराजित किया, क्या यह अर्जुन के पराक्रम का पर्याप्त उदाहरण नहीं है ॥६॥

यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा ।
अमोचयत्पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥७॥

हे महाबाहो ! जब गन्धर्वों ने तुझे बल पूर्वक पकड़ लिया था, तब भी तुमको अर्जुन ने ही छुड़ाया, क्या यह उसके पराक्रम का उदाहरण नहीं है ॥७॥

द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो ।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥८॥

हे प्रभो ! उस समय तुम्हारे सारे शूरवीर भ्राता और सूत-पुत्र कर्ण भी भाग निकले थे, यह अर्जुन के पराक्रम का पर्याप्त प्रमाण है ॥८॥

यच्च नः सहितान्सर्वान्विराटनगरे तदा ।
एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥६॥

जब विराट नगर में गोहरण के समय हम समस्त महारथियों के सन्मुख अकेला अर्जुन आया, क्या यह उसके पराक्रम का पर्याप्त उदाहरण नहीं है ॥६॥

द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे ।
वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१०॥

आवेश में भरे हुए द्रोण और मुझे रण में जीतकर जिस अर्जुन ने सबके वस्त्र धरवा लिए, क्या यह उसके विक्रम का कुछ कम प्रमाण है ॥१०॥

तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथाऽपि च ।
गोग्रहे जितवान्पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥११॥

महाधनुर्धर अश्वत्थामा और कृपाचार्य को भी उसी गोहरण के रण में अर्जुन ने जीत लिया था, यह उसके विक्रम का पर्याप्त प्रमाण है ॥११॥

विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम् ।
उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१२॥

उसी समय अपने वीर होने का अभिमान रखने वाले कर्ण के भी वस्त्र, उतरवा कर उत्तरा को अर्जुन ने अर्पण किये थे-यह अर्जुन के पराक्रम का पर्याप्त निदर्शन है ॥१२॥

निवातकवचान्युद्धे वासवेनाऽपि दुर्जयान् ।
जितवान्समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१३॥

जिन निवात-कवच नामक दैत्यों को इन्द्र भी नहीं जीत सकता था, उनको युद्ध में अर्जुन ने ही परास्त कर दिया, था-क्या यह अर्जुन के पराक्रम का पर्याप्त उदाहरण नहीं है ॥१३॥

को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा ।
यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शङ्खचक्रगदाधरः ॥१४॥

वेग से युद्ध करने वाले अर्जुन को कौन रण में जीत सकता है, तुमको सब विदित है, कि उनके रक्षक शंख चक्रधारी जगद्रक्षक श्रीकृष्ण हैं ॥१४॥

वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः ।
सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥१५॥

ये वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण अनन्त शक्ति और सृष्टि और संहार के करने वाले हैं। ये सबके ईश्वर तथा सनातन परमात्मा हैं ॥१५॥

उक्तोऽसि बहुशो राजन्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ।
त्वं तु मोहान्न जानिषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥१६॥

हे सुयोधन। तुमको नारद आदि महर्षियों ने बार २ जतलाया, परन्तु तुम तो अज्ञान से वाच्य या अवाच्य कुछ भी नहीं समझ पाते हो ॥१६॥

मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान्वृक्षान्पश्यति काञ्चनान् ।
तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यसि ॥१७॥

जो मनुष्य, मरणासन्न होता है वह सारे वृक्षों को सुवर्ण के रंग में देखता है। हे गान्धारी-पुत्र ! इसी तरह तुम भी कुछ विपरीत ही देख रहे हो ॥१७॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ।
युद्धयस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भवत् ॥१८॥

हे राजन् ! तुमने स्वयं सृञ्जय और पाण्डवों से वैर मोल लिया है। अब तुम ही उनके साथ युद्ध करो-हम भी इस युद्ध को देखना चाहते हैं। तुम कुछ पराक्रम धारण करके पुरुष बनो ॥१८॥

अहं तु सोमकान्सर्वान्पञ्चालांश्च समागतान् ।
निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥१९॥

हे नरव्याघ्र ! मैं तो सारे सोमक और युद्ध में उपस्थित सारे पञ्चालों को मार गिराऊंगा। हां ! केवल शिखण्डी पर शस्त्र का प्रहार नहीं करूंगा ॥१९॥

तैर्वाऽहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् ।
तान्वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥२०॥

या तो मैं उन वीरों द्वारा निहत होकर यमराज के घर चला जाऊंगा या रण में उन सब को मार कर तुम्हारा प्रिय कार्य पूरा कर दूंगा ॥२०॥

पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि ।
वरदानात्पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥२१॥

इस शिखण्डी ने पूर्व काल में राजा द्रुपद के महलों में कन्या होकर जन्म लिया था। अब यह बरदान से पुरुष हो गया है परन्तु वास्तव में तो इसे शिखण्डिनी ही कहना चाहिए ॥२१॥

तमहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत ।
याऽसौ प्राङ् निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥

हे भारत! चाहे मेरे प्राण क्यों न चले जावे, परन्तु मैं उसको नहीं मारूंगा, क्योंकि जिसको विधाता ने स्त्री बनाया वह तो सदा स्त्री ही है। मैं तो इसलिए शिखण्डी को शिखण्डिनी ही मानता हूं ॥२२॥

सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्ता महारणम् ।
यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥२३॥

हे गान्धारी-पुत्र! अब तू चैन से सो जा-मैं कल बड़ा भीषण युद्ध करूंगा, जिसको मनुष्य, तब तक गान करेंगे-जब तक यह पृथिवी स्थित है ॥२३॥

एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥२४॥

हे जनेश्वर! इस प्रकार भीष्म द्वारा कहा हुआ तुम्हारा पुत्र, भीष्म-पितामह को मस्तक झुका कर प्रणाम करके अपने शिविर को चला गया ॥२४॥

आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम् ।
प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयङ्करः ॥२५॥

शत्रु का क्षय करने में समर्थ राजा दुर्योधन, अपने शिविर पर पहुंचा और सारी भीड़ भाड़ को विदा करके उसने अपने शिविर में प्रवेश किया ॥२५॥

प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव ।
प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्नृपः ॥२६॥

राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥२६॥

हे राजन ! अपने शिविर में प्रवेश करके राजा दुर्योधन ने वह रात व्यतीत की। जब रात समाप्त हो गई तो प्रातःकाल कुरुराज उठे और सारे राजाओं को आज्ञा दी, कि तुम सेना को सुसज्जित करो। भीष्म क्रोध में भरे हुए हैं, वे आज सारे सोमकों का नाश कर के छोड़ेंगे ॥२६-२७॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु ।
मन्यमानः स तं राजन्प्रत्यादेशमिवाऽऽत्मनः ॥२८॥
निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम् ।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥२९॥

हे राजन ! शान्तनु-पुत्र भीष्म ने रात में दुर्योधन का बहुत सा प्रलाप (बकवाद) सुना था, जिसे इसने अपने ऊपर राजा की आज्ञा समझा। इस समय इसको बड़ी ही उदासी हो रही थी

और यह पराधीनता की निन्दा कर रहा था। अब भीष्म ने रण में अर्जुन से लड़ने का विचार किया ॥२८-२९॥

इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम्।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥३०॥
दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाऽभिचोदय ॥३१॥

हे महाराज! राजा दुर्योधनने भीष्म की चेष्टा से जान लिया, कि ये युद्ध के विषय में गम्भीरता से विचार कर रहे हैं। इन्होंने दुःशासन को आज्ञा दी-हे दुःशासन! तुम शीघ्र भीष्म की रक्षा करने वाले रथ सुसज्जित करो और बाईस पंक्तियों में विभाजित सारी सेना को सावधान रहने की आज्ञा दे दो ॥३०-३१॥

इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम्।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चाऽऽगमः॥

आज अनेक वर्षों से विचारा हुआ मनोरथ सफल होने को है कि जिससे भीष्म द्वारा पाण्डवों की सेना और पाण्डवों का वध तथा राज्य की निष्कण्टक प्राप्ति होगी ॥३२॥

तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम्।
स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात्पार्थांश्च संयुगे ॥३३॥

इस समय मैं सब से आवश्यक कार्य भीष्म की रक्षा करना समझता हूँ। यदि हमने उसकी रक्षा करली तो वह हमारी पूरी सहायता कर देगा और रणाङ्गण में पाण्डवों को मार गिरावेगा।

अब्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम्।
स्त्रीपूर्वको ह्यसौ राजंस्तस्माद्वर्ज्यो मया रणे ॥३४॥

विशुद्ध आत्मा भीष्म ने एक यह बात कही है-हे राजन! मैं शिखण्डी को नहीं मारूंगा, क्योंकि वह प्रथम स्त्री था, इससे रण में उसका मारना मुझे अनुचित है ॥३४॥

लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया।
राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान्पुरा ॥३५॥

हे महाबाहो! संसार जानता है, कि मैंने अपने पिता के प्रिय करने की इच्छा से प्रतिज्ञा की थी, जिसके पूर्ण करने को मैंने विशाल राज्य और स्त्रियों का परित्याग कर दिया था ॥३५॥

नैव चाऽहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन।
हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३६॥

हे नरश्रेष्ठ! मैं रण में स्त्री या पूर्व में स्त्री होकर पुरुष हो जाने वाले व्यक्ति को कभी नहीं मारूंगा-यही मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूं ॥३६॥

अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः।
उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखण्डिनी ॥३७॥

हे राजन्! यह शिखण्डी पूर्व में स्त्री था, जो तुमने भी सुना होगा। मैंने युद्ध के उद्योग के समय में यह कथा सुनादी थी, कि जिस तरह शिखण्डिनी का शिखण्डी बन गया ॥३७॥

कन्या भूत्वा पुमाञ्जातः स च मां योधयिष्यति ।
तस्याऽहं प्रमुखे बाणान्न मुञ्चेयं कथञ्चन ॥३८॥

प्रथम कन्या होकर यह पुरुष बना है और यही मेरे सन्मुख युद्ध करेगा, परन्तु में इसके ऊपर कभी भी बाण नहीं छोडूंगा ॥३८॥

युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः ।
सर्वानन्यान्हनिष्यामि सम्प्राप्तान्रणमूर्धनि ॥३९॥

हे तात ! इसके अतिरिक्त पाण्डवों की विजय के अभिलाषी जितने भी क्षत्रिय युद्ध में मेरे सन्मुख आवेंगे मैं सब उनको रण भूमि में मार बिछाऊँगा ॥३९॥

एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् ।
तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम् ॥४०॥

हे भरतश्रेष्ठ ! दुशासन ! इस प्रकार शस्त्र विद्या में कुशल भीष्म पितामह ने मुझे कहा है । इस कारण से सब कुछ बल लगा कर भीष्म की रक्षा करनी चाहिए-मुझे यही उत्तम प्रतीत होता है ॥४०॥

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाहवे ।
मा वृकेणेव गाङ्गेयं घातयेम शिखण्डिना ॥४१॥

यदि सिंह की रक्षा न की जावे, तो उसे भेड़िया भी मार लेता है, ईससे शिखण्डी रूपी भेड़िया से भीष्म रूपी सिंह का हम विनाश न करवा डाले ॥४१॥

मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः ।

यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन्गुप्ते ध्रुवो जयः ॥४२॥

मामा शकुनि, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विविंशति आदि महारथी, सावधानी के साथ भीष्म पितामह की रक्षा करते रहे, उसके रक्षा करने पर ही निश्चय हमारा विजय होगा ॥४२॥

एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा ।

सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन् ॥४३॥

राजा दुर्योधन के ये वचन सुन कर सारे रथिसमूह ने ने भीष्म को चारों ओर से घेर लिया ॥४३॥

पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा ।

कम्पयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥४४॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र, आनन्द पूर्वक भीष्म को रक्षार्थ घेर कर आगे चले, जिन्होंने भूलोक और द्युलोक को कम्पित और पाण्डवों को व्याकुल कर दिया ॥४४॥

ते रथैः सुप्रसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः ।

परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः ॥४५॥

उत्तम २ रथ और हाथियों से सम्पन्न, वे महारथी, रण में भीष्म को अपने मध्य में लेकर बड़ी सावधानी से खड़े हो गए ॥

यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् ।

सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥४६॥

देवासुर संग्राम में देवों ने वज्रधारी इन्द्र की जिस तरह रक्षा की थी, उसी तरह महारथी भीष्म की रक्षा करते हुए ये महारथी युद्धभूमि में स्थित थे ॥४६॥

ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् ।
सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ॥४७॥
गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ।
रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथाऽस्माभिर्विवर्जितः ॥४८॥
यथा भीष्मं न ते हन्याद्दुःशासन तथा कुरु ।

इसके बाद फिर राजा दुर्योधन, अपने भाई से कहने लगे—हे भ्राता ! अर्जुन के बायें चक्र की युद्धामन्यु और दायें चक्र की उत्तमौजा रक्षा करते हैं और अर्जुन, शिखण्डी की रक्षा में तत्पर हैं। अर्जुन से सुरक्षित होकर और हम से कुछ भी रुकावट न करने पर शिखण्डी भीष्म को न मारले–हे दुशासन ! तुमको इसका ही प्रयत्न करना चाहिए ॥४७-४८॥

भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव ॥४९॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ।

हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुःशासन, अपने बड़े भ्राता, दुर्योधन के ये वचन सुनकर भीष्म पितामह को आगे करके अपनी सेना के साथ चल दिया ॥४९॥

भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम् ॥५०॥
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह ।

इस प्रकार महारथियों से सुरक्षित भीष्म को देख कर महारथियों में श्रेष्ठ अर्जुन, सेनापति धृष्टद्युम्न से कहने लगे ॥५०॥

शिखण्डिनं नरव्याघ्रं भीष्मस्य प्रमुखे नृप ॥
स्थापयस्वाऽद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताऽहमित्युत॥५१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

हे पाञ्चाल-राजकुमार ! आज तुम नरवीर शिखण्डी को भीष्म के सन्मुख रण में ले चलो-मैं उसकी पृष्ठ पर रक्षक होकर चलता हूं ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तार्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म-दुर्योधनके सम्वादका अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

निन्यानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया ।
व्यूहं चाऽव्यूहत महत्सर्वतोभद्रमात्मनः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! अब शान्तनु-पुत्र, भीष्म पितामह, अपनी सेना के साथ आगे बढ़े और इन्होंने अपनी रक्षा करने में समर्थ सर्वतो-भद्र नामक सेना का विशाल व्यूह बनाया

कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः ।
शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥२॥
भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ॥३॥

हे भारत ! कृपाचार्य, कृतवर्मा, महारथी शैव्य, शकुनि सिन्धुराज जयद्रथ, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण और तुम्हारे प्रधान २ पुत्र भीष्म पितामह के साथ, व्यूह के मुख्य पर स्थित हुए ॥२-३॥

द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥४॥

हे आर्य ! द्रोणाचार्य भूरिश्रवा, शल्य, राजा भगदत्त, व्यूह के दायें पक्ष पर बड़ी सावधानी से अड़ गए ॥४॥

अश्वत्थामा सोमदत्तश्चाऽऽवन्त्यौ च महारथौ ।
महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन् ॥५॥

अश्वत्थामा, सोमदत्त, महारथी, अवन्ती राजकुमार विन्द और अनुविन्द, बड़ी भारी सेना लेकर व्यूह के बायें भाग पर स्थित हुए ॥५॥

दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः ।
व्यूहमध्ये स्थितो राजन्पाण्डवान्प्रति भारत ॥६॥

हे महाराज ! त्रिगर्तों को साथ लेकर सब ओर से सुरक्षित, राजा दुर्योधन व्यूह के मध्य में स्थित थे । इस प्रकार ये पाण्डवों पर चढ़ चले ॥६॥

अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः ।
पृष्ठतः सर्व सैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ ॥७॥

रथियों में श्रेष्ठ, राक्षसराज अलम्बुष और महारथी श्रुतायु-सारी सेना के पृष्ठभाग पर बड़ी सावधानी से स्थित हुए ।

एवं च तं तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाऽग्नयः ॥८॥

हे भारत ! इस प्रकार तुम्हारे महारथी, अपनी सेना के व्यूह को बनाकर बड़े सन्नद्ध दिखाई दे रहे थे, जैसे—अनेक भांति से अग्नि से प्रज्वलित हो रहे हों ॥८॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि ॥९॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।

इसीतरह राजा युधिष्ठिर, पाण्डुपुत्र भीमसेन, दोनों भाई माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव, सारी सेना के अग्रभाग में बड़ी सावधानी से स्थित थे ॥९॥

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥१०॥
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः ।

धृष्टद्युम्न, विराट, महारथी सात्यकि, एक और विशाल सेना के साथ स्थित थे, जो शत्रु सेना के विनाश करने में बड़े ही कुशल थे

शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः ॥११॥
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वार्यवान् ।
स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥१२॥

हे महाराज ! शिखण्डी, अर्जुन, राक्षसराज घटोत्कच, महाबाहु चेकितान, वीर्यवान् कुन्तिभोज, बड़ी भारी सेना के साथ एक ओर थे ॥११-१२॥

अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः ।
युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान् ॥१३॥
केकया भ्रातरश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः ।

महाधनुर्धर अभिमन्यु, महाबली द्रुपद, महाधनुषधारी युयुधान, वीर्यवान् युधामन्यु और पांचों भाई केकय राजकुमार, युद्ध को सन्नद्ध हो रहे थे ॥१३॥

एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयम् ॥१४॥
पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।

इस प्रकार शूरवीर पाण्डव भी, अत्यन्त दुर्जय व्यूह बनाकर रणभूमि में युद्ध की प्रतीक्षा में सुसज्जित थे ॥१४॥

तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः ॥१५॥
अभ्युद्ययू रणे पार्थान्भीष्मं कृत्वाऽग्रतो नृप ।

हे नृप ! तुम्हारे पक्ष के राजा अपनी सेना के आगे सावधानी से भीष्म को करके पाण्डवों की ओर बढ़े ॥१५॥

तथैव पाण्डवा राजन्भीमसेनपुरोगमाः ॥१६॥
भीष्मं योद्धमभीप्सन्तः संग्रामे विजयैषिणः ।

हे राजन् ! इसी तरह पाण्डव भा भीमसेन को आगे करके भीष्म से युद्ध की अभिलाषा से विजय की आकांक्षा करते हुए आगे बढ़े ॥१६॥

क्ष्वेडाः किलकिलाः शङ्खान्क्रकचान्गोविषाणिकाः ॥
भेरीमृदङ्गपणवान्नादयन्तश्च पुष्करान् ।
पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥१८॥

सिंहनाद, और किलकिलाहट करते हुए पाण्डव, शंख, क्रकच, गोविषाणिका, भेरी मृदङ्ग पणव पुष्करादि बाजों को बजाते और भीषण शब्द करते हुए आगे बढ़े ॥१७-१८॥

भेरीमृदङ्गशङ्खानां दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
उत्कृष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः ॥१९॥
वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः ।
सहसैवाऽभिसंक्रुद्धास्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥२०॥

भेरी, मृदङ्ग, शंख और दुन्दुभियों के शब्द, उच्च—स्वर में अनेक भांति से किये हुए सिंहनादों से गर्जना करते हुए हम, लोग भी बड़ी शीघ्रता से आगे चले। सब योद्धा बड़े भारी क्रुद्ध हो रहे थे, जिससे बड़ा घोर युद्ध छिड़ गया ॥१६-२०॥

ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥२१॥

अब एक दूसरे ने परस्पर आक्रमण करके प्रहार करना आरम्भ किया। इस युद्ध के महान् कोलाहल से भूमि कांपने लगी ॥२१॥

पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः ।
सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥२२॥

पक्षिगण, महाघोर शब्द करते हुए आकाश में चक्कर लगाने लगे। यद्यपि सूर्य चमकता हुआ निकला था, परन्तु इस समय निस्तेज हो गया ॥२२॥

ववुश्च वातास्तुमुलाः शंसन्तः सुमहद्भयम् ।
घोराश्च घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे ॥२३॥
वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् ।

इस समय बड़े भीषण रूप में पवन चलने लगा; जो महान भय की सूचना दे रहा था। घोर शब्द करनेवाली भयानक गीदड़ियां (लोमड़ी) अनेक तरह से चिल्ला रही थी, हे महाराज! जो आने वाले महान विनाश की सूचना दे रही थी ॥२३॥

दिशः प्रज्वलिता राजन्पांसुवर्षं पपात च ॥२४॥
रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च ।

हे राजन् ! दिशाएँ जल रही थी और मिट्टी की वर्षा होने लगी तथा रक्त से मिली हुई हड्डियों की वर्षा का आरम्भ हुआ।

रुदतां वाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥२५॥
सुस्रुवुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशाम्पते ।

वाहन रोने लगे; जिनकी आखों से जल बरस रहा था। हे विशाम्पते ! अश्वादि वाहन चिन्ता में पड़े हुए विष्ठा और मूत्र छोड़ रहे थे ॥२५॥

अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥२६॥
रक्षसां पुरुषादानां नदतां भैरवान्रवान् ।

हे भरतर्षभ ! पुरुषों के भक्षण करने वाले राक्षसों के भयानक शब्द छुपे २ सुनाई दे रहे थे। ये राक्षस, बड़े ही भीषण शब्दों के करने वाले थे ॥२६॥

सम्पतन्तश्च दृश्यन्ते गोमायुबलवायसाः॥२७॥
श्वानश्च विविधैर्नादैर्वशन्तस्तत्र मारिष ।

चारों ओर गीदड़, गीध और कव्वे, गिर रहे थे। हे आर्य ! उस समय रण भूमि में कुत्ते भी अनेक भांति के शब्द करके भूस रहे थे ॥२७॥

ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहत्य दिवाकरम् ।।
निपेतुः सहसा भूमौ वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥२८॥

प्रज्वलित उल्काएँ सूर्य को भी निस्तेज करके भूमि में गिर रही थी; जिनसे महान् भय की सूचना होती थी ॥२८॥

महान्त्यनीकानिमहासमुच्छ्रयेततस्तयोः पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानिवायुना

इस महायुद्ध में पाण्डव और कौरवों की विशाल सेना, शङ्ख और मृदङ्ग आदि बाजों की ध्वनि से इस तरह काँप रही थी, जैसे तीव्र वायु से वन कांपने लगता है ॥२९॥

नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलानामभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धतानामिव सागराणाम् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि परस्परव्यूहरचनायां उत्पातदर्शने ऊनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

राजा, हाथी, अश्वों से व्याप्त, दुर्मूहुर्त में आई हुई सेनाओं का महान् कोलाहल इस तरह होने लगा, जैसे वायु के झोकों ने समुद्र को उछाल दिया हो ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में परस्पर व्यूह रचना और उत्पात होने का निन्यान्वेवां अध्याय समाप्त हुआ

सौवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अभिमन्यू रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः।
अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्योधनबलं महत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! इसके अनन्तर महारथियों में श्रेष्ठ, अभिमन्यु, अपने भूरे अश्वों के द्वारा राजा दुर्योधन की सेना पर चढ़ दौड़ा ॥१॥

विकिरञ्शरवर्षाणि वारिधारा इवाऽम्बुदः।
न शेकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदनम् ॥२॥
शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम्।
निवारयितुमप्याजौ त्वदीयाः कुरुनन्दन ॥३॥

मेघ जैसे जलधारा छोड़ता है, इसी, तरह बाण वर्षा करता हुआ अभिमन्यु चला। हे कुरुनन्दन ! शस्त्र समूह के धारण और अक्षीण सेना समुद्र के मन्थन करने वाले, अरिसूदन सुभद्रापुत्र अभिमन्यु को तुम्हारी सेना का कोई वीर, रोकने में समर्थ नहीं हो सका ॥२-३॥

तेन मुक्ता रणे राजञ्शराः शत्रुनिबर्हणाः।
क्षत्रियाननयञ्शूरान्प्रेतराजनिवेशनम् ॥४॥

हे राजन् ! अभिमन्यु द्वारा छोड़े हुए, शत्रुनाशक बाण, अनेक वीर क्षत्रियों को यमराज के घर पहुँचाने लगे ॥४॥

यमदण्डोपमान्घोराञ्ज्वलिताशीविषोपमान् ।
सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामास सायकान् ॥५॥

यमदण्ड के समान घोर, भयानक सर्प के समान आकारधारी, बाणों को क्रोध में भरा हुआ, अभिमन्यु, रणाङ्गण में फेंकने लगा।

स रथान्रथिनस्तूर्णं हयांश्चैव ससादिनः ।
गजारोहांश्च सगजान्दारयामास फाल्गुनिः ॥६॥

अर्जुन पुत्र अभिमन्यु, रथसहित रथी, अश्वारोहियों समेत अश्व और गजारोहियों सहित गजों को मार २ कर रणभूमि में बिछाने लगा ॥६॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म महत्संख्ये महीभृतः ।
पूजयाञ्चक्रिरे हृष्टाः प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥७॥

अभिमन्यु के रण में इस दुष्कर कर्म को देखकर अनेक राजा प्रसन्नता पूर्वक उसका आदर और प्रशंसा करने लगे ॥७॥

तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयामासभारत ।
तूलराशीनिवाऽऽकाशे मारुतः सर्वतो दिशम् ॥८॥

हे भारत ! सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने, उस सारी तुम्हारी सेना को इस तरह भगादिया, जैसे—आकाश में वायु, रुई को सब ओर उड़ाये फिरती है ॥८॥

तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्के मग्ना इव द्विपाः ॥९॥

हे भारत ! अभिमन्यु द्वारा छिन्नभिन्न की हुई तुम्हारी सेना का कीचड़ में फंसे हाथी की भांति कोई भी रक्षक नहीं हुआ ॥९॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि नरोत्तम ।
अभिमन्युः स्थितो राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥१०

हे नरोत्तम ! राजन् ! इस प्रकार तुम्हारी सेना को भगाकर अभिमन्यु, युद्ध भूमि में डट कर खड़ा हो। गया यह इस समय धूमरहित प्रज्वलित अग्नि के सदृश दिखाई दे रहा था ॥१०॥

न चैनं तावका राजन्विषेहुररिघातिनम् ।
प्रदीप्तं पावकं यद्वत्पतङ्गाः कालचोदिताः ॥११॥

हे राजन् ! प्रदीप्त अग्नि को काल के प्रेरित कीट पतङ्ग,-जैसे-नहीं सह सकते हैं, इसी तरह तुम्हारी सेना के वीर अरिघाती अभिमन्यु के सहन करने में समर्थ नहीं हो सके ॥११॥

प्रहरन्सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः ।
अदृश्यत महेष्वासः सवज्र इव वासवः ॥१२॥

हे नृपते ! पाण्डवों के महारथी धनुर्धर अभिमन्यु, सारे शत्रुओं पर प्रहार करते हुए वज्रधारी इन्द्र से प्रतीत हो रहे थे ॥१२॥

हेमपृष्ठं धनुश्चाऽस्य ददृशे विचरद्दिशः ।
तोयदेषु यथा राजन्राजमाना शतह्रदा ॥१३॥

हे राजन् ! सुवर्ण की पीठवाला इसका धनुष, सब दिशाओं में घूमता ऐसा प्रतीत होता था, जैसे-बादलों में बिजली चमक रही हो ॥१३॥

शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे ।
वनात्फुल्लद्रुमाद्राजन्भ्रमराणामिवव्रजाः ।।१४।।

हे राजन्! अभिमन्यु के विषपीत, तीक्ष्ण बाण, रणाङ्गण में इस तरह घूम रहे थे, जैसे प्रफुल्लित वृक्षों से उड़े हुए, वन में भ्रमरों का समूह घूम रहा हो ॥१४॥

तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन ददृशुर्नाऽन्तरं जनाः ।।१५।।

महावीर सुभद्रातनय अभिमन्यु के रणभूमि में सुवर्णमय रथ से घूमते समय कोई भी विरोधी वीर, प्रहार करने का अवसर नहीं पा सकता था ॥१५॥

मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च सबृहद्बलम् ।
सैन्धवं च महेष्वासो व्यचरल्लघु सुष्ठु च ।।१६।।

महाधनुर्धर अभिमन्यु, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, राजा बृहद्बल, और सिन्धुराज जयद्रथ को चकित करता हुआ बड़ी निपुणता और शीघ्रता (फ़ुर्ती) के साथ रणभूमि में चक्कर लगाने लगा ॥१६॥

मण्डलीकृतमेवाऽस्य धनुः पश्याम भारत ।
सूर्यमण्डलसङ्काशं दहतस्तव वाहिनीम् ।।१७।।

हे भारत! हम लोगों ने तुम्हारी सेना को भस्म करते हुए और सूर्य मण्डल के सदृश मण्डलधारी, अभिमन्यु के धनुष को घूमते हुए रण में देखा था ॥१७॥

तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपन्तं तरस्विनम् ।
द्विफाल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥१८।

इस वेगशील, तेजस्वी अभिमन्यु को देख कर सारे वीर, इसके वीर कर्मों से इस जगत् को दो अर्जुनों से युक्त समझने लगे।

तेनाऽर्दिता महाराज भारती सा महाचमूः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥१९॥

हे महाराज ! इससे पीडित हुई कौरवों की महासेना, मद में भरी हुई कामिनी की भांति इधर उधर फड़कती फिरती थी ॥१९॥

द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान् ।
नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥२०॥

तुम्हारी महासेना को भगा कर तथा महारथियों को कम्पित करके इसने अपने प्रेमियों को इस प्रकार आनन्दित कर दिया-जैसे मय दैत्य को जीत कर इन्द्र ने संसार को आनन्दित कर दिया था ॥२०॥

तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥२१॥

हे भारत ! अभिमन्यु द्वारा विद्रावित की हुई तुम्हारी सेना, रण में मेघ गर्जना के सदृश घोर आर्तःध्वनि करने लगी ॥२१॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥२२॥

दुर्योधनस्तदा राजन्नार्ष्यशृङ्गिमभाषत ।
एष कार्ष्णिर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः ॥२३॥
चमूं द्रावयते क्रोधाद्वृत्रो देवचमूमिव ।
तस्य चाऽन्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥२४॥
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठं सर्वविद्यासु पारगम् ।
स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे ॥२५॥
वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।

हे भारत! वायु से उछाले हुए पर्व पर समुद्र के तुल्य तुम्हारी सेना की घोर चीत्कार को सुनकर राजा दुर्योधन, ऋष्यशृङ्ग, के पुत्र राक्षसराज अलम्बुष से कहने लगा, कि हे महाबाहो, यह अर्जुन पुत्र तो दूसरा अर्जुन प्रतीत हो रहा है। वृत्रासुर, जैसे-देवसेन। को तितर बितर कर देता है, यह भी उसी तरह क्रोध में भरा हुआ हमारी सेना को छिन्न भिन्न कर रहा है। अब मैं इस रण में इस की कुछ औषध नहीं देख रहा हूँ, केवल तुम ही एक सारी रण विद्याओं में कुशल दिखाई देते हो। हे वीर! अब तुम ही शीघ्र जाकर रणाङ्गण में इस वीर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु का वध करो। सब द्रोण भीष्म आदि मिलकर हम लोग, अर्जुन को मारे लेते हैं ॥२२-२५॥

स एवमुक्तो बलवान्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥२६॥
प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।

महाभारत चित्र संख्या ७६
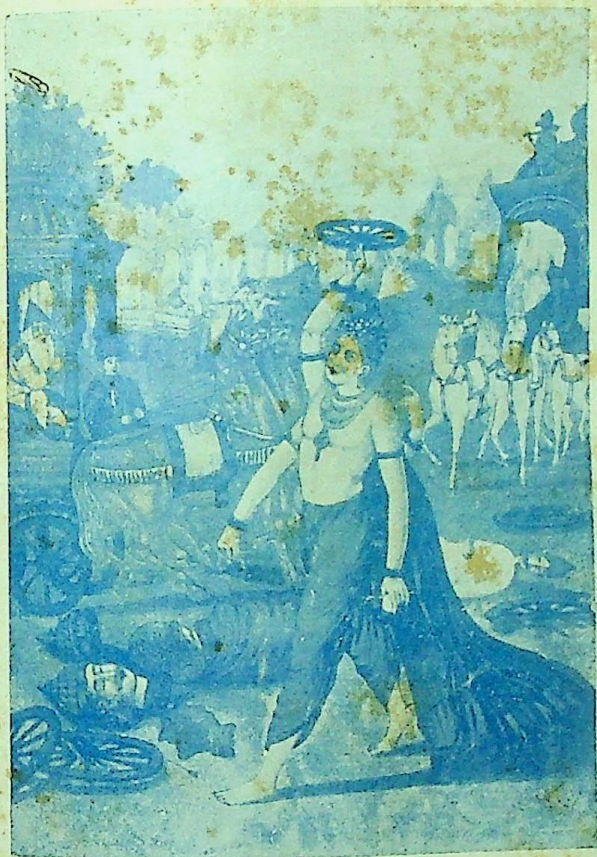
कर्मयोगी श्रीकृष्ण का रथ से कूदकर भीष्म पितामह पर टूट पड़ना

महा० भीष्मपर्व अ० १०६—५७ पृष्ठ २१७

नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः ॥२७॥

हे राजन्! जब राजा दुर्योधन ने बलवान् प्रतापी राक्षसराज अलम्बुष से इतना कहा तो वह तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की आज्ञा मान कर बड़े वेग से चल दिया। यह वर्षा ऋतु में मेघ की गर्जना के सदृश गर्जना करता जा रहा था ॥२६-२७॥

तस्य शब्देन महता पाण्डवानां बलं महत्।
प्राचलत्सर्वतो राजन्वातोद्धूत इवाऽर्णवः ॥२८॥

हे राजन्! राक्षसराज अलम्बुष की घोर गर्जना सुनकर पाण्डवों की विशाल सेना डगमगाने लगी, जैसे-वायु से कंपित किया हुआ समुद्र उछलने लगाता है ॥२८॥

बहवश्च महाराज तस्य नादेन भीषिताः।
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य निपेतुर्धरणीतले ॥२९॥

हे महाराज! बहुत से क्षत्रिय तो उसके नाद से इतने डर गए, कि अपने प्रिय प्राणों को छोड़ कर रणस्थल में गिर गए ॥२९॥

कार्ष्णिश्चापि मुदा युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः।
नृत्यन्निव रथोपस्थे तद्रक्षः समुपाद्रवत् ॥३०॥

कृष्ण (अर्जुन) पुत्र अभिमन्यु तो राक्षसराज को देखकर बड़ा प्रफुल्लित हुआ और वह रथ के मध्य में नांचता हुआ सा होकर राक्षसराज पर चढ़ दौड़ा ॥३०॥

ततः स राक्षसः क्रुद्धः सम्प्राप्यैवाऽऽर्जुनिं रणे।
नाऽतिदूरे स्थितां तस्य द्रावयामास वै चमूम् ॥३१॥

अब राक्षसराज भी क्रुद्ध हो उठा और रण में अर्जुन पुत्र, अभिमन्यु के पास पहुंच कर उसकी सेना को भगाने लगा ॥३१॥

तां वध्यमानां च तथा पाण्डवानां महाचमूम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे रक्षो देवसेनां यथा बलः ॥३२॥

पाण्डवों की विशाल सेना में जब इस प्रकार भगदड़ मच गई, तो देवसेना के ऊपर आक्रमण करने वाले बल नामक दैत्य की भांति अलम्बुष उस पर झपटा ॥३२॥

विमर्दः सुमहानासीत्तस्य सैन्यस्य मारिष ।
रक्षसा घोररूपेण वध्यमानस्य संयुगे ॥३३॥

हे आर्य ! घोर-रूप-धारी राक्षसराज और क्षतविक्षत पाण्डवों की सेना में रणभूमि पर बड़ा घोर युद्ध होने लगा ॥३३॥

ततः शरसहस्रैस्तां पाण्डवानां महाचमूम् ।
व्यद्रावयद्रणे रक्षो दर्शयन्स्वपराक्रमम् ॥३४॥

राक्षसराज अलम्बुष, अपने पराक्रम का प्रदर्शन करता हुआ सैंकड़ों हज़ारों बाण छोड़ कर रण में पाण्डवों की विशाल सेना को रणाङ्गण में छिन्न भिन्न करने लगा ॥३४॥

सा वध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी ।
रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥३५॥

इस प्रकार आहत की हुई पाण्डवों की सेना, इस भयानक राक्षस के भय से रण में भाग खड़ी हुई ॥३५॥

प्रमृद्य च रणे सेनां पद्मिनीं वारणो यथा ।
ततोऽभिदुद्राव रणे द्रौपदेयान्महाबलान् ॥३६॥

जिस प्रकार कमलिनी को हाथी कुचल डालता है, इसी तरह रण में पाण्डवों की सेना का मर्दन करके राक्षसराज, महाबली द्रौपदी पुत्रों पर झपटा ॥३६॥

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च रविं यथा ॥३७॥

प्रहार करने में कुशल द्रौपदी पुत्र भी बड़े धनुर्धर थे, वे भी क्रोध से जल उठे । ये सूर्य पर पांच ग्रहों के तुल्य राक्षसराज अलम्बुष पर रण में झपटे ॥३७॥

वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥३८॥

इन महा पराक्रमी द्रौपदी पुत्रों ने राक्षसराज को बड़ा पीड़ित किया, जैसे घोर प्रलय काल में पांच ग्रह चन्द्रमा को पीड़ित कर रहे हो ॥३८॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो बिभेद निशितैःशरैः ।
सर्वपारशवैस्तूर्णैरकुण्ठाग्रैर्महाबलः ॥३९॥

राजा युधिष्ठिर के बड़े पुत्र महाबली प्रतिविन्ध्य ने तीक्ष्ण बाणों से राक्षस को बींध डाला तथा परशु के सदृश तीक्ष्ण धार वाले अन्य अनेक शस्त्रों से उसको बड़ी बाधा पहुंचाई ॥३९॥

स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः ।
मरीचिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥४०॥

राक्षसराज का कवच छिन्न-भिन्न हो गया। इस समय यह सूर्य की किरणों से व्याप्त महान् मेघ के सदृश दिखाई देने लगा ॥४०॥

विषक्तैः स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
आर्ष्यशृङ्गिर्बभौ राजन्दीप्तशृङ्ग इवाऽचलः ॥४१॥

विष में बुझे हुए सुवर्ण जटित, शरों से व्याप्त होकर ऋष्यशृङ्गका पुत्र अलम्बुष, प्रदीप्त शिखरधारी पर्वत के समान दिखाई देने लगा ॥४१॥

ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीयविभूषितैः ॥४२॥

इसके अनन्तर पांचों भाइयों ने मिलकर सुवर्ण जटित अपने अपने तीक्ष्ण बाणों से रण में राक्षसराज को बींध डाला ॥४२॥

स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव ।
अलम्बुषो भृशं राजन्नागेन्द्र इव चुक्रुधे ॥४३॥

हे राजन्! कुपित सर्प के समान आकार धारी घोर बाणों से आहत हुआ अलम्बुष सर्पराज वासुकिकी भांति क्रोध में उल उठा ॥४३॥

सोऽतिविद्धो महाराज मुहूर्तमथ मारिष ।
प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः ॥४४॥

हे महाराज ! इन महारथी, द्रौपदीपुत्रों से अत्यन्त क्षत-विक्षत हुआ, वह राक्षसराज थोड़ी देर के लिए मूर्च्छित हो गया ॥४४॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः ।
चिच्छेद सायकांस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूंषि च ॥४५॥

जब इसको चेत हुआ तो दुगुने क्रोध में भर गया । इसने अब उन द्रौपदीपुत्रों के बाण, ध्वजा तथा धनुष को काट डाला।

एकैकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्मयन्निव ।
अलम्बुषो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः ॥४६॥

राक्षसराज ने मुस्कुराते हुए पांच बाण छोड़ कर पांचों महारथी द्रौपदी पुत्रों को आहत कर दिया । इस समय महारथी अलम्बुष रण में नाच सा कर रहा था ॥४६॥

त्वरमाणः सुसंरब्धो हयांस्तेषां महात्मनाम् ।
जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथींश्च महाबलः ॥४७॥

महाबली राक्षस अलम्बुष ने क्रोध में भर कर उन महावीरों के अश्वों और सारथि को बड़ी शीघ्रता से आक्रमण करके मार डाला ॥४७॥

बिभेद च सुसंरब्धः पुनश्चैनान्सुसंशितैः ।
शरैर्बहुविधाकारैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥४८॥

फिर इस महाबली ने आवेश में आकर अनेक प्रकार से सैंकड़ों हजारों की संख्या में तीक्ष्ण बाण छोड़ कर इन पांचों द्रौपदी पुत्रों को आहत (घायल) कर दिया ॥४८॥

विरथांश्च महेष्वासान्कृत्वा तत्र स राक्षसः ।
अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः ॥४६॥

इन महाधनुर्धर द्रौपदीपुत्रों को रथविहीन करके, रात्रि में घूमने वाले राक्षसराज अलम्बुष ने इनके मारने की कामना से बड़े वेग से इन पर आक्रमण किया ॥४६॥

तानर्दितान्रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना ।
दृष्ट्वाऽर्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत् ॥५०॥

दुरात्मा राक्षस द्वारा द्रौपदीपुत्रों को रण में पीडित देखकर अर्जुनपुत्र, अभिमन्यु ने राक्षसराज अलम्बुष पर आक्रमण किया,

तयोः समभवद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः ॥५१॥

इन दोनों वीरों में वृत्रासुर और इन्द्र के तुल्य घोर युद्ध होने लगा, जिसको तुम्हारे और पाण्डवों के महारथी, खड़े होकर देखने लगे ॥५१॥

तौ समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परम् ।
महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥५२॥
परस्परमवेक्षेतां कालानलसमौ युधि ।

हे महाराज ! ये इस महायुद्ध में परस्पर एक दूसरे पर कुपित हो रहे थे । इनकी क्रोध से आंखें लाल हो उठी थी । ये एक दूसरे को कालाग्नि के समान प्रज्वलित आंखों से देख रहे थे ॥५२॥

तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ॥५३॥
यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोः पुरा ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषाभिमन्युसमागमे शततमोऽध्यायः ॥१००॥

पूर्व काल में देवासुर संग्राम में जैसा-इन्द्र और शम्बर दैत्य का घोर तीक्ष्णता से भरा हुआ संग्राम हुआ था, वही दशा इस संग्राम की थी ॥५३-५४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में अलम्बुश और अभिमन्यु के युद्ध का सौवां अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौ एकवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

आर्जुनिं समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथान्।
अलम्बुषः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥१॥
आर्ष्यशृङ्गिं कथं चैव सौभद्रः परवीरहा।
तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन यथा वृत्तं स्म संयुगे ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! महारथियों को भी मार गिराने वाले अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से रणभूमि में राक्षसराज अलम्बुष, कैसे युद्ध कर सका, तथा शत्रुविजयी अभिमन्यु ने ऋष्यशृङ्ग के पुत्र अलम्बुष से किस भांति युद्ध किया—तुम रण में जिस तरह इनका युद्ध हुआ हो-वह सारा वृत्तान्त मुझे ठीक ठीक समझाओ १-२॥

धनञ्जयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संयुगे ।

भीमो वा रथिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः ॥३॥

नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः ।

एतदाचक्ष्व मे सत्यं कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥४॥

रण के छिड़ने पर हमारी सेना में धनञ्जय अर्जुन, रथियों में श्रेष्ठ भीमसेन, राक्षसराज घटोत्कच, नकुल, सहदेव, और महारथी, सात्यकि ने क्या क्या पराक्रम कर दिखाए ? हे सञ्जय ! तुम इन सब घटनाओं को ठीक ठीक सुनाओ, क्योंकि तुम, घटनाओं के जानने में बड़े ही कुशल हो ॥३-४॥

सञ्जय उवाच—

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम् ।

यथाऽभूद्राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष ॥५॥

सञ्जय कहने लगे—हे आर्य ! प्रथम मैं तुमको इसी भीषण युद्ध को सुनाता हूं, जो राक्षसराज अलम्बुष और सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु में हुआ था ॥५॥

अर्जुनश्च यथा संख्ये भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च रणे चक्रुः पराक्रमम् ॥६॥

इसके अनन्तर पाण्डु-पुत्र अर्जुन और भीमसेन तथा नकुल और सहदेव ने जो २ पराक्रम कर दिखाए-मैं वह भी तुमको सुनाऊंगा ॥६॥

तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ।
अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥७॥

इसी प्रकार तुम्हारे महारथी भीष्म द्रोण आदि वीरों ने निर्भीक होकर जो २ अद्भुत कर्म कर दिखाए-वह भी बताऊंगा ॥७॥

अलम्बुषस्तु समरे अभिमन्युं महारथम् ।
विनद्य सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः ॥८॥
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

रण में राक्षसराज अलम्बुष, महान् सिंहनाद करके और बार २ महारथी अभिमन्यु को ललकार कर बड़े वेग से उस पर झपटा और ठहर ? ठहर ? इस प्रकार कहने लगा ॥८॥

अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥९॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।

अभिमन्यु भी सिंह की भांति घुड़घुड़ाता हुआ, अपने पिता के अत्यन्त वैरी, महाधनुर्धर राक्षसराज ऋष्यशृङ्ग-पुत्र अलम्बुष पर झपटा ॥९॥

ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौ ॥१०॥
रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ ।
मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रश्चैव फाल्गुनिः ॥११॥

अब रथियों में श्रेष्ठ दोनों नरवीर अभिमन्यु और राक्षस श्रेष्ठ अलम्बुष, देव और दानवों की भांति रणभूमि में बड़े वेग से युद्ध करने लगे। राक्षसराज अलम्बुष बड़ा मायावी था और अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु भी दिव्य अस्त्रों का प्रयोग जानता था।११।

ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः ।
आर्ष्यशृङ्गिं रणे विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥१२॥

हे महाराज ! अब अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने प्रथम तीन बाणों से और फिर पांच बाणों से ऋष्यशृङ्ग के पुत्र अलम्बुष को रणाङ्गण में आहत कर दिया ॥१२॥

अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः ।
हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥१३॥

राक्षसराज अलम्बुष ने भी क्रोध में भर कर नौ बाणों से अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के हृदय में प्रहार किया, जैसे-तोत्र नामक शस्त्रसे गजराज पर प्रहार किया हो ॥१३॥

ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः ।
अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत ॥१४॥

हे भारत ! बड़े वेग से युद्ध करने में कुशल, राक्षस राज ने, अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को सहस्रों बाणों से रण में आहत कर दिया।

अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ।
बिभेद निशितैर्बाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि ॥१५॥

अभिमन्यु भी क्रोध में भर गया और उसने भी झुकी पर्व वाले नौ तीक्ष्ण बाणों से राक्षसराज की विशाल छाती में प्रहार किया ॥१५॥

ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्मसु ।
स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः ॥१६॥
पुष्पितैः किंशुकै राजन्संस्तीर्ण इव पर्वतः ।

ये बाण इसके शरीर को चीर कर इसके मर्म-स्थान में प्रविष्ट हो गए। राक्षसराज इन बाणों से क्षतविक्षत हुआ पुष्पों से भरे हुए ढ़ाक के वृक्षों से पूर्ण पर्वत-राज की भांति सुशोभित होने लगा ॥१६॥

सन्धारयाणश्च शरान्हेमपुङ्खान्महाबलः ॥१७॥
विबभौ राक्षसश्रेष्ठः सज्वाल इव पर्वतः ।

महाबली राक्षसराज, सुवर्ण मूलधारी बाणों को धारण किये हुए, अग्नि से प्रज्वलित पर्वत के तुल्य शोभा को धारण कर रहा था ॥१७॥

ततः क्रुद्धो महाराज आर्ष्यशृङ्गिरमर्षणः ॥१८॥
महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिं छादयामास पत्रिभिः ।

हे महाराज ! इसके अनन्तर ऋष्यशृङ्ग का असहिष्णु-पुत्र अलम्बुष क्रुद्ध हो उठा और उसने महेन्द्र के समान वीर अभिमन्यु को अपने बाणों से ढक दिया ॥१८॥

तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः ॥१६॥
अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।

अलम्बुष द्वारा छोड़े हुए यमदण्डोपम तीक्ष्ण बाण, अभिमन्यु के शरीर को बींध कर पृथिवीतल में घुस गए ॥१६॥

तथैवाऽऽर्जुनिना मुक्ताः शराः कनकभूषणाः ॥२०॥
अलम्बुषं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।

इसी प्रकार अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के छोड़े हुए सुवर्ण विभूषित बाण, राक्षस राज अलम्बुष के शरीर को बींध कर धरातल में घुस रहे थे ॥२०॥

सौभद्रस्तु रणे रक्षः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२१॥
चक्रे विमुखमासाद्य मयं शक्र इवाऽऽहवे ।

मय दैत्य को संग्राम में इन्द्र ने जैसे पीछे हटा दिया था, इसी तरह सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु नें भी, अपने झुके पर्व वाले बाणों से रण में राक्षसराज को पीछे हटा दिया ॥२१॥

विमुखं च रणे रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा ॥२२॥
प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनाम् ।

इस महारण में शत्रु द्वारा व्यथित होकर राक्षसराज रण से विमुख हो गया । अब इसने शत्रुतापिनी तामसी महामाया की रचना की।

ततस्ते तमसा सर्वे वृताश्चाऽऽसन्महीपते ॥२३॥
नाऽभिमन्युमपश्यन्त नैव स्वान्न परान्रणे ।

हे महीपते ! अब इसकी तामसी माया से आक्रान्त हुए सारे पाण्डव वीर अन्धकार में निमग्न हो गए। इनको न तो अभिमन्यु दिखाई देता था और न अपने पराये वीर ही दृष्टिगोचर होते थे ।

अभिमन्युश्च तद् दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ॥२४॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः ।

जब कुरुनन्दन, अभिमन्यु ने घोररूप महान्धकार देखा-तो उसने अत्यन्त उग्र भास्करास्त्र का प्रयोग किया ॥२४॥

ततः प्रकाशमभवज्जगत्सर्वं महीपते ॥२५॥
तां चाऽभिजघ्निवान्मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ।

हे महीपते ! भास्करास्त्र के प्रयोग से सारे जगत् में प्रकाश छा गया। अभिमन्यु ने अब राक्षसेन्द्र की माया का भी विनाश कर दिया ॥२५॥

संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तमः ॥२६॥
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।

नर-प्रवीर महाशक्तिशाली अभिमन्यु ने राक्षसराज अलम्बुष को रण में झुके पर्व वाले बाणों से आच्छादित कर दिया ॥२६॥

बह्वीस्तथाऽन्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ॥२७॥
सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः ।

इस प्रकार राक्षसराज अलम्बुष ने बहुत सी मायाएँ रची, परन्तु सारे अस्त्रों के जानने वाले, परिमितबलशाली अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने सब का प्रतीकार कर दिया ॥२७॥

हतमायं ततो रक्षो वध्यमानं च सायकैः ॥२८॥
रथं तत्रैव सन्त्यज्य प्राद्रवन्महतो भयात् ।

जब राक्षसराज की माया का विनाश हो चुका और वह स्वयं भी बहुत क्षत-विक्षत हो गया-तो वह अपने रथ को वहीं छोड़ कर बड़ा भयातुर होकर भाग गया ॥२८॥

तस्मिन्विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ॥२९॥
आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं सम्मदर्द ह ।
मदान्धो गन्धनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव ॥३०॥

छल प्रयोग से युद्ध करने वाले राक्षसराज के जीत लेने पर अर्जुन पुत्र अभिमन्यु अब तुम्हारी सेना का ऐसे विध्वंस करने लगा, जैसे, मदोन्मत्त, मदगन्ध से युक्त गजेन्द्र, कमल पुष्प सहित कमलिनी को कुचल रहा हो ॥३०।

ततः शान्तनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाऽभिविद्रुतम् ।
महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्यवारयत् ॥३१॥

अब शान्तनुपुत्र भीष्म, अपनी सेना को भागती हुई देख कर बड़ीभारी बाण वर्षा करने लगा, जिससे उसने अभिमन्यु को उसी स्थान पर रोक दिया ॥३१॥

कोष्ठीकृत्य च तं वीरं धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढम् ॥३२॥

अनेक महारथी धृतराष्ट्र पुत्र, अभिमन्यु को चारों ओर से घेरकर अपने बाणों से रण में उस पर बहुत दृढ आघात करने लगे ॥३२॥

स तेषां रथिनां वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥३३॥
उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च ।
रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥३४॥

अभिमन्यु भी उन महारथियों के मध्य में बड़ी वीरता दिखाने लगा; क्योंकि यह अपने पिता अर्जुन के तुल्य पराक्रमी था तथा पराक्रम और बल में श्रीकृष्ण के सदृश था। इसके सारे कर्म अपने पिता अर्जुन और मातुल श्रीकृष्ण के तुल्य थे। इस सब शस्त्रों के प्रयोगों को जानने वाले अभिमन्यु ने रण में अनेक दाव पेच दिखाए ॥३३-३४॥

ततो धनञ्जयो वीरो विनिघ्नंस्तत्र सैनिकान् ।
आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥३५॥

अब वीर, धनञ्जय अर्जुन भी, तुम्हारे सैनिकों का विनाश करता हुआ अपने पुत्र अभिमन्यु की रक्षा के निमित्त, आवेश में भरा हुआ रण में भीष्म के पास पहुंचा ॥३५॥

तथैव समरे राजन्पिता देवव्रतस्तव ।

आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥३६॥

हे राजन्! इसी प्रकर इस रण में तुम्हारे पिता देवव्रत भी सूर्य को राहु की भांति अर्जुन के सन्मुख पहुंचे ॥ ३६ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव जनेश्वर ।

परिवव्रूरणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः ॥३७॥

हे जनेश्वर! अब तुम्हारे पुत्रों ने रथ, हाथी, और अश्व लेकर रण में भीष्म को घेर लिया और उसकी सब तरह से रक्षा करने लगे ॥ ३७ ॥

तथैव पाण्डवा राजन्परिवार्य धनञ्जयम् ।

रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥३८॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ! राजन्! इसी तरह पाण्डव भी अर्जुन को घेरकर इस महायुद्ध के लिए सन्नद्ध (तय्यार) होकर खड़े हो गए।

शारद्वतस्ततो राजन्भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम् ।

अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥३९॥

हे राजन्! भीष्म के सन्मुख युद्धार्थ डटे हुए अर्जुन पर शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने पच्चीस बाणों का प्रयोग किया ॥ ३९ ॥

प्रत्युद्गम्याऽथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः ।
पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥४०॥

इसी क्षण महारथी सात्यकि लौटा और उसने कृपाचार्य को अपने तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की विजय के निमित्त इस प्रकार आहत किया। जैसे—सिंह हाथी को कर देता है ॥ ४० ॥

गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः ।
हृदि विव्याध संक्रुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥४१॥

गौतमगोत्रोत्पन्न कृपाचार्य ने भी क्रोध पूर्वक बड़ी तीव्रता से कङ्कपक्षी के पङ्खों से युक्त नौ बाण, सात्यकि के वक्षस्थल में मारे।

शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान् ।
गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम् ।४२॥

इधर वेगशील शिनिपुत्र, सात्यकि भी कुपित हो गया, इसने अपना धनुष खैंचकर कृपाचार्य का अन्त करने वाला, बाण बड़े वेग से छोड़ा ॥४२॥

तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम् ।
द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः ॥४३॥

इन्द्र के वज्र के तुल्य इस भीषण बाण को वेग से आता देखकर अत्यन्त कोपाक्रान्त, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने बीच में ही उसे काट गिराया ॥४३॥

समुत्सृज्याऽथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ॥४४॥

रथियों में श्रेष्ठ, शिनिपुत्र सात्यकि, अब शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य को, छोड़कर चन्द्रमा पर राहु की भांति, रण में अश्वत्थामा पर झपटा ॥४४॥

तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत ।
अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ॥४५॥

हे भारत ! अश्वत्थामा ने महारथी सात्यकि का धनुष काट डाला, और जब इसका धनुष कट कर गिर गया-तो उसने इसे बाणों से व्यथित कर दिया ॥४५॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् ।
द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥४६॥

हे महाराज ! अब सात्यकि ने शत्रु-नाशक, युद्ध के भार के सहने वाला दूसरा धनुष उठाया और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के बाहु और छाती में साठ बाण मारे ॥४६॥

स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः ।
निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥४७॥

इन बाणों से बिंध कर अश्वत्थामा बड़ा पीड़ित हुआ और थोड़ी देर को मूर्च्छित सा हो गया। यह ध्वजा का दण्ड पकड़ कर रथ के मध्य में मूर्च्छित सा होकर बैठ गया ॥४७॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समार्पयत् ॥४८॥

शैनेयं स तु निर्भिद्य प्राविशद्धरणीतलम् ।
वसन्तकाले बलवान्बिलं सर्पशिशुर्यथा ॥४६॥

थोड़ी देर में द्रोण-पुत्र प्रतापी अश्वत्थामा ने कुछ सचेत होकर वृष्णिवंशोत्पन्न सात्यकि पर युद्ध में तीक्ष्ण बाण का प्रयोग किया। यह बाण शिनि-पुत्र सात्यकि के शरीर को बींध कर पृथिवीतल में घुस गया जैसे-वसन्त काल में बलवान् सर्प बालक बिल में घुस जाता है ॥४८-४६॥

अथाऽपरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम् ।
चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह ॥५०॥

इसके अनन्तर दूसरे बाण से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सात्यकि की उत्तम ध्वजा को रणभूमि में काट गिराया और आप-बड़े उच्च स्वर में सिंहनाद करने लगा ॥५०॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत ।
निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम् ॥५१॥

हे भारत ! फिर अश्वत्थामा ने घोर बाणों से वर्षाकाल में जिस भांति मेघ सूर्य को ढ़क लेते हैं, इसी तरह सात्यकि को ढ़क लिया ॥५१॥

सात्यकोऽपि महाराज शरजालं निहत्य तत् ।
द्रौणिमभ्यकिरत्तूर्णं शरजालैरनेकधा ॥५२॥

हे महाराज ! सात्यकि ने भी उस सारे बाण-जाल को काट गिराया और अनेक भांति से बाणसमूह छोड़ कर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बड़े वेग से आहत कर दिया ।।५२।।

तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा ।
विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ।।५३।।

शत्रु-विजयी शिनि-पुत्र सात्यकि, अश्वत्थामा को इस भांति सन्तप्त करने लगा, जैसे-मेघ जाल से निर्मुक्त सूर्य, संसार को सन्तप्त करता है ।।५३।।

शराणां च सहस्रेण पुनरेव समुद्यतः ।
सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः ।।५४।।

सात्यकि ने फिर सावधान होकर सहस्रों बाण छोड़े, जिनसे उसने अश्वत्थामा को ढ़क दिया । इसके अनन्तर वह बड़े वेग से गर्जना करने लगा ।।५४।।

दृष्ट्वा पुत्रं च तं ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम् ।
अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ।।५५।।

जब अपने पुत्र अश्वत्थामा को इस प्रकार विपत्ति में फंसा देखा, तो प्रतापवान् द्रोणाचार्य, शिनिपुत्र सात्यकि पर झपटा ।।५५।।

विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे ।
परीप्सन्स्वसुतं राजन्वार्ष्णेयेनाऽभिपीडितम् ।।५६।।

हे राजन् ! वृष्णिवंशोत्पन्न सात्यकि द्वारा अभिपीड़ित अपने पुत्र अश्वत्थामा की रक्षा के अभिप्राय से इस महारण में उसने अपने तीक्ष्ण बाण से सात्यकि को बींध दिया ॥५६॥

सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम् ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः ॥५७॥

सात्यकि ने भी अब रण में महारथी, गुरुपुत्र अश्वत्थामा को छोड़कर लोहमय तीक्ष्ण बीस बाणों से द्रोणाचार्य को आहत किया ॥५७॥

तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः ।
अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः ॥५८॥

इसके अनन्तर अपरिमितबलशाली, शत्रुतापी, कुन्ती-पुत्र अर्जुन, क्रोध में भर कर द्रोणाचार्य पर दौड़े ॥५८॥

ततो द्रोणश्च पार्थश्चसमेयेतां महामृधे ।
यथा बुधश्चशुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥५६॥

हे महाराज ! अब इस युद्ध में अर्जुन और द्रोण की मुठभेड़ इस प्रकार हो गई, जैसे-आकाश में बुध और शुक्र की हो जाती है ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषाभिमन्युयुद्धे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में अलम्बुष और अभिमन्यु के युद्ध का एकसौ एकवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एकसौ दोवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं द्रोणो महेष्वासः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
समीयतू रणे यत्तौ तावुभौ पुरुषर्षभौ ॥१॥

प्रियो हि पाण्डवो नित्यं भारद्वाजस्य धीमतः ।
आचार्यश्च रणे नित्यं प्रियः पार्थस्य सञ्जय ॥२॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! महाधनुर्धर द्रोण और पाण्डु-पुत्र अर्जुन, दोनों ही बड़े वीर थे। ये दोनों वीर बड़ी सावधानी से रण में एक दूसरे के सम्मुख हुए। अर्जुन तो बुद्धिमान् द्रोणाचार्य को बड़े ही प्रिय थे। ये ही अर्जुन के शस्त्रविद्या के आचार्य और अर्जुन के बड़ी श्रद्धा के पात्र थे ॥१-२॥

तावुभौ रथिनौ संख्ये हृष्टौ सिंहाविवोत्कटौ ।
कथं समीयतुर्यत्तौ भारद्वाजधनञ्जयौ ॥३॥

हे सञ्जय ! सिंह के तुल्य पराक्रमी ये दोनों महारथी, द्रोणा-चार्य और अर्जुन किस प्रकार बड़े आवेश में युद्ध में तत्पर हुए-यह सब मुझे सुनाओ ॥३॥

सञ्जय उवाच—

न द्रोणः समरे पार्थं जानीते प्रियमात्मनः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥४॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! युद्ध में द्रोणाचार्य, अर्जुन को अपना प्रिय नहीं समझते थे और न रण में अर्जुन ही अपने गुरु की प्रीति रखता था, क्योंकि युद्ध-धर्म ही बड़ा कठोर है । इसका इनको बड़ा ध्यान था ॥४॥

न क्षत्रिया रणे राजन्वर्जयन्ति परस्परम् ।
निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥५॥

हे राजन् ! क्षत्रिय, रण में किसी को नही छोड़ते हैं । ये तो मोह की मर्यादा को छोड़कर अपने भाई और पिताओं से भी युद्ध में लड़ जाते हैं ॥५॥

रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः ।
नाऽचिन्तयच्च तान्बाणान्पार्थचापच्युतान्युधि ॥६॥

हे भारत ! अर्जुन ने द्रोणाचार्य को तीन बाणों से आहत किया, परन्तु अर्जुन के धनुष से निकले हुए उन बाणों की भी द्रोणाचार्य ने कुछ अपेक्षा (परवा) नहीं की ॥६॥

शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे ।
स प्रजज्वाल रोषेण गहनेऽग्निरिवोर्जितः ॥७॥

अर्जुन ने फिर बाण-वर्षा करके रणभूमि में द्रोणाचार्य को आच्छादित कर दिया, इससे द्रोणाचार्य वन में अग्नि के सदृश, क्रोध से प्रज्वलित हो उठा ।।७।।

ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास राजेन्द्र न चिरादेव भारत ।।८।।

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! राजेन्द्र ! अब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को अपने झुकी पर्व वाले, बाणों से रणाङ्गण में बड़ी शीघ्रता से ढक दिया ।।८।।

ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
द्रोणस्य समरे राजन्पार्ष्णिग्रहणकारणात् ।।६।।

हे राजन् ! अब राजा दुर्योधन ने रण में राजा सुशर्मा को द्रोणाचार्य के पार्ष्णि-रक्षक बनने को आज्ञा दी ।।६।।

त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
छादयामास समरे पार्थं बाणैरयोमुखैः ।।१०।।

इधर त्रिगर्तराज भी बड़ा क्रुद्ध हो रहा था, इसने धनुष को खैंच कर लोहमय बाणों से रण में अर्जुन को आच्छादित करना आरम्भ किया ।।१०।।

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे ।
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ।।११।।

हे राजन् ! दोनों छोड़े हुए बाण, आकाश में ऐसे चमकने लगे, जैसे-शरत्काल में आकाश में हंस सुशोभित होते हैं ।।११।।

ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो ।
फलभारनतं यद्वत्स्वादुवृत्तं विहङ्गमाः ॥१२॥

हे प्रभो ! ये बाण जा २ कर अर्जुन के शरीर में लगने लगे, जैसे—फलों के भार से झुके हुए, स्वाद युक्त वृक्ष पर पक्षी टूट २ कर गिर रहे हों ॥१२॥

अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः ।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥१३॥

रथियों में श्रेष्ठ, अर्जुन ने रण में सिंहनाद करके पुत्र-सहित त्रिगर्तराज को क्षत-विक्षत कर दिया ॥१३॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
पार्थमेवाऽभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥१४॥
मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति ।

प्रलयकाल में काल द्वारा मारे हुए मनुष्य के तुल्य, ये त्रिगर्त राज के पुत्र, उलटे अर्जुन पर टूट पड़े और उन के रथ के ऊपर बाणों की झड़ी लगाने लगे ॥१४॥

शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षैः समन्ततः ॥१५॥
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाऽचलः ।

हे राजेन्द्र ! इस बाणवर्षा को अर्जुन भी अपनी बाणवर्षा से इस प्रकार सहने लगे, जैसे—पर्वत, जल-वृष्टि को सहता रहता है ॥१५॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥१६॥
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ॥१७॥

इस समय अर्जुन का बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा गया-जो उसने बहुत से योद्धाओं द्वारा छोड़ी हुई दुरासद बाणबर्षा को अकेला ही इस तरह छिन्न भिन्न करता रहा-जैसे वायु, मेघ गण को उड़ा कर फैंकती रहती है। अर्जुन के इस अद्भुत रण कौशल से देव और दानव सन्तुष्ट हो गए ॥१६-१७॥

कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः ।
अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान्प्रति भारत ॥१८॥
मुमोचाऽस्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ।

हे महाराज! इस समय अर्जुन, क्रोध में भरा हुआ था। इसने त्रिगर्तों के ऊपर सेना के सन्मुख वायव्यास्त्र का प्रयोग किया।

प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ॥१९॥
पातयन्वै तरुगणान्विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् ।

इस अस्त्र के प्रभाव से इतना वायु चला, कि जिससे आकाश क्षुभित हो उठा। इसने अनेक वृक्षसमूह उखाड़ फैंके और बहुत से सैनिकों का विनाश कर दिया ॥१९॥

ततो द्रोणोऽभिवीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ॥२०॥
शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह ।

हे महाराज। जब द्रोणाचार्य ने अत्यन्त दारुण वायव्यास्त्र का प्रयोग देखा-तो इन्होंने शैल नामक घोर अस्त्र का प्रयोग किया।

द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप ॥२१॥
प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश।

हे नराधिप। ज्योंही द्रोणाचार्य ने युद्धस्थल में इस अस्त्र का प्रयोग किया-त्योंही वायु शान्त हो गया और दशों दिशाएँ स्वच्छ हो गई ॥२१॥

ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ॥२२॥
निरुत्साहान्रणे चक्रे विमुखान्विपराक्रमान्।

अब पाण्डुसुत अर्जुन ने त्रिगर्तों के रथियों के समूह को रण में निरुत्साह, रणपराङ्मुख और पराक्रम हीन बना दिया।

ततो दुर्योधनश्चैव कृपश्चरथिनां वरः ॥२३॥
अश्वत्थामा तथा शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकः सह बाह्लिकैः ॥२४॥
महता रथवंशेन पार्थस्याऽवारयन्दिशः।

अब राजा दुर्योधन, रथिश्रेष्ठ कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, अवन्ती राजकुमार विन्दानुविन्द, तथा बाल्हिक वीरों के साथ बाल्हिकराज ने बड़ी भारी रथियों की सेना लेकर अर्जुन का मार्ग रोक दिया ॥२३-२४॥

तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्चमहाबलः ॥२५॥
गजानीकेन भीमस्य तावचारयतां दिशः।

इसी तरह राजा भगदत्त और महाबली श्रुतायुने, बड़ी भारी ज-सेना लेकर भीम का मार्ग जा घेरा ॥२५॥

भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते ॥२६॥
शरौघैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् ।

हे विशाम्पते ! भूरिश्रवा, शल और सुबलपुत्र शकुनि ने मकीले तीक्ष्ण बाण से माद्रीपुत्र नकुल सहदेव को जा रोका ।

भीष्मस्तु संहतः संख्ये धार्तराष्ट्रैः ससैनिकैः ॥२७॥
युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ।

भीष्म भी उस रण में सेनासहित अन्य धृतराष्ट्र-पुत्रों को कर राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचा और उसको जा घेरा ॥२७॥

आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ॥२८॥
लेलिहन्सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने ।

कुन्तीपुत्र वृकोदर भीम, तुम्हारी गजसेना को आती हुई देख र वन में सिंह की तरह अपने क्रोध से अपने ओष्ठ-प्रान्त ाटने लगा ॥२८॥

भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे ॥२९॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत् ।

इस महायुद्ध में भीष्म ने गदा उठाई और वह शीघ्रता-पूर्वक थ से कूद कर तुम्हारी सेना को भय-भीत करने लगा ॥२९॥

तमुद्वीच्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः ॥३०॥
परिवव्रूरणे यत्ता भीमसेनं समन्ततः ।
गजमध्यमनुप्राप्तः पाण्डवः स व्यराजत ॥३१॥
मेघजालस्य महतो यथा मध्यगतो रविः ।

गजारोही सेना ने भीमसेन को गदा हाथ में लेकर झपटते देखकर बड़ी सावधानी से उसको रण में चारों ओर से घेर लिया। गजसेना के मध्य में पाण्डु-पुत्र भीमसेन इस भांति सुशोभित होने लगा; जैसे बहुत मेघजाल के मध्य में फंसा हुआ सूर्य होता है ॥३१॥

व्यधमत्स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः ॥३२॥
महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव सन्ततम् ।

यह पाण्डव वीर, इस गजसेना को अपनी गदा से इस तरह छिन्न भिन्न करने लगा, जैसे, बहुत से मेघ-जाल को अच्छी तरह वायु नष्ट कर डालता है ॥३२॥

ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः ॥३३॥
आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव ।

जब बलवान् भीम द्वारा हाथी सेना पीड़ित की गई-तो वह इस प्रकार आर्तनाद करने लगा, जैसे मेघ-समूह गर्जना कर रहा हो ॥३३॥

बहुधा दारितश्चैव विषाणैस्तत्र दन्तिभिः ॥३४॥
फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि ।

हाथियों ने अपने दांतों से अनेक स्थानों पर भीमसेन को चीर फाड़ दिया, जिससे वह रणाङ्गण में खिले हुए अशोक वृक्ष की सी शोभा धारण कर रहा था ॥३४॥

विषाणे दन्तिनं गृह्य निर्विषाणमथाऽकरोत् ॥३५॥
विषाणेन च तेनैव कुम्भेऽस्याहत्य दन्तिनम् ।
पातयामास समरे दण्डहस्त इवाऽन्तकः ॥३६॥

भीमसेन, हाथी के दांत पकड़ कर उनको उखाड़ लेता था और हाथी को दांत विहीन कर देता था। इसी दांत से वह हाथी के मस्तक में प्रहार करके दण्ड धारी यम की भांति हाथी को रणभूमि में गिरा देता था ॥३५-३६॥

शोणिताक्तां गदां बिभ्रन्मेदोमज्जाकृतच्छविः ।
कृताभ्यङ्गः शोणितेन रुद्रवत्प्रत्यदृश्यत ॥३७॥

भीमसेन, स्वयं मेद मज्जा आदि से लिप्त हो रहा था और रक्त में भीगी हुई गदा धारण किये हुए थे रक्त में लिप्त हुआ यह भीम इस समय रुद्र के समान भयङ्कर मूर्तिमान् दिखाई देता था।

एवं ते वध्यमानाश्च हतशेषा महागजाः ।
प्राद्रवन्त दिशो राजन्विमृद्नन्तः स्वकं बलम् ॥३८॥

हे राजन् ! इस प्रकार भीमसेन ने हाथी मार २ कर बिछा दिए। अब जो मारने से हाथी बचे हुए थे, वे अपनी ही सेना को कुचलते हुए दिशाओं को भाग निकले ॥३८॥

द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥३६॥

हे भरतर्षभ ! चारों ओर भागते हुए हाथियों की गड़बड़ से फिर दुर्योधन की सारी सेना युद्ध से पराङ्मुख हो उठी ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमपराक्रमे द्व्यधिक शततमोऽध्यायः ॥१०२॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीम के पराक्रम का एक सौ दोवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एकसौ तीनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

मध्यन्दिने महाराज संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सौमकैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! दोपहर दिन चढ़ने पर भीष्म का क्षत्रिय वीरों के साथ लोक का विनाशकारी महाभयङ्कर संग्राम होने लगा ॥१॥

गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२॥

महारथियों में उत्तम गङ्गापुत्र भीष्म ने सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में बाण छोड़ कर पाण्डवों की सेना का विध्वंस उड़ा दिया ॥२॥

संममर्द च तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥३॥

हे राजन् ! तुम्हारे पिता देवव्रत ने पाण्डवों की सेना का इस प्रकार चूर्ण कर दिया, जैसे कटी हुई अन्न की ढ़ेरी को वृषभ समूह मर्दन कर डालता है ॥३॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा ।
भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम् ॥४॥

सेनापति धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विराट और द्रुपद, रण में महारथी भीष्म के सामने पड़ कर उस पर बाणों से प्रहार करने लगे ॥४॥

धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा विराटं च शरैस्त्रिभिः ।
द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत ॥५॥

हे भारत ! भीष्म ने भी तीन बाण छोड़ कर तथा धृष्टद्युम्न और विराट को आहत करके फिर राजा द्रुपद पर तीक्ष्ण बाण छोड़ा ॥५॥

तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा ।
चुक्रुधुः समरे राजन्पदस्पृष्टा इवोरगाः ॥६॥

हे राजन्! शत्रु-नाशक भीष्म द्वारा बींधे गए ये महाधनुर्धर पैर से कुचले हुए सर्प की भांति कुपित हो उठे ॥६॥

शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम् ।
स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नाऽस्मै प्राहरदच्युतः ॥७॥

भरतवंश के पितामह भीष्म को शिखण्डी ने बहुत आहत किया, क्योंकि दृढ़ प्रतिज्ञाधारी भीष्म ने इसे स्त्री समझ कर इस पर प्रहार नहीं किया ॥७॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधेनाऽग्निरिव ज्वलन् ।
पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽऽर्पयत् ॥८॥

धृष्टद्युम्न भी रण में इतना कुपित हो उठा, कि अग्नि की भांति प्रज्वलित हो गया। इसने भीष्म पितामह की बाहु और छाती में तीस बाण मारे ॥८॥

द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः ।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याध सायकैः ॥९॥

राजा द्रुपद ने भी पच्चीस बाण छोड़ कर भीष्म को क्षतविक्षत कर दिया। विराटराज ने दश बाण और शिखण्डी ने पच्चीस बाण मार कर भीष्म को आहत किया ॥९॥

सोऽतिविद्धो महाराज शोणितौघपरिप्लुतः ।
वसन्ते पुष्पशबलो रक्ताशोक इवाऽऽबभौ ॥१०॥

हे महाराज ! इस प्रकार इन महारथियों द्वारा अत्यन्त बिद्ध होकर रक्त प्रवाह से आहत हुए भीष्म पुष्पों से चित्र विचित्र रक्त अशोक वृक्ष की भांति सुशोभित होने लगे ॥१०॥

तान्प्रत्यविध्यद्गाङ्गेयस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ॥११॥

हे आर्य ! गङ्गापुत्र भीष्म ने भी उनको तीन २ बाण मार कर घायल कर दिया और एक बाण से राजा द्रुपद का धनुष काट डाला ॥११॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः सुशितै रणमूर्धनि ॥१२॥

राजा द्रुपद ने दूसरा धनुष उठाया और इससे पांच बाण छोड़ कर भीष्म को और तीन तीखे बाणों से उसके सारथि को बींध दिया ॥१२॥

तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः ॥१३॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥१४॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर भीम, द्रौपदी के पांच पुत्र, पांच केकय राजकुमार, यदुवशंज सात्यकि, राजा युधिष्ठर और धृष्टद्युम्न आदि महारथि, गङ्गापुत्र भीष्म पर झपटे । ये पञ्चाल राजकुमार शिखण्डी की रक्षा करना चाह रहे थे ॥१३-१४॥

तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः ।
प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप ॥१५॥

हे नराधिप ! इसी प्रकार तुम्हारे महारथी भी अपनी २ सेना लेकर भीष्म की रक्षा के निमित्त पाण्डवों की सेना पर झपटे ॥१५॥

तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तव तेषां च संकुलम् ।
नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥१६॥

अब नर, अश्व, रथ और हाथियों का घोर युद्ध, तुम्हारे और पाण्डवों की सेना में होने लगा, जो यम के राज्य की वृद्धि करने वाला था ॥१६॥

रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद्यमसादनम् ।
तथेतरान्समासाद्य नरनागाश्वसादिनः ॥१७॥

इस समय रथी, रथी के पास पहुंच कर उसको यमराज के घर पहुंचा रहा था । यही दशा पैदल सैनिक, हाथी और अश्वों के सवारों की थी । वे भी एक दूसरे के पास पहुंच कर एक दूसरे को परस्पर मृत्यु के घाट उतार रहे थे ॥१७॥

अनयन्परलोकाय शरैः सन्नतपर्वभिः ।
शरैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशाम्पते ॥१८॥

हे विशाम्पते ! झुकी पर्व वाले बाण तथा अन्य भांति के अनेक घोर शस्त्रों से जहां तहां वीर, एक दूसरे को परलोक का अतिथि बना रहे थे ॥१८॥

रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा ।
विप्रद्रुताश्च समरे दिशो जग्मुः समन्ततः ॥१६॥

रथी वीर, रथ और सारथियों से विहीन हो चुके थे, इससे रण से भाग निकले और जिधर मन चाहा-उसी दिशा को चल दिये ॥१६॥

मृद्नन्तस्ते नरान्राजन्हयांश्च सुबहून्रणे ।
वातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः ॥२०॥

हे राजन् ! इन वीरों के रथों ने बहुत से वीर और अश्व कुचल दिए तथा ये वायु के समान वेग वाले होकर आकाश ही आकाश में गन्धर्व नगर की भांति उड़ रहे थे ॥२०॥

रथिनश्च रथैर्हीना वर्मिणस्तेजसा युताः ।
कुण्डलोष्णीषिणः सर्वे निष्काङ्गदविभूषणाः ॥२१॥
देवपुत्रसमाः सर्वे शौर्ये शक्रसमा युधि ।
ऋद्ध्या वैश्रवणंचाऽति नयेन च बृहस्पतिम् ॥२२॥
सर्वलोकेश्वराः शूरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।
विप्रदुता व्यदृश्यन्त प्राकृता इव मानवाः ॥२३॥

हे विशाम्पते ! कवच धारण किये हुए, तेज से युक्त, कुण्डल और उत्तम २ पगड़ी पहने हुए, अङ्गद नामक भूषणधारी, पराक्रम में देवपुत्र और युद्ध में इन्द्रके तुल्य वैभव में कुबेर का अतिक्रमण कर जाने वाले, नीति में बृहस्पति से अधिक, अनेक

प्रदेशों के अधिपति शूर--वीर, बहुत से महारथी, रथ विहीन होकर साधारण मनुष्यों की भांति भागते दिखाई दे रहे थे ।।

दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि निपेतुः सर्वशब्दगाः।।२४।।

हे नरश्रेष्ठ ! अपने सवारों से स्वतन्त्र हुए हाथी, अपनी ही सेना को कुचल रहे थे और शब्द करते हुए इधर उधर भागते थे।

चर्मभिश्चामरैश्चित्रैः पताकाभिश्च मारिष ।
छत्रैः सितैर्हेमदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः ।।२५।।
विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश ।
नवमेघप्रतीकाशा जलदोपमनिःस्वनाः ।।२६।।

हे आर्य ! ढ़ाल, विचित्र चंवर, पताका, श्वेतच्छत्र, सुवर्ण के दण्डों से युक्त सुन्दर २ चंवर, चारों ओर विखरे पड़े थे और इन्हीं के ऊपर हाथी भागे चले जा रहे थे इनके आकार नवीन मेघ के सदृश और इनकी चिंघाड़ मेघ गर्जना के तुल्य थी ।।

तथैव दन्तिभिर्हीना गजरोहा विशाम्पते ।
प्रधावन्तोऽन्वदृश्यन्त तव तेषां च संकुले ।।२७।।

हे विशाम्पते ! इसी तरह हाथियों से विहीन हुए गजारोही वीर, तुम्हारी और पाण्डवो की सेना में दौड़ते दिखाई दे रहे थे ।।२७।

नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान्हेमभूषितान् ।
वातायमानानद्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः ।।२८।।

अनेक देश के उत्पन्न हुए, सुवर्ण भूषित, वायुके समान वेग धारी सैकड़ों हज़ारों की संख्या में मैंने भागते हुए अश्व देखे थे ॥२८॥

अश्वारोहान्हतैरश्वैगृ हीतासीन्समन्ततः ।
द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे ॥२६॥

अपने अश्वों के मारे जाने से अश्वारोही वीर, खड्ग हाथ में लेकर रण में चारों ओर भागे जा रहे थे तथा अश्वों को भी भाग जाने की प्रेरणा कर रहे थे ॥२६॥

गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे ।
ययौ प्रमृद्य तरसा पादातान्वाजिनस्तथा ॥३०॥

मदोद्धत्त हाथी, महा-युद्ध में भागते हुए हाथी को वेग से गिराकर और उसे कुचल कर तथा अन्य अनेक पैदल सैनिकों और अश्वों का मर्दन करके भागा जा रहा था ॥३०॥

तथैव च रथान्राजन्प्रममर्द रणे गजः ।
रथाश्चैव समासा ततांस्तुरगान्भुवि ॥३१॥
व्यमृद्नन्समरे राजंस्तुरगाश्च नरान्रणे ।

हे राजन् ! इस हाथी ने अनेक रथों का चूरा कर दिया और रथों ने भी पृथिवी में पड़े हुए बहुत से अश्वों का कीचरा निकाल दिया तथा अश्वों ने भी अनेक मनुष्यों को कुचल डाला ॥३१॥

एवं ते बहुधा राजन्प्रत्यमृद्नन्परस्परम् ।।३२।।
तस्मिन्रौद्रे तथा युद्धे वर्तमाने महाभये ।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।।३३।।

हे राजन्! इस भयङ्कर घोर युद्ध में सेना के अश्वादि अङ्ग एक दूसरे को इसी तरह कुचल रहे थे, जिससे आंतों की तरङ्गों वाली रक्त की नदी बह निकली ।।३२-३३।।

अस्थिसङ्घातसम्बाधा केशशैवलशाद्वला ।
रथह्रदा शरावर्ता हयमीना दुरासदा ।।३४।।
शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला ।
कवचोष्णीषफेनौघा धनुर्वेगासिकच्छपा ।।३५।।
पताकाध्वजवृक्षाढ्या मर्त्यकूलापहारिणी ।
क्रव्यादहंससङ्कीर्णा यमराष्ट्रविवर्धनी ।।३६।।

यह नदी, अस्थि रूपी पर्वत खण्डों से रुकावट वाली, केशों के शैवाल और शाद्वलों (दूर्वा) से युक्त, रथों के सरोवर, बाणों के भँवर और अश्व रूपी मत्स्यों से बड़ी ही दुरासद (दुर्गम) थी। यह वीरों के मस्तक रूपी पत्थर खण्डों से व्याप्त, हस्ती रूपी ग्राहों से समन्वित, कवच और पगड़ी रूपी फेनों (झागों) से सुशोभित, धनुष के प्रवाह और खड्गों के कछुओं से समन्वित थी। पताका और ध्वजा रूपी वृक्षों से सुसम्पन्न, मनुष्य रूपी तटों के गिराने वाली। मांसभोज पक्षियों से हंसादि पक्षी युक्त, एवं यमराज्य के बढ़ाने वाली थी ।।३४-३६।।

तां नदीं क्षत्रियाः शूरा रथनागहयप्लवैः ।
प्रतेरुर्बहवो राजन्भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥३७॥

इस नदी को बहुत से महारथी शूरवीर क्षत्रिय, रथ हाथी और अश्व रूपी नौका से भय को छोड़ कर पार कर रहे थे ॥३७॥

अपोवाह रणे भीरून्कश्मलेनाभिसंवृतान् ।
यथा वैतरणी प्रेतान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥३८॥

जो कायरता से युक्त, डरपोक पुरुष थे, उनको यह नदी इस तरह बहा ले जा रही थी, जैसे वैतरणी नदी मृतकों को यमराज की नगरी की ओर बहा ले जाती है ॥३८॥

प्राक्रोशन्क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद्वैशसं महत् ।
दुर्योधनापराधेन गच्छन्ति क्षत्रियाः क्षयम् ॥३९॥

इस महान् मार काट को देख कर सारे क्षत्रिय यही कोलाहल कर रहे थे, कि दुर्योधन के दोष से यह सारा क्षत्रिय-समाज नष्ट हो रहा है ॥३९॥

गुणवत्सु कथं द्वेषं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
कृतवान्पाण्डुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥४०॥

राजा धृतराष्ट्र भी गुणसम्पन्न पाण्डवों से न जाने क्यों द्वेष करता है। वह भी पापात्मा और लोभ से आक्रान्त ही दिखाई देता है ॥४०॥

एवं बहुविधा वाचः श्रूयन्ते स्म परस्परम् ।
पाण्डव-स्तव-संयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः ॥४१॥

हे राजन्! इस प्रकार परस्पर अनेक बातें सुनी जा रही थी, जिनमें पाण्डवों की प्रशंसा और तुम्हारे पुत्रों की दारुण निन्दा थी।

ता निशम्य ततो वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥४२॥
भीष्मं द्रोणं कृपं चैव शल्यं चोवाच भारत।
युध्यध्वमनहङ्काराः किं चिरं कुरुथेति च ॥४३॥

हे भारत! सारे योद्धाओं की इस ढंग की बातें सुन कर भी सब संसार का अपराध करने वाला तुम्हारा पुत्र, राजा दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य से कहने लगा, कि तुम अहङ्कार छोड़ कर युद्ध करो; देर क्यों कर रहे हो ॥४२-४३॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह।
अक्षद्यूतकृतं राजन्सुघोरं वैशसं तदा ॥४४॥

हे राजन! अब जुआ से प्रवृत्त हुआ, घोर नाशकारी, कौरवों का युद्ध पाण्डवों के साथ होने लगा ॥४४॥

यत्पुरा न निगृह्णासि वार्यमाणो महात्मभिः।
वैचित्रवीर्य तस्येदं फलं पश्य सुदारुणम् ॥४५॥

हे विचित्रवीर्य के पुत्र! राजन्! तुमको प्रथम बड़े २ महात्माओं ने रोका और तुम ने कुछ भी नहीं माना, अब उसका यह दारुण फल तुमको भोगना पड़ रहा है ॥४५॥

न हि पाण्डुसुता राजन्ससैन्याः सपदानुगाः।
रक्षन्ति समरे प्राणान्कौरवा वापि संयुगे ॥४६॥

एतस्मात्कारणाद्घोरो वर्तते स्वजनक्षयः ।
दैवाद्वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्नृप ॥४७॥

हे राजन् ! न तो पाण्डव ही अपनी सेना और अनुचरों के साथ रण में प्राणों की रक्षा करते हैं और न तुम्हारे पुत्र कौरव ही युद्ध में अपने प्राणों की अपेक्षा (परवाह) रखते हैं, इसी कारण से यह बन्धु बान्धवों का विनाश रूप घोर युद्ध खड़ा हो गया है । हे पुरुषव्याघ्र ! महीपते ! इसका कारण या तो दैव है या तुम्हारी कुटिल नीति--है यह मानना पड़ेगा ॥४६-४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्र्यधिक-शततमोऽध्यायः ॥१०३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घोर युद्ध का एकसौ तीनवां अध्याय समाप्त हो गया ।

एकसौ चारवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अर्जुनस्तान्नरव्याघ्रः सुशर्मानुचरान्नृपान् ।
अनयत्प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! नरप्रवीर अर्जुन ने राजा सुशर्मा के साथी राजाओं को अपने तीक्ष्ण बाणों से प्रेतराजपुरी को भेज दिया ॥१॥

सुशर्माऽपि ततो बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे ।
वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः ॥२॥

राजा सुशर्मा ने भी सत्तर बाणों से श्रीकृष्ण और नव्वे बाणों से अर्जुन को आहत कर दिया ॥२॥

तं निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः ।
सुशर्मणो रणे योधान्प्राहिणोद्यमसादनम् ॥३॥

इन्द्रपुत्र, महारथी अर्जुन ने अपने बाणसमूह से रण में राजा सुशर्मा के वीरों को यमराज के घर भेज दिया ॥३॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
व्यद्रवन्त रणे राजन्भये जाते महारथाः ॥४॥

प्रलयकाल में कालान्तक के तुल्य, अर्जुन द्वारा मारे हुए, सुशर्मा के महारथी, रण में भाग खड़े हुए, क्योंकि उनको बड़ा ही भय खड़ा हुआ दिखाई देने लगा ॥४॥

उत्सृज्य तुरगान्केचिद्रथान्केचिच्च मारिष ।
गजानन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥५॥

हे आर्य ! कोई वीर, अश्व, कोई रथ तथा कोई हाथियों को छोड़ कर दशों दिशाओं को भाग निकले ॥५॥

अपरे तु तदाऽऽदाय वाजिनागरथान्रणे ।
त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशाम्पते ॥६॥

हे विशाम्पते ! कुछ वीर, अपने २ अश्व, हाथी और रथों को लेकर बड़ी शीघ्रता से रणभूमि से भागे ॥६॥

पादाताश्चाऽपि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे ।
निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥७॥

हे भारते ! इस महायुद्ध में पैदल सैनिक भी अपने २ शस्त्रों को छोड़ कर किसी बात की इच्छा न रखते हुए केवल भागे चले जाते थे ॥७॥

वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा ।
तथाऽन्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥८॥

त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा नृपों द्वारा भागती हुई सेना का बहुत प्रकार से रोकने का उपाय किया गया, परन्तु वह रुक नहीं सकी ॥८॥

तद्बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः ॥९॥

सर्वोद्योगेन महता धनञ्जयमुपाद्रवत ।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते ॥१०॥

हे विशाम्पते ! जब इस सेना को भागती हुई तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने देखी--तो वह रण में भीष्म को आगे करके और स्वयं भी सारी सेना के आगे होकर बड़े उद्योग से अर्जुन पर झपटा, क्योंकि यह त्रिगर्ताधिपति राजा सुशर्मा की प्राण रक्षा करना चाहता था ॥९-१०॥

स एकः समरे तस्थौ किरन्बहुविधान्शरान् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः शेषा हि प्रद्रुता नराः ॥११॥

राजा दुर्योधन ही अपने भाइयों के साथ बाण-वर्षा करता हुआ रणाङ्गण में डटा रहा, किन्तु अन्य सारे सैनिक भाग गये ।

तथैव पाण्डवा राजन्सर्वोद्योगेन दंशिताः ।
प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत ॥१२॥

हे राजन् ! इसी तरह सारे पाण्डव भी सब प्रकार से सुसन्नद्ध होकर अर्जुन की रक्षा के लिए वहीं पहुंचे, जहां भीष्म पितामह युद्ध कर रहे थे ॥१२॥

ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः ।
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥१३॥

गाण्डीवधारी अर्जुन के घोर पराक्रम को जानते हुए पाण्डव वीरों ने उत्साह में गर्जना करते हुए सब ओर से भीष्म को घेर लिया ॥१३॥

ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१४॥

अब तालध्वजाधारी शूरवीर भीष्म ने रण में झुकी पर्व वाले, अपने तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की सेना का ढकना आरम्भ किया ।

एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः ।
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥१५॥

हे महाराज ! इस समय सूर्य मध्य आकाश में पहुंचा हुआ था। अब सारे कौरव वीर इकट्ठे होकर पाण्डवों के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हुए ॥१५॥

सात्यकिः कृतवर्माणं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥१६॥

महारथी सात्यकि ने पांच बाण छोड़ कर कृतवर्मा को घायल कर दिया और रण में सहस्रों की संख्या में बाण फैंकता हुआ, सात्यकि, बड़े उत्साह से रण में डटा रहा ॥१६॥

तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चाऽस्य पञ्चभिः

इसी तरह राजा द्रुपद ने पिचहत्तर तीक्ष्ण बाण छोड़कर द्रोणाचार्य और इसके सारथि को बींध डाला ॥१७॥

भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीकं प्रपितामहम् ।
विध्वा नदन्महानादं शार्दूल इव कानने ॥१८॥

भीमसेन भी, पितामह बाह्लीकराज को आहत करके वन में सिंह के सदृश गर्जना करने लगे ॥१८॥

आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः ।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥१९॥
चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम् ।

चित्रसेन ने अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को बहुत से बाणों से क्षत-विक्षत कर दिया, परन्तु यह वीर, सहस्रों की संख्या में बाण फैंकता हुआ रण में अचल खड़ा रहा। अभिमन्यु ने भी तीन बाण छोड़कर बहुत गहरे आघात से चित्रसेन को पीड़ित कर दिया॥

समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ॥२०॥
यथा दिवि महाघोरौ राजन्बुधशनैश्चरौ।

हे राजन्! ये दोनों विशाल शरीरधारी वीर, युद्ध में एक दूसरे के सन्मुख हुए, इस तरह सुशोभित होने लगे, जैसे--आकाश में महाघोर, बुध और शनैश्चर ग्रह सुशोभित होते हैं॥२०॥

तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः ॥२१॥
ननाद बलवन्नादं सौभद्रः परवीरहाः।

शत्रुविजयी, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, नौ बाण छोड कर एवं चित्रसेन के चारों अश्व और सारथि को मार कर गर्जना करने लगा॥२१॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः॥२२॥
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते।

हे विशाम्पते! अब अश्व मर गए-तो अश्व-विहीन रथ से शीघ्र कूद कर महारथी चित्रसेन, झटपट दुर्मुख के रथ पर चढ़ गया॥२२॥

द्रोणश्च द्रुपदं भित्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२३॥
सारथिं चाऽस्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी।

पराक्रमी द्रोणाचार्य ने सन्नत-पर्व-वाले बाणों से राजा द्रुपद को बींध कर बड़े वेग से इसके सारथि को भी बींध डाला ॥२३॥

पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे ॥२४॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।

इस आघात से पीड़ित हुआ राजा द्रुपद, सेना के सन्मुख ही अपने वेगशील अश्वों के द्वारा द्रोणाचार्य के सामने से हट गया, क्योंकि इसको द्रोण के पूर्व वैर का स्मरण था ॥२४॥

भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम् ॥२५॥
व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ॥२६॥

भीमसेन ने भी, थोड़ी ही देर में बाल्हीकराज को अश्व, सारथि और रथ से हीन कर दिया और इस दृश्य को सारी कौरव-सेना खड़ी २ देखती रही । हे महाराज ! बाल्हीकराज बहुत घबरा गया और अपने प्राणोंको संकट में फँसे समझने लगा।

अवप्लुत्य ततो वाहाद्बाह्लीकः पुरुषोत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे ॥२७॥

पुरुष-प्रवीर बाल्हीकराज, अपने वाहन अश्व से कूद कर इस भीषण रण में बड़ी शीघ्रता से लक्ष्मण के रथ पर चढ़ गया ॥२७॥

सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे ।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम् ॥२८॥

हे राजन ! सात्यकि भी इस रण में कृतवर्मा को रोक कर अनेक भांति के बाणों को छोड़ता हुआ वह भीष्म पितामह के समीप पहुंचा ॥२८॥

स विद्ध्वा भारतं षष्ट्या निशितैर्लोमवाहिभिः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे विधुन्वानो महद्धनुः ॥२९॥

इसने भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म पितामह को लोमधारी साठ बाण छोड़ कर बींध लिया। यह रथ के मध्य में नृत्य सा कर रहा था और विशाल धनुष को बड़ी तीव्रता से चला रहा था ॥२९॥

तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाऽथ पितामहः ।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥३०॥

भीष्म पितामह ने सात्यकि के ऊपर नागिन के सदृश भीष्म, लोहनिर्मित, सुवर्णजटित, बड़े वेगवाली महाशक्ति को फैंका ॥

तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम् ।
व्यंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः ॥३१॥

मृत्यु स्वरूपिणी, अत्यन्त दुर्जय, इस महाशक्ति को एक दम आती देख कर वृष्णिवंशश्रेष्ठ, महायशस्वी, सात्यकि ने बड़े लाघव (फ़ुर्ती) से उसे छिन्न भिन्न कर दिया ॥३१॥

अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा ।
न्यपतद्धरणीपृष्ठे महोल्केव महाप्रभा ॥३२॥

यह अत्यन्त दारुण, महाशक्ति, वृष्णिवंशोत्पन्न सात्यकि तक पहुंची भी नहीं; कि अत्यन्त प्रकाशमान, उलकापात की भांति भूतल में गिर गई ॥३२॥

वार्ष्णेयस्तु ततो राजन्स्वां शक्तिं कनकप्रभाम् ।
वेगवद्गृह्य चिक्षेप पितामहरथं प्रति ॥३३॥

हे राजन ! सात्यकि ने भी अपनी सुवर्णोज्ज्वल शक्ति उठाई और बड़े वेग के साथ इसे भीष्म पितामह के रथ पर फैंका ॥३३॥

वार्ष्णेयभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ॥३४॥

वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि के भुजाओं के वेग से फैंकी हुई वह शक्ति, रण में बड़े वेग के साथ मुमुर्षु मनुष्य पर काल-रात्रि के तुल्य भीष्म पर लपकी ॥३४॥

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारतः ।
क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां सा व्यशीर्यत मेदिनीम् ॥

इसको आती देखकर क्षुरोपम तीक्ष्ण बाणों से भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म ने एक दम उसके दो टुकड़े कर डाले, यह छिन्न भिन्न होकर पृथिवी पर गिर गई ॥३५॥

छित्वा शक्तिं तु गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्छत्रुकर्शनः ॥३६॥

शत्रु विजयी गङ्गा-पुत्र भीष्म ने, इस शक्ति को खण्डित करके हँसते २ सात्यकि के हृदय में नौ बाण बड़े आवेश में आकर मारे॥

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
परिवव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात् ॥३७॥

हे पाण्डुपूर्वज ! धृतराष्ट्र ! अब रथ, हाथी और अश्वों से युक्त पाण्डव, सात्यकि की रक्षा के निमित्त वहां आ धमके और भीष्म को घेर कर खड़े हो गए ॥३७॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च समरे विजयैषिणाम् ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि वार्ष्णेययुद्धे चतुरधिक-शततमोऽध्यायः ॥१०४॥

इस युद्ध में एक दूसरे के जीतने के अभिलाषी, कौरव और पाण्डवों में अब बड़ा लोमहर्षण, घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥३८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सात्यकि के युद्ध का एकसौ चारवां अध्याय समाप्त हुआ

एकसौ पाचवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम् ।
यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम् ॥१॥
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत ।

सञ्जय बोले—हे महाराज ! राजा दुर्योधन, क्रोध में भरे हुए भीष्म को रण में पाण्डव वीरों से वर्षा-काल में मेघों द्वारा आकाश में सूर्य की भांति घिरा हुआ देखकर दुःशासन से कहने लगे ॥१॥

एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शूरनिषूदनः ॥२॥
छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः ॥३॥

हे भरतर्षभ ! यह शत्रुनाशक, महाधनुर्धर, शूरवीर, भीष्म को बलवान पाण्डवों ने चारों ओर से घेर लिया है। हे वीर ! इस महावीर की तुमको रक्षा करनी चाहिए ॥२-३॥

रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः ।
निहन्यात्समरे यत्तान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ॥४॥
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः ॥५॥

स भवान्सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम् ।
समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु ॥६॥

पितामह भीष्म की यदि रक्षा होती रही-तो ये सुरक्षित हुए, पाण्डवों के साथ, बड़े रण कुशल पञ्चालों को भी रण में मार गिरावेंगे, इससे मैं तो सब से आवश्यक कार्य भीष्म की रक्षा करना ही समझता हूं । ये महाव्रतधारी, धनुष धारण करने वालों में श्रेष्ठ और हमारे बड़े ही रक्षक हैं। अब आप सारी सेना लेकर भीष्म पितामह को रक्षा निमित्त घेर लो; क्योंकि रण में दुष्कर कर्म कर दिखाने वाले भीष्म पितामह की रक्षा करना सबसे प्रथम कार्य है ॥४-६॥

स एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ॥७॥

राजा दुर्योधन का इतना कहना था, कि तुम्हारा पुत्र दुःशासन, बड़ी भारी सेना लेकर रण में भीष्म को रक्षार्थ घेर कर खड़ा हो गया ॥७॥

ततः शतसहस्राणां हयानां सुबलात्मजः ।
विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥८॥

दर्पितानां सुवेशानां बलस्थानां पताकिनाम् ।
शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥९॥

नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम् ।
न्यवारयन्नरश्रेष्ठान्परिवार्य समन्ततः ॥१०॥

अब सुबलपुत्र शकुनि ने, चमकते हुए प्रास हाथ में धारण करने वाले, ऋष्टि तोमर आदि शस्त्रधारी, बल के घमण्ड में भरे हुए, ध्वजाधारी, युद्ध विद्या में कुशल, शिक्षित, वीर सवारों से युक्त, सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में अश्वों को लेकर पाण्डुपुत्र नरश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव को सब ओर से घेर कर वहीं रोक लिया ।।८-१०।।

ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम् ।
अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे ।।११।।

अब राजा दुर्योधन ने भी, पाण्डवों को यहां से हटा देने के लिए, शूरवीर दश सहस्र अश्वारोहियों की सेना भेजी ।।११।।

तैः प्रविष्टैर्महावेगैर्गरुत्मद्भिरिवाऽऽहवे ।
खुराहता धरा राजंश्चकम्पे च ननाद च ।।१२।।

हे राजन ! जब ये अश्वारोही, गरुड़ के समान वेग से रण भूमि में प्रविष्ट हुए-तो इनके खुरों से आहत हुई भूमि, काँपने और शब्द सा करने लगी ।।१२।।

खुरशब्दश्च सुमहान्वाजिनां शुश्रुवे तदा ।
महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ।।१३।।

पर्वत पर खड़े हुए बांसों के महावन के जलने के समय जैसा शब्द होता है, इसी तरह अब अश्वों के खुरों से ध्वनि उठ रही थी ।।१३।।

उत्पतद्भिश्च तैस्तत्र समुद्भूतं महद्रजः ।
दिवाकररथं प्राप्य च्छादयामास भास्करम् ॥१४॥

इस समय इन अश्वों के खुरों के आघात से इतनी धूली उठी, कि जिसने सूर्य मण्डल में पहुंच कर सूर्य के रथ को जा ढका ॥१४॥

वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभिता पाण्डवी चमूः ।
निपतद्भिर्महावेगैर्हंसैरिव महत्सरः ॥१५॥
ह्रेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ।

कूद २ कर पड़ने वाले हंसों से जैसे-सरोवर सुशोभित हो उठता है, उसी तरह महावेग शील इन अश्वों के आक्रमण से सारी पाण्डव सेना, व्याकुल हो उठी इस समय अश्वों की हिनहिनाहट इतनी तीव्र हो रही थी, जिसके आगे कुछ भी सुनाई नहीं देता था।

ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥१६॥
प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम् ।
उद्वृत्तस्य महाराज प्रावृट्कालेऽतिपूर्यतः ॥१७॥
पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः ।

हे महाराज ! अब राजा युधिष्ठिर, और पाण्डव, माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव, बड़े वेग पूर्वक अश्वारोहियों के वेग को इस तरह रोकने लगे जैसे-पूर्णमासी को उछलते हुए, वर्षाकाल में अत्यन्त भरे हुए समुद्र के जल के वेग को समुद्र की वेला रोक लेती है ॥१६-१७॥

ततस्ते रथिनो राजञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१८॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि शरेण हयसादिनाम् ।

हे राजन् ! अब धर्मराज आदि महारथी, अपने सन्नत पर्व वाले बाणों से अश्वारोहियों के मस्तकों को काट २ कर गिराने लगे ॥१८॥

ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥१९॥
नागैरिव महानागा यथावद्गिरिगह्वरे ।

हे महाराज ! दृढ़ धनुषधारी, पाण्डवों द्वारा आहत किये हुए अश्वारोही, इस तरह गिरने लगे; जैसे पर्वत की कन्दरा में हाथी, दूसरे हाथियों को गिरा देते हैं ॥१९॥

तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२०॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ।

हे राजन् ! ये अश्वारोही भी, अपने प्रास और झुकी पर्व वाले, तीक्ष्ण बाणों से दशों दिशाओं में घूम २ कर सैनिकों के शिर उतारने लगे ॥२०॥

अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥२१॥
अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः ।

हे भरतर्षभ ! ऋष्टि आदि शस्त्रों से आहत हुए अश्वारोहियों के शरीर से मस्तक, वृक्षों से बड़े २ फलों की भांति नीचे गिरने लगे।

ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निषूदिताः ॥२२॥
पतिताः पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।

हे राजन् ! जहां देखो-वहीं पर रण भूमि में अश्वारोहियों के साथ मारे हुए अश्व, गिरते और गिराये जाते दृष्टि गोचर आते थे ॥२२॥

वध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः ॥२३॥
यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ।

वीरों द्वारा मारे हुए अश्व, भयातुर होकर सिंह को पाकर प्राण बचाने को भागते हुए मृगों के तुल्य, रण में इधर उधर दिखाई देते थे ॥२३॥

पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महामृधे ॥२४॥
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे ।

हे महाराज ! इस तरह पाण्डव, अपने शत्रुओं को इस महा युद्ध में जीत कर शंख और भेरी आदि बाजे बजाने लगे ॥२४॥

ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम् ॥२५॥
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः ।

हे भरतश्रेष्ठ ! अपनी अश्व सेना को छिन्न भिन्न देखकर उदास हुआ राजा दुर्योधन, मद्रराज शल्य से यह वचन बोला ॥

एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे ॥२६॥
पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो ।

हे महाबाहो ! यह पाण्डवों का बड़ा भ्राता युधिष्ठिर, अपने भाई नकुल और सहदेव के साथ, तुम्हारे देखते २ मेरी सेना को छिन्न भिन्न कर रहा है ॥२६॥

तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम् ॥२७॥
त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः ।

हे महाबाहो ! अब तुम ही धर्मराज को समुद्र की बेला के समान रोको, क्योंकि तुम अपरिमित-बलशाली हो-यह बात सारे जगत् में सुनी जाती है ॥२७॥

पुत्रस्य तव तद्वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान् ॥२८॥
स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः ।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के ये वचन सुनकर प्रतापी मद्रराज शल्य, रथसमूह लेकर वहीं पहुंचे, जहां पर राजा युधिष्ठिर युद्ध कर रहे थे ॥२८॥

तदाऽऽपतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्बलम् ॥२९॥
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ।

इस प्रकार अचानक जलप्रवाहवत् शल्य की सेना को आती हुई देखकर धर्मराज ने अपनी शक्ति से रण में उसे वहीं रोक दिया ॥२९॥

मद्रराजं च समरे धर्मराजो महारथः ॥३०॥
दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे ।
नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्मगैः ॥३१॥

महारथी राजा युधिष्ठिर ने मद्रराज शल्य के रण में सामने आते ही उसकी छाती में दश बाण बड़े तीखे मारे तथा नकुल और सहदेव ने भी सात २ बाण शल्य पर छोड़े ॥३०-३१॥

मद्रराजोऽपि तान्सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः ।
युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः ॥३२॥
माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ।

मद्रराज ने भी तीन २ बाण छोड़कर इन सारे महावीरों को आहत कर दिया और राजा युधिष्ठिर पर साठ बाण फैंक कर उसको भी घायल कर दिया माद्रीपुत्र, नकुल सहदेव पर दो दो बाण छोड़े ॥३२॥

ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥३३॥
मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरममित्रजित् ॥३४॥

अब इस महायुद्ध में महाबाहु भीम; धर्मराज को फंसा हुआ देखकर मद्रराज शल्य के रथ के पास पहुंचा। इस के पहुंचने से मद्रराज शल्य की मृत्यु के मुख में पहुंचे हुए मनुष्य की सी गति होगई। अब यह शत्रु विजयी भीम, रण में धर्मराज के पास तक पहुंच गया ॥३३-३४॥

ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

जब पश्चिम दिशा में सूर्य पहुंच कर अस्त होने के निकट था, इसी समय दोनों सेना का महाघोर, अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा ॥३५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में शल्य और धर्मराज के युद्ध का एकसौ पाचवां अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौ छवां अध्याय

सञ्जय उवाच

ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः।
आजघ्नान रणे पार्थान्सहसेनान्समन्ततः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! अब आपके पिता भीष्म, क्रोध में भरे हुए थे। इन्होंने तीक्ष्ण बाण छोड़ २ कर सब ओर पाण्डव सेना का विध्वंस करना आरम्भ किया ॥१॥

भीमं द्वादशभिर्विध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः।
नकुलं च त्रिभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥२॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत्।
धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा ननाद सुमहाबलः ॥३॥

इन्होंने भीम को बारह, सात्यकि को नौ, नकुलको तीन, सहदेव को सात बाण मारे और राजा युधिष्ठिर की भुजा और छाती में बारह बाणों का प्रहार किया तथा धृष्टद्युम्न को बींध कर बड़ी भारी गर्जना की ॥२-३॥

तं द्वादशाख्यैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः ।

धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥४॥

युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत्पितामहम् ।

भीष्म पितामह को भी नकुल ने बारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर; भीमसेन ने सात और धर्मराज ने बारह बाण मार कर आहत किया ॥४॥

द्रोणस्तु सात्यकिं विध्वा भीमसेनमविध्यत ॥५॥

एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः

तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥६॥

तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् ।

द्रोणचार्य ने सात्यकि को बींध कर भीमसेन को बींधा । इनके द्रोणचार्य के पांच २ यमदण्ड के सदृश तीक्ष्ण बाण आकर लगे । इन दोनों ने भी तीन २ सीधे बाण, ब्राह्मण वीर द्रोणचार्य के इस ढंग से मारे, जैसे-तोत्र नामक शस्त्र से मदोन्मत्त हाथी को मारा हो ॥५-६॥

सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥७॥

अभिषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।

संग्रामे नाऽजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥८॥

सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति आदि नानादेश और कुल के क्षत्रियों को

भीष्म ने बड़े तीखे बाणों से आहत किया, परन्तु वे संग्राम से तनिक भी नहीं हटे ॥७-८॥

तथैवाऽन्ये महीपाला नानादेशसमागताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ॥९॥
तथैव पाण्डवा राजन्परिवव्रुः पितामहम् ।

हे राजन ! इसी तरह अनेक देशों से आये हुए तुम्हारे पक्ष के राजाओं ने भी, अनेक प्रकार के शस्त्र हाथ में लेकर पाण्डवों पर आक्रमण किया, परन्तु पाण्डवों ने भीष्म पितामह का घेरा उसी तरह रखा- हटाया नहीं ॥९॥

स समन्तात्परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥१०॥
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन्परान् ।

रथसमूह से सब ओर से घिरा हुआ भी, किसी से पराजित नहीं होने वाले भीष्म, वन में फैंकी हुई अग्नि की भांति सारे शत्रुओं को भस्म करने लगे ॥१०॥

रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ॥११॥
शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान् ।

रथ रूपी अग्निगृह, धनुष रूपी अर्चि (लपट), खड्ग, शक्ति और गदा आदि इन्धन, बाण रूपी चिनगारी के साथ, भीष्म रूपी अग्नि, क्षत्रिय रूप हवि को भस्म करने लगा ॥११॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ॥१२॥
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् ।

सुवर्ण के मूल वाले, गृध्र पक्षी के पंखों से युक्त, तीक्ष्ण कर्ण, नालीक और नाराच आदि बाणों से भीष्म ने पाण्डव सेना को पाट दिया ॥१२॥

अपातयद् ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥१३॥
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ।

इसने अपने तीक्ष्ण बाणों से सारे रथियों की ध्वजाएँ काट २ कर गिरा दी, जिससे रथों का समूह ऐसा दिखाई पड़ता था, जैसे-वन के ताल वृक्षों को ऊपर काट छांट दिया हो ॥१३॥

निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे ॥१४॥
अकरोत्स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

हे राजन् ! समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाबाहु, भीष्म ने रथ, गज और अश्वों को उनके ऊपर चढ़ने वाले वीर मनुष्यों से विहीन कर दिया था ॥१४॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥१५॥
निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत ।

हे भारत ! भीष्म के वज्र फटने के तुल्य भीषण धनुर्ध्वनि को सुन कर सारे प्राणी एकदम कांप उठते थे ॥१५॥

अमोघा ह्यपतन्बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ॥१६॥
नाऽसज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः ।

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पिता भीष्म के छोड़े हुए बाण, निष्फल नहीं जाते थे। भीष्म के धनुष से निकले हुए बाण, कवचों में भी नहीं रुकते थे ॥१६॥

हतवीरान्रथान्राजन्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ॥१७॥
अपश्याम महाराज ह्रियमाणान्रणाजिरे।

हे महाराज ! वेगशील अश्वों से युक्त, रथियों के मारे जाने से विहीन, रथों को अश्व, रणाङ्गण में लिए फिरते थे ॥१७॥

चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश ॥१८॥
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः।
अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥१९॥
संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम्।
निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः ॥२०॥

चेदि, काशी, करूष देश के चौदह हजार, क्षत्रिय-कुल-भूषण, शरीर का मोह नहीं करने वाले महारथी वीर थे। ये सारे युद्ध में पीठ नहीं दिखाते थे। इनकी शुद्ध सुवर्ण से मण्डित ध्वजाएँ थीं। ये सारे मुख खुले हुए काल के समान भीष्म की झपट में आये हुए, हाथी, रथ और अश्वों के साथ परलोक पधार गए ॥१८-२०॥

भग्नाक्षोपस्करान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत।
अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः ॥२१॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ, महाराज ! अनेक रथों के अक्ष (आगे की कील) आदि अङ्ग चकना चूर हो गए। बहुत से रथों के पहिए टूट गये। इस प्रकार के सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में रणभूमि में हमने रथ देखे थे।

सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः ।
शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशाम्पते ॥२२॥
गदाभिर्भिन्दिपालैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः ।
अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष ॥२३॥

हे विशाम्पते ! रथ के अवारणों के साथ सारे रथ, चकना चूर हो गए रथी गिर गए बाण, कवच, और पट्टिश, टूट गए; गदा, भिन्दिपाल, तीक्ष्ण बाण, रथ के नीचे का काष्ठ, तूणीर और चक्र–सब खण्डित दिखाई दे रहे थे ॥२२-२३॥

बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तलत्रैरंगुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥२४॥
चापैश्च बहुधा च्छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ।

भुजा, धनुष, खड्ग, कुण्डल सहित शिर, करताल त्राण, अङ्गलित्राण, ध्वजा और धनुष इतने छिन्न-भिन्न पड़े थे, जिनसे सारी रणभूमि व्याप्त हो रही थी ॥२४॥

हतारोहा गजा राजन्हयाश्च हयसादिनः ॥२५॥
न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः ।

हे राजन्! अनेक हाथी इस तरह के मरे पड़े थे, जिनके सवार प्रथम ही मर चुके थे। अश्व और अश्वारोही, सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में रणभूमि में मरे पड़े दिखाई दे रहे थे ॥२५॥

यतमानाश्च ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ॥२६॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।

भागते हुए महारथियों के रोकने की बहुत से वीर, चेष्टा कर रहे थे, परन्तु भीष्म के बाण से पीड़ित और भय-भीत वीरों के रोकने में कोई भी समर्थ नहीं होता था॥२६॥

महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥२७॥
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।

हे महाराज! महेन्द्र के समान पराक्रमी भीष्म से पीड़ित की हुई पाण्डवों की बड़ी भारी सेना भी भाग निकली और उसमें यह बड़ा अद्भुत था, कि कोई वीर भी साथ २ भागने का धैर्य भी नहीं रख सका था ॥२७॥

आविद्धरथनागाश्वं पतितध्वजसंकुलम् ॥२८॥
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।

रथ, हाथी और अश्व नष्ट भ्रष्ट हो चुके। ध्वजाओं के समूह कट कर गिर गए। पाण्डवों की सेना में हाहाकार मच गया और सारी सेना अचेतन हो गई। ॥२८॥

जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥२९॥
प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ।

इस युद्ध में पिता ने पुत्र और पुत्र ने पिता को मार डाला तथा अपने ही प्रिय मित्र को मित्र ने मार दिया, कुछ ऐसी दैव प्रेरणा हुई ॥२६॥

विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥३०॥
प्रकीर्य केशान्धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।

पाण्डवों के सैनिक, कवचों को फैंककर और बालों को बखेर कर जिधर देखो, उधर ही भागते दिखाई दे रहे थे ॥३०॥

तद्गोकुलऽमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकूबरम् ॥३१॥
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।

पाण्डवों की सेना के रथों के युगन्धर (जुए के धारण करने का अग्र काष्ठ) काष्ठ, छिन्न-भिन्न हो चुके थे और सेना, सिंह से भय भीत गोसमूह की तरह बिखर चुकी थी एवं जिधर देखो उधर सेना में हाहाकार मचा हुआ था ॥३१॥

प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥३२॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।

यदुवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण, इस तरह सेना को भागती देखकर अपना रथ रोक कर शत्रु-विजयी अर्जुन से कहने लगे ॥३२॥

अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः कांक्षितस्तव ॥३३॥
प्रहराऽस्मिन्नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।

हे पार्थ ! अब वह समय आ गया है, जिसकी तुम आकांक्षा करते थे। हे नरव्याघ्र ! इसी समय भीष्म पर प्रहार करो-अन्यथा भूल करने से पीछे पछताओगे ॥३३॥

यत्पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे ॥३४॥

विराटनगरे तात सञ्जयस्य समीपतः ।

भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ॥३५॥

सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति सङ्गरे ।

इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ॥३६॥

क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ।

हे प्रियवीर ! राजाओं के समाज में तुमने प्रथम विराट नगर में सञ्जय से कहा था, कि मैं भीष्म, द्रोण आदि सारे कौरवों के महारथियों का सेना सहित वध करके रहूंगा तथा जो वीर मेरे सन्मुख रण में आवेगा-मैं उसको मारे विना नहीं छोड़ूंगा । हे अरिन्दम ! कुन्तीपुत्र ! अब तुम उन अपने वाक्यों को सत्य करके दिखलाओ। तुमको क्षत्रिय धर्म का ध्यान होना चाहिए, इससे किसी भी चिन्ता को छोड़कर निर्भीक भाव से युद्ध करो ॥३४-३६॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥३७॥

अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।

श्रीकृष्ण के इतना कहने पर अर्जुन ने नीचामुख कर लिया और तीखी दृष्टि से देखने लगा। इसके अनन्तर राज्य-प्राप्ति की कामना को छोड़े हुए सा-अर्जुन, यह वचन बोला ॥३७॥

अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम् ॥३८॥
दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ।
चोदयाऽश्वान्यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥३६॥
पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् ।

हे कृष्ण ! अवध्य पुरुषों का वध करके नरक प्रदान करने वाला राज्य प्राप्त करना या वनवास में पड़े २ दुःख भोगते रहना, इनमें कौन सा पुण्य-कार्य है-मुझे इसका कुछ भी पता नहीं चलता है, परन्तु मैं तो आपका आज्ञाकारी हूं, आप जो कहेंगे, वही करूंगा। अब तुम अश्वों को वहीं ले चलो-जहाँ भीष्म युद्ध कर रहा है। मैं दुर्धर्ष, कुरुवंश के पितामह भीष्म को अभी मार गिराता हूं ॥३८-३६॥

स चाऽश्वान्रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ॥४०॥
यतो भीष्मस्ततो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ।

हे राजन् ! इतना सुन कर श्रीकृष्ण ने चांदी के तुल्य श्वेतवर्ण धारी, अश्वों को उधर ही चलाया, जिधर चकाचौंध करने वाले किरणधारी सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य भीष्म युद्ध कर रहा था ॥४०॥

ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ॥४१॥
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ।

अब महाबाहु अर्जुन को रण में भीष्म से युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर राजा युधिष्ठिर की विशाल सेना भी लौट पड़ी ।।४१।।

ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ।।४२।।
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ।

अब कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म ने बार २ सिंहनाद किया और अर्जुन के रथ को बड़े वेग से बाण-वर्षा करके ढक दिया ।।४२।।

क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ।।४३।।
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ।

हे भारत ! थोड़ी ही देर में अर्जुन का सारथि और अश्वों के सहित रथ, इस महान् बाण-वर्षा से अलक्षित हो गया ।।४३।।

वासुदेवस्त्वसम्भ्रातो धैर्यमास्थाय सत्वरः ।।४४।।
चोदयामास तानश्वान्विनुन्नान्भीष्मसायकैः ।

इस समय भी श्रीकृष्ण, कुछ नहीं घबराए और धैर्य-पूर्वक शीघ्रता से भीष्म के बाणों द्वारा व्यथित अश्वों को हांकते ही रहे ।

ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ।।४५।।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा शितैः शरैः ।

अब अर्जुन ने भी मेघवत् गम्भीर ध्वनि करने वाला दिव्य धनुष को उठाया और उससे तीक्ष्ण बाण छोड़ कर भीष्म का धनुष काट गिराया ।।४५।।

सच्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ॥४६॥
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ।

हे राजन् ! जब तुम्हारे पिता भीष्म का धनुष कट गया-तो उन्होंने क्षण मात्र में ही दूसरा धनुष उठा कर सुसज्जित कर लिया।

चकर्ष च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥४७॥
अथाऽस्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ।

यह धनुष मेघ के समान नाद करने वाला था। भीष्म पितामह ने अपनी दोनों भुजाओं का बल लगा कर इसको चढ़ाया, परन्तु क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने इसे भी काट गिराया ॥४७॥

तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ॥४८॥
गाङ्गेयस्त्वब्रवीत्पार्थं धन्विश्रेष्ठमरिन्दम ।

अर्जुन के इस लाघव (फ़ुर्ती) की शान्तनु-पुत्र, भीष्म ने बड़ी प्रशंसा की। हे अरिन्दम ! इस समय धनुष--धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन से भीष्म पितामह कहने लगे ॥४८॥

साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥४९॥
समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
मुमोच समरे भीष्मः शरान्पार्थरथं प्रति ॥५०॥

हे महाबाहो ! कुन्ती-पुत्र ! तुमको धन्य है--इतना कह कर भीष्म पितामह ने फिर अन्य दृढ़ धनुष उठाया और वे अर्जुन के रथ पर रण में बाणों की झड़ी लगाने लगे ॥४९-५०॥

अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन् ॥५१॥

इस युद्ध में श्रीकृष्ण ने भी अश्व हांकने की अच्छी निपुणता दिखाई । ये रथ के अनेक मण्डल बनाकर भीष्म के बाणों को व्यर्थ करते रहे ॥५१॥

शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥५२॥

भीष्म के बाणों से क्षत-विक्षत हुए दोनों नर--वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन, विषाणों (सींगों) से आहत दो वृषभों (सांडों) के सदृश दिखाई देते थे ॥५२॥

वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ।
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥५३॥
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ।
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥५४॥
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ।
नाऽमृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥५५॥
उत्सृज्य रजतप्रख्यान्हयान्पार्थस्य मारिष ।
वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात् ॥५६॥

श्रीकृष्ण ने अब भी अर्जुन को मृदुता के साथ युद्ध करते देखा । यद्यपि इस समय भीष्म बड़ा प्रचण्ड हो रहा था और यह दोनों सेनाओं के मध्य में सूर्य के तुल्य देदीप्यमान था । इसने रण

में लगातार अर्जुन पर बाणों की झड़ी लगा दी। यह चुन चुन कर पाण्डवों की सेना के वीरों को मार रहा था। जब इस प्रकार राजा युधिष्ठिर की सेना में भीष्म ने प्रलय-काल उपस्थित कर दिया-तो शत्रु-नाशक, महाबाहु, वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण से यह नहीं सहा गया। हे आर्य-गुण-सम्पन्न! राजन्! इन्होंने रजत (चांदी) के सदृश शुक्ल वर्ण धारी अर्जुन के अश्वों की रश्मि (रास) को छोड़ दिया और ये कर्म योगी, अपने रथ से कूद पड़े ॥५३-५६॥

अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली।
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥५७॥

इनके हाथ में कोई शस्त्र नहीं था, केवल अश्वों के चलाने का प्रतोद(चाबुक) मात्र था, परन्तु ये महाबली सिंह की भाँति बार २ गर्जना करके भीष्म पर टूट पड़े ॥५७॥

दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः।
क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥५८॥
ग्रसन्त इव चेतांसि तावकानां महाहवे।

जगत् में परम वैभवशाली, अमित कान्तिधारी श्रीकृष्ण की क्रोध से आंखें लाल हो रही थीं। ये अपने चरणों के वेग से पृथिवी को चीर से रहे थे और भीष्म का वध कर देना चाहते थे। इस महारण में इन्होंने तुम्हारे वीरों के चित्तों को निगल सा लिया।

दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यतमन्तिके ॥५९॥
हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत् ।
अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा ॥६०॥

भीष्म के समीप युद्ध की इच्छा से रण में आगे बढ़े हुए श्रीकृष्ण को देखकर सब वीर यही पुकारने लगे, कि अब भीष्म मारा गया, अब भीष्म मारा गया, हे महाराज ! जिधर देखो, उधर ही श्रीकृष्ण का भय छाया हुआ था और उपर्युक्त वचन ही सब ओर सुना जाता था ॥५९-६०॥

पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः ।
शुशुभे विद्रवन्भीष्मं विद्युन्माली यथाऽम्बुदः ॥६१॥

पीताम्बर धारी कौस्तुभ-नील-मणि से श्याम, श्रीकृष्ण, भीष्म पर झपटते हुए ऐसे प्रतीत हुए जैसे-विद्युत् से युक्त मेघ उमड़ रहा हो ॥६१॥

स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् ।
अभिदुद्राव वेगेन विनदन्यादवर्षभः ॥६२॥

यदुकुल भूषण श्रीकृष्ण सिंहनाद, करते हुए वेग से इस तरह भीष्म पर दौड़े, जैसे सिंह हाथी पर या यूथपति वृषभ दूसरे वृषभ पर झपटता है ॥६२॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे ।
असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद्धनुः ॥६३॥

कमलनेत्र श्रीकृष्ण को आक्रमण करता देखकर विना किसी घबराहट के भीष्म ने अपना विशाल धनुष खैंचा ॥६३॥

उवाच चैव गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥६४॥

भीष्म ने विना किसी व्याकुलता के श्रीकृष्ण से कहा--हे कमल-नयन ! आइए, आइए, हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है ॥६४॥

मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्याऽपि ममाऽनघ॥६५॥
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाऽद्य संयुगे ॥६६॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चाऽनघ ।

हे यदुवंशश्रेष्ठ ? कृष्ण ! इस समय रण में आपही मुझे मार गिराइए। हे अनघ ! देव ! आपने यदि संग्राम में मुझे मार लिया, तो जगत् में मेरा बड़ा ही कल्याण होगा। हे गोविन्द ! आज रण में आपके आक्रमण से मैं त्रिलोकी में आदर के योग्य हो गया हूं। हे अनघ ! आप अपनी इच्छानुसार प्रहार करें-मैं तो आपका दास हूं ॥६५-६६॥

अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ॥६७॥
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ।

श्रीकृष्ण के पीछे ही शीघ्रता से महाबाहु अर्जुन भागे चले आए और उन्होंने अपनी बाहुओं में श्रीकृष्ण को भरकर रोक लिया ॥ ६७ ॥

निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥६८॥
जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।

यद्यपि अर्जुन ने कमललोचन श्रीकृष्ण को अपनी भुजाओं से पकड़ लिया, तो भी पुरुष-प्रवीर श्रीकृष्ण, अर्जुन को घसीटते हुऐ बड़े वेग से आगे बढ़े चले गए ।।६८।।

पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ।।६९।।
निजग्राह हृषीकेशं कथञ्चिद्दशमे पदे ।

शत्रु विजयी अर्जुन ने अपने चरणों को बड़े बल से अड़ा कर हृषीकेश श्रीकृष्ण को दशवें चरण (कदम) पर जैसे तैसे रोका।

तत एवमुवाचाऽऽर्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ।।७०।।
निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः प्रणयात्सखा ।

क्रोध से आकुल नेत्र वाले, श्रीकृष्ण से प्रिय सखा, अर्जुन प्रेम पूर्वक बोले, जो इस घटना से बड़े ही व्याकुल हो रहे थे। इस समय श्रीकृष्ण सर्प की भांति क्रोध-पूर्ण श्वास ले रहे थे ।७०।

निवर्तस्व महाबाहो नाऽनृतं कर्तुमर्हसि ।।७१।।
यत्त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव ।
मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यन्ति माधव।।७२।।

हे महाबाहो ! तुम लौट चलो और अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग न करो। हे केशव ! आप तो प्रथम कह चुके हैं, कि मैं युद्ध नहीं करूंगा। हे माधव ! ऐसा करने से लोग तुमको मिथ्यावादी कहेंगे

ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम् ।
शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च ॥७३॥
अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन ।

हे केशव ! इस सारे युद्ध का भार तो मेरे ऊपर है। मैं सत्य और सुकृत की शपथ खाकर कहता हूं कि भीष्म पितामह का मैं अवश्य वध करूंगा। हे शत्रुमर्दन, में वही यत्न करूंगा, जिससे शत्रुओं का अन्त हो सकेगा ॥७३॥

अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महारथम् ॥७४॥
तारापतिमिवाऽऽपूर्णमन्तकाले यदृच्छया ।

तुम आज ही दुर्धर्ष, महारथी भीष्म को प्रलय काल में अचानक पूर्ण चन्द्रमा की भांति रण भूमि में गिरा हुआ देख लोगे ॥

माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः ॥७५॥
न किञ्चिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः ।

श्रीकृष्ण, महावीर अर्जुन के ये वचन सुनकर कुछ न बोले और क्रोध में भरे हुए फिर रथ पर चढ़ गए ॥७५॥

तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः ॥७६॥
ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाऽचलौ ।

अब दोनों नरवीर, श्रीकृष्ण और अर्जुन, फिर रथ पर चढ़ गए और भीष्म पितामह, दो पर्वतों पर मेघ के सदृश इन पर फिर बाणवर्षा करने लगे ।।७६।।

प्राणानादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तत्र ।।७७।।
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये ।

अब तुम्हारे पिता देवव्रत, पाण्डवों के वीरों के प्राणों को इस तरह खैंचने लगे जैसे-शीत काल के समाप्त हो जाने पर ग्रीष्मऋतु में सूर्य अपनी किरणों से सब वस्तुओं के तेज (रस) को खैंचता है ।

यथा कुरूणां सैन्यानि बभंजुर्युधि पाण्डवाः ।।७८।।
तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ।

जिस प्रकार कौरवों की सेना को युद्ध में पाण्डवों ने विनाश कर दिया, उसी तरह आज भीष्म ने पाण्डव सेना का विध्वंस उड़ा दिया ।।७८।।

हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ।।७६।।
निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
मध्यङ्गतमिवाऽऽदित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ।।८०।।

पाण्डवों की आहत और भागती हुई निरुत्साह पूर्ण, व्याकुल सेना अद्‌भुत-शक्ति-धारी भीष्म की ओर रण में देख भी नहीं सकती थी । भीष्म का तेज इस समय मध्यान्हकाल के सूर्य के सदृश प्रदीप्त हो रहा था ।।७६-८०।।

ते वध्यमाना भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः ।
कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुषविक्रमम् ॥८१॥

हे महाराज ! भीष्म द्वारा सैकड़ों हज़ारों की संख्या में आहत हुए पाण्डवों के भयातुर सैनिक रण में मनुष्यातिशायी कर्म करते हुए भीष्म को देख रहे थे ॥८१॥

वीक्षाश्चक्रुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ।
तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत ॥८२॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः पङ्कगता इव ।
पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्बला बलिना रणे ॥८३॥

हे भारत इस प्रकार पाण्डवों की सेना भाग खड़ी हुई और कीचड़ में फँसी हुई गौ के सदृश इस समय इसको कोई रक्षक दिखाई नहीं देता था । रण में बलवान् भीष्म द्वारा पाण्डव सेना क्षुद्र चींटियों की तरह कुचल डाली गई ॥८२-८३॥

महारथं भारतदुष्प्रकम्पं शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।
भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते शरार्चिषं सूर्यमिवाऽऽतपन्तम्

भरतवंशोद्भव, दुष्प्रधर्ष वीर, शरसमूह को छोड़ने वाले, पाण्डव पक्ष के राजाओं के संताप कारक, बाण-रूपी-किरणों से युक्त, प्रचण्ड सूर्य के सदृश तपते हुए भीष्म को, पाण्डव वीर, देखने में भी समर्थ नहीं हो सके ॥८४॥

विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेनामस्तं जगामाऽथ सहस्ररश्मिः।
ततो बलानां श्रमकर्शितानां मनोऽवहारं प्रति सम्बभूव ॥

इस प्रकार भीष्म, पाण्डव सेना को कुचल रहे थे, कि सहस्र किरण धारी सूर्य अस्त हो गया। इस समय श्रम से थकी हुई सेना का मन युद्ध की समाप्ति में तत्पर हुआ ॥८५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में नौवें दिन की युद्ध समाप्ति का एकसौ छःवां अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौ सातवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
सन्ध्या समभवद्घोरा नाऽपश्याम ततो रणम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा— राजन् ! इन योद्धाओं के युद्ध करते २ सूर्य अस्त हो गया। अब घोर सन्ध्या काल उपस्थित हुआ जिससे रण में कुछ भी नहीं दिखाई देता था ॥१॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां सन्दृश्य भारत ।
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥२॥
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम्।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥३॥
सोमकांश्च जितान्दृष्ट्वा निरुत्साहान्महारथान् ।
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ॥४॥

हे भारत ! राजा युधिष्ठिर ने सन्ध्याकाल तथा भीष्म द्वारा आहत की हुई, अस्त्रहीन, भयातुर, युद्ध पराङ् मुख, भागती हुई अपनी सेना एवं अपने महारथियों को पीड़ित करते हुए आवेश में भरे हुए भीष्म तथा पराजित, निरुत्साहसम्पन्न महारथी सोमक क्षत्रियों को देखकर और इस विषय पर बार२ विचार करके इस समय युद्ध का रोक देना ही अच्छा समझा ॥२-४॥

ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत्तदा ॥५॥

राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना को पीछे हट जाने की आज्ञा दी। इसी तरह तुम्हारे सेनापतियों ने भी तुम्हारी सेनाओं को पीछे हटाया ॥५॥

ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥६॥

हे कुरुश्रेष्ठ! दोनों ओर के महारथी अपनी २ सेनाओं को रोक कर संग्राम में क्षत-विक्षत हुए अपने २ शिबिरों में चले गए।

भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः।
नाऽलभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥७॥

अभी तक पाण्डव, रण में भीष्म के भीषण कर्म देखकर उनपर आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। भीष्म के बाण से पीड़ित पाण्डव सैनिकों को शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी ॥७॥

भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान्सहसृञ्जयान्।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥८॥

हे भारत! सृञ्जय क्षत्रियों के साथ पाण्डवों के जीने से तुम्हारे पुत्रों ने भीष्म की बड़ी पूजा और वन्दना की ॥८॥

न्यविशत्कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः।
ततो रात्रिः समभवत्सर्वभूतप्रमोहिनी ॥९॥

सब प्रकार से आल्हादित, कौरवों के साथ भीष्म अपनी सेना में गए। इसके अनन्तर सारे प्राणियों को मोहित कर देने वाली रात्रि हो गई ॥६॥

तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥१०॥

इस घोर रात्रि के आरम्भ में वृष्णियों के साथ दुराधर्ष सृञ्जय, मन्त्रणा करने बैठे ॥१०॥

आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः ।
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ॥११॥

महाबली, सारे सृञ्जय, समयानुकूल, अपना कल्याण सोचने लगे। ये सब प्रकार की चिन्ता से रहित और मन्त्रणा करने में कुशल थे ॥११॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे ॥१२॥

हे नृप ! राजा युधिष्ठिर ने बहुत समय मन्त्रणा में व्यतीत किया। अन्त में श्रीकृष्ण की ओर देखकर यह वचन कहा ॥१२॥

कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥१३॥

हे कृष्ण ! भीम पराक्रमी महावीर भीष्म को तुमने देखा, जो कमलवन को हाथी की भांति तेरी सेना को कुचल रहा है ॥१३॥

न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥१४॥

हम लोग-तो इस महावीर की ओर देख भी नहीं सकते हैं। यह वृद्धि को प्राप्त हुए अग्नि के सदृश सेनाओं को चाट रहा है ॥१४॥

यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः ।
तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान् ॥१५॥

जैसे-विष से भरा हुआ, महाघोर नागराज तक्षक सर्प होता है, वैसा ही प्रतापी, तीक्ष्ण शस्त्रधारी, रण में क्रोध करने वाला, भीष्म दिखाई दे रहा है ॥१५॥

गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन्निशितान्छरान् ।
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट् ॥१६॥
वरुणः पाशभृच्चाऽपि सगदो वा धनेश्वरः ।
न तु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥१७॥

धनुष धारण करके रण में तीक्ष्ण बाण छोड़ने वाला यमराज, वज्रपाणि इन्द्र, पाशधारी वरुण, गदाधारी कुबेर भी जीता जा सकता है, परन्तु रण में क्रुद्ध हुआ भीष्म नहीं जीता जा सकता है ॥१६-१७॥

सोहमेवं गते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे ।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे ॥१८॥

वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम् ।
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा ॥१६॥

हे कृष्ण ! मैं इस दशा में भीष्म को रण में देख कर शोक समुद्र में डूबा जा रहा हूं, क्योंकि मेरी बुद्धि बड़ी ही दुर्बल है। हे दुर्धर्ष ! अब तो मुझे फिर वन में चला जाना चाहिए, क्योंकि मेरे वन में चले जाने से ही सब का कल्याण है। हे कृष्ण, मुझे किसी भी तरह युद्ध अच्छा नहीं लगता, क्योंकि भीष्म तो हमारा सदा विनाश कर रहा है ॥१६॥

यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन् ।
एकतो मृत्युमभ्येति तथाऽहं भीष्ममीयिवान् ॥२०॥

प्रज्वलित अग्नि में जैसे-कीट पतङ्ग आक्रमण करते हैं और वे अवश्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वही दशा भीष्म के सन्मुख हमारी हो रही है ॥२०॥

क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः ॥२१॥

हे वृष्णिवंशश्रेष्ठ ! राज्य के कारण से ही यह पराक्रमी वीर, हमारा नाश कर रहा है। मेरे शूरवीर भ्राता भी बाणों से अत्यन्त ही क्षत-विक्षत हो रहे हैं ॥२१॥

मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यभ्रष्टा वनङ्गताः ।
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन ॥२२॥

हे मधुसूदन ! मेरे प्रेम से ही मेरे भाई मेरे साथ वन में गए और मेरे लिए ही द्रौपदी, यह सब कुछ क्लेश भोग रही है ॥२२॥

जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ।
जीवितस्याऽद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥२३॥

अब तो मैं प्राणों को बचा लेना भी बहुत समझता हूं परन्तु आज तो प्राण बचने भी कठिन हो रहे हैं। यदि कुछ जीवन शेष रहा-तो उसमें तप रूप उत्तम धर्म का आचरण करूंगा ॥२३॥

यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव ।
स्वधर्मस्याऽविरोधेन हितं व्याहर केशव ॥२४॥

हे केशव ! यदि तुम मेरे भाइयों के साथ मुझ पर अनुग्रह रखते हो, तो क्षत्रिय धर्म के अविरोधी किसी हितकारी धर्म का उपदेश करो ॥२४॥

एवं श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद्बहुविस्तरम् ।
प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥२५॥

राजा युधिष्ठिर के इस प्रकार करुणा पूर्ण विस्तृत वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहने लगे ॥२५॥

धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर ।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः ॥२६॥

हे सत्यप्रतिज्ञ ! धर्मराज ! तुम विषाद न करो, क्योंकि तुम्हारे भ्राता बड़े शूरवीर शत्रु-नाशक और बड़े दुर्जय हैं ॥२६॥

अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ ।
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ ॥२७॥

अर्जुन और भीमसेन तो वायु और अग्नि के तुल्य तेजधारी हैं तथा माद्रपुत्र नकुल और सहदेव भी, देवों के अधिपति इन्द्र के सदृश पराक्रमी हैं ॥२७॥

मां वा नियुंक्ष्व सौहार्दाद्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव ।
त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे ॥२८॥

हे धर्मराज! यदि ऐसा ही है, तो मुझे आज्ञा करो मैं भीष्मसे युद्ध करूंगा ! हे महाराज ! मित्रता को ध्यान में रख कर रण में तुम्हारे प्रेरित करने पर मैं क्या नही कर सकता हूं !॥२८॥

हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः॥२९॥

हे राजन् ! यदि अर्जुन, भीष्म के वध में आना-कानी करता है, तो मैं पुरुष-प्रवीर भीष्म को रण में ललकार कर सारे धृतराष्ट्र पुत्रों के देखते २ उसे मार गिराऊंगा ॥२९॥

यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव ।
हन्ताऽस्म्येकरथेनाऽद्य कुरुवृद्धं पितामहम् ॥३०॥

हे धर्मराज ! यदि तुम महावीर भीष्म के मार लेने पर ही विजय समझते हो-तो लो मैं अकेला आज ही कुरुवृद्ध भीष्म पितामह को मारे देता हूं ॥३०॥

पश्य मे विक्रमं राजन्महेन्द्रस्येव संयुगे ।
विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात् ॥३१॥

हे राजन् ! अब तुम रण में महेन्द्र के तुल्य मेरे पराक्रम को देखना, जो मैं महास्त्रों को छोड़ता हुआ भीष्म को रथ से गिरा दूंगा ॥३१॥

यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः ।
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते ॥३२॥

जो पाण्डवों का शत्रु है, वही मेरा भी शत्रु है, इसमें सन्देह नहीं है । जो तुम्हारे हित में प्रवृत्त हैं, वे मेरा ही हित कर रहे हैं और मेरे हितकारी तुम्हारे प्रिय ही हैं ॥३२॥

तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते ॥३३॥
एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् ।
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम् ॥३४॥
स मां नियुंक्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धाभ वाम्यहम् ।

तुम्हारा भ्राता अर्जुन मेरा मित्र सम्बन्धी और शिष्य है । हे महीपते ! अर्जुन के लिए तो मैं मांस काट कर भी दे सकता हूं । यह महावीर भी मेरे लिए प्राणों का परित्याग कर सकता है । हे तात ! हम दोनों की तो परस्पर यही प्रतिज्ञा है, कि विपत्ति पड़ने पर परस्पर एक दूसरे का उद्धार करें । हे राजेन्द्र ! अब तुम मुझे आज्ञा दो, जिससे मैं रण में युद्धकर्ता बन सकूं ॥३३॥

प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः ॥३५॥
घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य सन्निधौ ।
परिरक्ष्यमिदं तावद्वचः पार्थस्य धीमतः ॥३६॥
अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः ।
अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे ॥३७॥
स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम् ।

सारीराज सभा के सन्मुख उपप्लव्य नगर में अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी, कि "मैं भीष्म को मारूंगा" बुद्धिमान अर्जुन के इस वचन को पूरा करना है। अर्जुन ने रण में जो मेरा कार्य है, उसे करने की ही मुझे प्रेरणा की है–यह निःसन्देह सत्य है। इन सब कारणों से भीष्म के वध करने का भार तो अर्जुन पर ही आ पड़ा है। वही शत्रु-पर-विजयी भीष्म को रण में मार गिरावेगा।

अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ॥३८॥
त्रिदशान्वा समुद्युक्तान्सहितान्दैत्यदानवैः ।
निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥३९॥

यदि अर्जुन रण में कुछ करने पर उतारू हो गया-तो वह अशक्य बात को भी पूरी कर सकता है। हे नराधिप! यदि सारे इकट्ठे होकर दैत्य और दानवों के साथ देवता भी रण करने को समुद्यत होकर चले आवें-तो भी रण में अकेला अर्जुन उनका वध कर सकता है, फिर भीष्म की तो गणना ही क्या है॥३८-३९॥

विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः ।
भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नाऽवबुध्यते ॥४०॥

तुम्हारे विपरीत, महाशक्तिशाली, शान्तनु पुत्र भीष्म, मनस्विता छोड़ कर क्षुद्रता को धारण किये हुए हैं, जो वे इस समय अपने कर्तव्य को नहीं समझते हैं ॥४०॥

युधिष्ठिर उवाच—

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
सर्वे ह्येतेन पर्याप्तास्तव वेगविधारणे ॥४१॥

युधिष्ठिर बोले—हे महाबाहो ! माधव ! जो आप कह रहे हो, वह बिल्कुल सत्य है। कौरव पक्ष में आपके वेग को सह लेने वाला कोई भी वीर पर्याप्त नहीं दिखाई देता है ॥४१॥

नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद्यथेप्सितम् ।
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान्पक्षे व्यवस्थितः ॥४२॥

हे पुरुष-व्याघ्र ! यह भी निश्चय है, कि मैं अपने अभीष्ट मनोरथ को अवश्य प्राप्त करूँगा, क्योंकि आपके सदृश महापुरुष मेरे पक्ष में स्थित हैं ॥४२॥

सेन्द्रानपि रणे देवाञ्जयेयं जयतां वर।
त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथम् ॥४३॥

हे विजयी ! वीरों में श्रेष्ठ ! गोविन्द ! यदि आप हमारे सहायक रहें, तो हम इन्द्र-सहित देवों के जीतने में भी समर्थ हो सकेंगे, फिर महारथी भीष्म की तो गणना ही क्या है ॥४३॥

न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् ।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥४४॥

हे माधव ! यह सब कुछ ठीक है, परन्तु मैं तुमको भ्रष्ट-प्रतिज्ञ बनाना नहीं चाहता, क्योंकि हम भी तो कुछ अपना गौरव बचाना चाहते हैं। जो आपने कहा है, कि मैं विना युद्ध किये तुम्हारी सहायता करूँगा, आप वही करते जाइए ॥४४॥

समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे ।
मन्त्रयिष्ये तवाऽर्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥४५॥
दुर्योधनार्थं योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो ।

युद्ध के आरम्भ में भीष्म ने मुझसे प्रतिज्ञा की थी, मैं तुमको उचित मन्त्रणा आदि से सहायता पहुँचाता रहूंगा, परन्तु तुम्हारी ओर से युद्ध नहीं कर सकता। युद्ध तो मैं दुर्योधन की विजय के निमित्त ही करूँगा—यह बिलकुल सत्य है ॥४५॥

स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव ॥४६॥
तस्माद्देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः ।
भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥४७॥

हे माधव ! भीष्म मुझे राज्य दिलाने के पक्ष में हैं और इस के लिए वे उचित मन्त्रणा भी मुझे दे सकते हैं। हे मधुसूदन ! इन सब कारणों को ध्यान में रख कर भीष्म पितामह के पास हम आपको साथ लेकर चलें ॥४६-४७॥

तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम् ।
न चिरात्सर्वे वार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम् ॥४८॥

हे वार्ष्णेय ! अब हम सब इकट्ठे होकर नरश्रेष्ठ, भीष्म के पास चलें और इस विषय में कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म से ही प्रश्न करें ॥४८॥

स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्माञ्जनार्दन ।
यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्ताऽस्मि संयुगे ॥४९॥

हे जनार्दन ! भीष्म पितामह, अवश्य हमसे हमारे हितकारी सत्य वाक्य कहेंगे । हे कृष्ण ! जैसे भीष्म कहेंगे, हम फिर रण में वैसा ही कर दिखावेंगे ॥४९॥

स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः ।
बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम् ॥५०॥

यह दृढ़-प्रतिज्ञ, हमको हमारी विजय का अवश्य उपाय बतावेगा और इस विषय में अवश्य उचित मन्त्रणा देगा । हम पिता से विहीन बच्चे थे, तब उन्होंने पालन पोषण करके हमको बड़ा किया है, इससे उनकी हमारे ऊपर अत्यन्त प्रीति है।

तं चेत्पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव ।
पितुः पितरमिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥५१॥

माधव ! आज हम अपने ही वृद्ध पितामह को मार गिराना चाहते हैं, जो पिता का भी पिता और हमसे प्रेम करने वाला है, इससे इस कठिन क्षत्रिय धर्म को धिक्कार ही देना चाहिए ॥५१॥

सञ्जय उवाच—

ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम् ।
रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम् ॥५२॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इतना सुनकर वृष्णि-वंश-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने कुरुनन्दन युधिष्ठिर से कहा—हे महाप्राज्ञ ! राजेन्द्र ! मुझे आपका कथन उत्तम प्रतीत होता है ॥५२॥

देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ।
गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः ॥५३॥

देवव्रत भीष्म, बड़ा बलवान् है, जो देखने से भी भस्म करने में समर्थ है। अब उन गङ्गापुत्र भीष्म से ही उनके वध का उपाय पूछने चलना चाहिए ॥५३॥

वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः ।
ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम् ॥५४॥

भीष्म पितामह सत्य बोलने में प्रसिद्ध है, इस पर भी तुम्हारे प्रश्न करने-पर तो अवश्य सत्य उत्तर प्रदान करेंगे-इससे अब यही निश्चय है, कि हम सब लोगों को कुरुवंश के पितामह भीष्म से पूछने को चलना चाहिए ॥५४॥

गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत ।
स वो दास्यति मन्त्रं यं तेन योत्स्यामहे परान् ॥५५

हे-भारत ! शान्तनु-सुत, भीष्म के समीप पहुँचकर उनसे ही इस विषय में मन्त्रणा करें। वे महात्मा जो हमको सम्मति देंगे, हम उसी प्रकार शत्रुओं से युद्ध करेंगे ॥५५॥

एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम् ।
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥५६॥

पाण्डव-वीर इस प्रकार सोचकर, पाण्डु के पूर्वज भीष्म पितामह के पास सारे इकट्ठे ही चल दिए। इनके साथ, वीर्यवान्, वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण भी थे ॥५६॥

विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति ।
प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रणिपेदिरे ॥५७॥

सबने शस्त्र और कवच उतार रखे थे। अब ये भीष्म के शिविर में पहुँचे और वहां उन्होंने मस्तक भूमि में नवा कर भीष्म को प्रणाम किया ॥५७॥

पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभम् ।
प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥५८॥

हे महाराज ! इन पाण्डवों ने भरत-वंश-श्रेष्ठ-भीष्म का बहुत ही आदर प्रकट किया और मस्तक झुकाकर भीष्म की शरण में खड़े रहे ॥५८॥

तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनञ्जय ॥५९॥

स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ।
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम् ॥६०॥
सर्वात्मनाऽपि कर्तास्मि यदपि स्यात्सुदुष्करम् ।

इन सब को देखकर कुरु पितामह महाबाहु भीष्म बोले-हे वार्ष्णेय ! आपका स्वागत हो ! हे धनञ्जय ! धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! नकुल और सहदेव ! आपका स्वागत है । कहिए—कौन ऐसा आपका प्रीतिकारक कार्य है, जिसका मैं सम्पादन कर सकूं । वह कार्य कितना भी दुष्कर हो, सब तरह पूरा करने का प्रयत्न करूँगा ।

यथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ॥६१॥
उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः ।

जब गङ्गा-पुत्र, भीष्म ने प्रीतिपूर्वक बार २ यही वचन कहा, तो कातर हुए राजा युधिष्ठिर, प्रीति के साथ यह वचन बोला ॥६१॥

कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥६२॥
प्रजानां संशयो न स्यात्कथं तन्मे वद प्रभो।

हे सर्वज्ञ ! आप कृपा करके हमें बताइए, कि हमारी कैसे विजय हो सकती है और हमें कैसे राज्य मिल सकता है । हे प्रभो ! मेरी प्रजा को मेरे विषय में संशय न रहे, ऐसा कोई उपाय बताओ ॥६२॥

भवान्हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥६३॥
भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम् ।

अब तो आप ही अपने वध का हमें उपाय बताइये हे। वीर! आपको हम रण में कैसे सहन कर सकते हैं ॥६३॥

न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥६४॥
मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा।

हे कुरुपितामह! जब आप अपने धनुष का मण्डल बांध कर रण में प्रहार करने लगते हो, उस समय आप पर प्रहार करने का कोई भी अवसर नहीं आने देते हो ॥६४॥

आददानं सन्दधानं विकर्षन्तं धनुर्न च ॥६५॥
पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिवाऽपरम्।

हे महाबाहो! बाण को लेते, चढ़ाते और धनुष को खैंचते हुए आप दिखाई ही नहीं देते हो। आप तो रथ में दूसरे सूर्य की भांति असह्य होकर बैंठे रहते हो ॥६५॥

रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥६६॥
कोऽथवोत्सहते जेतुं त्वां पुमान्भरतर्षभ।

हे शत्रु-वीर-नाशक! भरतर्षभ! रथ, अश्व, नर, हाथियों के हनन कर्ता आपको रण में कौन पुरुष, जीतने में समर्थ हो सकता है ॥६६॥

वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥६७॥
क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम।

आपने रण में बाणों की झड़ी लगाकर बहुत ही मार-काट मचाई है, जिससे मेरी सेना का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो गया है ॥६७॥

यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम ॥६८॥

मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह ।

हे पितामह ! जिस तरह हम आपको जीत सकें और निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति कर सकें तथा सेना का कल्याण बना रहे, ऐसा कोई यत्न बताइए ॥६८॥

ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान्पाण्डुपूर्वजः ॥६९॥

न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे ।

जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥७०॥

राजा पाण्डु के पूर्वज, शान्तनु सुत, भीष्म, पाण्डवों से कहने लगे--हे कौन्तेय ! जब तक में जीता हूं, तब तक रण में तुम्हारी किसी प्रकार भी विजय नहीं हो सकती है, यह मैं तुम से सत्य कहता हूं और इसको तुम भी जानते हो ॥६९-७०॥

निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः ।

क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ॥७१॥

अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम् ।

हे पाण्डवों ! यदि रण में तुम लोगों ने मुझे जीत लिया, तो तुम्हारी विजय हो जावेगी । अब जो तुम विजय चाहते हो, तो

शीघ्रातिशीघ्र मेरे वध की चेष्टा करो । मैं तुमको उत्साहित करता हूं, कि तुम निःशङ्क होकर मुझ पर प्रहार करो ॥७१॥

एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥७२॥
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम् ।

मैं तो तुम्हारा इसी ढंग पर कार्य करने को उत्तम समझता हूं क्यों कि आप लोग मेरे निश्चय को अच्छी तरह जानते हैं । ज्योंही मेरा वध हुआ, कि सारी कौरव सेना नष्ट हो जावेगी, इस से तुम को यही प्रयत्न करना उचित है ॥७२॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥७३॥
भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।

राजा युधिष्ठिर ने कहा-हे महाबाहो ! आपतो युद्ध में दण्डधारी यमराज की भांति भीषण रूप धारण किए रहते हो, फिर क्रोध में भरे हुये आपको कौन जीत सकता है । हमें तो आपही कोई ऐसा उपाय बता दीजिए, जिससे युद्ध में विजय हो जावे ॥७३॥

शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ॥७४॥
न भवान्समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।

वज्रधारी इन्द्र को युद्ध में जीता जा सकता है या वरुण और यमराज पराजित किये जा सकते हैं, परन्तु इन्द्र के साथ सुर और असुर दोनों मिलकर भी आपको नहीं जीत सकते हैं ॥७४॥

भीष्म उवाच—

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ॥७५॥
नाऽहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ॥७६॥

भीष्म बोले–हे महाबाहो ! युधिष्ठिर ! यह जो तुमने कहा है, वह ठीक ही है, कि इन्द्र सहित सारे देव और दानव, रण में शस्त्र धारण किए हुये, धनुष धारी तथा सावधानी से युद्ध करने वाले मुझ को नहीं जीत सकते हैं। हे राजन् ! अब तो एक ही उपाय है, कि तुम्हारे महारथी मुझे तभी मार सकते हैं, जब मैं शस्त्र चलाना बन्द करदूं ॥७५-७६॥

ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः ।
निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥७७॥
द्रवमाणे च भीते च तवाऽस्मीति च वादिनि ।
स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रिणि ॥७८॥
अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ।

हे नृप ! मेरी यह प्रतिज्ञा है. कि मैं शस्त्र-त्यागी, पतित, कवच और ध्वजाहीन, कातर, भयभीत, "तुम्हारी शरण में प्राप्त हूं" इस प्रकार कहने वाले, स्त्री, स्त्रीनामधारो, अङ्गभङ्ग, इकलौते पुत्र, तथा नीच पुरुष से युद्ध नहीं करता हूं ॥७७-७८॥

इमं मे शृणु राजेन्द्र सङ्कल्पं पूर्वचिन्तितम् ॥७९॥
अमाङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कदाचन ।

हे राजेन्द्र! तुम मेरे पूर्व निश्चित सङ्कल्प को सुनो, कि मैं तो मङ्गलाचार से हीन ध्वजा को देख कर भी उस वीर से युद्ध नहीं करता हूं ॥७६॥

य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ॥८०॥

शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समितिञ्जयः ।

यथाऽभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात्पुंस्त्वं समागतः ॥८१॥

जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम् ।

हे राजन! तुम्हारी सेना में जो यह द्रुपदपुत्र, युद्ध-विजयी शूरवीर, युद्ध में कोप करने वाला, महारथी शिखण्डी है। यह प्रथम स्त्री था और फिर पुरुष हुआ है। इस सारे वृत्तान्त को तुम भी ठीक २ जानते हो ॥८१॥

अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥८२॥

मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः ।

अमाङ्गल्यध्वजे तस्मिन्स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ॥८३॥

न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथञ्चन ।

शूरवीर अर्जुन, रण में शिखण्डी को आगे करके बड़ी सावधानी से मुझ पर तीक्ष्ण शस्त्रों से प्रहार करे, शिखण्डी की ध्वजा भी मङ्गलाचार से रहित है और वह पूर्वकाल में स्त्री देहधारी था। मैं धनुष धारण करके इस पर कभी प्रहार नहीं कर सकता हूं ॥८२-८३॥

तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनञ्जयः ॥८४॥
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद्भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! इसके पृष्ठ भाग में छुपा हुआ, धनञ्जय अर्जुन, सब प्रकार से मुझ पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करे ॥८४॥

न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद्यः समुद्यतम् ॥८५॥
ऋते कृष्णान्महाभागात्पाण्डवाद्वा धनञ्जयात् ।

रण में वीरता के साथ युद्ध करते हुए मुझे मारने में महाभाग श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र, अर्जुन को छोड़कर कोई समर्थ नहीं है ॥८५॥

एष तस्मात्पुरोधाय कञ्चिदन्यं ममाऽग्रतः ॥८६॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।
मां पातयतु बीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम् ॥८७॥

यही अर्जुन, पूर्वोक्त प्रकार के किसी वीर को आगे करके शस्त्र और उत्तम धनुष धारण करके सावधानी से मुझ पर प्रहार करे। इस प्रकार अर्जुन ही रण में मुझे गिरा सकता है। तुम्हारी विजय का बस यही एक ढंग शेष है ॥८६-८७॥

एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत ।
संग्रामे धार्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान्समागतान् ॥८८॥

हे व्रतशील, कुन्तीपुत्र, युधिष्ठिर ! तुम यही करो और फिर रण में सन्मुख आते हुए सारे धृतराष्ट्र पुत्रों को मार लेना ॥८८॥

ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिबिरं प्रति ।
अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥८६॥

सञ्जय बोले-हे राजन् ! पाण्डव, यह सब कुछ जान कर और कुरुपितामह महात्मा भीष्म को प्रणाम करके अपने शिबिर में चले गए ॥८६॥

तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते ।
अर्जुनो दुःखसन्तप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥६०॥

गङ्गा-पुत्र भीष्म के इस प्रकार कहने और परलोक गमन के लिए उद्यत होने पर दुःखसन्तप्त अर्जुन, लज्जा पूर्वक यह वचन बोला ॥६०॥

सञ्जय उवाच—

गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता ।
पितामहेन संग्रामे कथं योद्धाऽस्मि माधव ॥६१॥

हे माधव ! मैं पूज्य, ज्ञाननिष्ठ, बुद्धिमान् भीष्म पितामह से रण में इस ढंग से कैसे लड़ सकता हूं ॥६१॥

क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः ।
पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥६२॥

हे वासुदेव ! महामनस्वी महात्मा भीष्म को अपने धूलिधूसर शरीर से बचपन में क्रीड़ा करते हुए मैंने मलिन किया है ॥६२॥

यस्याऽहमधिरुह्याऽङ्कं बालः किल गदाग्रज ।
तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥९३॥

हे गदाग्रज ! मैं जब बालक था, तब भीष्म की गोदी में चढ़ कर तात ! तात ! यह वचन कह चुका हूं, जो महात्मा मेरे पिता पाण्डु के भी पिता हैं ॥९३॥

नाऽहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत ।
इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स वध्यः कथं मया ॥९४॥

हे भारत ! जो प्रेम-पूर्वक मुझसे कहा करता था, कि मैं तेरे पिता का पिता नहीं, मैं तो तेरा ही पिता हूं, मैं उसको ही इस तरह कैसे मार सकता हूं ॥९४॥

कामं वध्यतु सैन्यं मे नाऽहं योत्स्ये महात्मना ।
जयो वाऽस्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥९५॥
(कथमस्मद्विधःकृष्ण जानन्धर्मं सनातनम् ।
न्यस्तशस्त्रे च वृद्धे च प्रहरेद्धि पितामहे ॥)

हे कृष्ण ! अब यदि भीष्म सेना का विध्वंस कर रहा है, तो करने दो-मैं तो महात्मा भीष्म से युद्ध कर नहीं सकता। इस दशा में विजय या मृत्यु कुछ भी हो-मुझे स्वीकार है। हे कृष्ण ! कहिए ? आपकी क्या इच्छा है। मुझ जैसा सनातन धर्म का जानने वाला पुरुष, शस्त्र त्याग कर युद्ध करने वाले, वृद्ध भीष्म पितामह से कैसे युद्ध कर सकता है ॥९५॥

वासुदेव उवाच—

प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे ।
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥९६॥

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! तुमने तो प्रथम प्रतिज्ञा की थी, कि मैं रण में भीष्म का वध करूंगा । हे पार्थ ! जब तुम क्षत्रु धर्म में स्थित हो-तो फिर इसका क्यों नहीं वध करते हो ॥९६॥

पातयैनं रथात्पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम् ।
नाऽहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति ॥९७॥

हे पार्थ ! अब इस युद्ध-दुर्मद क्षत्रिय-श्रेष्ठ भीष्म को रथ से रणभूमि में गिरा दो । यदि तुमने भीष्म को नहीं मार लिया, तो तुम्हारी युद्ध में विजय होनी भी असम्भव है ॥९७॥

दृष्टमेतत्पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम् ।
यद् दृष्टं हि पुरा पार्थ तत्तथा न तदन्यथा ॥९८॥

देवों ने यह देख लिया, कि भीष्म यमराज के घर के अतिथि होंगे । हे पार्थ ! जो देवों ने विचार पूर्वक देख लिया, वही होकर रहेगा, उसके विपरीत नहीं होगा ॥९८॥

न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
त्वदन्यः शक्नुयाद्योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम् ॥९९॥

भीष्म मुख फाड़े हुए काल के तुल्य बड़े दुराधर्ष हैं,-उनसे तुम्हारे अतिरिक्त वज्रधारी इन्द्र भी युद्ध करने को समर्थ नहीं है ।

जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम ।
यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः ॥१००॥

तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करके भीष्म का वध करो और मेरे इस वचन को ध्यान पूर्वक सुनो ! महाबुद्धिमान्, बृहस्पति ने पूर्व काल में इन्द्र से एक बात कही थी ॥१००॥

ज्यायांसमपि चेद्वृद्धं गुणैरपि समन्वितम् ।
आततायिनमायान्तं हन्याद्घातकमात्मनः ॥१०१॥

चाहे कोई प्रशंसनीय, वृद्ध और गुणों से समन्वित पुरुष हो, परन्तु यदि अपना घातक आततायी बन कर सन्मुख आवे तो उसको भी मार देना चाहिए ॥१०१॥

शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय ।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चाऽनसूयुभिः ॥१०२॥

हे धनञ्जय ! क्षत्रियों का युद्ध करना, प्रजा-पालन और यज्ञ करना-ये धर्म सदा से चले आए हैं । इनके करने से ही क्षत्रिय, संसार में प्रशंसा का पात्र बनता है ॥१०२॥

अर्जुन उवाच—

शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम् ।
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते ॥१०३॥

अर्जुन ने कहा-हे कृष्ण ! भीष्म के वध करने के लिए तो शिखण्डी उचित रहेगा, क्योंकि इस पाञ्चाल राजकुमार शिखण्डी को देखकर भीष्म इधर उधर हो जाता है ॥१०३॥

ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥१०४॥

अब हम, भीष्म के सन्मुख शिखण्डी को आगे कर भीष्म पितामह को उपाय से गिरा दें, यही मेरी इच्छा है ॥१०४॥

अहमन्यान्महेष्वासान्वारयिष्यामि सायकैः ।
शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं भीष्ममेवाऽभियोधयेत् ॥

मैं अपने बाणों से भीष्म के सहायक महारथियों को रोके रहूंगा, इस अन्तर में शिखण्डी, महारथियों में श्रेष्ठ, भीष्म से युद्ध करे ॥१०५॥

श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
कन्याऽह्येषा पुरा भूत्वा पुरुषः समपद्यत ॥१०६॥

कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म, शिखण्डी का वध नहीं करेंगे-यह सुना गया है, क्योंकि यह कन्या होकर फिर पुरुष बना है ॥१०६॥

इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः ।
अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥
शयनानि यथास्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः ॥१०७॥

श्रीकृष्ण के साथ इस प्रकार अपनी सम्मति निश्चित करके सारे पाण्डव, बड़े प्रसन्न हुए और इन्होंने अर्जुन के मत का बड़ा अनुमोदन किया। इसके अनन्तर सारे वीर, अपने २ शयन स्थानों को चले गए ॥१०७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसावहारोत्तरमन्त्रे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में पाण्डवों की मन्त्रण का एकसौ सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

एकसौ आठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यवर्तत संयुगे ।
पाण्डवांश्च कथं भीष्मस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! अब तुम यह बताओ, कि शिखण्डी किस तरह भीष्म के सन्मुख पहुंचा, और भीष्म ने किस भांति पाण्डवों का सामना (मुक़ाबिला) किया ॥१॥

सञ्जय उवाच—

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥२॥
ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥३॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अब सूर्य के उदय होने पर सारे पाण्डवों ने भेरी, मृदङ्ग, आनक (ढोल) और समुद्र के जल में उत्पन्न, दधि के समान श्वेत शंखों को बजाया और ये शिखण्डी को आगे करके युद्ध यात्रा के लिए चल पड़े ॥२-३॥

कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद्विशाम्पते ॥४॥

हे प्रजापालक ! महाराज ! पाण्डवों ने इस समय शत्रु निबर्हण नामक व्यूह बनाया और अपनी सेना के आगे शिखण्डी को रखा।

चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयौ ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान् ॥५॥
सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः ।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात्पञ्चालैरभिरक्षितः ॥६॥

इसके चक्र रक्षक, भीमसेन और अर्जुन थे, पृष्ठरक्षक द्रौपदी-पुत्र और वीर्यवान् अभिमन्यु थे। महारथी सात्यकि और चेकितान उसकी सहायता में खड़े थे। पञ्चालों के साथ सेनापति धृष्टद्युम्न पीछे से रक्षा कर रहे थे ॥५-६॥

तत युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयन्भरतर्षभ ॥७॥

हे भरतर्षभ ! अब राजा युधिष्ठिर, अपने दोनों भाई नकुल और सहदेव को साथ लेकर सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े ॥७॥

विराटस्तु ततः पश्चात्स्वेन सैन्येन संवृतः ।
द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥८॥

हे महाराज ! इस सेना के पिछले भाग में राजा विराट, और उनके पीछे राजा द्रुपद थे ॥८॥

केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत ॥९॥

हे भारत ! पाण्डव सेना के जघन (पृष्ठ) भाग की रक्षा में ही पांचों भाई केकय-राजकुमार और वीर्यवान् धृष्टकेतु थे ॥९॥

एवं व्यूह्य महासैन्यं पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥१०॥

इस प्रकार अपनी विशाल सेना का व्यूह बना कर पाण्डव, अपने प्राणों का मोह छोड़ कर तुम्हारी सेना पर झपटे ॥१०॥

तथैव कुरवो राजन्भीष्मं कृत्वा महारथम् ।
अग्रतः सर्व सैन्यानां प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥११॥

हे राजन् ! इसी तरह कौरवों ने भी, महारथी भीष्म को सारी सेना के आगे करके पाण्डवों पर आक्रमण किया ॥११॥

पुत्रैस्तव दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चाऽस्य महाबलः ॥१२॥
भगदत्तस्ततः पश्चाद्गजानीकेन संवृतः ।
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥१३॥
काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात्सुदक्षिणः ।
मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्बलः ॥१४॥

दुराधर्ष भीष्म की रक्षा में भी तुम्हारे महाबली पुत्र थे। इसके पीछे द्रोणाचार्य और उसके पुत्र अश्वत्थामा थे। इसके साथ ही हाथियों की सेना से समन्वित राजा भगदत्त थे। राजा भगदत्त के पीछे २ कृपाचार्य और कृतवर्मा थे। इसके पीछे बलवान् कम्बोजाधिपति राज सुदक्षिण, मगधराज जयत्सेन और सुबल-पुत्र बृहद्बल थे ॥१२-१४॥

तथैवाऽन्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः।
जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत ॥१५॥

हे भारत! त्रिगर्तराज सुशर्मा आदि अन्य धनुर्धर राजा तुम्हारी सेना के जघन (पृष्ठ) प्रदेश के रक्षक थे ॥१५॥

दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि।
आसुरानकरोद्व्यूहान्पैशाचानथ राक्षसान् ॥१६॥

शान्तनु-पुत्र भीष्म भी, आसुर, पैशाच, और राक्षस व्यूहों में से नित्य कोई सा व्यूह बनाया करते थे ॥१६॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
अन्योन्यं निघ्नतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥१७॥

हे भारत! अब तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना में युद्ध प्रवृत्त हुआ, जो बड़ा घमसान युद्ध था। हे राजन्! इस समय ये परस्पर एक दूसरे का वध कर रहे थे, जिससे यम राष्ट्र की वृद्धि हो रही थी ॥१७॥

अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्शरान् ॥१८॥

अर्जुन आदि पाण्डव वीर, शिखण्डी को आगे करके अनेक प्रकार से बाणों की वर्षा करते हुए भीष्म से युद्ध करने लगे ॥१८॥

तत्र भारत भीमेन ताडितास्तावकाः शरैः ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥१९॥

हे भारत ! भीमने इतने बाण छोड़े, कि उनसे तुम्हारे वीर, रुधिर में व्याप्त होकर परलोक को चलने लगे ॥१९॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा ॥२०॥

नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि, अपनी शक्ति का प्रयोग करके तुम्हारी सेना को पीड़ित करने लगे ॥२०॥

ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं पाण्डवानां महद्बलम् ॥२१॥

हे भरतर्षभ ! रण में तुम्हारी सेना के वीर, पाण्डवों द्वारा पीड़ित हुए, किसी भी तरह पाण्डवों की विशाल सेना के वेग को नहीं रोक सके ॥२१॥

ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः ।
सुसम्प्राप्तं दश दिशः काल्यमानं महारथैः ॥२२॥

इन महारथियों द्वारा सब ओर से घेर कर मारी हुई तुम्हारी सेना, पुकारती हुई दशों दिशाओं को भागने लगी ॥२२॥

त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ ।
वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥२३॥

हे भरतर्षभ ! सृञ्जयों के साथ पाण्डवों द्वारा तीक्ष्ण बाणों से आक्रमण करने पर तुम्हारे सैनिक वीरों की कोई भी रक्षा करने वाला दिखाई नहीं देता था ॥२३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

पीड्यमानं बलं दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी ।
यदकार्षीद्रणे क्रुद्धस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२४॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! जब पराक्रमी भीष्म ने पाण्डवों द्वारा अपनी सेना पीड़ित देखी, तो उसने क्रोध में आकर क्या किया, मुझे यह सुनाओ ॥२४॥

कथं वा पाण्डवान्युद्धे प्रत्युद्यातः परन्तपः ।
विनिघ्नन्सोमकान्वीरस्तदाचक्ष्व ममाऽऽनघ ॥२५॥

हे अनघ ! परन्तप ! वीर ! भीष्म पितामह, किस ढंग से पाण्डवों के सन्मुख आया और किस तरह इसने सोमकों को मार गिराया—यह सब कुछ मुझे खोल कर सुनाओ ॥२५॥

सञ्जय उवाच—

आचक्षे ते महाराज यदकार्षीत्पिता तव ।
पीडिते तव पुत्रस्य सैन्ये पाण्डवसृञ्जयैः ॥२६॥

सञ्जय ने कहा—हे 'महाराज ! पाण्डव और सृञ्जयवंशज क्षत्रिय वीरों द्वारा तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के व्यथित होने पर जो कुछ तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म ने किया-वह सब कुछ मैं आप से निवेदन किए देता हूं ॥२६॥

प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अभ्यवर्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥२७॥
तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम् ।
नाऽमृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः ॥२८॥

हे पाण्डु के ज्येष्ठ भ्राता! जब तुम्हारे पुत्र की सेना का विध्वंस करते हुए प्रसन्नता में भरे हुए शूरवीर पाण्डव आगे बढ़े- तो मनुष्य, हाथी और अश्वों के इस घोर विनाश और शत्रुओं द्वारा सेना की क्षति भीष्म पितामह सह नहीं सके ॥२७-२८॥

स पाण्डवान्महेष्वासः पञ्चालांश्चैव सृञ्जयान् ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥२६॥
अभ्यवर्षत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।

इन महा धनुर्धर दुर्धर्ष भीष्म ने प्राणों का मोह छोड़ कर नाराच, वत्सदन्त तीक्ष्ण अञ्जलिक आदि विशिष्ट (ख़ास) २ बाणों से पञ्चाल और सृञ्जयों पर आक्रमण किया ॥२६॥

स पाण्डवानां प्रवरान्पञ्च राजन्महारथान् ॥३०॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्नाद्वारयामास सायकैः ।

हे राजन् ! भीष्म ने शस्त्रों द्वारा तथा अन्य बाणों से पाण्डवों के पांच महारथियों को वहीं रणभूमि में रोक दिया ॥३०॥

नानाशस्त्रास्त्रवर्षैस्तान्वीर्यामर्षप्रवेरितैः ॥३१॥
निजघ्ने समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वं चाऽमितं बहु ।

अपने अत्यन्त बल पराक्रम से चलाए हुए अनेक शस्त्र और अस्त्रों के द्वारा भीष्म ने रण में कुपित होकर पाण्डवों के बहुत से हाथी घोड़े मार डाले ॥३१॥

रथिनोऽपातयद्राजन्रथेभ्यः पुरुषर्षभ ॥३२॥
सादिनश्वाऽश्वपृष्ठेभ्यः पादातांश्च समागतान् ।
गजारोहान्गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः ॥३३॥

हे पुरुषर्षभ ! राजन् ! भीष्म, रथियों को रथ, अश्वारोहियों को अश्वों की पृष्ठ और सन्मुख आये हुए पैदल सैनिकों को मार २ कर गिराने लगे। इसी तरह शत्रुओं के जीत लेने वाले गजारोहियों को गजों के ऊपर से नीचे गिरा लिया ॥३२-३३॥

तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम् ।
पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवाऽसुराः ॥३४॥

इस प्रकार बड़ी शीघ्रता से संहार करते हुए महारथी भीष्म पर पांचों पाण्डव, वज्रधारी इन्द्र पर दानवों की भांति टूट पड़े।

शक्राशनिसमस्पर्शान्विमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ॥३५॥
दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं सन्धारयन्वपुः ।

इस समय भीष्म पितामह, इन्द्रके वज्र के समान तीक्ष्ण बाणों को छोड़ते हुए सारी दिशाओंमें बड़े भयङ्कर शरीर धारी दिखाई दे रहे थे ॥३५॥

मण्डलीभूतमेवाऽस्य नित्यं धनुरदृश्यत ॥३६॥
संग्रामे युद्धचमानस्य शक्रचापोपमं महत् ।

हे राजन ! रणभूमि में युद्ध करते हुए भीष्म का इन्द्र धनुष के सदृश विशाल धनुष, नित्य मण्डलाकार ही दिखाई देता था ।

तद् दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशाम्पते ॥३७॥
विस्मयं परमं गत्वा पितामहमपूजयन् ।

हे विशाम्पते ! तुम्हारे पुत्र, भीष्म के इस दुर्धर्ष कर्म को देख कर बड़े चकित हुए और भीष्म का बड़ा ही आदर करने लगे।३७।

पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ॥३८॥
युद्धचमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवाऽमराः।
न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥३९॥

इस समय सारे पाण्डव चिन्तातुर होकर रण में युद्ध करते हुए तुम्हारे पिता भीष्म को विप्रचित्ति दानव को देवों की भांति देखने लगे, परन्तु कोई भी पाण्डव वीर, मुख फाड़े हुए काल के समान भयानक भीष्म के रोकने में समर्थ न होसका ॥३८-३९॥

दशमेऽहनि सम्प्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः ।
अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥४०॥

यह युद्ध का दशवां दिन था, इस दिन, भीष्म, शिखण्डी की सेना को इस तरह तीक्ष्ण बाणों से भस्म करने लगे, जैसे-अग्नि वन को जला डालता है ॥४०॥

तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवाऽन्तकम् ॥४१॥

अब शिखण्डी ने भी तीन बाण सर्प के समान क्रोध में भरे हुए प्रलय कालीन कालान्तक के तुल्य भीष्म के वक्षस्थल में मारे।

स तेनाऽतिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनम् ।
अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४२॥

भीष्म के इन बाणों से बहुत चोट बैठी और उसने दृष्टि उठा कर देखा, तो सन्मुख शिखण्डी दिखाई दिया। यद्यपि भीष्म क्रोध करना नहीं चाहते थे, परन्तु कुपित हो उठे तथा वे मुस्कराते हुए कहने लगे ॥४२॥

काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथञ्चन ।
यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव त्वं हि शिखण्डिनी ॥४३॥

हे शिखण्डी ! तुम्हारी जितनी इच्छा हो उतने प्रहार करो या न करो, मैं तो तुम से युद्ध किसी भी प्रकार नहीं करूंगा। मेरी दृष्टि में तो विधाता ने जो तुमको स्त्री बनाया था, वही तुम शिखण्डिनी स्त्री हो ॥४३॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्छितः ।
उवाचैनं तथा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥४४॥

इतना सुनकर शिखण्डी को बहुत क्रोध चढ़ आया और वह ओष्ठ-प्रान्तों को चाटता हुआ, भीष्म से बोला ॥४४॥

जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयङ्करम् ।
मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ॥४५॥
दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं मया च बहुशः श्रुतः ।
जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याऽहं त्वया सह ॥४६॥

हे महाबाहो ! मैं यह सब कुछ जानता हूँ, कि तुमने पाण्डवों की सेना के क्षत्रियों का बहुत बड़े भाग का नाश कर दिया है और पूर्व काल में तुम्हारा जमदग्नि-पुत्र परशुराम से भी युद्ध हुआ है । तुम्हारा बहुत ही दिव्य प्रभाव है, यह भी बार २ सुना है, परन्तु यह सब कुछ जान कर भी मैं तुम्हारे साथ युद्ध में प्रवृत्त हुआ हूं ।

पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम ।
अद्य त्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ॥४७॥

हे नरोत्तम ! मैं तो केवल पाण्डवों के हित में प्रवृत्त हूं, कुछ मेरा तो स्वार्थ है ही नहीं । हे पुरुषसत्तम ! आज तो मैं रण में अपने हाथ दिखाकर तुमसे अवश्य युद्ध करूंगा ॥४७॥

ध्रुवं च त्वां हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः ।
एतच्छ्रुत्वा मद्वाक्यं यत्कृत्यं तत्समाचर ॥४८॥

हे भीष्म ! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं, कि आज मैं तुम्हें मारे विना न छोड़ूंगा । अब तुम को इन वाक्यों द्वारा सचेत कर दिया है । अब जो तुमको उपाय करना हो वह करलो ॥४८॥

काममभ्यस वा मा वा न मे जीवन्प्रमोच्यसे।
सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोऽयं समितिञ्जय: ॥४६॥

अब तुम बाणों का प्रहार करो या न करो-आज तुम मुझ से बच कर नहीं जा सकते हो। हे युद्ध-विजेता ! अब तुम इस संसार को अच्छी तरह से दृष्टि भर कर देखलो ॥४६॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
अविध्यत रणे भीष्मं प्रणुन्नं वाक्यसायकैः ॥५०॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इतना कहकर शिखण्डी ने अपने नतपर्व वाले पांच बाणों से वाक्य बाणों से प्रथम ही बिंधे हुए भीष्म को बुरी तरह बींध डाला ॥५०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः ।
कालोऽयमिति सञ्चिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत् ॥५१॥

शिखण्डी के ये वचन सुन कर सव्यसाची अर्जुन, इस समय को उपयोगी समझ कर शिखण्डी को युद्ध के लिए प्रेरित करने लगा ॥५१॥

अहं त्वामनुयास्यामि परान्विद्राव्यञ्शरैः ।
अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रम ॥५२॥

हे भीमपराक्रमधारी ! शिखण्डी ! मैं शत्रु वीरों को भगाता हुआ, तुम्हारे पीछे २ चलता हूं, तुम वेग से युक्त होकर भीष्म पर आक्रमण करो ॥५२॥

न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः ।
तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद्भीष्ममभिद्रव ॥५३॥

हे महाबली ! भीष्म ! तुमको कोई भी पीड़ा नहीं पहुंचा सकते हैं। हे महाबाहो ! यह सब कुछ सोचकर प्रयत्न-पूर्वक भीष्म पर आक्रमण कर दो ॥५३॥

अहंत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष ।
अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥५४॥

हे आर्य ! यदि आज तुम भीष्म के विना मारे रण से चल पड़े तो मेरा और तुम्हारा दोनों का संसार में बड़ा उपहास होगा ॥

नाऽवहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे ।
तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥५५॥

हे वीर ! इस महायुद्ध में जिस तरह हम दोनों की हँसी न हो, तुम वही रण में प्रयत्न करो और आज पितामह का वध कर डालो ॥५५॥

अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल ।
वारयन्रथिनः सर्वान्साधयस्व पितामहम् ॥५६॥

हे महाबली ! मैं तुम्हारी युद्ध में रक्षा करता रहूंगा और सारे कौरव महारथियों को रोके रहूंगा। अब तुम भीष्म पितामह को रण-भूमि में गिरा दो ॥५६॥

द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाऽथ सुयोधनम् ।
चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ॥५७॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
भगदत्तं तथा शूरं मागधं च महाबलम् ॥५८॥
सौमदत्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम् ।
त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥५९॥
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ।

हे महाबली ! मैं समुद्र को वेला की भांति, द्रोण, अश्वत्थामा, कृप, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ, अवन्ती राजकुमार विन्दानुविन्द, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, शूरवीर राजा भगदत्त, महाबली मगधराज, सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा, ऋष्यशृङ्ग पुत्र राक्षसराज अलम्बुष, त्रिगर्तराज सुशर्मा को इनके साथी महारथियों के साथ रोके रहूंगा ॥५७-५९॥

कुरूंश्च सहितान्सर्वान्युध्यमानान्महाबलान् ।
निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ॥६०॥

हे महाभाग ! यदि सारे कौरव महारथी भी इकट्ठे होकर मुझ से युद्ध करने लगेंगे, तो भी मै उनको आगे नहीं बढ़ने दूँगा, तुम अब प्रथम भीष्म पितामह का वध कर दिखाओ ॥६०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहिताया वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मशिखण्डिसमागमे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म और शिखण्डी की मुठ भेड़ का एकसौ आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

—∞✻∞—
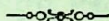
एकसौ नौवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावत्पितामहम् ।
पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुम यह बताओ, कि दृढ़ प्रतिज्ञा धारी धर्मात्मा भीष्म पर पञ्चाल राजकुमार शिखण्डी ने रण में कुपित होकर, किस तरह आक्रमण किया ॥१॥

केऽरक्षन्पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधाः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महारथाः ॥२॥

पाण्डवों की सेना में किन विजयाभिलाषी महारथी, वेग शील वीरों ने शस्त्र लेकर इस शीघ्रता के समय में शिखण्डी की रक्षा की ॥२॥

कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन्दशमेऽहनि ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ।।३।।

इस दशवें दिन, महापराक्रमी भीष्म, पाण्डव और सञ्जयों के साथ किस ढंग से युद्ध करते रहे ।।३।।

न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिना ।
कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ।।४।।

शिखण्डी का भीष्म पर आक्रमण करना मुझे बड़ा खटकता है। इस समय भीष्म का रथ या धनुष, भङ्ग तो नहीं हो गया था ।।४।।

सञ्जय उवाच—

नाऽशीर्यत धनुश्चाऽस्य रथभङ्गो न चाऽप्यभूत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ।।५।।

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! रण में लड़ते हुए भीष्म का न तो धनुष ही टूटा और न कोई रथ का ही भङ्ग हुआ ।।५।।

निघ्नतः समरे शत्रूञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ।।६।।
तथा दन्तिगणा राजन्हयाश्चैव सुसज्जिताः ।
अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ।।७।।

हे राजन् ! तुम्हारे पक्ष के सैकड़ों हजारों महारथी वीर झुकी पर्व वाले बाणों से रण में सैनिकों को मारते हुए तथा इतने ही गजारोही और अश्वारोही वीर सुसज्जित हुए भीष्म पितामह को आगे करके युद्ध के लिए आगे बढ़े ॥६-७॥

यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चाऽपि समितिञ्जयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥८॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! युद्ध विजेता भीष्म, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार युद्ध में लगातार पाण्डव पक्ष के वीरों का संहार करने लगे ॥८॥

युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं पराञ्शरैः ।
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं सर्वे ते नाऽभ्यवारयन् ॥९॥

अपने बाणों से शत्रुओं को मारते हुए, युद्ध-कर्ता, महाधनुर्धर भीष्म के रोकने में पाण्डवों के साथ कोई भी पञ्चाल समर्थ नहीं हुआ ॥९॥

दशमेऽहनि सम्प्राप्ते ततस्तां रिपुवाहिनीम् ।
कीर्यमाणां शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०॥
नहि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अशक्नुवन्रणे जेतुं पाशहस्तमिवाऽन्तकम् ॥११॥

हे पाण्डुपूर्वज ! दशवें दिन के प्राप्त होने पर शत्रु सेना के सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में वीर, भीष्म के तीक्ष्ण बाणों से

इधर उधर बिखर खड़े हुए तथा पाशधारी काल के तुल्य भीष्म को रण में जीतने को उनमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ ॥१०-११॥

अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनञ्जयः।
त्रासयन्रथिनः सर्वान्बीभत्सुरपराजितः ॥१२॥
सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन्मुहुः।
शरौघान्विसृजन्पार्थो व्यचरत्कालवद्रणे ॥१३॥

हे महाराज! इस समय सव्यसाची, भीषण रूपधारी, विजयी अर्जुन, सारे रथी वीरों को पीड़ित करते हुए भीष्म के सन्मुख आए। ये सिंह की तरह उच्चस्वर में गर्जना कर रहे थे और बार २ अपनी धनुषकी प्रत्यञ्चाको कँपा रहे थे। अब अर्जुन बाण समूहको फैंकते हुए, रण में काल की भांति विचरण कर रहे थे॥१२-१३॥

तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ।
सिंहस्येव मृगा राजन्व्यद्रवन्त महाभयात् ॥१४॥

हे भरतर्षभ! अर्जुन की गर्जना सुनते ही सिंह से क्षुद्र मृगों की भांति तुम्हारे पक्ष के वीर, महाभय से भाग खड़े हुए ॥१४॥

जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वत्सैन्यं चाऽभिपीडितम्।
दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद्भृशपीडितः ॥१५॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन को विजयी और अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होती देखकर अत्यन्त पीड़ित राजा दुर्योधन भीष्म से कहने लगे ॥१५॥

एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दहते मामकान्सर्वान्कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥१६॥

हे तात ! यह पाण्डु-पुत्र, श्वेत अश्वों के रथ में स्थित अर्जुन, कृष्ण को सारथि बना कर, वन को अग्नि की भांति मेरी सेना को नष्ट कर रहा है ॥१६॥

पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः ।
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥१७॥

हे वीरश्रेठ ! गाङ्गेय ! अब तुम रण में चारों ओर चीखती चिल्लाती हुई मेरी सेना को भागती हुई स्वयं देख लो ॥१७॥

यथा पशुगणान्पालः सङ्कालयति कानने ।
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥१८॥

हे शत्रुतापन ! जैसे-पशुपालक वन में पशुगणों को वेग से हांक देता है, वैसे ही मेरी सेना को अर्जुन अकेला ही भगा रहा है ॥१८॥

धनञ्जयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः ।
भीमोऽप्येवं दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥१९॥

धनञ्जय अर्जुन के बाणों से बिखर कर भागती हुई मेरी सेना को दुराधर्ष भीमसेन भी बड़ी वित्रासित कर रहा है ॥१९॥

सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम ॥२०॥

हे भीष्म ! सात्यकि, चेकितान, माद्री-पुत्र नकुल सहदेव, पराक्रमी अभिमन्यु आदि महारथी वीर मेरी सेना के भगाने में तत्पर हो रहे हैं ॥२०॥

धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे ॥२१॥

शूरवीर धृष्टद्युम्न और राक्षसराज घटोत्कच तो इस महा संग्राम में एक दम मेरी सेना के पीछे पड़ गए हैं ॥२१॥

वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः ।
नाऽन्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥२२॥

हे भारत ! इन सारे महारथियों से आहत की हुई सेना के बचाने का इस स्थान में मुझे कोई भी उपाय दिखाई नहीं देता है ॥२२॥

ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम ।
पर्याप्तस्तु भवाञ्शीघ्रं पीडितानां गतिर्भव ॥२३॥

हे पुरुषव्याघ्र ! तुम ही इस संकट से हमको छुड़ा सकते हो, क्योंकि तुम देवों के तुल्य पराक्रम रखने वाले हो। तुम इन सब के रोक देने को पर्याप्त हो , इससे विपत्ति में ग्रस्त हम लोगों की रक्षा कीजिए ॥२३॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥२४॥

तव सन्धारयन्पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः ।
दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते ॥२५॥
पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल ।
हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥२६॥
संग्रामाद्व्यपयातव्यमेतत्कर्म ममाऽऽह्निकम् ।
इति तत्कृतवांश्चाऽहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥२७॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! इस प्रकार जब तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म से राजा दुर्योधन ने कहा-तो थोड़ी देर तक भीष्म ने विचार किया और अपने कर्तव्य का निश्चय करके कहा—हे राजन् दुर्योधन ! तुम धैर्य के साथ मेरी यह बात सुनलो ! हे महाबली ! मैंने तुम से पूर्वकाल में प्रतिज्ञा की थी, कि मैं दश सहस्र महावीर क्षत्रियों को मार कर प्रतिदिन युद्ध भूमि से लौटा करूंगा। हे भरतर्षभ ! उस प्रतिज्ञा को मैं पूरी निभा चुका हूं ॥२४-२७॥

अद्य चाऽपि महत्कर्म प्रकरिष्ये महाबल ।
अहं वाऽद्य हतः शेष्ये हनिष्ये वाऽद्य पाण्डवाम् ॥

हे महाशक्तिशाली ! मैं आज भी उसी दुष्कर कर्म को कर दिखाऊंगा। यही क्या ? आज या तो मैं ही मारा जाकर रण भूमि में सो जाऊंगा। या पाण्डवों को मार लूंगा ॥२८॥

अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं तव ।
भर्तृपिण्डकृतं राजन्निहतः पृतनामुखे ॥२९॥

हे पुरुषव्याघ्र ! आज मैं तेरे ऋण से मुक्त होना चाहता हूं। हे राजन् ! स्वामी के अन्न से उऋण होने का सब से अच्छा उपाय यही है-कि युद्ध में अपने प्राणों का विसर्जन करदे ॥२६॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान्प्रवपञ्छरैः ।
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥३०॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इतना कहकर दुराधर्ष भीष्म, क्षत्रिय वीर और पाण्डवों की सेना पर भीषण बाण वर्षा करने लगे ॥३०॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
आशीविषमिव क्रुद्धं पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥३१॥

हे भरतर्षभ ! सेना के मध्य में कुपित सर्प की भांति स्थित गङ्गापुत्र भीष्म को पाण्डव रोकने में प्रवृत्त हुए ॥३१॥

दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः ।
राजञ्शतसहस्राणि सोऽवधीत्कुरुनन्दन ॥३२॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! दशवें दिन भीष्म अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगे। इसने आज भी सहस्रों की संख्या में वीर मार गिराए ॥३२॥

पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः ।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांऽशुभिः ॥३३॥

पाञ्चाल वीरों में जो श्रेष्ठ महारथी राज-पुत्र थे, उनके तेजों को किरणों से सूर्य जैसे-जल को खैंच लेता है, इसी तरह भीष्म ने खेंच लिया ॥३३॥

हत्वा दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
सारोहाणां महाराज हयानां चाऽयुतं तथा ॥३४॥
पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥३५॥

हे महाराज ! भीष्म ने सवारों सहित दश हज़ार वेगशील हाथी और दश हज़ार ही सवारों सहित अश्व मार गिराए । जब दो लाख पैदल सैनिक नरोत्तम भीष्म ने मार लिए, उस समय भीष्म रण में धूम-रहित अग्नि भांति देदीप्यमान दिखाई देने लगे ॥३४-३५॥

न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् ।
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥३६॥

उत्तरायण में पहुंचे प्रचण्ड सूर्य की भांति देदीप्यमान भीष्म को कोई भी पाण्डव वीर-देखने तक में समर्थ नहीं हो सके ॥३६॥

ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः ।
वधायाऽभ्यद्रवन्भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥३७॥

महाधनुर्धर भीष्म द्वारा पीड़ित हुए पाण्डव वीर और सृञ्जय महारथी इकट्ठे होकर भीष्म के वध के लिए बड़े आवेश से उस पर झपटे ॥३७॥

संयुद्ध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवाऽऽवृतः ॥३८॥

शान्तनु-पुत्र भीष्म इन अनेक महारथियों से युद्ध करता हुआ बाणों से इस तरह व्याप्त हो गया, जैसे-मेघ धारा से महामेरु पर्वत व्याप्त हो जाता है ॥३८॥

पुत्रास्तु तव गाङ्गेय समन्तात्पर्यवारयन् ।
महत्या सेनया सार्द्धं ततो युद्धमवर्तत ॥३९॥

हे राजन् ! इस समय तुम्हारे सारे पुत्रों ने भीष्म को सब ओर से बड़ी भारी सेना के साथ रक्षार्थ घेर रखा था। अब दोनों सेनाओं में घमसान युद्ध का आरम्भ हुआ ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म दुर्योधन के सम्वाद का एकसौ नौवां अध्याय समाप्त हुआ

एकसौ दशवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अर्जुनस्तु रणे राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! अर्जुन युद्ध में भीष्म के पराक्रम को देखकर शिखण्डी से बोले, कि अब तुम भीष्म पर आक्रमण करो ॥१॥

न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथञ्चन ।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥२॥

आज तुम कुछ भी भीष्म से भय नहीं करना । मैं अभी अपने तीक्ष्ण बाणों से भीष्म को रथ से गिरा देता हूं ॥२॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥३॥

हे भरतर्षभ ! जब अर्जुन ने शिखण्डी से इतना कहा-तो शिखण्डी अर्जुन की बात सुनकर शीघ्र ही बड़े वेग से भीष्म पर झपटा ॥३॥

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्सौभद्रश्च महारथः ।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥४॥

हे राजन्! अर्जुन के इस वचन को सुनकर सेनापति धृष्टद्युम्न और महारथी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, बड़े हर्ष के साथ भीष्म पर दौड़े ॥४॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥५॥

वृद्ध राजा विराट और द्रुपद, सुसज्जित कुन्ति-भोज भी तुम्हारे पुत्रों के देखते २ भीष्म पर टूट पड़े ॥५॥

नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान् ।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते ॥६॥
समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।

हे विशाम्पते ! अर्जुन के इतना कहने की देर थी, कि नकुल सहदेव, वीर्यवान् धर्मराज तथा सारी विशाल पाण्डव सेना ने एक दम भीष्म पर धावा बोल दिया ॥६॥

प्रत्युद्ययुस्तावकाश्च समेतांस्तान्महारथान् ॥७॥
यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु ।

इन इकट्ठे होकर झपटने वाले महारथियों पर यथाशक्ति और उत्साह के अनुसार जिन तुम्हारे महारथियों ने सामना (मुक़ाबिला) किया, तुम उन के भी नाम और पराक्रम सुनो ॥७॥

चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ॥
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा ।

हे महाराज ! चित्रसेन, चेकितान पर झपटा, जो वृष पर सिंह की भांति भीष्म पर रण में झपटना चाहा था ॥८॥

धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ॥९॥
त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् ।

हे महाराज ! सेनापति धृष्टद्युम्न बड़ी सावधानी से शीघ्रता के साथ भीष्म के पास पहुंच चुका था, परन्तु दौड़ कर कृतवर्मा ने उसे पीछे हटा दिया ॥९॥

भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् ॥१०॥
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् ।

हे महाराज ! भीमसेन बड़ा कुपित हो रहा था और वह भीष्म के वध की इच्छा से आगे बढ़ रहा था, परन्तु बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ कर सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा ने इसको पीछे हटा दिया ॥१०॥

तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान्बहून् ॥११॥
विकर्णो वारयामास इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।

शूरवीर नकुल ने भी बाणों की झड़ी लगा कर भीष्म के प्राण ले लेना चाहा, परन्तु विकर्ण ने उसे रोक लिया ॥११॥

सहदेवं तथा राजन्यांतं भीष्मरथं प्रति ॥१२॥
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि ।

हे राजन-भीष्म के रथ के पास जाने का प्रयत्न करते हुए सहदेव को क्रोधाविष्ट शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने-रोका ॥१२॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम् ॥१३॥
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्बली ।
सात्यकिं समरे यान्तं तव पुत्रो न्यवारयत् ॥१४॥

क्रूर कर्म करने वाले; भीमसेन के पुत्र, महाबली राक्षसराज घटोत्कच को महाबलवान् दुर्मुख ने आगे बढ़ कर रोक दिया। यह राक्षस भी भीष्म के वध की चेष्टा कर रहा था। इसी तरह आगे बढ़ते हुए सात्यकि को आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने रोका॥

अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति ।
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥१५॥

हे महाराज ! भीष्म के रथ पर झपटने के प्रयत्न में तत्पर अभिमन्यु को कम्बोजाधिपति राजा सुदक्षिण ने रोका ॥१५॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ ।
अश्वत्थामाः ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥१६॥

हे भारत ! अरिमर्दन, राजा विराट और द्रुपद ने एक साथ भीष्म पर आक्रमण करना चाहा, परन्तु अश्वत्थामा ने क्रोधाविष्ट होकर इनको आगे नहीं बढ़ने दिया ॥१६॥

तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकांक्षिणम् ।
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥१७॥

भीष्म के वध की अभिलाषा वाले पाण्डु के ज्येष्ठपुत्र धर्म राजा युधिष्ठिर को प्रयत्न शील देखकर भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य ने वहीं रोक दिया ॥१७॥

अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश ॥१८॥
दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे ।

हे महाराज ! शिखण्डी को साथ लेकर वेग के साथ युद्ध में आगे बढ़ते हुए अर्जुन को महाधनुर्धर दुःशासन ने उसी रण स्थान में रोक दिया, जहां वह युद्ध कर रहा था। अर्जुन की इच्छा भीष्म के पास पहुंच जाने की थी और इसने दशों दिशाओं को अपने तेज से व्याप्त कर रखा था ॥१८॥

अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान् ॥
भीष्मस्याऽभिमुखान्यातान्वारयामासुराहवे ।

हे राजन् ! इसी तरह अन्य भी तुम्हारे महारथियों ने भीष्म के पास पहुंचने की चेष्टा करने वाले पाण्डवों के महारथियों को वहीं रणभूमि में रोक दिया ॥१६॥

धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशंस्तु पुनः पुनः ॥२०॥
अभ्यद्रवत संरब्धो भीष्ममेकं महारथः ।

पाण्डवों के सेनापति, महारथी धृष्टद्युम्न. बार २ अपनी सेना का आह्वान कर रहे थे और आवेश में भरे हुए भीष्म पर आक्रमण करने को आगे बढ़े जा रहे थे ॥२०॥

एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दनः ॥२१॥
अभ्यद्रवत मा भैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः ।

हे सैनिको ! आज रण में कुरुवंशश्रेष्ठ अर्जुन भीष्म पर चढ़ाई कर रहे हैं, तुम भी बढ़े चले, आओ, डरो मत। तुम्हारे ऊपर भीष्म प्रहार नहीं कर सकता है ॥२१॥

अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ॥२२॥
किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः।

हे वीरो ! रण में अर्जुन का सामना करने की शक्ति इन्द्र में भी नहीं है, फिर बलहीन वृद्ध, भीष्म की क्या शक्ति है ॥२२॥

इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥२३॥
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथं प्रति।

सेनापति धृष्टद्युम्न के ये वचन सुनकर पाण्डवों के महारथी, आवेश में भर गए और वे गङ्गा-पुत्र भीष्म के रथ पर झपटे ।२३॥

आगच्छमानान्समरे वार्योघान्प्रलयानिव ॥२४॥
अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः।

प्रलय कालीन जल प्रवाह की भांति रण में आगे बढ़ते हुए पाण्डव सैनिकों को हर्षोत्फुल्ल तुम्हारे वीर पुरुषों ने आगे नहीं बढ़ने दिया।

दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ॥२५॥
भीष्मस्य जीविताकांक्षी धनञ्जयमुपाद्रवत्।

हे महाराज ! महारथी दुःशासन ने अपने प्राणों का मोह छोड़ कर भीष्म के जीवित रहने की आकांक्षा से निर्भीकता के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया ॥२५॥

तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥२६॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान्महारथाः ।

हे राजन् ! इसी तरह पाण्डवों के महारथी भीष्म के रथ के पास पहुंचने के अभिप्राय से तुम्हारे महारथियों पर टूट पड़े ॥२६॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशाम्पते ॥२७॥
दुःशासनरथं प्राप्य यत्पार्थो नाऽत्यवर्तत ।

हे विशाम्पते ! इस युद्ध में बड़ी ही आश्चर्य-जनक यह अद्भुत बात देखी गई, कि दुःशासन के रथ के पास पहुंच कर अर्जुन उससे आगे नही बढ़ सका ॥२७॥

यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् ॥२८॥
तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् ।

उछलते हुए, समुद्र को जैसे उसकी वेला (मर्यादा) रोके रखती है, ऐसे ही क्रोधाविष्ट अर्जुन को तुम्हारा पुत्र दुःशासन रोके रहा ॥२८॥

उभौ तौ रथिनां श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयौ ॥२९॥
उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत ।
तथा तौ जातसंरम्भावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥३०॥
समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा ।

हे भारत ! ये दोनों वीर, रथियों में श्रेष्ठ और दोनों ही बड़े दुर्जय थे तथा ये दोनों ही कान्ति और तेज में चन्द्र-सूर्य के सदृश

उज्ज्वल थे। ये दोनों ही अत्यन्त क्रोध में भरे हुए एक दूसरे के वध की इच्छा कर रहे थे। मय दैत्य और इन्द्र के समान इन दोनों का महा भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥३०॥

दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ॥३१॥
वासुदेवं च विंशत्या ताडयामास संयुगे ।

हे महाराज ! दुःशासन ने पाण्डु-पुत्र अर्जुन को तीन और श्रीकृष्ण को बीस बाणों से इस रण में व्यथित किया ॥३१॥

ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ॥३२॥
दुःशासनं शतेनाऽऽजौ नाराचानां समार्पयत् ।
ते तस्य कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ॥३३॥

जब अर्जुन ने वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण को बाणों से आहत देखा, तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा । उन्होंने सौ बाण दुःशासन पर छोड़े। ये बाण दुःशासन का कवच चीर कर रण में उसका रक्त चाट गए ॥३२-३३॥

दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः ।
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३४॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब दुःशासन का भी क्रोध बढ़ गया । उसने क्रोधाविष्ट होकर अर्जुन के ललाट प्रदेश में झुके पर्ववाले वेगशील बाण मारे ॥३४॥

ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे ।
यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यर्थमुच्छ्रितैः ॥३५॥

हे महाराज ! ललाट में गड़े हुए इन बाणों से अर्जुन ऐसा शोभित होने लगा, जैसे अत्यन्त उच्च शिखरों से मेरु पर्वत सुशोभित होता है ॥३५॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना ।
व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ॥३६॥

हे राजन् ! धनुर्धर तुम्हारे पुत्र दुःशासन द्वारा बिंधा हुआ धनुषधारी अर्जुन, ऐसा प्रतीत होता था, जैसे-किशुक (ढ़ाक) वृक्ष फूल रहा हो ॥३५॥

दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः ।
पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुः पूर्णं निशाकरम् ॥३६॥

अब अर्जुन ने भी दुःशासन पर इस तरह आक्रमण किया, जैसे पूर्ण चन्द्रमा पर राहु झपटता है ॥३७॥

पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशाम्पते ।
विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥३८॥

हे विशाम्पते ! बलवान् अर्जुन द्वारा पीड़ित हुए तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने फिर कङ्क पक्षी के पंख से विभूषित, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से रण में कुन्ती-पुत्र अर्जुन को छेद डाला।

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा रथं चाऽस्य त्रिभिः शरैः ।
आजघान ततः पश्चात्पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥३९॥

अब अर्जुन ने तीन बाणों से दुःशासन के धनुष को काट डाला और रथ को तोड़ ताड़ दिया तथा इसके पीछे तुम्हारे पुत्र दुःशासन को तीक्ष्ण बाणों से अत्यन्त ही व्याकुल कर दिया ॥३९॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥४०॥

इसके अनन्तर दुःशासन ने दूसरा धनुष उठाया और भीष्म के आगे आप युद्ध के लिए खड़ा हुआ । इसने पचीस बाण छोड़ कर अर्जुन के बाहु और वक्षस्थल में मारे ॥४०॥

तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः ।
अप्रैषीद्विशिखान्घोरान्यमदण्डोपमान्बहून् ॥४१॥

हे महाराज ! इस पर शत्रुतापी अर्जुन, क्रोध में भर गया और इसने यमदण्ड के तुल्य घोर, बहुत से बाण फेंके ॥४१॥

अप्राप्तानेव तान्बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥४२॥

अर्जुन बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु तुम्हारा पुत्र भी अर्जुन के बाणों को अपने पास तक नहीं पहुंचने देता था और बीच में ही काट गिराता था; यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत हो रहा था।

पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत्तनयस्तव ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान्सन्धायः कार्मुके ॥४३॥
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र ने अर्जुन को तीक्ष्ण बाणों से अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया। अब अर्जुन बहुत कुपित हुए। इन्होंने अपने धनुष पर स्वर्ण जटित। शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों को चढ़ाया ॥४३॥

न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः ॥४४॥
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत।

हे महाराज ! ये बाण, उस महावीर दुःशासन के शरीर में इस तरह घुस गए, जैसे हंस, सरोवर के जल में घुस जाते हैं ॥४४॥

पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥४५॥
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत्।
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ॥४६॥

महावीर पाण्डु-पुत्र, अर्जुन द्वारा आहत हुआ दुःशासन, अत्यन्त व्याकुल हो गया और वह अर्जुन को छोड़ कर वेग के साथ भीष्म के रथ पर जा बैठा। इस समय अगाध संकट में निमग्न होते हुए दुःशासन का भीष्म ही रक्षक हुआ ॥४५-४६॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते।
अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥४७॥

हे विशाम्पते ! जब तुम्हारे पुत्र को कुछ चेतनता आई तो वह पराक्रमी फिर अर्जुन को रोकने लगा ॥४७॥

शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रं पुरन्दरः।
निर्बिभेद महाकायो विव्यथे नैव चाऽर्जुनः ॥४८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासनसमागमे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

विशाल कायधारी दुःशासन ने वृत्रासुर को इन्द्र की भांति अर्जुन को तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला, परन्तु अर्जुन इससे कुछ भी विचलित नहीं हुए ॥४८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में अर्जुन और दुःशासन के युद्ध का एकसौ दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।
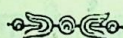
एकसौ ग्यारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।
आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! सात्यकि भी सुसज्जित होकर रण में भीष्म पर आक्रमण करना चाह रहे थे, कि उनको ऋष्यशृङ्ग के पुत्र महाधनुर्धर अलम्बुष ने आगे बढ़कर रोक दिया ॥१॥

माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।
आजघान रणे राजन्प्रहसन्निव भारत ॥२॥

हे राजन! सात्यकि ने क्रोधातुर होकर राक्षसराज अलम्बुष पर रण में नौ बाण हंसते २ छोड़े ॥२॥

तथैव राक्षसो राजन्माधवं नवभिः शरैः ।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥३॥

हे राजन्! इसी तरह राक्षसराज अलम्बुष ने भी क्रोधातुर होकर वृष्णिवंशोत्पन्न शिनि-पुत्र सात्यकि पर नौ बाण छोड़ कर उसे बड़ा ही व्याकुल किया ॥३॥

शैनेयः शरसङ्घं तु प्रेषयामास संयुगे ।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥४॥

शत्रुवीरविजेता, शिनिवंशश्रेष्ठ, सात्यकि ने रण में राक्षस-राज अलम्बुष पर बाणों की झड़ी लगा दी ॥४॥

ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥५॥

सत्यपराक्रमी महाबाहु, सात्यकि को राक्षसराज ने तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया और इसके अनन्तर राक्षसराज अलम्बुष ने बड़ी भारी सिंह गर्जना की ॥५॥

माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा ।
वार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च ॥६॥

राक्षसराज से रण में अत्यन्त बिद्ध हुआ तेजस्वी सात्यकि, वहीं रुक गया और कुछ मुसकुरा कर गर्जना करने लगा ॥६॥

भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः ।
ताडयामास समरे तोत्रैरिव महागजम् ॥७॥

इसके अनन्तर तोत्र (हस्तिदण्ड) से आहत हाथी की भांति सात्यकि पर क्रोधाविष्ट राजा भगदत्त ने रण में आक्रमण किया ।

विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः ।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान्सन्नतपर्वणः ॥८॥

शिनिवंशश्रेष्ठ, महारथी सात्यकि, युद्ध में राक्षसराज अलम्बुष को छोड़कर राजा भगदत्त पर झुकीपर्व वाले बाण फैंकने लगा ।

तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः ।
चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥९॥

राजा प्राग्ज्योतिष (भगदत्त) ने भी अपने शतधार धारी भाले या बाण से बड़ी शीघ्रता के साथ सात्यकि का विशाल धनुष काट गिराया ॥९॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्परवीरहा ।
भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः ॥१०॥

शत्रुवीरनाशक, सात्यकि ने वेगधारी दूसरा धनुष उठाया और उस पर तीक्ष्ण बाण, चढ़ाकर रण में कुपित भगदत्त को बींध डाला ॥१०॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम् ॥११॥
यमदण्डोपमां घोरां चिक्षेप परमाहवे ।

सात्यकि के बाणों से अत्यन्त बिद्ध हुए, राजा भगदत्त, क्रोध में आकर ओष्ठ-प्रान्त चाटने लगा। अब इसने सुवर्ण और नील-मणि से विभूषित, लोहमयी दृढ़ गदा उठाई, जो यमदण्ड के तुल्य घोर थी। उसको लेकर इसने रण में बड़े वेग के साथ अपने शत्रु सात्यकि पर फैंकी ॥११॥

तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम् ॥१२॥
सात्यकिः समरे राजन्द्विधा चिच्छेद सायकैः।
ततः पपात सहसा महोल्केव हतप्रभा ॥१३॥

हे राजन्! राजा भगदत्त की बाहुओं द्वारा बड़े, बल के साथ फैंकी हुई शक्ति को अपने ऊपर आती देखकर सात्यकि ने अपने बाणों से काट कर उसे रणभूमि में काट गिराया। वह शक्ति, कान्ति हीन होकर महान् उल्कापात की भांति एक दम गिर गई ॥१२-१३॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते।
महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥१४॥

हे विशाम्पते! राजा भगदत्त की इस शक्ति को इस प्रकार निष्फल होती देखकर तुम्हारे पुत्र, राजा दुर्योधन, बड़ी रथों की सेना लेकर सात्यकि को रोकने लगे ॥१४॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम्।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातॄन्सर्वानुवाच ह ॥१५॥

वृष्णिवीरों के महारथी, सात्यकि को इस प्रकार घिरा हुआ देखकर, राजा दुर्योधन अत्यन्त आवेग में भर गए और अपने सारे भाइयों से बोले ॥१५॥

तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि ।
न जीवन्प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद्रथव्रजात् ॥१६॥
तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्बलम् ।

हे कुरुवंशवीरों ! अब तुम लोग ऐसा करो, जिससे इस युद्ध में सात्यकि, इस महान् रथ सेना से निकल कर जीवित न जासके ॥१६॥

तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ॥१७॥
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।

इन महारथी भ्राताओं ने राजा दुर्योधन के वचन को ग्रहण करके भीष्म पर आक्रमण की तय्यारी करने वाले सात्यकि से युद्ध करना आरम्भ किया ॥१७॥

काम्बोजराजो बलवान्वारयामास संयुगे ॥१८॥
आर्जुनिं नृपतिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।

बलवान काम्बोजराज सुदक्षिण भी, अपने झुके पर्व वाले बाणों से अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को बींध कर रण में रोकने लगा ॥१८॥

पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन्विव्याध तं नृप ॥१९॥
सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चाऽस्य नवभिरिच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ॥

हे राजन् ! इस युद्ध में राजा सुदक्षिण ने चौसठ बाण एक बार और पांच बाण एक बार छोड़ कर अभिमन्यु को बार २ आहत कर किया तथा नौ बाण छोड़कर अभिमन्यु के सारथि को भी पीड़ित किया, क्योंकि आज सब का अभिप्राय भीष्म के प्राणों को बचाए रखने का था ॥१९-२०॥

तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ।
यदाऽभ्यधावद्गाङ्गेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः ॥२१॥

इस समय दोनों सेना के समागम में बड़ा ही घमसान युद्ध हुआ, जब कि-शत्रु विजयी शिखण्डी ने गङ्गा-पुत्र भीष्म पर आक्रमण किया ॥२१॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥२२॥

महारथी राजा विराट और द्रुपद विशाल कौरव सेना के रोकने में लगे हुए थे । इन्होंने भी बड़े आवेश में आकर भीष्म पर आक्रमण करने की तय्यारी की ॥२२॥

अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समियाद्रथसत्तमः ।
ततः प्रववृते युद्धं तयोस्तस्य च भारत ॥२३॥

महारथी अश्वत्थामा, क्रुद्ध होकर इनके सामने युद्ध के लिए पहुंचा । हे भारत ! अब अश्वत्थामा का इन दोनों वृद्ध राजा विराट और द्रुपद के साथ युद्ध होने लगा ॥२३॥

विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परन्तप ।
यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥२४॥
द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा ।
गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौ ॥२५॥

हे परन्तप ! युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पर राजा विराट ने दश तीक्ष्ण बाण छोड़े । यह महाधनुर्धर अश्वत्थामा, इनके रोकने में बड़ा ही प्रयत्न कर रहा था । द्रुपद ने भी अश्वत्थामा के ऊपर तीन तीक्ष्ण बाण चलाए । ये दोनों महाबली राजा, इकट्ठे ही गुरुपुत्र अश्वत्थामा पर प्रहार करने लगे ॥

अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध बहुभिः शरैः ।
विराटद्रुपदौ वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥२६॥

अश्वत्थामा ने भी भीष्म पर आक्रमण करने में सहायता पहुंचाने वाले राजा विराट और द्रुपद को अनेक बाणों से क्षतविक्षत कर दिया ॥२६॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत् ।
यद् द्रौणिसायकान्घोरान्प्रत्यवारयतां युधि ॥२७॥

इस युद्ध में यह इन दोनों वृद्धों का बड़ा ही आश्चर्यमय कार्य देखा गया; कि जिन तीक्ष्ण बाणों को अश्वत्थामा छोड़ता था, उनको ये दोनों बीच में ही निष्फल कर देते थे ॥२७॥

सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् ॥२८॥

आगे बढ़ने की चेष्टा करने वाले सहदेव को कृपाचार्य ने इस तरह घेर लिया, जैसे-एक मदोन्मत्त हाथी दूसरे मत्त हाथी को रोक लेता है ॥२८॥

कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम् ।
आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः ॥२९॥

कृपाचार्य ने माद्रीपुत्र महारथी सहदेव को अपने सुवर्ण जटित सत्तर बाण शीघ्रता के साथ मार कर आहत कर दिया ।२९।

तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥३०॥

माद्री-पुत्र सहदेव ने भी अपने बाणों से कृपाचार्य का धनुष काट गिराया और धनुष हीन कृपाचार्य को बाणों से क्षत-विक्षत कर दिया ॥३०॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् ।
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः ॥३१॥
आजघानोरसि क्रुद्ध इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।

अब कृप ने युद्ध के भार के सहने में समर्थ दूसरा धनुष उठाया और इस धनुष पर दश तीखे बाण चढ़ाकर माद्री-पुत्र सहदेव की छाती में क्रोधाविष्ट होकर बड़ी प्रसन्नता के साथ भीष्म के प्राणों की रक्षा के निमित्त मारे ॥३१।

तथैव पाण्डवो राजञ्छारद्वतममर्षणम् ॥३२॥
आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकांक्षया ।
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं भयावहम् ॥३३॥

हे राजन् ! इसी प्रकार पाण्डु-पुत्र सहदेव ने भी भीष्म के वध की आकांक्षा से प्रेरित होकर मार्ग रोकने वाले असहनशील कृपाचार्य की छाती में क्रोध-पूर्वक बाण मारे। इन दोनों का बड़ा भयानक घोर युद्ध होने लगा ॥३२-३३॥

नकुलं तु रणे क्रुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः ।
विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन्भीष्मं महाबलम् ॥३४॥

शत्रु-नाशक धृतराष्ट्र सुत विकर्ण ने क्रोधाविष्ट होकर रण में महाबली भीष्म की रक्षा के निमित्त साठ बाण छोड़कर नकुल का मार्ग रोका ॥३४॥

नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता ।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ॥३५॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र विकर्ण ने नकुल को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया, तो इसने भी सतहत्तर बाण छोड़कर अपने तीक्ष्ण बाणों से विकर्ण को व्याकुल कर दिया ॥३५॥

तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परन्तपौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥३६॥

भीष्म के वध और रक्षा के उद्देश्य से ये दोनों शत्रु विजयी वीर, नकुल और विकर्ण अपने २ अभिप्राय के अनुसार गोष्ठ में शक्ति शाली वृषों की भांति परस्पर घोर प्रहार कर रहे थे ॥३६॥

घटोत्कचं रथे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम् ।
दुर्मुखः समरे प्रायाद्भीष्महेतोः पराक्रमी ॥३७॥

एक ओर राक्षसराज घटोत्कच भी तुम्हारी सेना का वध करता हुआ आगे बढ़ रहा था। भीष्म के जीवन की रक्षा के लिए पराक्रमी दुर्मुख इसके सन्मुख पहुंचा ॥३७॥

हैडिम्बस्तु रणे राजन्दुर्मुखं शत्रुतापनम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥३८॥

हे राजन ! हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच ने शत्रुतापी दुर्मुख के वक्षस्थल में झुके पर्व वाले बाण से क्रोध-पूर्वक प्रहार किया ॥३८॥

भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः ।
षष्ट्या वीरो नदन्हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि ॥३९॥

महावीर दुर्मुख ने भी अच्छी नोक वाले बाणों से रण में भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को बड़ी प्रसन्नता के साथ गर्जना करते हुए साठ बाणों से आहत किया ॥३९॥

धृष्टद्युम्नं तथा यान्तं भीष्मस्य वधकांक्षिणम् ।
हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः ॥४०॥

महारथी कृतवर्मा ने भीष्म के वध की इच्छा से आगे बढ़ते हुए महारथी सेनापति धृष्टद्युम्न को बड़े वेग से रोका ॥४०॥

हार्दिक्यः पार्षतं चापि विध्वा पञ्चभिरायसैः ।
पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥४१॥

हृदिक पुत्र कृतवर्मा, पांच लोहमय बाण छोड़ कर पर्षतवंश के राजकुमार धृष्टद्युम्न को आहत किया और फिर उसके ऊपर पचास बाण छोड़े, तथा ठहरो ? ठहरो ? इस प्रकार युद्ध के लिए ललकारने लगा ॥४१॥

आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम् ।
तं चैव पार्षतो राजन्हार्दिक्यं नवभिः शरैः ॥४२॥
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ।

हे राजन् ! महाबाहु कृतवर्मा ने महारथी धृष्टद्युम्न को बुरी तरह छेद डाला और धृष्टद्युम्न ने भी नौ बाण छोड़कर कृतवर्मा को आहत कर दिया । ये बाण, बड़े तीक्ष्ण, सीधे जाने वाले और कङ्क-पक्षी के पत्रों से सुशोभित थे ॥४२॥

तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महाहवे ॥४३॥
अन्योन्यातिशये युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः ।

भीष्म के उद्देश्य से दोनों महारथियों में वृत्र और इन्द्र के तुल्य इस रणभूमि में घमसान युद्ध हो रहा था, इस में कभी कोई और कभी कोई अधिक हो जाता था ॥४३॥

भीमसेनं तथा यान्तं भीष्मं प्रति महारथम् ॥४४॥
भूरिश्रवाऽभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

भीष्म के पास पहुंचने की चेष्टा करने वाले भीम का मार्ग, आगे बढ़ कर भूरिश्रवा ने रोका और ठहरो ? ठहरो ? इस प्रकार वीरता पूर्ण वचनों से भीम को ललकारा ॥४४॥

सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे ॥४५॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे ।

सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने भीम के वक्षस्थल में सुवर्ण-जटित एक तीक्ष्ण बाण मारा ॥४५॥

उरःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥४६॥
स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम ।

हे नृपतिश्रेष्ठ ! वक्षस्थल में गड़े हुए इस बाण से प्रतापी भीमसेन, इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे—देवों के सेनापति, स्कन्द की शक्ति से पूर्वकाल में क्रौंच पर्वत सुशोभित दिखाई दिया था ॥४६॥

तौ शरान्सूर्यसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥४७॥
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ ।

ये दोनों वीर श्रेष्ठ, भीमसेन और भूरिश्रवा, सूर्य के सदृश तीक्ष्ण किरणों वाले, कारीगर या यन्त्र विशेष द्वारा तीक्ष्ण किये हुए बाणों को एक दूसरे पर क्रोध के साथ छोड़ने लगे ॥४७॥

भीमो भीष्मवधाकांक्षी सौमदत्तिं महारथम् ॥४८॥
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम् ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे ॥४९॥

भीष्म के वध की अभिलाषा से भीमसेन, महारथी सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा पर तथा भीष्म के विजय का आकांक्षी भूरिश्रवा, भीमसेन पर प्रहार करने लगे। ये दोनों बराबर के प्रहार प्रतिप्रहार करके रण में युद्ध कर रहे थे ॥४८-४९॥

युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम् ।
भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत् ॥५०॥

कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर भी भीष्म के पास पहुंचने का प्रयत्न कर रहे थे। इनके पास बहुत बड़ी सेना थी, परन्तु द्रोणाचार्य ने इनको भी बीच में ही रोक लिया ॥५०॥

द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।
श्रुत्वा प्रभद्रका राजन्समकम्पन्त मारिष ॥५१॥
सा सेना महती राजन्पाण्डुपुत्रस्य संयुगे ।
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात्पदम् ॥५२॥

हे राजन् ! इस समय पाण्डुपुत्र के साथ जो विशाल सेना भीष्म के पास जाने की बड़ी चेष्टा कर रही थी, द्रोणाचार्य ने उसे वहीं रोक दिया और वह एक पद भी आगे न बढ़ सकी ॥५२॥

चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर ।
चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥५३॥

हे जनेश्वर ! भीष्म की और बढ़ने की चेष्टा करने वाले महारथी क्रोध-पूर्ण चेकितान को तुम्हारे पुत्र चित्रसेन ने बड़े वेग से रोका ॥५३॥

भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनः पराक्रमी ।
चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ।।५४।।

हे भारत ! यह पराक्रमी तुम्हारा पुत्र चित्रसेन, भीष्म के जीवन की अभिलाषा से अपनी सारी शक्ति लगा कर चेकितान से युद्ध करने लगा ।।५४।।

तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत् ।
तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ।।५५।।

इसी तरह चेकितान ने भी चित्रसेन को घेर लिया और उन दोनों का वहीं घोर युद्ध होने लगा ।।५५।।

अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत ।
विमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्द ह ।।५६।।

हे भारत ! अर्जुन के रोकने की तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने बड़ी ही चेष्टा की, परन्तु वह तुम्हारे पुत्र को रण से विमुख करके सेना का मर्दन करने लगा ।।५६।।

दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत् ।
कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत ।।५७।।

हे भारत ! दुःशासनने अपनी पूर्ण शक्तिका प्रयोग करके अर्जुन को आगे बढ़ने से रोकना चाहा, क्योंकि वह भीष्म और अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता में था ।।५७।।

सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव वाहिनी ।
लोड्यते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥५८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

हे भारत ! इस प्रकार जहां तहां पाण्डवों के महारथियों ने तुम्हारे पुत्र की सेना का विध्वंस उड़ा दिया और उन महारथियों ने सारी सेना को दही की भांति मथ डाला ॥५८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में द्वन्द्व युद्ध का
एकसौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एकसौ बारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच

अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः ।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥१॥
विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूथिनीम् ।
पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥२॥

निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान् ।
प्रतपन्तमनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! मदोन्मत्त हाथी के समान पराक्रमी, महाधनुर्धर, वीर, मत्तगजराज के रोकने में समर्थ विशाल धनुष को लेकर बार २ कँपाते हुए तथा पाण्डवों की सेना को तितर बितर और आलोडित करते हुए, नरश्रेष्ठ, महाबली, युद्ध के सारे निमत्तों के ज्ञाता, वीर्यवान् द्रोणाचार्य, पाण्डवों की सेना को पीड़ित करने वाले अपने पुत्र अश्वत्थामा से बोले ॥१-३॥

अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः ।
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥४॥

हे तात ! यह वही दिन आ पहुंचा है, जिसमें महाबली अर्जुन रण में भीष्म के वध करने का घोर प्रयत्न करने वाला है ॥४॥

उत्पतन्ति हि मे बाणा धनुः प्रस्फुरतीव च ।
योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः॥५॥

मेरे बाण निकल २ कर बाहर हो रहे हैं। धनुष फड़कता है। सारे अस्त्र शस्त्र भी प्रयोग चाहते हैं। इस समय मैं बड़े ही क्रूर कर्म (घोरयुद्ध) करने की वांच्छा कर रहा हूं ॥५॥

दिक्ष्वशान्तानि घोराणि व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।
नीचैर्गृध्रा निलीयन्ते भारतानां चमूं प्रति॥६॥

दिशाएँ अशान्त और घोर रूप में दिखाई दे रही है । मृग और पक्षी अशुभ बोलते हैं । नीचे आ २ कर भरतवंशज क्षत्रियों की सेना में गीध घुस रहे हैं ॥६॥

नष्टप्रभ इवाऽऽदित्यः सर्वतो लोहिता दिशः ।
रसते व्यथते भूमिः कम्पतीव च सर्वशः ॥७॥

सूर्य का तेज नष्ट सा हो रहा है । सारी दिशाएँ लाल पड़ गईं । पृथिवी, शब्द करती हुई सी पीड़ित हो रही है और सब ओर से कांप सी रही है ॥७॥

कङ्कगृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः ।
शिवाश्चैवाऽशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥८॥

कङ्क गृध्र और बगुले वार २ शब्द करते हैं तथा अशुभ सूचक गीदड़ियां बड़ा भय सूचित कर रही हैं ॥८॥

पपात महती चोल्का मध्येनाऽऽदित्यमण्डलात् ।
सकबन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥९॥

सूर्य मण्डल से बड़ा भारी उल्कापात होने लगा । राहु के साथ परिघ (योग-विशेष) सूर्य को घेर कर स्थित हो रहा है ॥९॥

परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत् ।
वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥१०॥

सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर ऐसा मण्डल हो जाता है, जिससे महाभय की सूचना मिल रही है और राजाओं के विनाश का द्योतक प्रतीत होता है ॥१०॥

देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः ।
कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च ॥११॥

कुरुवंश के देवता, अपने देवालयों में स्थित हुए, कांपते, हँसते, नाचते और रोते हैं ॥११॥

अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम् ।
अवाक्शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः ॥१२॥

ग्रह दाहिनी ओर होकर सूर्य को अशुभ चिन्हों से युक्त बना रहे हैं और भगवान् चन्द्रमा भी अपने दोनों कोटियों (किनारों) को नीचे करके उदित होते हैं ॥१२॥

वपूंषि च नरेन्द्राणां विगताभानि लक्षये ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः ॥१३॥

मैं धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों की सेना में राजाओं को तेजहीन-सा देख रहा हूं। ये कितने भी सुसज्जित होते हैं, परन्तु सुशोभित नहीं दिखाई देते ॥१३॥

सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान् ।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥

दोनों सेनाओं के मध्य में केवल श्रीकृष्ण के शंख पाञ्चजन्य और अर्जुन को गाण्डीव धनुष की ही महती ध्वनि सब ओर सुनाई देती है ॥१४॥

ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे ।
अपास्याऽन्यान्रणे योधानभ्येष्यति पितामहम् ॥१५॥

अब तो यही प्रतीत होता है, कि रण में उत्तम २ अस्त्रों को लेकर अर्जुन सारे अन्य कौरव वीरों को इधर उधर हटा कर निश्चय भीष्म के पास पहुँच कर रहेंगे ॥१५॥

हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः ।
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥१६॥

हे महाबाहो ! भीष्म और अर्जुन के भविष्य में होने वाले संग्राम का ध्यान करने से मेरे रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं और मन बड़ा ही व्यथित होता है ॥१६॥

तं चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम् ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्याऽऽयोधनं गतः ॥१७॥

आज छल प्रपञ्च में कुशल--क्रूर कर्म करने में नहीं चूकने वाले पाञ्चाल राजकुमार शिखण्डी को आगे करके रण में अर्जुन भीष्म के सन्मुख युद्ध के लिए पहुँच गया है ॥१७॥

अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनःपुमान् ॥१८॥

भीष्म ने यह प्रतिज्ञा करली है, कि मैं शिखण्डी को नहीं मारूँगा, क्योंकि विधाता ने प्रथम शिखण्डी को स्त्री बनाया था और फिर दैवगति से यह पुरुष होगया ॥१८॥

अमाङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः ।
न चाऽमङ्गलिके तस्मिन्प्रहरेदापगासुतः ॥१९॥

गुरू द्रोणाचार्य का भीषण रण संग्राम

महाभारत द्रोणपर्व अ० १६ । ३७ पृष्ठ ६६४

यज्ञसेन (द्रुपद) का महाबली पुत्र शिखण्डी शिष्टाचार हीन अमाङ्गलिक ध्वजा रखता है और मङ्गलाचार से रहित ध्वजा वाले नीच पुरुष पर गङ्गापुत्र भीष्म प्रहार नहीं करते हैं ॥१६॥

एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम् ।
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥२०॥

इन सारी बातों को सोच कर मेरी बुद्धि अत्यन्त चक्कर खारही है। अब रण में समुद्यत हुआ अर्जुन, कुरुवृद्ध भीष्म को घेर रहा है ॥२०॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चाऽर्जुनसङ्गतः ।
मम चाऽस्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् ॥२१॥

राजा युधिष्ठर का क्रोध, भीष्म का अर्जुन के साथ संग्राम और मेरे अस्त्रों का निकल २ कर पड़ना—यह सब निश्चय प्रजा के अमङ्गल के लिए है ॥२१॥

मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥२२॥

अर्जुन बड़ा मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्र कुशल, शीघ्रता-कारी, दूर तक बाण मार देने वाला, दृढ़ धनुषधारी और सारे युद्ध के निमित्तों का जानने वाला है ॥२२॥

अजेयः समरे चाऽपि देवैरपि सवासवैः ।
बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥२३॥

विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
तस्य मार्गं परिहरन्द्रुतं गच्छ यतव्रत ॥२४॥

यह अर्जुन, युद्ध में इन्द्रसहित देवों से भी दुर्जय है। यह बड़ा बलवान्, बुद्धिमान् क्लेश सहिष्णु, महारथी वीर है। यह सदा रण में विजय प्राप्त करता रहा है। इसके पास बड़े २ भयानक अस्त्रों का समूह है। हे व्रतशील ! पुत्र ! तुम उसका मार्ग रोकने के लिए शीघ्रता से जाओ ॥२३-२४॥

पश्याऽद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत् ।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥२५॥
कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च ॥२६॥
प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः ।
वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना ॥२७॥

हे पुत्र ! देखना, आज इस महारण में बड़ी भारी मार काट होगी। अर्जुन, सुवर्ण से चित्रित बड़े २ उत्तम २ कवचों को अपने झुके पर्व वाले बाणों से काट देगा तथा ध्वजाओं के अग्र-भाग और तोमर एवं धनुषों को काट गिरावेगा। आज किरीट धारी अर्जुन कुपित हो रहा है। वह तीक्ष्ण चमकते हुए प्रास, सुवर्ण से उज्ज्वल शक्ति तथा हाथियों पर लगे हुए झंडों को काट २ कर रण भूमि में बिछा देगा ॥२५-२७॥

नाऽयं संरक्षितुं कालः प्राणान्पुत्रोपजीविभिः ।
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥२८॥

हे पुत्र ! राजा के अनुचरों को आज प्राणोंके मोह करने का समय नहीं है । अब तुम भी यश और विजय का ध्यान करके स्वर्ग जाने तक को उद्यत हो जाओ ॥२८॥

रथनागहयावर्तां महाघोरां सुदुर्गमाम् ।
रथेन संग्रामनदीं तरत्येष कपिध्वजः ॥२९॥

आज रथ, हाथी, और अश्वों के आवर्तों से दुर्गम, महाघोर संग्राम रूपी नदी को अर्जुन अभी रथ रूपी नौका से तैर कर पार निकल जाने वाला है ॥२९॥

ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
इहैव दृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥३०॥

इस राजा युधिष्ठिर में ब्राह्मणों की भक्ति, मन की विजयता, दान, तप और बहुत ऊंचा आचरण का बल है । इन्हीं धर्मराज के भ्राता अर्जुन भी ऐसे ही हैं ॥३०॥

भीमसेनश्च बलवान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥३१॥

बलवान भीमसेन तथा पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव भ्राता भी सब भांति से योग्य है । इस पर भी इनकी सहायता में तय्यार वृष्णिवंशोद्भव श्रीकृष्ण इनका सञ्चालन कर रहे हैं ॥३१॥

तस्यैष मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतीम् ॥३२॥

तप से क्लेशित उसी धर्मराज के शोक से उत्पन्न हुआ यह कोप आज मूर्ख कौरवों की सेना को दग्ध कर रहा है ॥३१॥

एष सन्दृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
दारयन्सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥३३॥

श्रीकृष्ण के आश्रम से आगे बढ़ता हुआ अर्जुन, दिखाई दे रहा है। यह सब ओर से कौरवों की सेना को चीरता फाड़ता जा रहा है ॥३३॥

एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना ।
महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव महाजलम् ॥३४॥

मुकुटधारी अर्जुन द्वारा व्याकुल की हुई कौरवसेना इस प्रकार दिखाई दे रही है, जैसे-बड़ी २ तरङ्गों से युक्त विशाल जलाशय को कोई बड़ा मगर (जलजन्तु) क्षोभित कर रहा हो ॥३४॥

हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे ।
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥३५॥

तुम देख नहीं रहे हो, कौरव सेना में कैसा हाहाकार और कोलाहल सुनाई दे रहा है। अब तुम तो पाञ्चालपुत्र शिखण्डी के सन्मुख पहुंचो और मैं राजा युधिष्ठिर के सन्मुख जाता हूं ॥३५॥

दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्याऽमिततेजसः ।
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥३६॥

अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिर के व्यूह में प्रवेश का छिद्र पाना बड़ा ही कठिन कार्य है। यह व्यूह तो समुद्र की कुक्षि के सदृश भयङ्कर है, जिसको सब ओर से महारथियों ने घेर रखा है ॥३६॥

सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥३७॥

महारथी सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन और नकुल सहदेव, मनुजेश्वर धर्मराज की रक्षा कर रहे हैं ॥३७॥

उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्गतः ।
एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीय इव फाल्गुनः ॥३८॥

अभिमन्यु, विष्णु (कृष्ण) के सदृश श्यामवर्णधारी और शालवृक्ष के समान ऊंचा है। यही अर्जुन के तुल्य पराक्रमी वीर अभिमन्यु सेना के आगे २ चल रहा है ॥३८॥

उत्तमास्त्राणि चाऽऽधत्स्व गृहीत्वा च महद्धनुः ।
पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥३६॥

अब तुम अच्छे २ अस्त्र ले लो अच्छा सा धनुष उठाओ और महारथी शिखण्डी के सन्मुख पहुंचो तथा भीमसेन से युद्ध करो ॥३६॥

को हि नेच्छेत्प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः ।
क्षत्रधर्मं तु समप्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम् ॥४०॥

कौन पुरुष अपने पुत्र को सैकड़ों वर्ष जीवित देखना नहीं चाहता है, परन्तु क्षत्रिय के धर्म को देखकर मैं तुमको इस कठिन कार्य में प्रवृत्त कर रहा हूं ॥४०॥

एष चाति रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् ।
युद्धेषु सदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्रोणाश्वत्थामसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

यह भीष्म भी युद्ध में यमराज और वरुण के सदृश पराक्रमी है, जो रण में पाण्डवों की विशाल सेना को अग्नि तुल्य भस्म कर रहा है ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में द्रोण और अश्वत्थामा के सम्वाद का एकसौ बारहवां अध्याय समाप्त हुआ

एकसौ तेरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥१॥
चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः ।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! राजा भगदत्त, कृपाचार्य, कृतवर्मा; अवन्तीराजकुमार विन्द और अनुविन्द, सिन्धुराज जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण-ये दश तुम्हारे महारथी भीमसेन से लड़ने लगे ॥१-२॥

महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
भीष्मस्य समरे राजन्प्रार्थयाना महद्यशः ॥३॥

हे राजन् ! इन महारथियों के साथ अनेक देश के रहने वाली बहुत सी सेना थी । सब लोग इस युद्ध ममें भी षिपतामह की विजय चाह रहे थे ॥३॥

शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥४॥
चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयन् ॥५॥

हे आर्य ! शल्य ने नौ, कृतवर्मा ने तीन, कृपाचार्य ने भी नौ, चित्रसेन, विकर्ण और राजा भगदत्त ने भीमसेन को दश दश बाणों से आहत किया ॥४-५॥

सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥६॥
दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ।

सिन्धुराज जयद्रथ ने तीन, अवन्तीराजकुमार विन्दानुविन्द ने पांच पांच तथा दुर्मर्षण ने बीस बाण मार कर भीमसेन को आहत कर दिया ॥६॥

स तान्सर्वान्महाराज राजमानान्पृथक् पृथक् ॥७॥
प्रवीरान्सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान्महारथान् ।
जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥८॥

हे महाराज ! शत्रुविजयी, पाण्डु-पुत्र महावीर भीमसेनने भी उन सारे तेज से देदीप्यमान, सब संसार में विख्यात वीर कौरव पक्ष के महरथियों को रण में पृथक् बाण मार कर आहत किया।

सप्तभिः शल्यमाविध्यत्कृतवर्माणमष्टभिः ।
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥९॥

हे भारत ! भीमसेन ने सात बाण मार कर शल्य और आठ से कृतवर्मा को घायल कर दिया तथा कृपाचार्य का मध्य में से बाणों सहित धनुष काट गिराया ॥९॥

अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥१०॥

धनुष के काट देने के अनन्तर भीमसेन ने फिर कृपाचार्य को सात बाण मार कर आहत किया और विन्द तथा अनुविन्द के भी तीन २ बाण मारे ॥१०॥

दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः ।
विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥११॥
विध्वा भीमोऽनदद्धृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः ।

दुर्मर्षण के बीस, चित्रसेन के पांच, विकर्ण के दश, जयद्रथ के पांच बाण मार कर भीमसेन गर्जना करने लगा और इसी मध्य में उसने फिर सिन्धुराज जयद्रथ के तीन बाण मार दिए ॥११॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥१२॥
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः ।

अब महारथी कृपाचार्य ने दूसरा विशाल धनुष उठाया और आवेश में भर कर भीमसेन को दश तीक्ष्ण बाण मार कर बींध दिया ॥१२॥

स विद्धो दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपः ॥१३॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे ॥१४॥

हे महाराज ! तोत्र दण्ड से आहत हुए हाथी की भांति इन बाणों से आहत होकर प्रतापी भीमसेन क्रोध में भर गया और

उसने बहुत से बाण छोड़ कर गौतमवंशज कृपाचार्य को बुरी तरह घायल कर दिया ॥१३-१४॥

सैन्धवस्य तथाऽश्वांश्च सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥१५॥

हे राजन्! कालान्तक के समान पराक्रमी भीमसेन ने तीन बाण छोड़ कर सिन्धुराज जयद्रथ के अश्व और सारथि को मृत्यु लोक भेज दिया ॥१५॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
शरांश्चिक्षेप निशितान्भीमसेनस्य संयुगे ॥१६॥

महारथी जयद्रथ भी अश्वों के मारे जाने से रथ से शीघ्र ही कूद पड़ा और रण में तीक्ष्ण बाण फेंक २ कर भीमसेन को आहत करने लगा ॥१६॥

तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिष ।
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥१७॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! आर्य ! महावीर सिन्धुराज जयद्रथ के धनुष को दो तीक्ष्ण बाण मार कर भीम ने मध्य-भाग में से खण्डित कर डाला ॥१७॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥१८॥

हे राजन्! जब उसका धनुष कट गया और सारथि तथा अश्व मारे गए स्वयं रथविहीन हो गया-तो वह झपट कर चित्रसेनके रथ पर जा चढ़ा ॥१८॥

अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः ।
महारथाञ्शरैर्विध्वा वारयित्वा च मारिष ॥१९॥
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः ।
तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ॥२०॥

हे आर्यगुणसम्पन्न! राजन्! पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने इस रण में बड़े ही अद्भुत कर्म कर दिखाए। इसने अपने बाणों से तुम्हारे सारे महारथियों को बींध कर वहीं रोक दिया और सारे महावीरों को देखते २ राजा जयद्रथ को रथहीन कर दिया। इसके पराक्रम को इस समय मद्रराज शल्य भी नहीं सह सका।

स सन्धाय शरांस्तीक्ष्णान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
भीमं विव्याध समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥२१॥

मद्रराज शल्य ने कारीगर द्वारा तीक्ष्ण किये हुए बाण उठाकर भीमसेन के ऊपर छोड़े और कहा कि जरा ठहरो? ठहरो? ॥२१॥

कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥२२॥
दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् ।
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिन्दमाः ॥२३॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, वीर्यवान् राजा भगदत्त, अवन्ती राजकुमार विन्दानुविन्द, चित्रसेन सिन्धुराज जयद्रथ ने शल्य के बचाने के निमित्त बड़ी शीघ्रता से भीमसेन पर प्रहार करने लगे। ये सारे ही महारथी शत्रु के पराजित कर देने में समर्थ थे ॥२२-२३॥

स च तान्प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः ॥२४॥

भीमसेन ने भी इन सब के पांच २ बाण मारे और शल्य के एक बार सत्तर और दूसरी वार दश बाण मारे ॥२४॥

तं शल्यो नवभिर्भित्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि ॥२५॥

राज शल्य ने भी भीमसेनके नौ बाण मार कर दुबारा भी पांच बाण मारे और सारथि के मर्मस्थान में बाण मारकर उसे बुरी तरह घायल कर दिया ॥२५॥

विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान्।
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥२६॥

प्रतापी भीमसेन अपने सारथि विशोक को पीड़ित देखकर क्रोधमें भर गया और उसने तीन बाण राजा शल्य के बाहु और छाती में मारे ॥२६॥

तथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
ताडयामास समरे सिंहवद्विननाद च ॥२७॥

इसी तरह अन्य भी महाधनुर्धर वीरों को सीधे जाने वाले तीन २ बाण रण में मार कर भीमसेन ने बड़े उच्चस्वर में सिंह की भांति गर्जना की ॥२७॥

ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम् ।
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥२८॥

ये कौरवपक्ष के महाधनुर्धर महारथी भी बड़े सावधान थे। इन्होंने ने भी पैनी धारवाले बाणों से युद्धकोविद पाण्डुपुत्र भीमसेन के मर्मस्थानों में प्रहार किया ॥२८॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे ।
पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाऽम्बुदैः ॥२९॥

इन्होंने भीमसेन को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया, परन्तु वह बहुत अधिक व्यथित नहीं हुआ। वह तो मेघों द्वारा जल धारा बरसाने के समय पर्वत की भाँति अचल ही खड़ा रहा ॥२९॥

स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः ।
मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विध्वा महायशाः ॥३०॥

पाण्डवों का महारथी यशस्वी भीम, इस समय क्रोध में भर चुका था। इसने तीन बाण मार कर मद्रराज को अत्यन्त आहत कर दिया ॥३०॥

कृपं च नवभिर्बाणैर्भृशं विध्वा समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषं शतैराजौ राजन्विव्याध सायकैः ॥३१॥

हे राजन् ! इस रण में कृपाचार्य को नौ बाणों से बींध कर राजा भगदत्त को भीम ने सौ बाणों से क्षतविक्षत कर दिया ।।३१।।

ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ।।३२।।

इसके अनन्तर यदुवंशी महावीर कृतवर्मा के बाण सहित धनुष को भीमसेन ने अपने छुरे के समान तीक्ष्ण बाण से बड़े वेग के साथ काट गिराया ।।३२।।

तथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परन्तपः ।।३३।।

शत्रुतापी कृतवर्मा ने भी दूसरा धनुष उठाया और उससे एक तीक्ष्ण बाण भीमसेन के भ्रुवों के मध्य में ललाट पर मारा ।।३३।।

भीमस्तु समरे विध्वा शल्यं नवभिरायसैः ।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ।।३४।।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीन्रथान् ।
तेऽपि तं समरे राजन्विव्यधुर्निशितैः शरैः ।।३५।।

हे राजन् ! भीमसेन ने भी रणाङ्गण में लोहमय नौ बाणों से शल्य, तीन से राजा भगदत्त और आठ बाणों से कृतवर्मा तथा दो २ बाणों से अन्य कृपाचार्य आदि महारथियों को छेद डाला। इन महारथियों ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन पर पर्याप्त प्रहार किए।।३४-३५।।

स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः ।
मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान्विचचार गतव्यथः ॥३६॥

यद्यपि सम्पूर्णशस्त्रधारी कौरव के महारथियों ने भीमसेन को बहुत ही क्षत-विक्षत कर दिया था, परन्तु यह महावीर भी व्यथा का अनुभव न करके रणाङ्गण में उसी तरह घूमता रहा। इसने इन वीरों की तृण के तुल्य भी अपेक्षा (परवा) न की ॥३६॥

ते चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशिताञ्शरान् ।
प्रेषयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३७॥

ये महारथिश्रेष्ठ भी, भीमसेन के ऊपर तीक्ष्ण २ बाण बड़ी सावधानी से लगातार सैकड़ों हज़ारों की संख्या में मारते ही रहे।

तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते ॥३८॥

हे महामते ! इसी समय महारथी भगदत्त ने बड़े वेगवाली महाशक्ति भीमसेन के ऊपर रण भूमि में चलाई, जो सुवर्ण के दण्ड से सुशोभित थी ॥३८॥

तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे ॥३९॥

हे राजन् ! महाभुजधारी सिन्धुराज राजा जयद्रथ ने तोमर, पट्टिश नामक शस्त्र चलाए, कृपाचार्य ने शतघ्नी का प्रयोग किया और शल्य ने रणभूमि में बाण का प्रहार किया ॥३९॥

अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥४०॥

इसी तरह अन्य भी महाधनुर्धर महारथियों ने भीमसेन को लक्ष्य करके बड़े ओज के साथ पांच २ बाण मारे ॥४०॥

तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणाऽनिलात्मजः ।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥४१॥

वायु-पुत्र भीम ने क्षुरे के तुल्य धारवाले तीक्ष्ण तीन बाणों से राजा जयद्रथ के तोमर और पट्टिश शस्त्र को तिल की दण्डी के तुल्य काट गिराया ॥४१॥

स बिभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महारथः ॥४२॥
शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।

कङ्कपक्षी के पंख से सुशोभित नौ बाणों से कृप की शतघ्नी और मद्रराज के बाण को महारथी भीम ने काट कर राजा भगदत्त की फैंकी शक्ति को भी एक दम काट डाला ॥४२॥

तथेतराञ्शरान्घोराञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४३॥
भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत् ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥४४॥

इसी तरह झुके पर्ववाले अपने बाणों से अन्य कौरव महारथियों के बाणों को रण में प्रशंसा पाने वाले भीम ने एक २

बाण के तीन टुकड़े कर डाले तथा उन सारे महारथियों के तीन २ बाण मारे ॥४३-४४॥

ततो धनञ्जयस्तत्र वर्त्तमाने महारणे।
आजगाम रथेनाऽऽजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ॥४५॥
निघ्नन्तं समरे शत्रून्योधयानं च सायकैः।

महारथी भीम को इस युद्ध में फँसा हुआ देख कर अपने रथ को आगे बढ़ा कर इस घोर संग्राम के स्थान पर धनञ्जय अर्जुन पहुँचे, जहाँ पर भीमसेन रण में शत्रुओं का नाश कर रहा था और अपने बाणों से भीषण युद्ध में प्रवृत्त था ॥४५॥

तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीच्य पाण्डवौ ।४६।
न शशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः।

अब इस स्थान पर दोनों पाण्डु-पुत्र अर्जुन और भीम को इकट्ठे ही देख कर तुम्हारे महारथी वीरों ने अपने विजय की आशा छोड़ दी ॥४६॥

अथाऽर्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान् ॥४७॥
भीष्मस्य निधनाकांत्ती पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
आससाद रणे वीरांस्तावकान्दश भारत ॥४८॥

हे भारत! अब तुम्हारे दशों महारथियों से युद्ध करनेवाले भीम को देख कर तुम्हारे पत्त के दशों वीरों के सन्मुख अर्जुन पहुँचा। यह भीष्म को मारने की इच्छा से शिखण्डी को आगे किये हुए बढ़ा चला आरहा था ॥४७-४८॥

ये स्म भीमं रणे राजन्योधयन्तो व्यवस्थिताः ।
बीभत्सुस्तानथाऽविध्यद्भीमस्य प्रियकाम्यया ॥४६॥

हे राजन् ! इस समय जो तुम्हारे महारथी भीम से युद्ध के निमित्त रणाङ्गण में डटे हुए थे, उनको भीम की सहायता के ध्यान से गिन २ कर अर्जुन, बींधने लगा ॥४६॥

ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ॥५०॥

अब राजा दुर्योधन ने त्रिगतराज सुशर्मा को अर्जुन और भीमसेन के वध के लिए आज्ञा दी ॥५०॥

सुशर्मन्गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः ।
जहि पाण्डुसुतावेतौ धनञ्जयवृकोदरौ ॥५१॥

हे सुशर्मन् ! तुम अपनी विशाल सेना को लेकर शीघ्र इन दोनों पाण्डुपुत्र अर्जुन और भीम का वध करो ॥५१॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य त्रैगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
अभिद्रुत्य रणे भीममर्जुनं चैव धन्विनौ ॥५२॥
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयत ।
ततः प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमसेन-पराक्रमे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

राजा दुर्योधन के वचन सुनकर प्रस्थल नामक देश के स्वामी त्रिगर्तराज सुशर्मा ने आक्रमण करके धनुषधारी भीम और अर्जुन को कई सहस्र रथियों की सेना के साथ सब ओर से जा घेरा। अब अर्जुन का त्रिगर्तराज सुशर्मा के साथ युद्ध होने लगा ॥५२-५३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीमसेन के पराक्रम का एकसौ तेहरवां अध्याय समाप्त हुआ
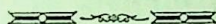
एकसौ चौदहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम्।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१॥
सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अर्जुन ने रण में पहुंच कर अत्यन्त शीघ्र, महारथी मद्रराज शल्य को अपने झुकी पर्व वाले बाणों से पाट दिया तथा त्रिगर्तराज सुशर्मा और कृपाचार्य को तीन २ बाणों से आहत किया ॥१॥

प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम् ॥२॥
चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च।

दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ ॥३॥
एकैकं त्रिभिरानच्र्छत्कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
शरैरतिरथो युद्धे पीडयन्वाहिनीं तव ॥४॥

हे राजेन्द्र ! इस युद्ध में राजा भगदत्त, सिन्धुराज जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण महारथी अवन्ती राजकुमार विन्द और अनुविन्द को अर्जुन ने अपने मोर तथा कङ्क पक्षी के पङ्खों से युक्त फड़फड़ाते तीन २ बाणों से बींध दिया । महारथी अर्जुन ने अपने बाणों से तुम्हारी कौरव सेना को अत्यन्त ही व्यथित कर डाला ॥२-४॥

जयद्रथो रणे पार्थं विध्वा भारत सायकैः ।
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥५॥

हे भारत ! चित्रसेन के रथ पर स्थित राजा जयद्रथ ने इस रण में अपने बाणों से अर्जुन को बींध कर भीमसेन को भी जा बींधा ॥५॥

शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः ।
विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः ॥६॥

हे महाराज ! रथियों में श्रेष्ठ, राजा शल्य और कृपाचार्य ने रण में अपने अनेक मर्म भेदी बाणों से अर्जुन को बींधना आरम्भ किया ॥६॥

चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशाम्पते ।
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः ॥७॥
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष ।

हे विशाम्पते ! चित्रसेन आदि तुम्हारे अन्य पुत्रों ने इस रण में अपने पांच २ तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन और भीष्म को आहत कर दिया ॥७॥

तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥८॥
अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्बलम् ।

भरतवंशश्रेष्ठ, महारथियों में उत्तम, दोनों कुन्तीपुत्र भीमसेन और अर्जुन, रण में त्रिगर्तों की विशाल सेना का वध करनेलगे।

सुशर्माऽपि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः ॥९॥
ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद्बलम् ।

त्रिगर्तराज सुशर्मा ने भी रण में शीघ्रगामी नौ बाण छोड़ कर अर्जुन को बींध दिया। इसके अनन्तर वह बड़े उच्चस्वर से गर्जना करने लगा, जिससे पाण्डवों की विशाल सेना भयभींत हो गई ॥९॥

अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ ॥१०॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणै रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।

इसी तरह अन्य भी कौरव पक्षपाती वीरों ने भीमसेन और अर्जुन को अपने सुवर्ण पुङ्खधारी, सीधे जाने वाले बाणों से छेद डाला ॥१०॥

तेषां च रथिनां मध्ये कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥११॥
क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम् ।
आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव मदोत्कटौ ॥१२॥

उन महारथियों के मध्य में भरतवंशश्रेष्ठ कुन्ती-पुत्र महारथियों में उत्तम, भीमसेन और अर्जुन रण क्रीडा करते हुए ऐसे विचित्र दिखाई देते थे, जैसे-मांसलोलुप मदोत्कट कई सिंह गायों के मध्य में घूम रहे हो ॥११-१२॥

छित्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे ।
पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम् ॥१३॥

ये दोनों वीर भीम और अर्जुन, इस युद्ध में शत्रुओंके अनेक धनुष बाणों को काटते हुए सैकड़ों वीरों के शिर काट २ कर रण भूमि पर बिछाने लगे ॥१३॥

रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः ।
गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥१४॥

इस महायुद्ध में बहुत से रथ टूट गए, सैकड़ों अश्व मारे गए और गजारोहियों के साथ अनेक गज, रणभूमि में गिरा दिये गए ॥१४॥

रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निषूदिताः ।
दृश्यन्ते बहवो राजन्वेपमानाः समन्ततः ॥१५॥

हे राजन् ! अनेक रथी और अश्वारोही प्रहारों से पीड़ित हुए जहां तहां रण भूमि में तड़फड़ाते दृष्टि आते थे ॥१५॥

हतैर्गजपदात्योघैर्वाजिभिश्च निषूदितैः ।
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥१६॥

गज, पदाति और अश्वों के मरे हुए समूह तथा टूटे हुए बहुत से रथों से रण भूमि व्याप्त हो गई ॥१६॥

छत्रैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अंकुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत ॥१७॥

केयूरैरङ्गदैर्हारै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
उष्णीषैर्ऋष्टिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि ॥१८॥

हे भारत ! अनेक छिन्न भिन्न हुए छत्र-कटी हुई ध्वजाएँ, टूटे हुए अंकुश, हाथियों की झूलें के पूर, अङ्गद (बाहुभूषण) हार, मर्दित हुए कम्बल, उष्णीष, (पगड़ी) ऋष्टि (शस्त्र) चामर, व्यजन (पंखा) तथा चन्दन से सुशोभित हुए अनेक राजाओं की कटी हुई भुजाएँ और जंघाओं से रणभूमि व्याप्त हो रही थी ॥१७-१८॥

तत्रतत्राऽपविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी ॥१९॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
शरैः संवार्य तान्वीरान्यज्जघान महाबलः ॥२०॥

इस रण में कुन्ती-पुत्र अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देखा गया, जो इस महाबली ने अपने बाणों से कौरववीरों को रोक कर वहीं मारना आरम्भ कर दिया ॥१९-२०॥

पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम् ।
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः ॥२१॥

हे राजन् ! तुम्हारा महाबली पुत्र दुर्योधन, भीमसेन और अर्जुन का यह सब कुछ पराक्रम देख कर गङ्गा-पुत्र भीष्म के पास पहुंचा ॥२१॥

कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाऽजहुः संयुगं तदा ॥२२॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा सिन्धुराज जयद्रथ, अवन्ती देश के वीर विन्द और अनुविन्द युद्ध में अर्जुन के सन्मुख डटे रहे ॥२२॥

ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः ।
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे ॥२३॥

महाधनुर्धर भीमसेन और महारथी अर्जुन ने कौरवों की घोर सेना को इस रण में बुरी तरह मथ डाला ॥२३॥

ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यबुर्दानि च ।
धनञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः ॥२४॥

अब कौरवपक्ष के राजालोग, मोर-पंख से युक्त हज़ारों अरबों की संख्या में बाण अर्जुन के रथ पर शीघ्र २ छोड़ने लगे ।

ततस्ताञ्शरजालेन सन्निवार्य महारथान् ।
पार्थः समन्तात्समरे प्रेषयामास मृत्यवे ॥२५॥

अर्जुन भी अपने बाणसमूह से इस महारथियों के समूह को रोक कर रण में इधर उधर वीरों को मृत्युलोक भेजने लगे ॥

शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥२६॥

महारथी मद्रराज शल्य, रण में क्रीड़ा करता हुआ अर्जुन के सन्मुख पहुंचा और क्रोधाविष्ट होकर इसने अर्जुन की छाती में झुके पर्व वाले बाण मारे ॥२६॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा हस्तावापं च पञ्चभिः ।
अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि ॥२७॥

अर्जुन ने शल्यका धनुष और करतलत्राण, पांच बाण मार कर काट डाला तथा तीक्ष्ण बाणों से उसके मर्म स्थान को भी बींध दिया ॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥२८॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥२६॥

हे महाराज ! अब मद्रराज शल्य बड़ा ही कुपित हुआ और युद्ध के भार का सह लेने वाला धनुष उठाया, जिससे बड़े आवेश में इसने अर्जुन पर तीन बाणों से प्रहार किया और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के शरीर में पांच बाण मारे तथा भीमसेन की भुजा और छाती में नौ बाणों का प्रहार किया ॥२८-२६॥

ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
दुर्योधनसमादिष्टो तं देशमुपजग्मतुः ॥३०॥

यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ॥३१॥

हे महाराज! अब द्रोणाचार्य और महारथी मगधराज, राजा दुर्योधन की आज्ञा से उस रण स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन और भीमसेन, कौरवों की विशाल सेना को विध्वंस कर रहे थे ॥३०-३१॥

जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥३२॥

हे भरतर्षभ! महावीर जयत्सेन ने रणाङ्गण में भयङ्कर शस्त्रधारी भीमसेन को आठ तीक्ष्ण बाण मार कर बींध डाला ॥३२॥

तं भीमो दशभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥३३॥

भीमसेन ने भी दश बाणों से उसको बींध कर फिर उसके पांच बाण मारे और एक तीक्ष्ण बाण मार कर इसके सारथि को रथ से नीचे गिरा दिया ॥३३॥

उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः।
मागधोऽपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥३४॥

सारथि के मारे जाने पर अश्व उच्छृङ्खल हो गए और वे सारी सेना के देखते २ जयत्सेन को रण भूमि से लेकर बाहर निकल गए ॥३४॥

द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।
विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिरायसैः ॥३५॥

द्रोणाचार्य ने अवसर पाकर भीमसेन को शाण पर तीक्ष्ण किए हुए पैंसठ बाण मार कर आहत किया ॥३५॥

तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे ।
विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत ॥३६॥

हे भारत ! युद्ध में प्रशंसा पाने वाले भीम ने भी अपने पिता के तुल्य पूज्य गुरु द्रोणाचार्य को प्रथम पांच और फिर साठ बाणों से आहत किया ॥३६॥

अर्जुनस्तु सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः ।
व्यधमत्तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथाऽनिलः ॥३७॥

अर्जुन ने भी लोहमय बहुत से बाण छोड़ कर त्रिगर्तराज सुशर्मा को क्षत-विक्षत कर दिया और उसकी सेना को इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर डाला, जैसे-वायु मेघों को उड़ा देता है ॥३७॥

ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः ।
समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥३८॥

इसके अनन्तर भीष्म राजा दुर्योधन और कौशल देश का राजा बृहद्बल, क्रोध में भर कर भीम और अर्जुन पर झपटे ॥३८॥

तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ॥३९॥

इसी तरह शूरवीर पाण्डव, पर्षतवंशोद्भव राजकुमार धृष्ट-द्युम्न, कालोपम मुख फाड़े हुए भीष्म पर झपटे ॥३९॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महारथान् ॥४०॥

शिखण्डी ने जब भीष्म को सम्मुख देखा, तो वह भरतवंशज क्षत्रियों के पितामह भीष्म पर उल्लास के साथ बड़े वेग से झपटा। इसको इस समय महारथी भीष्म से कोई भय नहीं दिखाई दिया।

युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
अयोधयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयैः ॥४१॥

राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी शिखण्डी को आगे करके सारे सृञ्जयों के साथ रण में भीष्म से युद्ध करने लगे ॥४१॥

तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥४२॥

हे राजन् ! इसी तरह तुम्हारे महारथी भी व्रतशील भीष्म को आगे करके शिखण्डी आदि महारथियों से रण में लड़ रहे थे ॥४२॥

ततः प्रववृते युद्धं कौरवाणां भयावहम् ।
तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति ॥४३॥

अब कौरवों का पाण्डवों के साथ भयानक युद्ध होने लगा, जिसमें कौरव भीष्म की विजय का बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे ॥४३॥

तावकानां जये भीष्मो ग्लह आसीद्विशांपते।
तत्र हि द्यूतमासक्तं विजयायेतराय वा ॥४४॥

हे विशाम्पते ! तुम्हारे पुत्रों को युद्ध-रूपी द्यूत में भीष्म ग्लह (दाव) की भांति रखे जा चुके। अब यह युद्ध-द्यूत, विजय या पराजय होने के लिए प्रवृत्त हुआ ॥४४॥

धृष्टद्युम्नस्तु राजेन्द्र सर्वसैन्यान्यचोदयत् ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं मा भैष्ट रथसत्तमाः ॥४५॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न, अपनी सारी सेना को प्रेरणा करने लगा, कि तुम गङ्गापुत्र भीष्म पर आक्रमण कर दो-किसी प्रकार का भय न करो ॥४५॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी।
भीष्मं समभ्ययात्तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥४६॥

अपने सेनापति धृष्टद्युम्न की आज्ञा सुनकर पाण्डवों की सेना प्राणों का मोह छोड़ कर इस महायुद्ध में बड़े वेग से भीष्म पर झपटी ॥४६॥

भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम् ।
आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमार्जुनपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

हे महाराज ! रथियों में श्रेष्ठ भीष्म ने बड़े वेग से झपटती हुई इस पाण्डवों की विशाल सेना को इस ढंग से रोक दिया, जैसे वेला समुद्र के वेग को रोक देती है ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीमार्जुन के पराक्रम का एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ पन्द्रहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं शान्तनवो भीष्मो दशमेऽहनि सञ्जय ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥१॥
कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान्प्रत्यवारयन् ।
आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याऽऽहवशोभिनः ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अपने युद्ध के दशवें दिन शान्तनु पुत्र महापराक्रमी भीष्म ने पाण्डव और सृञ्जयों के साथ किस भाँति से युद्ध किया तथा कौरवों ने किस तरह पाण्डवों को रोका-युद्ध में पराक्रम दिखाने भीष्म के इस महायुद्ध का सारा वृतान्त मुझे ठीक २ सुनाओ ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

कुरवः पाण्डवैः सार्धं यदयुध्यन्त भारत ।
यथा च तदभूद्युद्धं तत्तु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! पाण्डवों के साथ कौरवों ने जिस भाँति से युद्ध किया और जो युद्ध का ढंग रहा—अब वह सब कुछ मैं तुमको सुनाता हूं ॥३॥

गमिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिना ।

अहन्यहनि संक्रुद्धास्तावकानां महारथाः ॥४॥

किरीटधारी अर्जुन ने प्रतिदिन अपने उत्तम २ अस्त्रों से क्रोध में भर कर युद्धकरनेवाले तुम्हारे अनेक महारथियों को यमलोक भेज दिया था ॥४॥

यथाप्रतिज्ञं कौरव्यः स चापि समितिञ्जयः ।

पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥५॥

इसी तरह कुरुवंशश्रेष्ठ ! युद्धविजेता भीष्मपितामह भी, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रतिदिन युद्ध में पाण्डवों के वीरों का विनाश कर रहे थे ॥५॥

कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं परन्तप ।

अर्जुनं च सपाञ्चाल्यं संशयो विजयेऽभवत् ॥६॥

हे परन्तप ! कौरवों को साथ लेकर भीष्म के युद्ध करने पर और पाञ्चालों के सहित अर्जुन के संग्राम में डटे रहने से प्रत्येक पक्ष को अपने २ विजय आशङ्का खड़ी हो रही थी ॥६॥

दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे ।

अवर्तत महारौद्रः सततं समितिक्षयः ॥७॥

दशवें दिन भीष्म और अर्जुन की मुठभेड़ में लगातार महा-भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥७॥

तस्मिन्नयुतशो राजन्भूयशश्च परन्तपः ।

भीष्मः शान्तनवो योधाञ्जघान परमास्त्रवित् ॥८॥

हे राजन् ! शत्रुतापी, अस्त्रविद्या में कुशल, शान्तनुपुत्र भीष्म, अपने रण-कौशल से सहस्रों की संख्या में बार २ पाण्डव वीरों को मार २ कर यमधाम पहुँचाने लगा ॥८॥

येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव ।

ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्तिनः ॥९॥

हे राजन् ! यद्यपि भीष्म के मारे हुए प्रत्येक योद्धा के मैं नाम और गोत्र नहीं जानता, तो भी यह अवश्य है, कि जिन वीरों को भीष्म ने मारा वे सब युद्ध में डटे रहने वाले बड़े पराक्रमी वीर थे ॥९॥

दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम् ।

निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परन्तप ॥१०॥

हे परन्तप ! भीष्म, दश दिन तक लगातार पाण्डवों की सेना का विध्वंस करता रहा, अब धर्मात्मा भीष्म को अपने जीवन में उदासीनता होने लगी ॥१०॥

स क्षिप्रं वधमन्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखो रणे ।

न हन्यां मानवश्रेष्ठान्संग्रामे सुबहूनिति ॥११॥

इसने इस महायुद्ध में अपने प्राण-विसर्जन करने की सोचली और विचारा, कि अब मैं अनेक उत्तम मनुष्यों का वध नहीं करूँगा ॥११॥

चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥

हे महाराज ! तुम्हारे पिता महाबाहु देवव्रत भीष्म, इस तरह बार २ विचार कर अपने समीप में ही स्थित, पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर से कहने लगे ॥१२॥

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
शृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥१३॥

हे सब शस्त्रों के ज्ञाता, महाबुद्धिमान् ! तात ! युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें धर्मानुसार परलोक में हितकारी वचन सुनाता हूं, तुम ध्यान से सुनो ॥१३॥

निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनाऽनेन भारत ।
घ्नतश्च मे गतः काल सुबहून्प्राणिनो रणे ॥१४॥

तस्मात्पार्थं पुरोधाय पञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा ।
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥१५॥

हे भारत ! मैं इस देह से उदासीन होगया हूं और बहुत से प्राणियों का रण में वध करते २ मुझे युद्ध से वैराग्य होगया है। अब तुम मेरा कल्याण चाहते हो—तो अर्जुन, पञ्चाल तथा सृञ्जयों को आगे करके मेरे वध का प्रयत्न करो—मेरा इसीमें कल्याण है।

तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
भीष्मं प्रति ययौ राजा संग्रामे सह सृञ्जयैः ॥१६॥

सत्यपराक्रमी राजा युधिष्ठिर, भीष्म के इस मत को जानकर सृञ्जयों के साथ रण में भीष्म की ओर आगे बढ़ा ॥१६॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजन्पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम् ॥१७॥

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर और सेनापति धृष्टद्युम्न ने भीष्म के ये वचन सुनकर अपनी सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी।

अभिद्रवध्वं युद्ध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
रक्षिताः सत्यसन्धेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥१८॥

हे वीरो ! तुम दौड़ो और भीष्म से युद्ध करके उसको पराजित करो। आज रण में शत्रु विजयी सत्य पराक्रमी अर्जुन, तुम्हारी रक्षा में साथ चल रहे हैं ॥१८॥

अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः ।
भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥१९॥

ये महाधनुर्धर, पर्षतवंशोद्भव, सेनापति धृष्टद्युम्न, और भीमसेन रण में तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे ॥१९॥

मा वो भीष्माद्भयं किञ्चिदस्त्यद्य युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥२०॥

हे सृञ्जयों ! आज तुम भीष्म से कुछ भय न करो, क्योंकि हम लोग शिखण्डी को युद्ध का नेता बनाकर भीष्म को अवश्य जीतेंगे ॥२०॥

ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्छिताः ॥२१॥

हे राजन् ! युद्ध के दशवें दिन पाण्डव, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके क्रोध में भरे हुए आगे बढ़ चले । इस समय इनको प्राणों का कुछ भी मोह नहीं था ॥२१॥

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥२२॥

अब पाण्डवों ने शिखण्डी और अर्जुन को आगे करके भीष्म को रण में गिराने का महान् प्रयत्न आरम्भ किया ॥२२॥

ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सह पुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥२३॥
दुःशासनश्च बलवान्सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयाञ्चक्रिरे तदा ॥२४॥

हे राजन् ! इस समय तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की आज्ञा से प्रेरित हुए अनेक देशों के महाबली सेना सहित राजा, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा तथा अपने भाइयों के साथ बलवान् दुःशासन, रण में डटे हुए भीष्म की रक्षा में संलग्न थे ॥२३,२४॥

ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥२५॥

हे भारत ! इस समय तुम्हारे योद्धा भी अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा के अनुसार रण में शिखण्डी आदि महारथियों से भीषण संग्राम कर रहे थे ॥२५॥

चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य महाव्रतम् ॥२६॥

इसी युद्ध के महाव्रत में तत्पर वानर की ध्वजा के धारण करने वाले अर्जुन भी, चेदि और पञ्चाल के वीरों को साथ लेकर शान्तनुपुत्र भीष्म पर वेग से झपटे ॥२६॥

द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।
अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥२७॥

इस समय शिनिवंशज सात्यकि का द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, धृष्टकेतु को पौरव और अभिमन्यु का मन्त्रियों सहित राजा दुर्योधन से संग्राम होने लगा ॥२७॥

विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद परन्तप ॥२८॥

हे परन्तप ! इस घोर समय में अपनी सेना लेकर राजा विराट ने वृद्धक्षत्र के पुत्र, सेना सहित युद्ध करते हुए सिन्धुराज जयद्रथ को जा दबाया ॥२८॥

मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः।
भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥२६॥

महाधनुर्धर, सेना सहित युद्ध में प्रवृत्त मद्रराज शल्य से धर्मराज लड़ रहे थे और अनेक योद्धाओं से सुरक्षित भीमसेन, कौरवों की गज सेना में उपद्रव मचा रहे थे ॥२६॥

अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
द्रौणिं प्रतिययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥३०॥

किसी से नहीं रोके जाने वाले, शस्त्रधारियों में उत्तम दुराधर्ष द्रोणपुत्र अश्वत्थामा से बड़ा ही सावधान पञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न, अपने भाइयों को साथ लेकर जा भिड़ा ॥३०॥

कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिन्दमः।
प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः ॥३१॥

कर्णिकार (कनेर) की ध्वजा से युक्त सुभद्रापुत्र अभिमन्यु पर सिंह ध्वजाधारी, शत्रुमर्दन, राजपुत्र बृहद्बल ने आक्रमण किया।

शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम्।
राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥३२॥

हे राजन्! पर्षतकुमार शिखण्डी और पाण्डुपुत्र अर्जुन के वध की अभिलाषा से प्रेरित होकर तुम्हारे पुत्रों ने अनेक राजाओं को साथ लेकर रण में उन पर आक्रमण किया ॥३२॥

तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥३३॥

इस महाभयङ्कर दोनों सेनाओं के पराक्रम दिखाने के समय इधर उधर दौड़ने वाली दोनों सेनाओं की धमक से पृथिवी कांपने लगी ॥३३॥

तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥३४॥

हे भारत ! मध्य में शान्तनु-पुत्र भीष्म को देखकर तुम्हारी और पाण्डवों की एक सेना दूसरी सेना से जा भिड़ी ॥३४॥

ततस्तेषां प्रतप्तानामन्योन्यमभिधावताम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥३५॥

हे भारत ! एक दूसरे को आघात पहुंचाते हुए और आक्रमण करते हुए सारी दिशाओं में महान् कोलाहल होने लगा ॥३५॥

शङ्खदुन्दुभिघोषश्च वारणानां च बृंहितैः ।
सिंहनादश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥३६॥

इस समय शङ्ख दुन्दुभियों के घोष और हाथियों की चिंघाड़ तथा सैनिकों के सिंहनाद से बड़ा कोलाहल मच रहा था ॥३६॥

सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा ।
वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥३७॥

सारे राजा और वीरों के अङ्गद (बाहुभूषण) और मुकुटों की सूर्य-चन्द्रमा के सदृश कान्ति थी, परन्तु इस समय युद्ध के रज से वह फीकी पड़ चुकी थी ॥३७॥

रजोमेघास्तु सञ्जज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः ।
धनुषां चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥३८॥

शस्त्र रूपी बिजली के साथ रज के मेघ उठने लगे और धनुष का शब्द भी बड़ा दारुण घोर मेघ गर्जना सा प्रतीत होता था ॥३८॥

बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः ।
रथघोषश्च सञ्जज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥३९॥

अब दोनों सेनाओं में बाणों की सनसनाहट, शंखों की ध्वनि भेरियों के महास्वन और रथों के घोष बढ़ते जा रहे थे ॥३९॥

पाशशक्त्यृष्टिसङ्घैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् ।
निष्प्रकाशमिवाऽऽकाशं सेनयोः समपद्यत ॥४०॥

दोनों सेनाओं में पाश, शक्ति और ऋष्टि आदि शस्त्रों तथा बाणों के समूह से व्याप्त आकाश, प्रकाश हीन सा हो रहा था ॥४०॥

अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे ।
कुञ्जरान्कुञ्जरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ॥४१॥

इस महा युद्ध में एक रथी दूसरे रथी पर अश्वारोही दूसरे अश्वारोही पर हाथी के सवार गजारोहियों पर और पैदल सैनिक पैदलों पर बड़े वेग से झपटे ॥४१॥

तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह।
भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥४२॥

हे नरश्रेष्ठ ! इस समय कौरवों का पाण्डवों के साथ भीष्म के वध या रक्षा के कारण से घोर संग्राम इस तरह होने लगा, जैसे मांस के लोलुप दो श्येनों (बाजों) में युद्ध होता है ॥४२॥

तेषां समागमो घोरो बभूव युधि सङ्गतः।
अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपदेशे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

हे राजन् ! अब इस महारण में कौरव और पाण्डवों का एक दूसरे के वध और परस्पर विजय की अभिलाषा में घोर युद्ध होने लगा ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म के उपदेश का एकसौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौ सोलहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।
महत्या सेनया युक्तं भीष्महेतोः पराक्रमी ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! इस समय आपके पुत्र राजा दुर्योधन के साथ बहुत अधिक सेना थी । महारथी अभिमन्यु भीष्म के वध का प्रयत्न करते हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधन से भीषण युद्ध करने लगे ॥१॥

दुर्योधनो रणे कार्ष्णि नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥२॥

राजा दुर्योधन ने अर्जुन पुत्र अभिमन्यु को नतपर्ववाले नौ बाणों से आहत किया तथा फिर क्रोध में भर कर तीन बाण उसकी छाती में मारे ॥२॥

तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरां स्वसामिव ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥३॥

अभिमन्यु ने भी मानो मृत्यु की भगिनी के तुल्य घोर शक्ति को दुर्योधन के वध के निमित्त उसके रथ पर फैंका ॥३॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशाम्पते ।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥४॥

हे विशाम्पते ! घोर-रूप-धारणी अभिमन्यु की शक्ति को आती हुई देखकर राजा दुर्योधन ने क्षुर के सदृश अपने बाण से उसके दो टुकड़े कर डाले ॥४॥

तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥५॥

अपनी शक्ति को खण्डित होकर गिरी हुई देखकर अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु बड़े कोप में भर गया और उसने राजा दुर्योधन की भुजा और छाती में तीन बाण मारे ॥५॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।
दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! भरतवंशोद्भव, महारथी अभिमन्यु ने फिर दश बाण छोड़ कर राजा दुर्योधन के वक्षस्थल को आहत कर दिया ॥६॥

तद्युद्धमभवद्घोरं चित्ररूपं च भारत ।
इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥७॥

हे भारत ! इन दोनों महारथियों का यह युद्ध बड़ा ही घोर और विचित्र था, जिसके देखने से वीरों की नेत्र इन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाती थी और सारे राजा जिसकी प्रशंसा करते थे ॥७॥

भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च ।
युयुधाते रणे वीरौ सौभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥८॥

भीष्म के वध और अर्जुन के विजय की आकांक्षा से रण में महावीर अभिमन्यु, कुरुराज दुर्योधन से भीषण युद्ध कर रहे थे ॥८॥

सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परन्तपः ॥९॥

शत्रुतापी ब्राह्मणवंशश्रेष्ठ, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने वेग से आक्रमण करने वाले सात्यकि के हृदय में एक तीखा बाण मारा ॥

शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत ।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः ॥१०॥

हे भारत ! शिनिपौत्र, अपरिमितबलशाली सात्यकि ने भी कङ्कपक्षी के पंखों से सुशोभित दो बाणों से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के ऊपर प्रहार किया ॥१०॥

अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः ।
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥११॥

अश्वत्थामा ने इस रण में सात्यकि को दो बाण तथा बाहु और हृदय में तीस बाण मार कर आहत किया ॥११॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः ।
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः ॥१२॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा द्वारा आहत हुआ यदुवंशश्रेष्ठ महायशस्वी सात्यकि ने भी उसे तीन बाण मार कर घायल कर दिया ॥१२॥

पौरवो धृष्टकेतुं च शरैराच्छाद्य संयुगे ।
बहुधा दारयाञ्चक्रे महेष्वासं महारथः ॥१३॥

महारथी पौरव ने रण में महाधनुर्धर धृष्टकेतु को अपने बाणों से पाट कर अनेक स्थानों पर चीर डाला ॥१३॥

तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः ।
त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाऽऽशु महाभुजः ॥१४॥

इसीतरह महारथि महाभुजधारी धृष्टकेतु ने भी तीस बाणों से युद्ध में राजा पौरव को आहत किया ॥१४॥

पौरवस्तु धनुश्छित्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥१५॥

महारथि राजा पौरव ने राजा धृष्टकेतु का धनुष काट कर बड़ी घोर गर्जना की और तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला ॥१५॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः ।
आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥१६॥

हे महाराज ! राजा धृष्टकेतु ने दूसरा धनुष उठाया और उसने शिला पर तीक्ष्ण किये हुए तेहत्तर बाण चढ़ा कर राजा पौरव को आहत किया ॥१६॥

तौ तु तत्र महेष्वासौ महात्मात्रौ महारथौ ।
महता शरवर्षेण परस्परमयुध्यताम् ॥१७॥

ये दोनों महाधनुर्धर, महारथी और महावली थे। ये बड़ी भारी बाण वर्षा करके परस्पर एक दूसरे को क्षत-विक्षत करने लगे।

अन्योन्यस्य धनुश्छित्त्वा हयान्हत्वा च भारत।
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ॥१८॥

हे भारत! ये दोनों वीर पौरव और धृष्टकेतु, एक दूसरे का धनुष काट २ कर और अश्वों का हनन करके रथहीन होने पर खड्ग लेकर युद्ध के लिये दौड़े ॥१८॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते।
तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ ॥१९॥

इन दोनों के पास वृषभ के चर्म की उत्तम ढालें थीं, जिनको इन्होंने अपने आगे कर रखा था। इन ढालों में अनेक भांति के सैंकड़ों चन्द्र तारे लगे हुए थे। इनकी करवाल (तलवार) भी बड़ी ही चमकीली थी ॥१९॥

प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ।
वासितासङ्गमे यत्तौ सिंहाविव महावने ॥२०॥

हे राजन्! ये दोनों उन चमकती हुई तलवारों को लेकर एक दूसरे पर इस तरह झपटे, जैसे-गर्भ धारण को उद्यत सिंहनी से संगम के लिए महावन में दो पराक्रमी सिंह एक दूसरे पर झपटते हैं ॥२०॥

मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥२१॥

इन्होंने युद्ध के अनेक विचित्र मण्डल बांधे और इधर उधर गमनागमन (पैंतरे) किया। ये अपना २ पराक्रम दिखाते और एक दूसरे को युद्ध का आह्वान करते हुए रण भूमि में घूम रहे थे ॥२१॥

पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना।
ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२२॥

राजा पौरव ने अपनी बड़ी तलवार से धृष्टकेतु की कनपटी पर प्रहार किया और क्रोध-पूर्वक कहा, कि जरा यहां ठहरा रह ॥२२॥

चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम् ।
आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना ॥२३॥

चेदिराज धृष्टकेतु ने भी पुरुष प्रवीर, राजा पौरव पर अपनी तीक्ष्ण तलवार कण्ठप्रदेश के पास जोतों पर चलाई ॥२३॥

तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे ।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिन्दमौ ॥२४॥

हे महाराज ! इस महायुद्ध में एक दूसरे से भिड़ कर दोनों अरिमर्दन वीर पौरव और धृष्टकेतु, एक दूसरे के आक्रमण से पीड़ित होकर रण-भूमि में अचेत होकर गिर पड़े ॥२४॥

ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव ।
जयत्सेनो रथेनाऽऽजावपोवाह रणाजिरात् ॥२५॥

इसके अनन्तर तुम्हारा पुत्र जयत्सेन, पौरव को अपने रथ पर चढ़ा कर उसी रथ द्वारा उसको रणाङ्गण से हटा लेगया ॥२५॥

धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
अपोवाह रणे क्रुद्धः सहदेवः पराक्रमी ॥२६॥

इसी तरह महापराक्रमी प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेव, चेदिराज धृष्टकेतु को क्रोधातुर होकर रण से हटा लेगया ॥२६॥

चित्रसेनः सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः ।
पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः ॥२७॥

चित्रसेन ने किसी सुशर्मा नामक राजा को बहुत से लोह-निर्मित बाणों से बींध डाला और इसी तरह उस पर साठ और फिर नौ बाणों से प्रहार किया ॥२७॥

सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशाम्पते ।
दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥२८॥

हे राजन् ! सुशर्मा ने भी कुपित होकर तुम्हारे पुत्र चित्रसेन को दो बार तीक्ष्ण दश २ बाणों से बींधा ॥२८॥

चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिंशता नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥२९॥

हे राजन् ! चित्रसेन ने नतपर्व वाले तीस बाणों से रण में सुशर्मा को क्रोधाविष्ट होकर आहत किया और उसने चित्रसेन को बींध डाला ॥२९॥

भीष्मस्य समरे राजन्यशो मानं च वर्धयन् ।
सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत् ॥३०॥

हे राजन् ! भीष्म के वध के निमित्त होने वाले इस युद्ध में अपने मान और यश को बढ़ाते हुए सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, राज-पुत्र बृहद्बल से युद्ध करने लगे ॥३०॥

पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्याऽऽयोधनं प्रति ।
आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विध्वा पञ्चभिरायसैः ॥३१॥
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।

इसी भीष्म के युद्ध में अर्जुन के वध के निमित्त कोशल-देशाधिपति बृहद्बल ने लोह के पांच बाण मार कर अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को आहत कर दिया तथा फिर नतपर्ववाले बीस बाण मार कर उसको बींध डाला ॥३१॥

सौभद्रः कौसलेन्द्रं तु विव्याधाऽष्टभिरायसैः ॥३२॥
नाऽकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः ।

सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने भी आठ लोह के बाणों से कौसलेन्द्र बृहद्बल को बींध दिया और युद्ध में तनिक भी विचलित नहीं हुआ और बार २ उसे बाणों से आहत करता रहा ॥३२॥

कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥३३॥
आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।

इसी तरह अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने पराक्रम करके कौशलराज बृहद्बल का धनुष भी काट डाला और कङ्कपक्षी के पंख से विभूषित तीस बाण उसके ऊपर छोड़े ॥३३॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ॥३४॥
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः ।

राजपुत्र बृहद्बल भी दूसरा धनुष उठा कर बहुत से बाणों से रण में अभिमन्यु को क्रोध-पूर्वक बींधने लगा ॥३४॥

तयोर्युद्धं समभवद्भीष्महेतोः परन्तप ॥३५॥
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः ।
यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत् ॥३६॥

हे परन्तप ! महाराज ! रण में विचित्रता के साथ युद्ध करने वाले इन दोनों वीर अभिमन्यु और बृहद्बल का रणाङ्गण में भीष्म के वध या रक्षा के निमित्त वेग के साथ युद्ध होने लगा। यह युद्ध बलि और इन्द्र के युद्ध की समानता रखता था ॥३५-३६॥

भीमसेनो गजानीकं योधयन्बह्वशोभत ।
यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन्पर्वतोत्तमान् ॥३७॥

एक ओर भीमसेन, गजसेना से युद्ध करता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा पर्वतों को चीरता हुआ वज्रपाणि इन्द्र सुशोभित होता है ॥३७॥

ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसन्निभाः ।
निपेतुरुर्व्यां सहित नादयन्तो वसुन्धराम् ॥३८॥

भीम द्वारा मारे हुए पर्वतोपम हाथी, चिंघाड़ मार कर पृथिवी को शब्दायमान करते हुए पृथिवी पर गिरने लगे ॥३८॥

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ॥३६॥

ये सारे हाथी पर्वत के तुल्य आकार धारी थे और पड़ी हुई अञ्जन की ढेरी सी प्रतीत होते थे। ये पृथिवी पर फैले हुए पर्वतों के सदृश प्रतीत होते थे ॥३६॥

युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे ।
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास सङ्गतम् ॥४०॥

महाधनुर्धर राजा युधिष्ठिर बड़ी भारी सेना से सुरक्षित मद्रराज शल्य से युद्ध करके उसको पीड़ित करने लगे ॥४०॥

मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।
पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥४१॥

पराक्रमी मद्रेश्वर शल्य ने भी रण में महारथी धर्मपुत्र, युधिष्ठिर को आवेश के साथ आहत किया। ये भी भीष्म की रक्षा के निमित्त सब कुछ प्रयत्न कर रहे थे ॥४१॥

विराटं सैन्धवो राजा विध्वा सन्नतपर्वभिः ।
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत् ॥४२॥

सिन्धुराज जयद्रथ ने नतपर्ववाले तीक्ष्ण नौ बाणों से विराट-राज को बींध डाला तथा तीस बाण मार कर उसे फिर आहत किया ॥४२॥

विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः ।
त्रिंशद्भिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥४३॥

हे महाराज ! राजा विराट ने भी सिन्धुराज जयद्रथ के वक्ष स्थल में तीस तीक्ष्ण बाण मारे ॥४३॥

चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ ।
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥४४॥

इस महासंग्राम में मत्स्यराज और सिन्धुराज, अद्भुत धनुष और खङ्ग, विचित्र कवच, शस्त्र और ध्वजाधारी होकर बड़े ही अद्भुत प्रतीत होते थे ॥४४॥

द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे ।
महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४५॥

द्रोणचार्य, इस महारण में पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न से भिड़ गया । इन्होंने सन्नतपर्व वाले बाणों से घोर-संग्राम का आरम्भ किया ॥४५॥

ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः ।
छित्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ॥४६॥

हे महाराज ! अब द्रोणाचार्य ने पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न के विशाल धनुष को काट गिराया और फिर पचास बाण छोड़ कर धृष्टद्युम्न को भी आहत किया ॥४६॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥४७॥

शत्रुवीरनाशक, पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष उठाया और द्रोण के देखते २ उस पर युद्ध में अनेक बाण छोड़े ॥

ताञ्छराञ्छरघातेन चिच्छेद स महारथः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत्पञ्च सायकान् ॥४८॥

महारथी द्रोणाचार्य ने अपने बाणों के आघात से धृष्टद्युम्न के सारे बाण काट दिए और उस द्रुपद-पुत्र पर अब पाँच बाण छोड़े ॥४८॥

ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ॥४९॥

हे महाराज ! इस घटना से शत्रुनाशक, पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न, कुपित हो उठा और उसने यमदण्ड के तुल्य भीषण गदा रण में द्रोण पर छोड़ी ॥४९॥

तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् ।
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयमास संयुगे ॥५०॥

सुवर्ण के पत्रों से विभूषित, उस गदा को अपने ऊपर गिरती देखकर द्रोणाचार्य ने पचास बाण छोड़ कर उसे रणभूमि में वहीं रोक दिया ॥५०॥

सा छिन्ना बहुधा राजन्द्रोणचापच्युतैः शरैः ।
चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥५१॥

हे राजन् ! अब फिर द्रोणाचार्य ने बहुत से बाण छोड़ कर उस गदा के टुकड़े २ कर डाले । वह गदा छिन्न भिन्न होकर रण भूमि में बिखर गई ॥५१॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुतापनः ।
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारशवीं शुभाम् ॥५२॥

शत्रुतापी पर्षतराजकुमार ने अपनी गदा को नष्ट हुई देखकर पारशव शस्त्र से युक्त भीषणशक्ति का द्रोणाचार्य पर प्रयोग किया ॥५२॥

तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥५३॥

हे भारत ! उस शक्ति को द्रोणाचार्य ने नौ बाण छोड़ कर रण भूमि में काट गिराया तथा महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न को रण में बड़ा व्यथित किया ॥५३॥

एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्षतयोरभूत् ।
भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥५४॥

हे महाराज ! इस तरह भीष्म के वध के प्रयत्न में द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न का वह बड़ा ही घोररूपधारी भयानक युद्ध हुआ ॥

अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन्निशितैः शरैः ।
अभ्यद्रवत संयत्तो वने मत्तमिव द्विपम् ॥५५॥

अब अर्जुन, गङ्गा-पुत्र भीष्म के समीप पहुंचने के लिए अपने तीक्ष्ण बाणों से सावधानी के साथ प्रहार करते हुए, इस तरह झपटे, जैसे-वन में मदोन्मत्त हाथी पर सिंह झपटता है ॥५५॥

प्रत्युद्ययौ च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ॥५६॥

अर्जुन को आक्रमण करता देखकर महाबली प्रतापी राजा भगदत्त, तीन स्थानों से मद के टपकाने वाले मदान्ध हाथी को लेकर अर्जुन पर झपटे ॥५६॥

तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसन्निभम् ।
परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्यपद्यत ॥५७॥

इन्द्र के हाथी के तुल्य राजा भगदत्त को एक दम आक्रमण करता देखकर अर्जुन, बड़े प्रयत्न के साथ रण में सन्मुख स्थित रह सके ॥५७॥

ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥५८॥

अब गजराज के ऊपर स्थित, प्रतापी राजा भगदत्त, रण में अर्जुन को बड़ी भारी बाणवर्षा से आहत करते लगे ॥५८॥

अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः ।
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥५९॥

अर्जुन भी रजत (चांदी) के तुल्य श्वेतवर्णधारी, अपने तीक्ष्ण लोहमय बाणों से इस महारण में झपटते हुए उस मदोद्धत हाथी को रोकने लगे ॥५९॥

शिखण्डिनं च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत् ।
भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाऽब्रवीत् ॥६०॥

हे महाराज ! कुन्ती-पुत्र अर्जुन, बार २ शिखण्डी को बुलाते थे, कि शीघ्र आओ और भीष्म पितामह का वध करो ॥६०॥

प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज ।

प्रययौ त्वरितो राजन्द्रुपदस्य रथं प्रति ॥६१॥

हे पाण्डु के ज्येष्ठ भ्राता ! राजन् ! धृतराष्ट्र ! राजा भगदत्त पाण्डु-पुत्र अर्जुन को छोड़कर बड़ी शीघ्रता से समीप ही युद्ध करने वाले राजा द्रुपद के रथ की ओर चढ़ दौड़े ॥६१॥

ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद् द्रुतम् ।

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥६२॥

हे महाराज ! अब बड़े वेग से अर्जुन ने, भीष्म पर शिखण्डी को आगे करके आक्रमण किया और वहां भीषण संग्राम होने लगा ॥६२॥

ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि ।

समभ्यधावन्क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६३॥

हे राजन् ! इस समय तुम्हारी सेना के वीर, वेग से आक्रमण करने वाले अर्जुन पर सिंहनाद करके टूट पड़े, जो बड़ा ही अद्भुत पराक्रम का दृश्य था ॥६३॥

नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप ।

अर्जुनो व्यधमत्काले दिवि वाऽभ्राणि मारुतः ॥६४॥

हे जनाधिप ! इस समय जो अनेक प्रकार की तुम्हारी सेना अर्जुन के सन्मुख आई, उसी को आकाश में वायु, जैसे-बादलों को उड़ा देता है, उसी तरह अर्जुन ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया ।

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥६५॥

शिखण्डी ने जब भरतवंशश्रेष्ठ के पितामह भीष्म के सन्मुख देखा-तो विना किसी घबराहट के भीष्म पर बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥६५॥

रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
शरसङ्घमहाज्वालः क्षत्रियान्समरेऽदहत् ॥६६॥

रथ अग्निशाला, धनुष ज्वाला, खड्ग शक्ति और गदारूपी इन्धन, शरसमूह बड़ी २ लपटें और स्वयं शिखण्डी अग्नि के तुल्य था, जो रण में क्षत्रिय रूपी तृणों को भस्म कर रहा था ।६६।

यथाऽग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः ।
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयत् ॥

अत्यन्त प्रदीप्त, वायु से वर्द्धमान अग्नि, जिस तरह तृणसमूह (बागर) को भस्म करता हुआ प्रदीप्त होता है, भीष्म भी उसी तरह दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हुए दिखाई दे रहे थे ॥६७॥

सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् ।
न्यवारयत तत्सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ॥६८॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः सन्नतपर्वभिः ।
नादयन्स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे ॥६९॥

जो सोमक क्षत्रिय वीर. अर्जुन के साथ में आक्रमण करते हुए आए थे, उनको सुवर्ण के पुङ्खधारी, नतपर्ववाले तीक्ष्ण बाणों से मार कर भीष्म, रणभूमि में बिछा रहे थे। महारथी भीष्म ने इस प्रकार अर्जुन की सेना को एक पद भी आगे नहीं बढ़ने दिया, इसे वहीं रोक दिया। इस महायुद्ध में सिंहनाद करके भीष्म ने सारी दिशा विदिशाओं को शब्दायमान कर दिया ॥६८-६९॥

पातयन्रथिनो राजन्हयांश्च सह सादिभिः।
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥७०॥

हे राजन्! भीष्म ने रथी और आरोहियों (सवारों) के सहित अश्वों को गिरा कर सारे रथों के समूह को ऊपर काटे छांटे हुए ताल वृक्षों के वन के सदृश बना दिया ॥७०॥

निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे।
चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥७१॥

हे राजन्! सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, भीष्म ने इस रण में रथ, हाथी और अश्वों को वीरों से शून्य कर दिया ॥७१॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः।
निशम्य सर्वतो राजन्समकम्पन्त सैनिकाः ॥७२॥

हे राजन्! भीष्म के धनुष की डोरी की ध्वनि को सुनकर सारे सैनिक काँप जाते थे, इसकी ध्वनि इन्द्र के वज्र की ध्वनि के तुल्य बड़ी ही भीषण होती थी ॥७२॥

अमोघा न्यपतन्बाणा पितुस्ते मनुजेश्वर।
नाऽसज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥७३॥

हे मनुजेश्वर ! तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म के बाण बिल्कुल अचूक पड़ते थे। भीष्म के धनुष से निकला हुआ कोई भी बाण शरीर में नहीं अटकता था, किन्तु शरीर को चीर कर पार निकल जाता था ॥७३॥

निर्मनुष्यान्रथान्राजन्सुयुक्ताञ्जवनैर्हयैः।
वातायमानानद्राक्षं ह्रियमाणान्विशाम्पते ॥७४॥

हे विशाम्पते ! उत्तम २ अश्वों से युक्त रथों को मैंने वीरों से रहित देखा। वायु के समान वेगवाले अश्व, उन रथों को लिए हुए वेग से भागे जा रहे थे ॥७४॥

चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥७५॥
अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः।
संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥७६॥
जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवाऽन्तकम्।

चेदि, काशि और करूष देश के चौदह सहस्र, क्षत्रियों के उत्तम २ कुलों में उत्पन्न, युद्ध में प्राणों का मोह नहीं करनेवाले, तथा युद्ध से पीठ नहीं मोड़ने वाले, उज्ज्वल सुवर्ण की ध्वजाधारी, महारथी वीर थे, वे मुख फाड़े हुए काल के तुल्य भीष्म के सन्मुख पहुंच कर अश्व, रथ और गजों के साथ परलोक को सिधार गए।

न तत्राऽऽसीद्रणे राजन्सोमकानां महारथः ॥७७॥
यः सम्प्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे ।

हे राजन् ! सोमक वीरों के मध्य में कोई ऐसा महारथी नहीं था, जो भीष्म पितामह के सन्मुख रण में पहुँच कर भी अपने प्राणों के बचने की आशा रखता हो ॥७७॥

तांश्च सर्वान्रणे योधान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥७८॥
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।

इस युद्ध में भीष्म के पराक्रम को देखकर सारे मनुष्य, पाण्डव वीरों को यमराज के पुर गया हुआ ही समझने लगे ॥७८॥

न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ॥७९॥
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥८०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे षोडशाधिक शततमोऽध्यायः ॥११६॥

इस समय इस युद्ध में श्वेत अश्व जिनके वाहन और श्रीकृष्ण जिनके सारथि थे, ऐसे पाण्डु-पुत्र वीर अर्जुन और अत्यन्त-तेजस्वी पाञ्चाल राजकुमार शिखण्डी को छोड़कर कोई भी पाण्डव वीर, भीष्म के सम्मुख नहीं पड़ सकता था॥७९-८०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीषण रण का एकसौ सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ

एकसौ सतरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम् ।
दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् । पुरुषप्रवीर भीष्म के समीप पहुंच कर शिखण्डी ने दश तीक्ष्ण बाण भीष्म के वक्षस्थल में मारे ॥१॥

शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ।
सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥२॥

हे भारत ! गङ्गा-पुत्र भीष्म ने इस समय शिखण्डी को केवल क्रोध-प्रदीप्त दृष्टि से देखा । भीष्म का यह कटाक्ष, इतना भीषण था, मानों शिखण्डी को भस्म कर देगा ॥२॥

स्त्रीत्वं तस्य स्मरन्राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।
नाऽऽजघान रणे भीष्मः स च तन्नाऽवबुद्धवान् ॥३॥

हे राजन् ! सब सेना के वीर देखते रहे, परन्तु शिखण्डी का पूर्व में स्त्री होना विचार कर रण में भीष्म ने कोई प्रहार नहीं किया, परन्तु इस बात को शिखण्डी ने नहीं समझा ॥३॥

अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत ।
अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम् ॥४॥

हे महाराज ! अर्जुन ने शिखण्डी से कहा—हे वीर ! अब तुम आक्रमण करो और शीघ्र भीष्मपितामह का वध कर डालो ॥४॥

किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम् ।
न ह्यन्यमनुपश्यामि कञ्चिद्यौधिष्ठिरे बले ॥५॥
यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोद्धुमिहाऽऽहवे ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥६॥

हे वीर ! तुम को अधिक प्रेरित करने की क्या आवश्यकता है—तुम स्वयं समझते हो, अतः अब महारथी भीष्मपितामह को मार डालो । हे पुरुषव्याघ्र ! मैं तो इस युधिष्ठिर की सेना में भीष्म से युद्ध करने योग्य वीर तुम्हारे सिवा अन्य किसी को नहीं देखता हूँ—यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥५-६॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत् ॥७॥

हे भरतर्षभ ! अर्जुन के इतना कहने पर शिखण्डी ने अनेक भाँति के बाणों से भीष्मपितामह को बड़े वेग से आच्छादित कर दिया ॥७॥

अचिन्तयित्वा तान्बाणान्पिता देवव्रतस्तव ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः ॥८॥

हे राजन ! तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म ने उन बाणों की कुछ भी अपेक्षा (परवा) नहीं की और बाण छोड़ कर कुपित हुए अर्जुन को रोकने का प्रयत्न किया ॥८॥

तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः ।
अप्रैषीत्स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ॥९॥

हे आर्य! महारथी भीष्म, अब तीक्ष्ण बाण छोड़ कर पाण्डवों की सारी सेना को परलोक के लिए भेजने लगा ॥९॥

तथैव पाण्डवा राजन्सैन्येन महता वृताः ।
भीष्मं सञ्छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥१०॥

हे राजन्! इसी तरह बड़ी भारी सेना लेकर पाण्डवों ने भी भीष्म को इस भांति से घेर लिया, जैसे सूर्य को मेघ घेर लेते हैं।

स समन्तात्परिवृतो भारतो भरतर्षभ ।
निर्ददाह रणे शूरान्वने वह्निरिव ज्वलन् ॥११॥

हे भरतर्षभ! भरतवंश वीर भीष्म जब इस प्रकार घिर गया—तो वह वन में अग्नि की भांति प्रज्ज्वलित हुआ रण में पाण्डव वीरों को दग्ध करने लगा ॥११॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
अयोधयच्च यत्पार्थं जुगोप च पितामहम् ॥१२॥

हे भारत! इस रण में तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने अद्भुत पराक्रम दिखाया, जो अर्जुन से युद्ध करते हुए भीष्म की रक्षा करता रहा ॥१२॥

कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः ।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः ॥१३॥

हे राजन्! महावीर, धनुर्धर तुम्हारे पुत्र दुःशासन के इस पराक्राम के कार्य को रणभूमि में देख कर सारे वीर बड़े ही चकित हुए ॥१३॥

यदेकः समरे पार्थान्सार्जुनान्समयोधयत् ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्बणम् ॥१४॥

यह अकेला ही रण में अर्जुन के सहित सारे पाण्डवों से लड़ता रहा, परन्तु कोई भी पाण्डुपुत्र इस उल्बण वेगधारी दुःशासन के रोकने में समर्थ नहीं हो सका ॥१४॥

दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः ।
सादिनश्च महेष्वासा हस्तिनश्च महाबलाः ॥१५॥

हे राजन् ! दुःशासन ने समर में अनेक रथी वीरों को रथों से रहित कर दिया तथा महाधनुर्धर अश्वारोही और महाबली गजारोहियों को भी अपने २ वाहनों से हीन कर दिया ॥१५॥

विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्वसुधातले ।
शरातुरास्तथैवाऽन्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥१६॥

अनेक रथी, अश्वारोही और गजपति, इसके तीक्ष्ण बाणों से बिंध २ कर भूतल पर गिरने लगे तथा अन्य अनेक हाथी, बाण से व्याकुल हुए अपनी वाञ्छित दिशा को भाग निकले ॥१६॥

यथाऽग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुल्बणम् ।
तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन् ॥१७॥

प्रदीप्त ज्वालाओं से देदीप्यमान अग्नि, जैसे—इन्धन की ढेरी को जलाकर भस्म कर देता है, उसी तरह तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने पाण्डुसेना को भस्म कर दिया ॥१७॥

तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः ।
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाऽभ्युद्यातुं कथञ्चन ॥१८॥
ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात्कृष्णसारथेः ।

हे भारत ! भरतवंश के महावीर दुःशासन को पाण्डवों के महारथियों में श्वेताश्ववाहनवाले कृष्णसारथि, इन्द्र-सुत अर्जुन को छोड़ कर कोई ऐसा वीर नहीं था, जो जीत सके या उसके साथ युद्ध कर सके ॥१८॥

स हि तं समरे राजन्निर्जित्य विजयोऽर्जुनः ॥१९॥
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

हे राजन् ! ये ही विजयी अर्जुन, रण में दुःशासन को जीत कर सारे वीर सैनिकों के देखते २ भीष्म पर झपटे ॥१९॥

विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः ॥२०॥
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः ।

हे राजन् ! यद्यपि तुम्हारा पुत्र पराजित हो चुका था, परन्तु भीष्म की भुजाओं का आश्रय पा २ कर यह मदोत्कट वीर, बार २ श्वास ले २ कर लड़ता था ॥२०॥

अर्जुनस्तु रणे राजन्योधयन्संव्यराजत ॥२१॥
शिखण्डी तु रणे राजन्विव्याधैव पितामहम् ।
शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥२२॥
न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।

हे राजन् ! इस समय चारों ओर युद्ध करता हुआ अर्जुन, बड़ा ही तेजस्वी प्रतीत होता था, किन्तु शिखण्डी तो केवल भीष्मपितामह को ही अपने वज्र के तुल्य, सर्प विषवत् तीक्ष्ण बाणों से बींध रहा था, परन्तु वे बाण, तुम्हारे पिता देवव्रत को कोई व्यथा नहीं पहुंचा रहे थे ॥२१-२२॥

स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान्बाणाञ्जगृहे तदा ॥२३॥
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति ।
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥२४॥

गङ्गा-पुत्र भीष्म, इन बाणों को हँसते २ ऐसे सह रहे थे, जैसे-धूप से व्याकुल पुरुष जलधारा को चाहता है । यही ढंग शिखण्डी की बाणवर्षा के सहन करने में भीष्मपितामह का था ॥२३-२४॥

तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥२५॥

हे महाराज ! सारे क्षत्रियों वीरों ने इस रण में भीष्म का बड़ा ही भीष्म स्वरूप देखा, कि जिन्होंने महाबली पाण्डवों की सेना को भस्म करके फैंक दिया ॥२५॥

ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे ॥२६॥
भीष्मो वः समरे सर्वान्पालयिष्यति धर्मवित ।
ते भयं सुमहत्त्यक्त्वा पाण्डवान्प्रतियुध्यत ॥२७॥

हे आर्य ! अब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अपनी सारी सेना को आज्ञा दी, कि तुम शीघ्र रण में सब ओर से अर्जुन को घेर लो; धर्मात्मा भीष्म, तुम सब लोगों की रक्षा करता रहेगा अब सैनिक भी महाभय को छोड़ कर पाण्डवों के साथ युद्ध करने लगे।

हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन् ।
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च ॥२८॥

सुवर्ण के तालवृक्ष के चिन्हधारी भीष्म भी सब की रक्षा करते हुए युद्ध करने लगे। इस रण में भीष्म ही सारे कौरवों के सुखदायक और कवच की भांति रक्षक थे ॥२८॥

त्रिदशाऽपि समुद्युक्ता नाऽलं भीष्मं समासितुम् ।
किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूता महाबलाः ॥२९॥

महाबली भीष्म से युद्ध करने में सुसज्जित हुए देवता भी समर्थ नहीं है, फिर मनुष्य योनि में उत्पन्न पाण्डव, उससे युद्ध में कैसे विजयी हो सकते थे ॥२९॥

तस्माद् द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे ।
अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम् ॥३०॥
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः ।

हे योद्धाओं ! तुम रणभूमि में अर्जुन को देख कर मत भागो। मैं तुम सारे महावीर प्रयत्नशील योद्धाओं को साथ लेकर पाण्डु-पुत्र अर्जुन से युद्ध करूंगा ॥३०॥

तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ॥३१॥
सर्वे योधाः सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः ।

हे राजन् ! धनुर्धर तुम्हारेपुत्र राजा दुर्योधन के वचन सुनकर मदोन्मत्त, महाशक्तिशाली सारे योद्धा, आवेश (जोश) में भर गए ॥३१॥

ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दासेरकगणाश्च ह ॥३२॥
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे ।

इन योद्धाओं में विदेह, कलिङ्ग, दासेरक, निषाद और सौवीर मुख्य थे, जिन्होंने सब से प्रथम अर्जुन पर आक्रमण किया ॥३२॥

बाह्लिका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥३३॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥३४॥

इसी तरह इस रण में बाल्हीक, दरद, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, शक, त्रिगर्त, केकयों के सहित अम्बष्ठ भी थे, जिन्होंने अग्नि पर पतङ्ग की भांति अर्जुन पर बड़े वेग से आक्रमण किया। हे राजेन्द्र ! ये सारे अप्रतिहतशक्तिधारी वीर अर्जुन के सन्मुख पतङ्गों के तुल्य थे ॥

अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम् ।
शलभा इव राजेन्द्र पार्थमप्रतिमं रणे ।
एतान्सर्वान्सहानीकान्महाराज महारथान् ॥३५॥
दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसन्धाय धनञ्जयः ।

स तैरस्त्रैर्महावेगैर्ददाह सुमहाबलः ॥३६॥

शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः ।

हे महाराज ! अब महाबली अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों का चिन्तन किया और उनपर बाण चढ़ा कर उपर्युक्त सारे वीरों को सेना के साथ अपने महावेगशाली अस्त्रों से भस्म करना आरम्भ किया । अर्जुन, अपने बाणों की ज्वाला में इनको ऐसे भस्म कर रहे थे, जैसे अग्नि अपनी ज्वालाओं से पतङ्गों को जला देता है ॥३५-३६॥

तस्य बाणसहस्राणि सृजतो दृढधन्विनः ॥३७॥

दीप्यमानमिवाऽऽकाशे गाण्डीवं समदृश्यत ।

दृढ़धनुषधारी अर्जुन का गाण्डीव धनुष, लगातार बाणवर्षा करता हुआ आकाश में चमकता ही दिखाई दे रहा था ॥३७॥

ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः ॥३८॥

नाऽभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम् ।

हे महाराज ! अर्जुन के बाणों से पीड़ित हुए राजाओं की ध्वजाएँ छिन्न भिन्न होगई और वे इकट्ठे होकर भी अर्जुन पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सके ॥३८॥

सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ॥३९॥

सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः ।

रथी वीर अपनी ध्वजा, अश्वारोही अश्व और गजारोही गजों के साथ अर्जुन के बाण से आहत होकर गिरने लगे ॥३९॥

ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृताऽऽसीद्वसुन्धरा ॥४०॥

विद्रवद्भिश्च बहुधा बलै राज्ञां समन्ततः ।

अब अर्जुन की भुजाओं से छोड़े हुए बाणों और राजाओं की भागती हुई सेना से सब ओर रणभूमि भर गई ॥४०॥

अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम् ॥४१॥

दुःशासनाय सुबहून्प्रेषयामास सायकान् ।

हे महाराज ! इस प्रकार अर्जुन, सारी सेना को भगाकर अब दुःशासन पर बहुत से बाण छोड़ने लगा ॥४१॥

ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ॥४२॥

धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः ।

लोह की नोक से तीक्ष्ण बाण, तुम्हारे पुत्र दुःशासन के शरीर को बींध कर पृथिवी में इस तरह घुस गए-जैसे वल्मीक में सर्प घुस जाता है ॥४२॥

हयांश्चाऽस्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत् ॥४३॥

विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान्प्रभुः ।

आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥४४॥

महाबली अर्जुन ने दुःशासन के अश्व और सारथि को मार कर गिरा दिया तथा विविंशति के बीस बाण मार कर उसे रथ हीन कर दिया एवं नतपर्व वाले पांच बाणोंसे उसे अत्यन्त आहत कर डाला ॥४३-४४॥

कृपं विकर्णं शल्यं च विध्वा बहुभिरायसैः ।
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥४५॥

इसी तरह श्वेत अश्वों के वाहनवाले कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बहुत से लोहमय बाण छोड़कर कृपाचार्य, विकर्ण और शल्य को रथहीन कर दिया ॥४५॥

एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष ।
दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥४६॥
सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ।

हे आर्य ! इस प्रकार कृप, शल्य, दुःशासन, विकर्ण, और विविंशति, अर्जुन ने रथहीन करके जीत लिए। अब ये सारे पराजित होकर रण छोड़कर भाग चले ॥४६॥

पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥४७॥
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ।

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इस प्रकार तुम्हारे महारथियों को दोपहर दिन चढ़ने तक पराजित करके कुन्ती-पुत्र, अर्जुन, रण में धूम रहित अग्नि की भांति प्रज्वलित हो उठे ॥४७॥

तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव ॥४८॥
अन्यानपि महाराज तापयामास पार्थिवान् ।

हे महाराज ! इसी तरह किरणमालाधारी प्रचण्ड सूर्य की भांति अर्जुन, अपनी बाण वर्षा से अन्य भी अनेक महावीर राजाओं को पीड़ित करने लगा ॥४८॥

पराङ्मुखीकृत्य तथा शरवर्षैर्महारथान् ॥४६॥
प्रावर्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।
मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥५०॥

अर्जुन ने अपनी बाणवर्षा से इन सारे महारथियों को रण से विमुख करके रणभूमि में रक्त की महानदी बहा दी । हे भारत ! यह नदी कौरव और पाण्डवों को मध्य से बह कर जा रही थी ॥४६-५०॥

गजाश्च रथसङ्घाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
रथाश्च निहता नागैर्हयाश्चैव पदातिभिः ॥५१॥

रथी वीरों ने बहुत से हाथी और अनेक रथों का चूरा तथा हाथियों ने भी बहुत से रथों का नाश कर दिया एवं पैदल सैनिकों ने अश्वों का विध्वंस उड़ा दिया ॥५१॥

अन्तरा च्छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च ।
निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्वरथयाधिनाम् ॥५२॥

रणभूमि में जिधर देखो, उधर ही गज, अश्व रथी, और योद्धाओं के शरीर या मस्तक बीच में से कटे हुए दिखाई दे रहे थे ॥५२॥

छन्नमायोधनं राजन्कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥५३॥
रथनेमिनिकृत्तैश्च गजैश्चैवाऽवपोथितैः ।

हे राजन ! कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषणधारी रणभूमि में गिरे हुए या गिराये जाते हुए तथा रथों की नेमि से काट डाले गए और हाथियों से कुचले हुए अनेक महारथी राजपूतों से रणभूमि भर गई ॥५३॥

पादाताश्चाऽप्यधावन्त साश्वाश्च हययोधिनः ॥५४॥
गजाश्च रथयोधाश्च परिपेतुः समन्ततः ।
विकीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ॥५५॥

पैदल सैनिक, अश्वों के सहित अश्वारोही, गजारोही और रथी सब ओर पड़े हुए थे तथा चक्र, युग (जूड़े) और ध्वजाएँ जिनकी टूट गई ऐसे अनेक रथ, रणभूमि में फैले पड़े थे ।५४-५५।

तद्गजाश्वरथौघानां रुधिरेण समुक्षितम् ।
छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव शारदम् ॥५६॥

गज, अश्व और रथियों के रक्त प्रवाह से भीगा हुआ रणस्थल, शरद् ऋतु के रक्त मेघों के सदृश दिखाई देता था ॥५६॥

श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृका गोमायुभिः सह ।
प्रणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ॥५७॥

श्वान, काक, गीध, भेड़िये और गीदड़ तथा अन्य भयानक आकारधारी पशु-पक्षी, रणभूमि में प्रभूत आहार पाकर आनन्द-ध्वनि कर रहे थे ॥५७॥

ववुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥५८॥

इस समय सारी दिशाओं में अनेक भांति से भीषण वायु चलने लगा और सब ओर राक्षस दिखाई देने और भूतगण किल-कारने लगे ॥५८॥

काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः ।
धूयमाना व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ॥५९॥

सुवर्ण की शृङ्खला (जंजीरें) और अत्यन्त मूल्यवाली ध्वजाएँ वायु के झोकों से फड़फड़ाकर एक दम उड़ती दिखाई देने लगी ॥५९॥

श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः ।
विकीर्णाः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥६०॥

सहस्रों की संख्या में श्वेत छत्र तथा सैकड़ों हज़ारों ध्वजाधारी महारथी, रणाङ्गण में बिखरे पड़े हुए दिखाई दे रहे थे ॥६०॥

सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः ।
क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ॥६१॥
तमापन्ततश्च दृश्यन्ते पतिता धरणीतले ।

हे राजेन्द्र ! वीरों के बाणों से व्याकुल हुए पताकावाले हाथी दिशाओं को भाग रहे थे तथा गदा-शक्ति आदि शस्त्रधारी अनेक क्षत्रियवीर, रणभूमि में इधर उधर चारों ओर पड़े हुए थे ॥६१॥

ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ॥६२॥
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

हे महाराज ! इसके अनन्तर भीष्मपितामह, दिव्य-अस्त्रों को उठाकर सारे धनुषधारी वीरों के देखते २ कुन्तीपुत्र अर्जुन पर झपटे ॥६२॥

तं शिखण्डी रणे यान्तमभ्यद्रवत दंशितः ॥६३॥

ततः समाहरद्भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम् ।

भीष्म को रण में आक्रमण करता देख कर सब तरह सन्नद्ध (तय्यार) शिखण्डी ने उसका सामना किया। इसको देखकर अग्निवत् तीक्ष्ण अपने अस्त्र का भीष्म ने संहार कर लिया ॥६३॥

त्वरितः पाण्डवो राजन्मध्यमः श्वेतवाहनः ॥६४॥

निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम्॥६५॥

हे राजन् ! श्वेत अश्वों के रथ में बैठ कर युद्ध करने वाले मध्यम पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता से तुम्हारी सेना का हनन करना आरम्भ किया, जिससे भीष्मपितामह मोहित हो गए ॥६४-६५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

इति श्री महाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घोरयुद्ध का एकसौ सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौ अठारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

समं व्यूढेष्वनीकेषु भूमिष्ठेष्वनिवर्तिनः ।

ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत ! इस तरह दोनों सेनाओं के समान रूप में व्यूह बना लेने पर अधिक संख्या में ऐसे वीर थे, जो युद्ध से मुख नहीं मोड़ने वाले थे और सारे ही ब्रह्मलोक के गमनके उत्सुक थे ॥१॥

नह्यनीकमनीकेन समसज्जत संकुले ।

रथा न रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः ॥२॥

अश्वा नाऽश्वैरयुध्यन्त गजा न गजयोधिभिः ।

उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते तत्र भारत ॥३॥

इस घोर युद्ध के समय सेना, सेना के साथ, रथी, रथी के साथ, पैदल सैनिक, पैदल के साथ अश्वारोही, अश्वारोहियों के साथ, और गजयोधी गजारोहियों के साथ युद्ध करने के नियम को छोड़ बैठे । हे महाराज ! इस समय तो सारे वीर, उन्मत्त (पागल) की भांति एक दूसरे से युद्ध कर रहे थे ॥२-३॥

महान्व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ।

नरनागगणेष्वेवं विकीर्णेषु च सर्वशः ॥४॥

क्षये तस्मिन्महारौद्रे निर्विशेषमजायत ।

नर, हाथी आदि के समूहों के इस भांति सब ओर फैल जाने पर इस महाघोर संग्राम में किसी प्रकार का भी युद्ध नियम नहीं रह गया था ॥४॥

ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥५॥
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान् ।
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥६॥

हे भारत ! इसके अनन्तर शूरवीर शल्य, कृप, चित्रसेन, दुःशासन और विकर्ण, देदीप्यमान रथों पर बैठ कर पाण्डवों की सेना का विध्वंस मचाने लगे ॥६॥

सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः ।
भ्राम्यते बहुधा राजन्मारुतेनेव नौर्जले ॥७॥

हे राजन ! इन वीरों से रण में दबाई हुई पाण्डव सेना, वायु से जल में नौका की भांति इधर उधर दौड़ने लगी ॥७॥

यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति ।
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति ॥८॥

जैसे—शिशिर काल, गौओं के मर्मस्थानों को पीड़ा पहुँचाता है, इसी तरह भीष्म भी पाण्डु-पुत्रों के मर्म स्थान पर प्रहार कर रहा था ॥८॥

तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना ।
नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ॥९॥

महावीर अर्जुन ने भी इसी तरह तुम्हारी सेना के भी नवीन मेघ के तुल्य आकारधारी बहुत से हाथी मार गिराए ॥९॥

मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः ।
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः ॥१०॥

अर्जुन द्वारा हतहुए नरवीरों के यूथपति भी इधर उधर पड़े दिखाई दे रहे थे। इषु, नाराच आदि भिन्न २ प्रकार के बाणों से ताड़ित हुए विशालकाय हाथी, घोर आर्तस्वर करके रणभूमि में गिर रहे थे ॥१०॥

पेतुरार्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः ।
आनद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥११॥
छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।

मरे हुए महावीरों के आभूषणों से युक्त शरीर और कुण्डलों सहित शिरों से रणस्थली बहुत ही व्याप्त हो गई थी ॥११॥

तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये ॥१२॥
भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये ।
ते पराक्रान्तमालोक्य राजन्युधि पितामहम् ॥१३॥
अभ्यवर्तन्त ते पुत्राः सर्वे सैन्यपुरस्कृताः ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥१४॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त तस्मिन्वीरवरक्षये ।

हे महाराज ! इस महावीरों के विनाशकारी युद्ध में भीष्म और पाण्डुपुत्र अर्जुन, अपना २ पराक्रम प्रदर्शित कर रहे थे। भीष्म के पराक्रम को देखकर उत्साहित हुए तुम्हारे पुत्र, सेना को आगे करके मृत्यु का स्वागत करते हुए स्वर्ग के ध्यान से निर्भीक होकर इस घोर संग्राम में आगे बढ़े ॥१३-१४॥

पाण्डवाऽपि महाराज स्मरन्तो विविधान्बहून् ॥१५॥
क्लेशान्कृतान्सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप ।
भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः ॥१६॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च योधयन्ति प्रहृष्टवत् ।

हे नराधिप ! महाराज, ! पाण्डव भी, पुत्र के साथ सम्मति कर के तुम्हारे द्वारा दिए बहुत से क्लेशों का स्मरण करके भयहीन हुए इस युद्ध में ब्रह्मलोक गमन के लिए भी उत्सुक होगए। ये तुम्हारे वीर और तुम्हारे पुत्रों के साथ बड़ी प्रसन्नता से युद्ध करने लगे ॥१५-१६॥

सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथाः ॥१७॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह ।

पाण्डवों के सेनापति महारथी धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना को आज्ञा दी, कि हे सोमकवीरो ! तुम सृञ्जयों के साथ गङ्गापुत्र भीष्म पर आक्रमण करो ॥१७॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते ॥१८॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः ।

सेनापति धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर सोमक और सृञ्जयवीर, बाणवर्षा को सहते हुए भीष्म पर बुरी तरह से झपटे ॥१८॥

वध्यमानस्ततो राजन्पिता शान्तनवस्तव ॥१६॥
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् ।

हे राजन ! इन वीरों द्वारा आहत हुए तुम्हारे पिता, शान्तनु-पुत्र भीष्म, क्रोध के वश में हुए सृञ्जयों से युद्ध करने लगे ॥१६॥

तस्य कीर्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता ॥२०॥
सम्प्रदत्तास्त्रशिक्षा वै परानीकविनाशनी ।
स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन्परबलक्षयम् ॥२१॥
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भीष्मो दशसहस्राणि जघान परवीरहा ॥२२॥

हे तात ! युद्ध में कीर्ति प्राप्त करनेवाले भीष्म के लिए बुद्धिमान् परशुराम ने शत्रुसेना विनाश करनेवाली जो अस्त्र शिक्षा प्रदान की थी, कुरुवंश के पितामह वृद्ध भीष्म, उसी शिक्षा का उपयोग करते हुए शत्रुसेना का नाश करने लगे। शत्रुवीर नाशक भीष्म, इस युद्ध में नित्य पाण्डवों की दशसहस्र सेना का नाश कर देते थे ॥२०-२२॥

तस्मिंस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ ।
भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पञ्चालेषु च संयुगे ॥२३॥
गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः ।

हे भरतर्षभ ! इस युद्ध के इस दशवें दिन अकेले भीष्म ने मत्स्य और पञ्चालों के बहुत से गज और अश्व मार कर सात महारथी भी मार दिए।।२३।।

हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः ॥२४॥
नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ।
दन्तिनां च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः ॥२५॥
शिक्षाबलेन निहतं पित्रा तव विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! पितामह भीष्म ने पांच सहस्र रथी, चौदह सहस्र नरवीर, एक सहस्र हाथी, दशसहस्र अश्व, इस युद्ध में मार गिराए। यह सब कुछ आपके पिता भीष्म ने परशुराम की युद्ध शिक्षा के बल से ही किया ॥२४-२५॥

ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् ॥२६॥
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ।

इस प्रकार बहुत से राजाओं की सेना का नाश करके राजा विराट के प्रिय भ्राता शतानीक को भी भीष्म ने मार गिराया ॥२६॥

शतानीकं च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥२७॥
सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैरपातयत् ।
उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनञ्जयम् ॥२८॥

हे महाराज ! प्रतापी भीष्म ने रण में शतानीक को मारकर अन्य सहस्रों प्रभावशाली राजाओं को भी अपने बाणों से रण

में मार गिराया। इस समय पाण्डवों के वीर घबरा गए और वे अर्जुन को रक्षार्थ पुकारने लगे ॥२७-२८॥

ये च केचन पार्थानामभियाता धनञ्जयम् ।
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥२६॥

जो पाण्डवों के योद्धा अर्जुन के साथ युद्ध में आगे बढ़े थे, वे राजा, भीष्म के सन्मुख पहुँच कर यमलोक को चले गए ॥२६॥

एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः ।
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥३०॥

इस प्रकार भीष्म ने अपने बाण-समूह से पाण्डवों की सेना को दशों दिशाओं में सब ओर भगाकर आप अपनी सेना के अग्रभाग में वीरता के साथ डटे रहे ॥३०॥

स कृत्वा सुमहत्कर्म तस्मिन्वै दशमेऽहनि ।
सेनयोरन्तरे तिष्ठन्प्रगृहीतशरासनः ॥३१॥

भीष्म ने अपना धनुष उठाकर इस दशवें दिन के युद्ध में बड़ा ही महान कर्म करके दिखाया और आप इन दोनों सेनाओं के मध्य में विना किसी घबराहट के निर्भीक खड़ा रहा ॥३१॥

न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन्निरीक्षितुम् ।
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥३२॥

हे राजन् ! ग्रीष्मकाल में आकाश के मध्य में तपते हुए प्रचण्ड सूर्य को जैसे देखने में कोई समर्थ नहीं होते हैं, इसी

तरह कोई भी राजा भीष्म की ओर प्रहार की इच्छा से देखने का साहस तक नहीं कर सके ॥३२॥

यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे ।
तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्ताडयामास भारत ॥३३॥

हे भारत ! इन्द्र, संग्राम में जिस तरह दैत्यसेना को सन्तापित कर देते हैं, उसी तरह भीष्म ने पाण्डवों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ॥३३॥

तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः ।
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥३४॥

मधुसूदन देवकीपुत्र श्रीकृष्ण इस प्रकार पराक्रम करते हुए भीष्मपितामह को देखकर प्रीति-पूर्वक अर्जुन से कहने लगे।

एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः ।
सन्निहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥३५॥

हे अर्जुन ! इन दोनों सेनाओं के मध्य में वीरता-पूर्वक डटा हुआ भीष्मपितामह खड़ा है । यदि बल लगाकर तुमने इसको मार लिया—तो तुम्हारी विजय हो जावेगा ॥३५॥

बलात्संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः ।
नहि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥३६॥

हे विभो ! तुम इसको बल-पूर्वक रोको-देखते नहीं हो, इसने सारी सेना को छिन्न भिन्न कर दिया है । तुम्हारे सिवा भीष्म के बाणों के सहन करने की अन्य में शक्ति नहीं है ॥३६॥

ततस्तस्मिन्क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः ।
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥३७॥

हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् कृष्णद्वारा प्रेरित कियेहुए, कपिध्वज अर्जुन ने ध्वजा, रथ और अश्वोंसहित भीष्म को अपने बाणसमूह से ढ़क दिया ॥३७॥

स चाऽपि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरिताम् ।
शरव्रातैः शरव्रातान्बहुधा विदुधाव तान् ॥३८॥

कुरुवंशवीरों में मुख्य भीष्म ने भी अर्जुन के फैंकेहुए शर समूह को अपने शरजाल से अनेक भांति से काट गिराया ॥३८॥

ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥३९॥
यमौ च चेकितानश्च केकयः पञ्च चैव ह ।
सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥४०॥
द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः ॥४१॥
एते चाऽन्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः ।
समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥४२॥

पञ्चालराज द्रुपद, वीर्यवान चेदिराज धृष्टकेतु, पाण्डु-पुत्र भीमसेन, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, नकुल-सहदेव, चेकितान, पांच केकय राजकुमार; महाबाहु सात्यकि, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदी के पुत्र, शिखण्डी, वीर्यवान् कुन्तिभोज, सुशर्मा,

विराटराज तथा महाबली पाण्डु-पुत्र ये वीर तथा अन्य बहुत से महावीर, भीष्म के बाणों से पीड़ित हो उठे। ये शोक के समुद्र में डूबते जा रहे थे, परन्तु अर्जुन ने इनका उद्धार कर दिया ॥३९-४२॥

ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् ।
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥४३॥

इसके अनन्तर शिखण्डी ने बड़ा भारी धनुष लेकर अर्जुन की रक्षा में भीष्म पर वेग से आक्रमण किया ॥४३॥

ततोऽस्याऽनुचरान्हत्वा सर्वान्रणविभागवित् ।
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः ॥४४॥

रण के रहस्यों को जानने वाले, विजयी अर्जुन ने भीष्म के सारे अनुचरों का वध करके भीष्म पर आक्रमण किया ॥४४॥

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पर्षतः ।
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥४५॥
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाऽऽजौ रक्षिता दृढधन्वना ।

दृढ़धनुषधारी अर्जुन से सुरक्षित, सात्यकि, चेकितान, पर्षतवंशज, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, पाण्डु-पुत्र नकुल सहदेव भी इस भयानक युद्ध में भीष्म पर झपटे ॥४५॥

अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ॥४६॥
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ।

इसी युद्ध में अभिमन्यु और द्रौपदी के पांच पुत्र, शस्त्र उठा कर वेग से भीष्म की ओर दौड़े ॥४६॥

ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः ॥४७॥
बहुधा भीष्ममानर्च्छुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः ।

ये सारे महारथी दृढ़धनुषधारी और युद्ध से नहीं हटने वाले थे। इन्होंने अपने तीक्ष्ण नोकवाले बाणों से भीष्म पर आक्रमण किया ॥४७॥

विधूय तान्बाणगणान्ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ॥४८॥
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् ।

इन उत्तम २ महावीर राजाओं द्वारा छोड़े हुए बाणसमूह को काट कर उत्साह से भरी आत्मावाले भीष्म ने पाण्डवों की सेना का और भी विध्वंस करना आरम्भ किया ॥४८॥

चक्रे शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ॥४९॥
नाऽभिसन्धत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
स्त्रीत्वं तस्याऽनुसंस्मृत्य भीष्मो बाणाञ्छिखण्डिने ।

भीष्मपितामह, बाणसमूह के अनेक प्रहार करतेहुए रण स्थली में क्रीड़ा सी कर रहे थे, परन्तु बार २ मुस्कुराकर भीष्म, पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी पर उसको स्त्री मान कर कोई बाण नहीं छोड़ते थे ॥४९-५०॥

जघान द्रुपदानीके रथान्सप्त महारथः ।
ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत्तदा ॥५१॥
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ।

इस अकेले भीष्म पर आक्रमण करने वाले, मत्स्य- पाञ्चाल और चेदिवंशज, वीरों का बहुत ही कोलाहल मच गया ॥५१॥

ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परन्तप ॥५२॥
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ॥५३॥

हे परन्तप ! पैदल वीर, अश्वारोही और रथियोंद्वारा छोड़े हुए बाण समूहों से इन वीरों ने भीष्म को इसतरह ढ़क लिया, जैसे-मेघ, सूर्य को ढ़क लेते हैं। गङ्गा-पुत्र भीष्म भी रण में शत्रु को अत्यन्त सन्तापित कर रहे थे ॥५२-५३॥

ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।
किरीटी भीष्ममानर्च्छत्पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥५४॥

इस प्रकार देवासुर संग्राम की भांति भीषण इन महारथियों के युद्ध में शिखण्डी को मुख्य बनाकर चलने वाले अर्जुन ने भीष्म पर बाणों का प्रहार करना आरम्भ किया ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपराक्रमे
अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म के पराक्रम का एकसौ अट्ठारहवां अध्याय पूरा हुआ

एकसौ उन्नीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
विव्याधः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार सारे पाण्डव, शिखण्डी को आगे करके और चारों ओर से रण में भीष्म को घेर कर व्यथा पहुंचाने लगे ॥१॥

शतघ्नीभिः सुघोराभिः परिघैश्च परश्वधैः ।
मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीयैश्च सर्वशः ॥२॥
शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः ॥३॥
अताडयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः ।

इकट्ठे हुए सारे सृञ्जय वीर, रण में भीषण शतघ्नी, परिघ, परशु, प्रहार के योग्य मुग्दर, मूसल, प्रास, सुवर्णपुङ्खधारी बाण,

शक्ति, तोमर और कम्पन, नराच, वत्सदन्त तथा भुशुण्डियों से भीष्म को आहत करने लगे ॥२-३॥

स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ॥४॥
न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।

इस समय भीष्म का सारा शरीर छिद चुका था, क्योंकि अनेक वीरों ने मिल कर उस पर प्रहार करके उसे पीड़ित कर दिया था। यद्यपि भीष्म के सारे मर्म कट चुके थे, परन्तु वह उनसे कुछ भी व्यथा नहीं मान रहे थे ॥४॥

सन्दीप्तशरचापाग्निरस्त्रप्रस्रष्टमारुतः ॥५॥
नेमिनिर्ह्रादसन्तापो महास्त्रोदयपावकः ।
चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥६॥
युगान्ताग्निसमप्रख्यः परेषां समपद्यत ।

धनुष-बाण-रूपी-प्रदीप्त-अग्नि से युक्त, अस्त्र-रूपी-वायु से समन्वित, रथनेमि की ध्वनि से सन्तापकारी, बड़े २ अस्त्रों के अङ्गारों से प्रदीप्त, विचित्र धनुष की ज्वाला से समन्वित, वीरों के विनाश रूपी इन्धन की ढ़ेरीवाला भीष्म, शत्रुओं को प्रलय कालीन अग्नि सा हो रहा था ॥५-६॥

विवृत्त्य रथसङ्घानामन्तरेण विनिःसृतः ॥७॥
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ।

भीष्म, लौटकर कभी रथ-समूह के मध्य से निकल जाते थे और फिर शीघ्रता से राजाओं के मध्य में जा लड़ते थे ॥७॥

ततः पाञ्चालराजं च धृष्टकेतुमचिन्त्य च ॥८॥
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! भीष्मपितामह पाञ्चालराज द्रुपद और राजा धृष्टकेतु की उपेक्षा करके पाण्डवों की सेना के मध्य में घुस गए ॥

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥९॥
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरणभेदिभिः ॥१०॥
षडेतान्निशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः ।

अब भीष्म ने सात्यकि, भीम, पाण्डु-पुत्र धनञ्जय, राजा द्रुपद और विराट तथा पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न को भयानक ध्वनि करनेवाले महावेगधारी, कवचों के भेद जानेवाले, उत्तम २ तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला ॥९-१०॥

तस्य ते निशितान्बाणान्सन्निवार्य महारथाः ॥११॥
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा ।

इन महारथियों ने भी भीष्म के तीक्ष्ण बाणों की प्रतिक्रिया करके अपना बल लगाकर दश २ बाणों से भीष्म को पीड़ित किया।

शिखण्डी तु महाबाणान्यान्मुमोच महारथः ॥१२॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।

महारथी शिखण्डी ने जो सुवर्ण के मूलवाले शिला पर तीक्ष्ण किए हुए विशाल बाण भीष्म पर छोड़े, उनसे भीष्म को कुछ भी पीड़ा नहीं हुई ॥१२॥

ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाऽभ्यधावत ॥१३॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।

अब मुकुटधारी अर्जुन ने आवेश में आकर और शिखण्डी को आगे करके भीष्म पर आक्रमण किया एवं उसका धनुष काट डाला ॥१३॥

भीष्मस्य धनुषश्छेदं नाऽमृष्यन्त महारथाः ॥१४॥
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च ॥१५॥
सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः ।

भीष्म के धनुष के छेदन को कौरव महारथी सह नहीं सके । द्रोण, कृतवर्मा, सिन्धुराज जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य और राजा भगदत्त ये सात महारथी क्रोधाविष्ट होकर अर्जुन पर झपटे ॥१४-१५॥

तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥१६॥
अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्तश्च पाण्डवम् ।

इस समय ये महारथी, दिव्य शस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे, जिनसे पाण्डुपुत्र अर्जुन को क्रोधातुर होकर अच्छादित कर दिया

तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति ॥१७॥
युद्धतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये ।

अर्जुन पर झपटते हुए उन लोगों में इतना भीषण कोलाहल हुआ, जैसे—प्रलय काल में उमड़ते हुए समुद्र का होता है ।।१७।।

घ्नताऽऽनयत गृह्णीत विद्धयध्वमवकर्तत ।।१८।।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।

इस समय अर्जुन के रथ के चारों ओर मारो ? ले आओ ? पकड़ लो ? बींध डालो ? काट डालो ? यही ध्वनि सुनाई दे रही थी ।।१८।।

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ।।१६।।
अभ्यधावन्परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! इस भीषण कोलाहल को सुन कर पाण्डवों के महारथी, अर्जुन की रक्षा के उद्देश्य से दौड़ पड़े ।।१६।।

सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।।२०।।
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः ।
अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्छिताः ।।२१।।
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः ।

सात्यकि, भीमसेन, पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न, राजा विराट और द्रुपद, राक्षसराज घटोत्कच और अभिमन्यु, उत्तम २ धनुष लेकर बड़े वेग से दौड़े । इस समय ये सारे क्रोधातुर हो रहे थे, जिनमें अभिमन्यु तो बहुत ही आवेश में थे ।।२०-२१।।

तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२२॥
संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव ।

हे भरतश्रेष्ठ! देवासुर संग्राम में देव और दानवों का जैसा घोर लोमहर्षणकारी युद्ध हुआ था, वैसा ही भीषण इनका युद्ध होने लगा ॥२२॥

शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥२३॥
अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे ।
सारथिं दशभिश्चाऽस्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे ॥२४॥

भीष्म का धनुष कट चुका था। इस समय अर्जुन से सुरक्षित शिखण्डी ने इस रण में भीष्म पर दश बाणों का प्रहार किया तथा दश बाणों से इसके सारथि को आहत करके एक बाण से इसकी ध्वजा काट डाली ॥२३-२४॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम् ।
तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः ॥२५॥

गङ्गापुत्र भीष्म ने अब वेगवाला दूसरा धनुष उठाया, अर्जुन ने तीन तीक्ष्ण बाण छोड़ कर उसे भी काट गिराया ॥२५॥

एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः ।
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परन्तपः ॥२६॥

इस समय अर्जुन क्रोध में भर रहे थे। भीष्म, जिस धनुष को उठाता था, शत्रुतापी, सव्यसाची अर्जुन उसे ही काट गिराता था।

स च्छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम् ॥२७॥
तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।

बार २ धनुष के कट जाने से भीष्म क्रोध से जल उठे और अपने ओष्ठ-प्रान्त चाटने लगे। अब उन्होंने पर्वतों के भी भेदन कर देनेवाली शक्ति को बड़े आवेश में उठाया और उसे क्रोध-पूर्वक अर्जुन के रथ पर फेंक दिया ॥२७॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ॥२८॥
समादत्त शितान्भल्लान्पञ्च पाण्डवनन्दनः ।

प्रज्वलित वज्र के तुल्य तीक्ष्ण शक्ति को अपने ऊपर गिरती देखकर पाण्डवनन्दन अर्जुन ने पांच तीक्ष्ण भल्ल (बाण) ग्रहण किए ॥२८॥

तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ॥२९॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम् ।

हे भरतश्रेष्ठ ! भीष्म के बाहुबल के द्वारा वेग से चलाई हुई इस शक्ति को अर्जुन ने क्रोधातुर होकर अपने पांच बाणों से काट डाला ॥२९॥

सा पपात तथा च्छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ॥३०॥
मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा ।

क्रोधाविष्ट मुकुटधारी अर्जुन द्वारा छिन्न भिन्न की हुई वह शक्ति, इस तरह गिर गई, मानो-मेघसमूह से बिजली टूट पड़ी हो।

छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः ॥

अचिन्तयद्रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः ।

शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ॥३२॥

यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः ।

खण्डित हुई अपनी शक्ति को देखकर शत्रुविजयी वीर भीष्म, क्रोध में भर गया और अपनी बुद्धि द्वारा विचारने लगा, कि मैं सारे पाण्डवों को एक ही धनुष से मार सकता था—जो इनका रक्षक महाबली विष्वक्सेन कृष्ण न बन गए होते ॥३२॥

कारणद्वयमास्थाय नाऽहं योत्स्यामि पाण्डवान् ॥३३

अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः ।

अब दो कारण आ पड़े हैं, जिससे मैं पाण्डवों से विजयी नहीं हो सकता। एक तो धार्मिक पाण्डवों का वध करना अनुचित प्रतीत होता है—दूसरे शिखण्डी स्त्री रह चुका है ॥३३॥

पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहत् ॥३४॥

स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा ।

तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवाऽऽत्मनः ॥३५॥

माता सत्यवती के विवाह के समय मुझे पिताजी ने प्रसन्न होकर दो वरदान दिए हैं, उनमें एक तो स्वेच्छा होने पर मृत्यु और दूसरे रण में शत्रु द्वारा अवध्यता (नहीं मारा जाना) है। अब

मेरा स्वर्गलोक गमन का समय भी है, इससे मुझे मृत्यु का ही स्वागत करना चाहिए ॥३४-३५॥

एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन् ॥३६॥

अपरिमिततेजधारी भीष्म के इस विचार को जान कर ऋषिगण और वसु आदि देवता आकाश स्थित हुए भीष्म से कहने लगे ॥३६॥

यत्ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम्
तत्कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्तय ॥३७॥

हे तात ! यह जो तुमने विचार किया है, यह ही हमको भी अभीष्ट है। हे महाराज ! अब आप यही करो और युद्ध से अपनी बुद्धि को हटाओ ॥३७॥

अस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः ।
अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः ॥३८॥

इस वाक्य के समाप्त होते ही सुन्दर वायु चलने लगा, जो बड़ा अनुकूल और सुगन्धिवाला तथा बिन्दुओं से समन्वित था।

देवदुन्दुभयश्चैव सम्प्रणेदुर्महास्वनाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष ॥३९॥

हे आर्य ! इस समय देवों ने बड़े उच्चस्वर में दुन्दुभियां बजाईं और भीष्म के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ॥३९॥

न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां संवदतां नृप ।
ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥४०॥

हे नृप ! इस समय अन्य वीर परस्पर युद्ध में संलग्न थे, इससे इस वाणी को किसी ने नहीं सुना । केवल महाबाहु भीष्म और व्यासमुनि के प्रभाव से मैं ही इस वाणी को सुन सका॥४०॥

सम्भ्रमश्च महानासीत्त्रिदशानां विशाम्पते ।
पतिष्यति रथाद्भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा ॥४१॥

हे विशाम्पते ! समस्त लोक के प्रिय करनेवाले भीष्म, अब रथ से गिरना चाहते हैं, यह जानकर सारे देवता व्याकुल हो उठे।

इति देवगणानां च वाक्यं श्रुत्वा महातपाः ।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाऽत्यवर्तत ॥४२॥
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः ।

महातपस्वी, शान्तनुपुत्र भीष्म ने देवों के ये वचन सुनकर फिर अर्जुन पर कोई आक्रमण नहीं किया । इस समय भीष्म सब तरह के कवचों के बेंध देनेवाले तीक्ष्ण बाणों से व्याकुल हो चुके थे ॥४२॥

शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम् ॥४३॥
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः ।

हे महाराज ! अब महारथी शिखण्डी ने भरतवंशोद्भव वीरों के पितामह भीष्म के वक्षस्थल में क्रोध-पूर्वक नौ तीक्ष्ण बाण मारे।

स तेनाऽभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ॥४४॥
नाऽकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।

हे महाराज ! शिखण्डी के बाण से रणभूमि में आहत हुए कुरुवंश के पितामह भीष्म, पृथिवी के हिलने पर भी पर्वत की भांति अकम्पित ही रहे ॥४४

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ॥४५॥
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।

अब कुछ अर्जुन हँसने लगे । उन्होंने गाण्डीव धनुष उठाया और गङ्गापुत्र भीष्म पर पचीस क्षुद्रक बाण छोड़े ॥४५॥

पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥४६॥
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ।

अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता दिखाई और सौ बाण क्रोधातुर होकर भीष्म के शरीर के सारे मर्मस्थलों पर छोड़े ॥४६॥

एवमन्यैरपि भृशं विद्ध्यमानः सहस्रशः ॥४७॥
तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः ।

इसी प्रकार अन्य महारथियों ने भी सहस्रों स्थानों पर भीष्म को छेद डाला । महारथी भीष्म ने भी उन सबको अपने बाणों से क्षत-विक्षत कर रखा था ॥४७॥

तैश्च मुक्ताञ्छरान्भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः ॥४८॥
निवारयामास शरैः समं सन्नतपर्वभिः ।

युद्ध में सत्यपराक्रम दिखानेवाले भीष्म ने अपने सन्नतपर्व वाले बाणों से विरोधियों के सारे बाण काट डाले ॥४८॥

शिखण्डी तु रणे बाणान्यान्मुमोच महारथः ॥४९॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।

महारथी शिखण्डी, जिन सुवर्णमूलधारी शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों को छोड़ता था, वे बाण, भीष्म के शरीर पर कोई चोट नहीं पहुँचा रहे थे ॥४९॥

ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाऽभ्यवर्तत ॥५०॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।

अब मुकुटधारी क्रोधाविष्ट हुए अर्जुन, शिखण्डी को आगे करके भीष्म पर झपटे । उन्होंने भीष्म का धनुष काट डाला ॥५०॥

अथैनं नवभिर्विध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥५१॥
सारथिं विशिखैश्चाऽस्य दशभिः समकम्पयत् ।

अर्जुन ने भीष्म के शरीर में नौ बाण मारे और एक बाण से ध्वजा काट गिराई तथा दश बाणों से सारथि को आहत करके विचलित कर दिया ॥५१॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम् ॥५२॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरघातयत् ।

गङ्गापुत्र भीष्म ने दूसरा शक्तिशाली धनुष उठाया, उसको भी अर्जुन ने तीन बाण मार कर तीन स्थानों से काट डाला ॥५२॥

निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे ॥५३॥

एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ ।

ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाऽत्यवर्तत ॥५४॥

इस प्रकार भीष्म बार २ धनुष उठाते थे और आधे ही क्षण में इस महारण में अर्जुन उसे काट गिराते थे। इस प्रकार अर्जुन ने भीष्म के बहुत से धनुष काट डाले, परन्तु भीष्म ने अब भी अर्जुन पर कोई प्रहार नहीं किया ॥५३-५४॥

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समर्पयत् ।

सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत ॥५५॥

अर्जुन ने फिर भीष्म पर पच्चीस बाण छोड़े। इन बाणों स अत्यन्त आहत हुए महाधनुर्धर भीष्म, दुःशासन से कहने लगे।

एष पार्थो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः ।

शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाऽभ्यहनद्रणे ॥५६॥

पाण्डवों के महारथी, अर्जुन, आज रण में क्रोध में भरे हुए हैं, इसीसे इस महारण में सहस्रों बाण छोड़ २ कर केवल मुझ पर ही प्रहार कर रहे हैं ॥५६॥

न चैष समरे शक्यो जेतुं वज्रभृता अपि ।

न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ॥५७॥

मां चापि शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्या महारथाः

इस अर्जुन को रण में वज्रधारी इन्द्र भी नहीं जीत सकते हैं और न इकट्ठे हुए देव-दानव और राक्षस पराजित करने में समर्थ हैं, फिर महारथी मनुष्यों की तो चर्चा ही क्या है ? ॥५७॥

एवं तयोः संवदतोः फाल्गुनो निशितैः शरैः ।५८।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संयुगे ।

ये दोनों इसी तरह कुछ बात चला रहे थे, कि अर्जुन ने इस संग्राम में शिखण्डी को आगे करके भीष्म को फिर तीक्ष्ण बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥५८॥

ततो दुःशासनं भूयः स्मयमान इवाऽब्रवीत् ॥५९॥
अतिविद्धं शितैर्बाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना ।

इन तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन द्वारा अत्यन्त विद्ध हुए भीष्म, कुछ मुस्कराते हुए दुःशासन से फिर बोले ॥५९॥

वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि ॥६०॥
मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः ॥६१॥
मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।

हे दुःशासन ! इस रण में लगातार अर्जुन द्वारा छोड़े हुए बाण, इन्द्र के वज्र के समान बड़े ही कठोर है। ये बाण शिखण्डी के नहीं हो सकते हैं, जो दृढ़ कवच के भेदन करने वाले हैं और

जिन्होंने मेरे मर्म स्थानों को काट डाला है। ये तो मेरे शरीर पर मुसल शस्त्र के आघात की सी पीड़ा कर रहे हैं। ये बाण शिखण्डी के नहीं हो सकते हैं ॥६०-६१॥

वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥६२॥
मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः।

इनका स्पर्श, वज्रदण्ड के तुल्य दुःखदायी और ये वज्र के वेग के समान दुर्गम है। इन्होंने मेरे प्राणों को बड़ा ही पीड़ित कर दिया है। ये बाण शिखण्डी के नहीं हो सकते ॥६२॥

नाशयन्तीव मे प्राणान्यमदूता इवाऽऽहिताः ॥६३॥
गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखण्डिनः।

प्रहार करनेवाले यमदूतों के तुल्य, ये बाण, मेरे प्राणों का नाश कर रहे हैं। इनका स्पर्श, गदा और परिघ के तुल्य भीषण हैं। ये बाण शिखण्डी के कैसे हो सकते हैं ॥६३॥

भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्बणाः ॥६४॥
समाविशन्ति मर्माणि नेमे बाणाः शिखण्डिनः।

ये बाण, क्रोध में भरे विषधारी, जिह्वा लपलपाने वाले सर्प के तुल्य भयङ्कर हैं, जो मेरे मर्मस्थानों को चीर कर भीतर घुस गए हैं। ये बाण शिखण्डी के नहीं माने जा सकते ॥६४॥

अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥६५॥
कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवा इव।

ये बाण, अर्जुन के हैं·शिखण्डी के नही हो सकते, जो मेरे शरीर को इस तरह पीड़ित कर रहे हैं, जैसे·वृश्चिकी को उसके बच्चे टंक मारते रहते हैं ॥६५॥

सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ॥६६॥
वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् ।

अन्य नराधिपों के बाण, मुझे कोई पीड़ा नहीं पहुंचा· सकते हैं। गाण्डीव धनुषधारी कपिकेतन वीर अर्जुन के बाण ही केवल मेरे मर्म स्थानों को बींध सकते हैं ॥६६॥

इति ब्रुवञ्छान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥६७॥
शक्तिभीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत ।

हे भारत ! शान्तनु-पुत्र भीष्म, इतना कहकर क्रोध में भर गए और उन्होंने पाण्डवों को भस्म करने की इच्छा से अर्जुन पर भीषण शक्ति का प्रहार किया ॥६७॥

तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् ॥६८॥
हश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत ।

हे भारत ! अर्जुन ने सारे कौरव वीरों के देखते २ उस शक्ति को तीन बाण छोड़कर तीन स्थानों से काट गिराया ॥६८॥

चर्माऽथाऽऽदत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥६९॥
खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा ।

अब भीष्म ने सुवर्ण से चित्रित ढाल और असि (तलवार) उठायी, और मृत्यु या विजय इन दोनों में से एक को स्वीकार करते हुए अर्जुन पर वेग से झपटे ॥६६॥

तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत्सायकैस्तथा ॥७०॥
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाऽभवत ।

भीष्म अभी रथ से उतरे भी नहीं थे, कि अर्जुन ने अपने बाणों से उस ढाल के सैंकड़ों खण्ड कर डाले। यह दृश्य बड़ा ही वीरता पूर्ण और अद्भुत माना गया ॥७०॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वान्यनीकान्यचोदयत् ॥७१॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि ।

अब राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना को आज्ञादी, कि तुम भीष्म पर आक्रमण करो और थोड़ा भी किसी प्रकार का भय न करो ॥७१॥

अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः ॥७२॥
पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैश्च तथा शितैः ।
वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ॥७३॥

इन सैनिक वीरों ने तोमर, प्रास, बाणसमूह, पट्टिश, खड्ग, तीक्ष्ण नाराचसंज्ञक बाण, वत्सदन्त और भाले लेकर सब ओर से भीष्म पर आक्रमण कर दिया ॥७२-७३॥

सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत्तदा ।
तथैव तव पुत्राश्च नेदुर्भीष्मजयैषिणः॥७४॥

इस समय पाण्डवों ने बड़ा ही घोर सिंहनाद किया। इसी तरह तुम्हारे पुत्रों ने भी भीष्म के विजय की अभिलाषा से बड़ी गर्जना की ॥७४॥

तमेकमभ्यरक्षन्त सिंहनादांश्च चक्रिरे ।
तत्राऽऽसीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ॥७५॥

कौरव अकेले भीष्म की रक्षा में जुटे हुए थे और सिंहनाद कर रहे थे। इस समय तुम्हारे वीर और पाण्डव वीरों में बड़ी ही घमसान लड़ाई हुई ॥७५॥

दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे ।
आसीद्गाङ्ग इवाऽऽवर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ॥७६॥

हे राजेन्द्र ! दशवें दिन इस भीष्म और अर्जुन के युद्ध में ऐसा अद्भुत दृश्य दिखाई दिया, जैसे समुद्र में गङ्गा के गिरने के समय कभी २ घोर भँवर दिखाई देने लगता है ॥७६॥

सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
असौम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ताऽभवत्तदा ॥७७॥
समं च विषमं चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।

दोनों सेनाओं के युद्ध करने और परस्पर एक दूसरे वीर के मारने पर पृथिवी बड़ी ही भीषण दिखाई दे रही थी और यह सब ओर रक्त से भीगी हुई थी। इस समय पृथिवी की ऊँचाई या नीचे पन का रण में कहीं भी पता नहीं लगता था ॥७७॥

योधानामयुतं हत्वा तस्मिन्स दशमेऽहनि ॥७८॥
अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।

इस दशवें दिन भी भीष्म ने पाण्डवों के दश सहस्र वीर मार गिराए, परन्तु स्वयं इतने घायल होगए, कि उनके सारे मर्म स्थान कट गए, तो भी भीष्म युद्धस्थल में ही डटे रहे ॥७८॥

ततः सेनामुखे तस्मिन्स्थितः पार्थो धनुर्धरः ॥७६॥
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम् ।

धनुषधारी अर्जुन अपनी सेना के अग्रभाग में स्थित होकर कुरुसेना के मध्य में से निकलकर सेना को छिन्न-भिन्न करने लगे ।

वयं श्वेतहयाद्भीताः कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥८०॥
पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः प्राद्रवाम रणे तदा ।

इस समय हम लोग भी श्वेत अश्वों के वाहनवाले कुन्ती पुत्र अर्जुन से भयभीत हो गए और अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से आहत होते हुए रण से भाग आए ॥८०॥

सौवीराः कितवः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सहः ॥८२॥
सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः ।
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥८३॥

सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्वाश्रय, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, और केकय-ये सारे वीर, अर्जुन के बाणों से पीड़ित और क्षत-विक्षत हो रहे थे, तो भी अर्जुन से युद्ध करनेवाले भीष्म को रण में अकेला नहीं छोड़ते थे ॥८१-८३॥

ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः ।
परिकाल्य कुरून्सर्वाञ्शरवर्षैरवाकिरन् ॥८४॥

इसके अनन्तर इन बहुत से महारथियों ने भीष्म को सब ओर से घेर कर सारे कौरवों को ललकारा और उन पर बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥८४॥

निपातयत गृह्णीत युध्यध्वमवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो राजन्भीष्मरथं प्रति ॥८५॥

हे राजन् ! इस समय भीष्म के रथ के समीप, "गिराओ" "पकड़ो" "युद्ध करो" "काट डालो" इस प्रकार अत्यन्त कोलाहल मचा हुआ था ॥८५॥

निहत्य समरे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
न तस्याऽऽसीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥८६॥

हे राजन् ! भीष्म ने रण में सैंकड़ों हजारों की संख्या में वीर मार डाले, परन्तु इसके भी शरीर में दो अङ्गुल भी स्थान खाली नहीं था, जिसमें घाव न हो ॥८६॥

एवम्भूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः ।

शिताग्रैः फाल्गुनेनाऽऽजौ प्राक्शिराः प्रापतद्रथात् ॥

इस प्रकार तुम्हारे पिता को अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से अत्यन्त छेद डाला। अब भीष्म, रण में पूर्व की ओर शिर करके रथ से गिर पड़े ॥८७॥

किञ्चिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम् ।

हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानां च भारत ॥८८॥

पतमाने रथाद्भीष्मे बभूव सुमहास्वनः ।

हे भारत ! जब कुछ दिन शेष था, उस समय तुम्हारे पुत्रों के देखते २ आकाश में देवों और पृथिवी पर राजाओं में हाहाकार मच गया। इस प्रकार भीष्म के रण से गिरने के समय महान् कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥८८॥

सम्पतन्तमभिप्रेच्य महात्मानं पितामहम् ॥८९॥

सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन्हृदयानि नः ।

महावीर भीष्मपितामह को गिरते देखकर भीष्म के साथ २ ही हम सबके हृदय गिर गए ॥८९॥

स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥९०॥

इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।

धरणीं न स पस्पर्श शरसङ्घैः समावृतः ॥९१॥

सारे धनुषधारियों में श्रेष्ठ महाबाहु भीष्म, पृथिवी को आर्त ध्वनि से शब्दायमान करते हुए कटी हुई इन्द्र ध्वजा की भांति भूमिमें गिर गए। इनके शरीरमें इतने बाण लगे हुए थे, कि गिरने पर भी इन्होंने पृथिवी का स्पर्श नहीं किया ॥९०-९१॥

शरतल्ये महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम् ।
रथात्प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् ॥९२॥

महाधनुर्धर, पुरुषश्रेष्ठ, भीष्म के रथ से गिर कर शरशय्या पर शयन करने के समय उनके चित्त में दिव्य-भाव (आत्मज्ञान) का सञ्चार हुआ ॥९२॥

अभ्यवर्षच्च पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी ।
पतन्स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥९३॥

इस समय मेघ, वर्षा करने लगे और पृथिवी कांपने लगी। इन्होंने गिरते हुए देखा, कि सूर्य दक्षिणायन हो रहे हैं ॥९३॥

संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं सञ्चिन्त्य भारत ।
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः ॥९४॥
कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कालकर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने ॥९५॥

हे भारत ! इस काल का विचार करके वीर भीष्मपितामह सचेत हो गए और इन्होंने आकाश से दिव्यवाणी सुनी, कि समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महात्मा गङ्गा-पुत्र, नरश्रेष्ठ भीष्म, दक्षिणायन प्राप्त होने पर भी कैसे अपने शरीर का त्याग कर रहे हैं ॥९४-९५॥

स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ।
धारयामास च प्राणान्पतितोऽपि महीतले ॥९६॥
उत्तरायणमन्विच्छन्भीष्मः कुरुपितामहः ।

इस वाणी को सुनकर भीष्म बोले-नहीं २ मैं अ भी जीवित हूं । इतना कहकर वे पृथिवी में पड़े हुए भी प्राणों को धारण किए रहे, क्योंकि भीष्मपितामह उत्तरायण सूर्य के होने पर अपने प्राण छोड़ना चाहते थे ॥९६॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ॥९७॥
महर्षीन्हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै ।

भीष्म के इस विचार को जानकर हिमालय की पुत्री गङ्गा ने हंस रूप में महर्षियों को भेजा ॥९७॥

ततः सम्पातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ॥९८॥
आजग्मुः सहिता द्रुष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥९९॥

मानससरोवर पर निवास करने वाले हंस रूपधारी महर्षि उड़ते २ इकट्ठे ही भीष्मपितामह के पास पहुंचे, जहां पर भीष्म शर-शय्या पर शयन कर रहे थे ॥९८-९९॥

ते तु भीष्मं समासाद्य ऋषयो हंसरूपिणः ।
अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥१००॥

इन हंस रूपधारी महर्षियों ने भीष्म के पास पहुंच कर कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म को शरशय्या पर पड़े हुए देखा ॥१००॥

ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
गाङ्गेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् ॥१०१॥
इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः ।
भीष्मः कथं महात्मा सन्संस्थाता दक्षिणायने ॥१०२॥

इन्होंने महात्मा भीष्म के दर्शन किए और उनकी प्रदक्षिणा की । उन मुनियों ने भरतवंशश्रेष्ठ, गङ्गा-पुत्र भीष्म को दक्षिणायन सूर्य में प्राण छोड़ते देखकर आश्चर्य-पूर्वक एक दूसरे से कहा, कि महात्मा भीष्म दक्षिणायन सूर्य रहने पर कैसे प्राण त्याग कर रहे हैं ॥१०१-१०२॥

इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशम् ।
सम्प्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥१०३॥
तानब्रवीच्छान्तनवो नाऽहं गन्ता कथञ्चन ।
दक्षिणावर्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम् ॥१०४॥

इतना कहकर हंस दक्षिण दिशा को उड़ने लगे । हे भारत ! इनको उड़ते देखकर महाबुद्धि शान्तनु-पुत्र भीष्मपितामह, उन महर्षियों से कहने लगे, कि जब तक सूर्य दक्षिणायन है, तब तक मैं कभी प्राण त्याग नहीं करूंगा-यह मेरा दृढ़ निश्चय है ॥१०३-१०४॥

गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम् ।
उदगायन आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥१०५॥

हे महर्षियो ! यह तो मेरा पूर्वकाल से ही विचार है, कि मैं अपने प्राणों का त्याग उत्तरायण सूर्य में ही करूंगा-यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूं ॥१०५॥

धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकांक्षया ।
ऐश्वर्यभूतः प्राणानामुत्सर्गो हि यतो मम ॥१०६॥
तस्मात्प्राणान्धारयिष्ये मुमूर्षुरुदगायने ।

मैं उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा में अपने प्राण धारण किए रहूंगा-मुझे यह शक्ति प्राप्त है, कि मैं जब इच्छा करूं-तब अपने प्राणों को छोड़ूं । मैं तो उत्तरायण सूर्य में ही मृत्यु प्राप्त करना चाहता हूं, इससे प्राणों को अभी रोके रहूंगा ॥१०६॥

यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ॥१०७॥
छन्दतो मृत्युरित्येवं तस्य चाऽस्तु वरस्तथा ।
धारयिष्ये ततः प्राणानुत्सर्गे नियते सति ॥१०८॥
इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसान्स शेते शरतल्पगः ।

महात्मा मेरे पिता शान्तनु ने मुझे वरदान दिया था, कि तू अपनी इच्छानुसार प्राण त्याग कर सकेगा, मुझे पिता के वरदान का स्मरण है । अब मैं अपने प्राणों को धारण किए रहूंगा, क्योंकि उनका छोड़ना तो मेरेही अधीन है। भीष्मपितामह उन हंस रूपधारी महर्षियों से इतना कह कर फिर अपनी शरशय्या पर सो गए ॥

एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि ॥१०६॥
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ।

इसप्रकार महा ओजस्वी, कौरवों के चोटी के महारथी भीष्म के रण में गिर जाने पर पाण्डव और सृञ्जयों ने बड़ा भारी सिंहनाद किया ॥१०६॥

तस्मिन्हते महासत्त्वे भरतानां पितामहे ॥११०॥
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! भरतवंश के पितामह महाशक्तिशाली भीष्म के गिरा लेने पर तुम्हारे पुत्रों को कुछ भी नहीं सूझ पड़ा ॥११०॥

सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत्तदा ॥१११॥
कृपदुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः ।
विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन्विगतेन्द्रियाः ॥११२॥
दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः ।
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाऽभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥११३॥

इस समय कौरव वीरों को बहुत ही घबराहट छा गई। कृपाचार्य और दुर्योधन तो हिचकी ले २ कर रोने लगे । इनको इतना विषाद हुआ, कि इन्हें कुछ भी चेतनता न रही । हे महाराज ! ये बहुत काल तक चिन्ता ही करते रहे । इनका युद्ध करने को भी उत्साह नहीं रहा । इनके पैर टूटसे गए, जिससे मानो पाण्डवों पर आक्रमण ही नहीं कर सके ॥१११-११३॥

अवध्ये शन्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि ।

अभावः सहसा राजन्कुरुराजस्य तर्कितः ॥११४॥

हे राजन् ! महाओजस्वी, किसी प्रकार भी नहीं मारेजाने वाले शान्तनु-पुत्र भीष्म के भी मार लेने पर लोगों ने यहीं समझा, कि अब कुरुराज दुर्योधन भी मरे ही समझो ॥११४॥

हतप्रवीरास्तु वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।

कर्तव्यं नाऽभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ॥

कौरव वीर यही सोच रहे थे, कि हमारे उत्तम २ वीर मारे जा चुके । हम लोग भी तीक्ष्ण बाणों से क्षत-विक्षत हो रहे हैं । इस समय हमको कुछ भी कर्तव्य सूझ नहीं पड़ता है । हमें तो अब सव्य-साची अर्जुन ने जीत लिया ही समझो ॥११५॥

पाण्डवाश्च जये लब्ध्वा परत्र च परां गतिम् ।

सर्वे दध्मुर्महाशङ्खाञ्शूराः परिघबाहवः ॥११६॥

पाण्डवों ने विजय और परलोक में सद्गति का मार्ग सरल कर लिया । अब परिघ आदि शस्त्र धारण किए हुए शूरवीर पाण्डव, बड़े २ शङ्ख बजाने लगे ॥११५॥

सोमकाश्च सपञ्चाला प्राहृष्यन्त जनेश्वर ।

ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु स महाबलः ॥११७॥

आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च ।

हे जनेश्वर ! सोमक और पञ्चाल, बड़े ही प्रसन्न हुए । इस समय जब पाण्डव सेना में सहस्रों तुरी आदि बाजे बज रहे थे, तो महाबली भीमसेन अपनी जंघा फटकार कर गर्जना करने लगा।

सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये निहते विभौ ॥११८॥
संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः ।

हे राजन् ! गङ्गा-पुत्र भीष्म के मारे जाने पर दोनों ओर के वीर, शस्त्र छोड़कर सब ओर कुछ विचार निमग्न से ही दिखाई देते थे ॥११८॥

प्राक्रोशन्प्राद्रवंश्चाऽन्ये जग्मुर्मोहं तथाऽपरे ॥११९॥
क्षत्रं चाऽन्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चाऽन्येऽभ्यपूजयन् ।

कुछ रोने चिल्लाने, कुछ भागने और कुछ वीर मोह को प्राप्त हो गए। कोई वहीं पर क्षात्रधर्म की निन्दा और कोई वीर कहीं पर भीष्म की प्रशंसा कर रहे थे ॥११९॥

ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्महाव्रतम् ॥१२०॥
भरतानां च ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे ।

महाव्रतशाली भीष्म की ऋषि और पितृगण प्रशंसा कर रहे थे तथा भरतवंश के पूर्वजों ने भी भीष्मकी बड़ी प्रशंसा की ॥१२०॥

महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान् ॥१२१॥
जपञ्शान्तनवो धीमान्कालाकांक्षी स्थितोऽभवत् ॥

वीर्यवान् शान्तनु-पुत्र बुद्धिमान् भीष्मपितामह, संसार से उद्धार करने वाले योग का अवलम्बन करके जप करते हुए उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करने लगे ॥१२१-१२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मनिपातने ऊनविंशत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म के रण में गिरने का एकसौ उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।
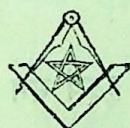
एकसौ बीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथमासंस्तदा योधा हीना भीष्मेण सञ्जय।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! देवों के समान पराक्रमी पिता के सुख के निमित्त ब्रह्मचर्यव्रत के धारण करनेवाले, भीष्म से रहित हुए हमारे योद्धाओं की क्या दशा हुई ॥१॥

तदैव निहतान्मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः ।
न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणित्वाद् द्रुपदात्मजम् ॥२॥

मैं तो पाण्डवोंद्वारा तभी से कौरव तथा कौरवपक्ष के अन्य राजाओं को मरा हुआ मानता हूं, जब से भीष्मने घृणा करके द्रुपदपुत्र शिखण्डी पर प्रहार करने का निषेध किया ॥२॥

ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत्प्रभविष्यति ।
अद्याऽहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः ॥३॥

इससे अधिक अन्य मुझे क्या कष्ट-होगा जो मैं दुर्मति (कम्बख्त) आज अपने पिता तुल्य भीष्म की मृत्यु के समाचार सुन रहा हूं ॥३॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥४॥

हे सञ्जय ! मेरा हृदय निश्चय लोह का बना हुआ है, जो भीष्म की मृत्यु सुन कर भी सौ टुकड़ों में छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता है ॥४॥

यदन्यन्निहतेनाऽऽजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।
चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥५॥

हे व्रतशील ! विजयाभिलाषी कुरुवंशसिंह भीष्म ने रण में आहत होकर और क्या किया ? मुझे यह सब कुछ सुनादो ॥५॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा ॥६॥
स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।

रण में देवव्रत भीष्म की मृत्यु मुझे बार २ क्लेशित कर रही है। जिसको पूर्वकाल में जमदग्निपुत्र परशुराम भी दिव्य शस्त्रों से नहीं मार सका, उसे ही द्रुपदपुत्र पञ्चालदेशोद्भव शिखण्डी ने मार गिराया यह कितने दुःख की बात है ॥६॥

सञ्जय उवाच—

सायाह्ने निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान्विषादयन् ॥७॥
पञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः ।
स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ॥८॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! सायङ्काल के समय निहत होकर भूमि में पड़े हुए कुरु पितामह भीष्म ने कौरवों को विषादयुक्त और पञ्चालों को प्रहर्षित किया, अब भीष्म, पृथिवीका विना स्पर्श किए बाणों की शय्या पर सो रहे हैं ॥७-८॥

भीष्मे रथात्प्रपतिते प्रच्युते धरणीतले ।
हाहेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ॥९॥

भीष्म के रथ से च्युत होकर पृथिवी पर गिरने से प्राणियों में बड़ा भीषण हाहाकार मच गया ॥९॥

सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिञ्जये ।
सेनयोरुभयो राजन्क्षत्रियान्भयमाविशत् ॥१०॥

हे राजन ! युद्धों के जीतने वाले, कौरवों के सीमा के वृक्ष की भांति दृढ़, भीष्म के रण में गिर जाने पर दोनों सेनाओं में भय का सञ्चार होने लगा ॥१०॥

भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् ।
कुरवः पर्यवर्तन्त पाण्डवाश्च विशाम्पते ॥११॥

हे विशाम्पते ! भीष्म को कवच और ध्वजा से रहित देखकर कौरव और पाण्डव युद्धभूमि से लौट पड़े ॥११॥

खं तमः संवृतमभूदासीद्भानुर्गतप्रभः ।
ररास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥१२॥

आकाश में अन्धेरा छा गया । सूर्य कान्तिहीन हो गया । भीष्म के मारे जाने पर पृथिवी, पर बुरी तरह शब्द करने लगी ॥

अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ह्ययं ब्रह्मविदां वरः ।
इत्यभाषन्त भूतानि शयानं पुरुषर्षभम् ॥१३॥

पुरुषश्रेष्ठ भीष्म को रणभूमि में पड़ा देखकर वीर कहते थे, कि ये बड़े ही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा ब्रह्मवादियों में उत्तम थे ॥१३॥

अयं पितरमाज्ञाय कामार्त्तं शन्तनुं पुरा ।
ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥१४॥

इन पुरुषश्रेष्ठ, भीष्म ने अपने पिता शान्तनु को सत्यवती के प्रेम में आसक्त देखकर उनकी कामना पूर्ण करने को सदा के लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया था ॥१४॥

इति स्म शरतल्पस्थं भरतानां महत्तमम् ।
ऋषयस्त्वभ्यभाषन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥१५॥

भरतवंश के पूज्य, शरशय्या पर सोने वाले भीष्म को देखकर इकट्ठे हुए सिद्ध चारण और महर्षिगण सब यही बात कह रहे थे ॥१५॥

हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे ।
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिष ॥१६॥

हे आर्य ! शान्तनु-पुत्र भरतवंश के पितामह, भीष्म के मारे जाने पर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि को कुछ भी कर्तव्य नहीं सूझ पड़ा ॥१६॥

विषण्णवदनाश्चाऽऽसन्हतश्रीकाश्च भारत ।
अतिष्ठन्व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥१७॥

हे भारत ! उनके मुख सूख गए, सारी कान्ति फीकी पड़ गई । ये लज्जित हुए उदासीनता के साथ नीचा मुख किये हुए चुपचाप स्थित थे ॥१७॥

पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्हेमजालपरिष्कृतान् ॥१८॥

पाण्डव, विजय प्राप्त करके संग्राम के अग्र भाग में उछल रहे थे । इन सब ने सुवर्ण से जटित अपने २ विशाल शंखों का बजाना आरम्भ किया ॥१८॥

हर्षात्तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चाऽनघ।
अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥१९॥
विक्रीडमानं कौन्तेय हर्षेण महता युतम् ।
निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् ॥२०॥

हे महाराज ! जब हर्ष से युक्त होकर शस्त्रों की संख्या में तुरी आदि बाजे बजाए जा रहे थे, इस समय महाबली कुन्ती-पुत्र भीमसेन को देखा, कि वह बड़े भारी हर्ष से पूरित होकर नाच रहा था, क्योंकि उन्होंने महाबली अपने शत्रु भीष्म को मार लिया था ॥

सम्मोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत्ततः ।
कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ॥२१॥

इस समय कौरव वीरों में अत्यन्त उदासी छा गई । कर्ण और दुर्योधन, बार २ शोक पूर्ण श्वास लेने लगे ॥२१॥

तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे।
हाहाभूतमभूत्सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥२२॥

कौरवों के पितामह भीष्म, रण में गिर जाने पर सर्वत्र हाहाकार मच गया और कहीं भी कुछ मर्यादा नहीं रही । सब लोग युद्ध मर्यादा छोड़कर इधर उधर दौड़ने लगे ॥२२॥

दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥२३॥

भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनाऽनीकेन दंशितः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं सविषादयन् ॥२४॥

भीष्म के रण में गिर जाने के अनन्तर तुम्हारा पुत्र दुःशासन बड़े वेग से द्रोणाचार्य की सेना की ओर चला। इसको वहां जाने की राजा दुर्योधन ने आज्ञा दी थी। यह अपनी सेना से सुसज्जित था। अपनी कौरव सेना को विषाद युक्त करताहुआ यह पुरुष प्रवीर दुःशासन, चल दिया ॥२३-२४॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्यवारयन् ।
दुःशासनं महाराज किमयं वक्ष्यतीति च ॥२५॥

हे महाराज ! इनको आया हुआ देखकर सारे कौरवों ने उसे घेर लिया, कि यह क्या समाचार लाया है ॥२५॥

ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः ।
द्रोणस्तत्राऽप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥२६॥

कुरुवंशश्रेष्ठ दुःशासन ने द्रोणाचार्य को भीष्म के मरने का वृत्तान्त सुनाया। हे भरतर्षभ ! इस अप्रिय समाचार को सुनकर द्रोण अत्यन्त मोहित हो गए ॥२६॥

स संज्ञामुपलभ्याऽऽशु भारद्वाजः प्रतापवान् ।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥२७॥

हे आर्य ! प्रतापी भरद्वाजवंशोद्भव, द्रोणाचार्य, थोड़ी ही देर में सचेत हो गए और उहोंने अपनी सेना को युद्ध से पृथक् हो जाने की आज्ञा दी ॥२७॥

विनिवृत्तान्कुरून्दृष्ट्वा पाण्डवाऽपि स्वसैनिकान् ।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात्पर्यवारयन् ।।२८।।

पाण्डवों ने जब देखा, कि कौरवसेना, युद्ध से निवृत्त हो गई है तो उन्होंने भी अपने तीव्र-वेगधारी अश्वारोही दूतों द्वारा अपनी सेना को युद्ध से पीछे हटा लिया ।।२८।।

निवृत्तेषु च सैन्येषु पारम्पर्येण सर्वशः ।
निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः ।।२६।।

धीरे २ क्रमपूर्वक सेनाओं के युद्धस्थल से चले जाने पर सारे राजा, कवच आदि हटाकर भीष्म के पास पहुंचे ।।२६।।

व्युपरम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः ।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवाऽमराः ।।३०।।

युद्ध को समाप्त करके सैंकड़ों हजारों की संख्या में योद्धा, प्रजापति के समीप देवों की भांति महात्मा भीष्म के पास पहुंचे ।

ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम् ।
अभिवाद्याऽवतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ।।३१।।

भरतवंशश्रेष्ठ, शरशय्या पर सोते हुए महात्मा भीष्म के पास पहुंच कर सारे कौरव और पाण्डव, प्रणाम करके खड़े हो गए ।

अथ पाण्डून्कुंरूंश्चैव प्रणिपत्याऽग्रतः स्थितान् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ।।३२।।

अपने सन्मुख स्थित पाण्डव और कौरवों को देखकर धर्मात्मा शान्तनु-पुत्र भीष्म ने भी प्रणाम का उत्तर दे कर कहा ॥३२॥

स्वागतं वो महाभागा स्वागतं वो महारथाः ।
तुष्यामि दर्शनाच्चाऽहं युष्माकममरोपमाः ॥३३॥

हे महाभागो ! आपका स्वागत हो ? हे महारथियों ! आप पधारिए। मैं आज आपके दर्शनों से बड़ा सन्तुष्ट होता हूं, क्योंकि तुम्हारे दर्शन, देवों के तुल्य प्रतीत होते हैं ॥३३॥

अभिमन्त्र्याऽथ तानेवं शिरसा लम्बताऽब्रवीत् ।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥३४॥

इस प्रकार भीष्म ने सब का स्वागत किया। यह बात भीष्मने अपने पीछे को लटकते हुए शिर के द्वारा ही कही थी। हे वीरो ! मेरा शिर लटक रहा है, इससे कोई उपधान (तकिया) लाओ ॥

ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च ।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत्तानि पितामहः ॥३५॥

इतना सुनकर अनेक राजा दौड़े और उन्होंने बड़े कोमल हल्के उपधान (तकिए) ला रखे, परन्तु भीष्म ने उनको स्वीकार नहीं किया ॥३५॥

अथाऽब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान्नृपान् ।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥३६॥

नरव्याघ्र भीष्म ने कुछ हंस कर उन राजाओं से कहा-हे नृपो ! इस वीरशय्या पर यह मृदु उपधान उचित नहीं है ॥३६॥

ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् ।
धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥३७॥
धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते ।
दीयतामुपधानं वै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥३८॥

अब भीष्म ने नरश्रेष्ठ, पाण्डु-पुत्र दीर्घभुजाधारी, सब लोक में प्रसिद्ध, महारथी अर्जुन की ओर देखकर कहा हे-महाबाहो ! धनञ्जय, तात ! अर्जुन ! मेरा शिर लटक रहा है । इस समय जो उचित समझो वह तुम ही उपधान प्रदान करो ॥३८॥

सञ्जय उवाच

समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥३९॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अर्जुन, अपने विशाल गाण्डीव धनुष को खैंचकर और पितामह को प्रणाम करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहने लगे ॥३९॥

आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर ।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥४०॥

हे सर्व शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ! कुरुमुख्य ! आप आज्ञा कीजिए । हे दुर्धर्ष ! पितामह ! मैं तो आपका दास हूं-कहिए-क्या करूं ॥

तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते ।
उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥४१॥

शयनस्याऽनुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे ।
त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥४२॥
क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः ।

शान्तनुपुत्र भीष्म, अर्जुन से बोले-हे तात ! मेरा शिर नीचे लटक रहा है। हे कुरुश्रेष्ठ ! अर्जुन ! तुम इसके लिए कोई उपधान (तकिया) का प्रबन्ध करो। हेवीर ! वह उपधान मेरी इस वीरशय्या के अनुरूप होना चाहिए। हे आर्य ! तुम सारे धनुषधारियों में श्रेष्ठ हो तथा क्षत्रिय धर्म के जानने वाले, बुद्धि और आत्मबलादि गुणों से सुसम्पन्न हो ॥४१-४२॥

फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत् ॥४३॥
गृह्याऽनुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान्सन्नतपर्वणः ।

अर्जुन भी भीष्म की आज्ञा को स्वीकार करके उपधान समर्पण के लिए तय्यार हो गया। इसने गाण्डीव धनुष उठाया और मन्त्रों के साथ उस पर नतपर्ववाले बाण चढ़ाए ॥४३॥

अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ॥४४॥
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः ।

अर्जुन ने भरतवंश के पितामह महारथी महात्मा भीष्म से फिर आज्ञा ली और महावेगधारी तीन तीक्ष्ण बाण शिर के नीचे मार कर उसे ऊपर उठा दिया ॥४४॥

अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ॥४५॥

अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् ।

उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्धनञ्जयम् ॥४६॥

सव्यसाची अर्जुन के ठीक २ अभिप्राय के समझ लेने से भरतवंशश्रेष्ठ धर्म और नीति के तत्व के जानने वाले धर्मात्मा भीष्म बड़े ही प्रसन्न हुए। इन्होंने इस प्रकार अर्जुन के इस बाणों के उपधान के प्रदान से अर्जुन की बड़ी प्रशंसा की ॥४५-४६॥

प्राह सर्वान्समुद्वीक्ष्य भरतान्भारतं प्रति ।

कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ॥४७॥

भीष्मपितामह, सारे भरतवंशश्रेष्ठ क्षत्रियों की ओर देखकर कुन्ती-पुत्र, युद्ध में श्रेष्ठ, मित्रों की प्रीति के बढ़ाने वाले, अर्जुन से कहने लगे ॥४७॥

शयनस्याऽनुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।

यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥४८॥

हे अर्जुन ! तुमने मुझे मेरी वीरशय्या के अनुकूल उपधान प्रदान किया है। यदि तुम इसके विपरीत किसी प्रकार का अन्य उपधान (तकिया) प्रदान करते-तो मैं तुम पर कुपित होकर अप्रसन्न हो जाता ॥४८॥

एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता ।

स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाऽऽजौ शरतल्पगतेन वै ॥४९॥

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥५०॥

हे महाबाहो ! क्षत्रियधर्म का आचरण करनेवाले वीरको रण में इसी तरह बाणों की वीरशय्या पर सोना चाहिए । अर्जुन से इतना कह कर भीष्म, राजा, राज-पुत्र और सारे सन्मुख स्थित पाण्डवों से बोले ॥५०॥

पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाऽभिसन्धितम् ।
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ॥५१॥

हे वीरो ! पाण्डु-पुत्र अर्जुन द्वारा प्रदान कियाहुआ उपधान आप लोगों ने देख लिया ! अब जब सूर्य उत्तरायण में आवेंगे-तब तक मैं इसी शरशय्या पर सोता रहूंगा ॥५१॥

ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥५२॥
नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान्सुहृदः सुप्रियानिव ॥५३॥

जो राजा लोग, उत्तरायण तक जीवित रह कर मेरे पास आवेंगे-वे देख लेंगे । जब उत्तम तेजधारी, सात अश्वों से युक्त रथ से सूर्य, कुबेर से सुरक्षित उत्तर दिशा में पहुंच जावेंगे-तब ही मैं एक मित्र दूसरे प्रिय मित्र को जिस तरह समय पर छोड़ देता है-वैसे ही मैं भी प्राणों को छोड़ूंगा ॥५२-५३॥

परिखाः खन्यतामत्र ममाऽवसदने नृपाः ।
उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशतार्चितः ॥५४॥
उपारमध्वं संग्रामाद्वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः ।

हे नृपो ! आप लोग मेरे इस स्थान पर खाई खुदवा दो । मैं बाणों से व्याप्त हुआ ही सूर्य की उपासना करता रहूंगा । हे राजाओ ! अब तुम लोग भी अपना २ वैर छोड़ कर इस संग्राम से विरक्ति ग्रहण करो ॥५४॥

सञ्जय उवाच—

उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥५५॥
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस समय शल्य-चिकित्सा में कुशल, कुशल आचार्यों द्वारा शिक्षित, अनेक वैद्य अपने सारे उपकरण (औज़ार) लेकर वहां आए ॥५५॥

तान्दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥५६॥
धनं दत्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ।

इनको देखकर गङ्गा-पुत्र भीष्म ने आपके पुत्र राजा दुर्योधन से कहा—हे राजन ! तुम इन वैद्यों को सत्कार के साथ द्रव्य प्रदान करके वापिस भेज दो ।५६॥

एवङ्गते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहाऽस्ति किम् ॥५७॥
क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।

इस दशा में मुझे वैद्यों की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने क्षत्रिय धर्म के अनुसार बड़ी उत्तम गति प्राप्त की है ॥५७॥

नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥५८॥

एभिरेव शरैश्चाऽहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः।

हे महीपालों ! बाण शय्या पर शयन करने वाले मुझ वीर को चिकित्सा करवाना उचित नहीं है। हे नराधिपो ! मुझे तो आप लोग इन बाणों के साथ ही मरने के अनन्तर अग्नि में भस्म कर देना ॥५८॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥५६॥

वैद्यान्विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः।

हे राजन् ! भीष्म के ये वचन सुनकर तुम्हारे पुत्र, दुर्योधन ने जो वैद्य जिस पूजा के योग्य था, उसकी वैसी ही पूजा करके उनको उलटे ही भेज दिया ॥५६॥

ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ॥६०॥

स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्याऽमिततेजसः।

अनेक देशों के नृपतिगण, अपरिमिततेजधारी भीष्म की ध में दृढ़ भक्ति देखकर बड़े अचम्भित हुए ॥६०॥

उपधानं ततो दत्वा पितुस्ते मनुजेश्वराः ॥६१॥

सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः।

उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥६२॥

तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिःप्रदक्षिणम् ।
विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥६३॥
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
निवेशायाऽभ्युपागच्छन्सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥६४॥

हे राजन्! तुम्हारे पिता भीष्म को उपधान प्रदान करके राजाओं के साथ कौरव और पाण्डव, इकट्ठे ही भीष्म के समीप पहुंचे। इन्होंने वीरोचित सुन्दर शय्या पर शयन करने वाले महात्मा भीष्म को प्रणाम करके तीन प्रदक्षिणा की। भीष्म की सब ओर से समुचित रक्षा और सेवा का प्रबन्ध कर दिया। इस समय दोनों पक्ष के वीर बड़े व्याकुल होकर भीष्म का ही चिन्तन करते हुए अपने २ शिबिरों में निवेश (आराम) के लिए चल दिए। राजा लोग, अभी तक रक्त में भीगे हुए थे ॥६१-६४॥

निविष्टान्पाण्डवांश्चैव प्रीयमाणान्महारथान् ।
भीष्मस्य पतने हृष्टानुपगम्य महाबलः ॥६५॥
उवाच माधवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

जब पाण्डव अपने शिविर में पहुंच गए-तो उनके पास महाबली श्रीकृष्ण, पहुंचे। महारथी पाण्डव, भीष्म के गिर जाने से प्रफुल्लित हो रहे थे, इस उचित समय पर श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर से बोले ॥६५॥

दिष्ट्या जयसि कौरव्य दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ॥
अवध्यो मानुषैरेव सत्यसन्धो महारथः ।

अथवा दैवतैः सार्धं सर्वशास्त्रस्य पारगः ॥६७॥
त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा।

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! युधिष्ठिर ! बड़े हर्ष की बात है, कि तुम विजयी हुए और तुम लोगों ने भीष्म को रण में गिरा लिया। ये दृढ़प्रतिज्ञ महारथी भीष्म, मनुष्यों से किसी प्रकार भी नहीं मारे जा सकते थे। ये तो देवों से भी पराजित होने वाले नहीं थे। ये सारे शास्त्रों के ज्ञाता थे, तुम तो चक्षुर्हण (देखते ही भस्म करने वाले) ठहरे, इससे तुमने अपने नेत्र से उन्हें दग्ध कर दिया।६६-६७।

एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥६८॥
तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात्तव पराजयः।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले—हे जनार्दन, आपके अनुग्रह में विजय और कोप में पराजय निश्चित है ॥६८॥

त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥६९॥
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव।

हे कृष्ण ! हमारे तो आप ही रक्षक हैं। आप अपने सेवकों को अभय कर देते हो। हे केशव ! जिनके पक्ष में आप स्थित हो, उनका विजयी होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है ॥६९॥

रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चाऽपि हिते रतः ॥७०॥
सर्वथा त्वां समासाद्य नाऽश्चर्यमिति मे मतिः।

आपने नित्य रण में हमारी रक्षा की है तथा सदा आप हमारा हित करते आए हैं। जो तुम्हारा सब तरह से आश्रय ग्रहण करता है, उसको सब कुछ प्राप्त हो सकता है इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है-ऐसा मेरा मत है ॥७०॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः ।
तवैवैतद्युक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥७१॥

धर्मराज के इतना कहने पर मुस्कराते हुए जनार्दन कृष्ण बोले-हे नृपोत्तम ! आपका इस प्रकार निरभिमान पूर्ण वचन कहना आपके स्वरूप के ही योग्य है ॥७१॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मोपधानदाने विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म को उपधान प्रदान का एकसौ बीसवां अध्याय समाप्त हुआ

एकसौ इक्कसीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन्पितामहम् ॥१॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! जब रात समाप्त हो गई और प्रातःकाल हुआ तो सारे कौरव और पाण्डव फिर भीष्मपितामह के पास पहुंचे ॥१॥

तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तम ।
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥२॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! उन वीर शय्या पर सोने वाले, क्षत्रियश्रेष्ठ वीर भीष्म को प्रणाम करके सारे क्षत्रिय वीर खड़े हो गए ॥२॥

कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः ।
अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ॥३॥

हे राजन् ! इस समय सहस्रों की संख्या में कन्याएँ वहां पहुंच कर चन्दन चूरा, धान की खील, और माला आदि लेकर शान्तनु-पुत्र भीष्म पर वर्षा कर रही थी ॥३॥

स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः ।
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ॥४॥

स्त्री, बालक वृद्ध तथा अन्य देखनेवाले मनुष्य, अन्धकार नाशकारी सूर्य के दर्शनों को जैसे उपस्थित होते हैं, ऐसे ही शान्तनु पुत्र भीष्म के दर्शनों को आए ॥४॥

तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनर्तकाः ।
शिल्पिनश्च तथाऽऽजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम् ॥५॥

सैंकड़ों तुरी आदि बाजे बजाने वाले तथा नट, नर्तक और शिल्पीजन कुरुवृद्ध भीष्मपितामह के पास पहुंचे ॥५॥

उपारम्य च युद्धेभ्यः सन्नाहान्विप्रमुच्य ते ।
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥६॥

अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिन्दमम् ।
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ॥७

युद्ध से विरक्त होकर कवचों को छोड़कर और शस्त्रों को फैंक कर इकट्ठे हुए कौरव और पाण्डव, दुराधर्ष अरिमर्दन भीष्म पितामह के पास बैठे गए। ये सारे भरतवंशोद्भव वीर, अपनी २ आयु के अनुसार एक दूसरे के साथ आदर और प्रीति का व्यवहार करते थे ॥६-७॥

सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता ।
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवाऽऽदित्यमण्डलम् ॥८॥

सैंकड़ों राजाओं से परिपूर्ण, भरतवंशी क्षत्रियवीर की यह सभा भीष्मसहित इस तरह सुशोभित थी, जैसे आकाश में सूर्य मण्डल सुशोभित होता है ॥८॥

विबभौ नृपाणां सा गङ्गासुतमुपासताम् ।
देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥६॥

गङ्गा-पुत्र भीष्मपितामह की उपासना में उपस्थित राजाओं की यह सभा, इन्द्र की सेवा में तत्पर देवों के तुल्य सुन्दर दिखाई दे रही थी ॥६॥

भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ ।
अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥१०॥

हे भरतर्षभ ! भीष्म ने अपनी वेदना को धैर्य से रोक रखा था, तो भी बाणों से इतने सन्तप्त थे, कि उनके श्वास, सर्प के दीर्घश्वासों की तरह प्रतीत होते थे ॥१०॥

शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसम्पातमूर्छितः ।
पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान्प्रत्यभाषत ॥११॥

शस्त्रों के आघात से व्यथित शरीरवाले भीष्मपितामह, उन शस्त्रों की चोटों से मूर्च्छित से थे, तो भी अपने पास राजाओं को देखकर उनसे पानी लाने को कहा ॥११॥

ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रुः समन्ततः ।
भक्ष्यानुच्चावचान्राजन्वारिकुम्भांश्च शीतलान्॥१२॥

हे राजन् ! इतना सुनकर बहुत से राजा बड़े २ उत्तम भोजन और शीतल जल से पूर्ण कलशों को लेकर दौड़े ॥१२॥

उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् ।
नाऽद्याऽतीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः ॥

पानी लेकर उपस्थित राजाओं से शान्तनु-पुत्र भीष्म बोले—हे नृपो ! अब में परित्याग किये हुए मनुष्योचित भोगों का व्यवहार नहीं करूंगा ॥१३॥

अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम् ।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥१४॥

मैं मनुष्यों के भोगों से दूर हो चुका हूं और इस समय शर शय्या पर पड़ा हूं। इस समय मैं सूर्य चन्द्रमा की निवृत्ति (उत्तरायणगति) की प्रतीक्षा में स्थित हूं ॥१४॥

एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन्वाक्येन पार्थिवान् ।
अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत ॥१५॥

हे भारत ! शान्तनु-पुत्र भीष्म ने इतना कहकर और राजाओं को झिड़की सी देकर कहा, कि तुम लोग, अर्जुन को आगे आने दो ॥१५॥

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् ।
अतिष्ठत्प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाऽब्रवीत् ॥१६॥

महाबाहु अर्जुन, भीष्म के सन्मुख उपस्थित हुए और उन्होंने उनको प्रणाम किया। ये बड़ी नम्रता के साथ हाथ जोड़ कर

भीष्म के सामने खड़े हुए और क्या आज्ञा है? इस प्रकार पूछने लगे ॥१६॥

तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याऽग्रतः स्थितम् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम् ॥१७॥

हे राजन् ! प्रणाम-पूर्वक आगे स्थित, पाण्डु-पुत्र अर्जुन को देखकर धर्मात्मा भीष्म बड़ी प्रसन्नता के साथ उससे कहने लगे ॥

दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः ।
मर्माणि परिदूयन्ते खं च परिशुष्यति ॥१८॥

हे अर्जुन ! तेरे बाणों से छिदा हुआ मेरा शरीर दग्ध सा हो रहा है। मेरे मर्म-स्थानोंमें बड़ी पीड़ा है और मुख सूखा जा रहा है॥

वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छाऽपो ममाऽर्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि ॥१६॥

हे अर्जुन ! मेरा शरीर वेदनाओं से क्लेशित हो रहा है, अब तुम मुझे जल प्रदान करो। हे महाधनुर्धर ! तुमही इस समय के अनुकूल जल प्रदान करने में समर्थ हो ॥१६॥

अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥२०॥

अर्जुन ने कहा—हे महाराज ! जैसी आपकी आज्ञा—इतना कहकर वीर्यवान् अर्जुन रथ पर चढ़ गए और उन्होंने बड़े बल के साथ गाण्डीव धनुष को चढ़ा कर बाण फेंका ॥२०॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः।
वित्रेसुः सर्वभूतानि सर्वे श्रुत्वा च पार्थिवाः ॥२१॥

गाण्डीव धनुष की डोरी से निकला शब्द बिजली की कड़क सा दिखाई पड़ा। इस धनुष की टङ्कार को सुनकर सारे प्राणी और नृपतिगण भयभीत हो गए ॥२१॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥२२॥

रथियों में श्रेष्ठ, अर्जुन ने अपने रथ के द्वारा सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ शरशय्या पर सोते हुए भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म की प्रदक्षिणा की ॥२२॥

सन्धाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥२३॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने प्रदीप्त बाण चढ़ाकर धनुष को अभिमन्त्रित किया और सारे वीरों के देखते २ उस पर पर्जन्यास्त्र चढ़ाया ॥२३॥

अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमलाः शुभा ॥२४॥
शीतस्याऽमृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च।

अर्जुन ने इस बाण से भीष्म के दांयी ओर पृथिवी में छेद कर दिया, जिससे निर्मल शीतल अमृत तुल्य, सुगन्धित जल-धारा निकली ॥२४॥

अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥२५॥
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम् ।

अर्जुन ने इसी शीतल जल धारा से कुरुवंशश्रेष्ठ, दिव्य कर्म करने वाले, पराक्रमी भीष्म को तृप्त किया ॥२५॥

कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः ॥२६॥
विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः ।

इन्द्र के तुल्य अर्जुन के इस कर्म को देखकर वहां उपस्थित सारे राजा, बड़े ही विस्मय को प्राप्त हुए ॥२६॥

तत्कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥२७॥
सम्प्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव ।

मनुष्यों के पराक्रम से बहिर्भूत अर्जुन के इस दिव्य पराक्रम को देखकर शीतकाल में पीड़ित गायों की भांति कौरव वीर कांपने लगे ॥२७॥

विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन्सर्वतो नृपाः॥२८॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।

इस समय आश्चर्यान्वित हुए सारे राजा, हर्ष के चिन्ह अपने उत्तरीय (दुपट्टों) को उड़ाने लगे तथा सब ओर से शङ्ख, दुन्दुभियों का भारी शब्द खड़ा हो गया ॥२८॥

तृप्तः शान्तनवश्चाऽपि राजन्बीभत्सुमब्रवीत् ॥२९॥
सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव ।

हे राजन् ! जल से सन्तुष्ट शान्तनु-पुत्र भीष्म, सारे राजाओं के सन्मुख अर्जुन की प्रशंसा करके अर्जुन से बोले ॥२६॥

नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ॥३०॥
कथितो नारदेनाऽसि पूर्वर्षिरमितद्युते ।

हे महाबाहो ! कौरवनन्दन ! अमितद्युते अर्जुन ! तुमको कोई कार्य कठिन नहीं है । इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? नारदजी ने तो पूर्व जन्म में तुम ऋषि थे-यह हमको प्रथम ही बता दिया था ॥३०॥

वासुदेवसहायस्त्वं महत्कर्म करिष्यसि ॥३१॥
यन्नोत्सहेत देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम् ।

हे अर्जुन ! तुम श्रीकृष्ण के साथ इतने विशाल कर्म करोगे, कि जिनको देवोंके साथ देवेन्द्र भी करनेमें समर्थ नहींहो सकता है ।

विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ॥३२॥
धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृषु ॥३३॥

हे पार्थ ! दिव्यबुद्धि वाले लोगों ने जान लिया है, कि तुम सारे क्षत्रियों का नाश करोगे, क्योंकि तुम धनुषधारियों में पृथिवी पर सर्वश्रेष्ठ हो ॥३२-३३॥

मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः ।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥३४॥
आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान्वरः ।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ॥

जगत् के प्राणियों में मनुष्य, पक्षियों में गरुड़, नदियों में समुद्र, चौपायों में गौ, तेजस्वी ग्रहों में सूर्य, पर्वतों में हिमालय, वर्णों में ब्राह्मण जैसे श्रेष्ठ हैं वैसे ही तुम भी धनुर्धरों में उत्तम हो ॥३४॥

न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं मयोच्यमानं विदुरेण चैव ।
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम् ॥

मैंने कई बार राजा दुर्योधन से कहा और विदुर ने भी समझाया, परन्तु उसने एक नहीं सुनी । दुर्योधन को द्रोण, परशुराम जनार्दन कृष्ण और सञ्जय ने भी बहुत समझाया था ॥३६॥

परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्योधनो न च तच्छ्रद्दधाति ।
स शेष्यते वै निहतश्चिराय शास्त्रातिगो भीमबलाभिभूतः ॥

दुर्योधन की बुद्धि उलटी हो रही थी, वह तो इस विषय के विचारने में अचेत सा रहता था । उसने किसी के वाक्य पर श्रद्धा नहीं दिखाई । अबतो यही प्रतीत होता है, कि भीम के बल से टकरा कर वह शीघ्र ही रणभूमि में सो जावेगा, क्योंकि वह शास्त्र के मार्ग को छोड़कर चलता है ॥३७॥

एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्योधनो दीनमना बभूव ।
तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन्भव वीतमन्युः॥

कुरुराज दुर्योधन ने जब ये वचन सुने, तो वह बहुत ही मलिन मुख हो गया । इसको इस तरह देखकर शान्तनु-पुत्र भीष्म

बोले—हे राजन्! तुम हमारी बात पर ध्यान दो और क्रोध का परित्याग करो ॥३८॥

दृष्टं दुर्योधनैतत्ते यथा पार्थेन धीमता ।
जलस्य धारा जनिता शीतस्याऽमृतगन्धिनः ॥३९॥
एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन्नाऽन्यः कश्चन विद्यते ।

हे दुर्योधन! तुमने देखा, कि बुद्धिमान अर्जुन ने अमृत के तुल्य गन्धधारी शीतल जल की धारा किस तरह निकाल दी है। इस प्रकार के कर्म करने की शक्ति इस लोक में अन्य किसी में दिखाई नहीं देती है ॥३९॥

आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ॥४०॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथाऽपि वा ॥४१॥
सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः ।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नाऽन्यो वेदेह कश्चन ॥४२॥

आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, और प्रजापति का पारमेष्ठ्य अस्त्र, धाता त्वष्टा और सविता के अस्त्र तथा वैवस्वतास्त्र आदि सारे अस्त्रों को एक अर्जुन ही जानता है। इनके अतिरिक्त देवकीनन्दन श्रीकृष्ण जानते हैं, अन्य कोई भी इन अस्त्रों का प्रयोग नहीं जानते ॥४२॥

अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन ।
अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ॥४३॥

तात ! पाण्डुपुत्र अर्जुन कभी युद्ध में नहीं जीता जा सकता है। इस महावीर के मनुष्यों से अधिक पराक्रम-शाली कर्म हैं ॥४३॥

तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाऽऽहवशोभिना ।
कृतिना समरे राजन्सन्धिर्भवतु मा चिरम् ॥४४॥

हे राजन् ! इस महाबलधारी, युद्ध में सुशोभित होने वाले, रण में शूर, युद्धकुशल अर्जुन से शीघ्र सन्धि करलो---देर न करो।

यावत्कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम ।
तावत्पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥४५॥

हे कुरुसत्तम ! तात ! जब तक महाबाहु कृष्ण अपने ऊपर अधिकार किए हुए हैं अर्थात् क्रोधित नहीं होते हैं, उससे पहिले पहिले तुम शूरवीर अर्जुन से सन्धि कर लो ॥४५॥

यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
नाशयत्यर्जुनस्तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥४६॥

हे तात ! जब तक अपने सन्नतपर्ववाले बाणों से अर्जुन तुम्हारी सारी सेना का विनाश नहीं कर देते हैं, उससे पूर्व ही तुम अर्जुन से सन्धि करलो ॥४६॥

यावत्तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः ।
नृपाश्च बहवो राजंस्तावत्सन्धिः प्रयुज्यताम् ॥४७॥

हे राजन् ! जब तक तुम्हारे ये कुछ भ्राता तथा नृपतिगण बचे हुए हैं, उससे पूर्व ही तुमको सन्धि कर लेनी चाहिए ॥४७॥

न निर्दहति ते यावत्क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम् ।
युधिष्ठिरो रणे तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥४८॥

हे तात ! क्रोध से प्रदीप्त नेत्रधारी राजा युधिष्ठिर जब तक तेरी सेना को रण में दग्ध नहीं कर लेता है, उससे पूर्व ही सन्धि कर डालो ॥४८॥

नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।
यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ॥४९॥
तावत्ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते ।
युद्धं मदन्तमेवाऽस्तु तात संशाम्य पाण्डवैः ॥५०॥

हे महाराज ! पाण्डुपुत्र नकुल, सहदेव और भीमसेन, जब तक सब प्रकार से तुम्हारी सेना का नाश नहीं कर लेते हैं, उससे पूर्व ही सन्धि कर लेना मुझे उचित प्रतीत होता है। हे तात ! अब तो मेरी मृत्यु के साथ ही इस युद्ध की समाप्ति हो जानी चाहिए ॥४९-५०॥

एतत्तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयाऽनघ ।
एतत्क्षममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥५१॥

हे अनघ ! यह जो मैंने वाक्य कहे हैं, ये तुमको भी सुन्दर प्रतीत होने चाहिए। मैं इसी तरह तुम्हारे कुल का कल्याण देखता हूँ ॥५१॥

त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्याप्तमेतद्यत्कृतं फाल्गुनेन
भीष्मस्याऽन्तादस्तु वः सौहृदं च जीवन्तुशेषाः साधुराजन्त्र

हे राजन् ! अब तुम क्रोध को छोड़ कर पाण्डवों से सन्धि कर लो। अर्जुन ने जितना कर दिखाया, वही पर्याप्त है। अब मुझ भीष्म की आहुति से तुम भ्राताओं में प्रेम हो जाना चाहिए। तुम प्रसन्न हो जाओ, जिससे ये राजा लोग जीवित रह सकें।।५२।।

राज्यस्याऽर्धं दीयतां पाण्डवानामिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु।
मा मित्रध्रुक्पार्थिवानां जघन्यः पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र।।

पाण्डवों को आधा राज्य प्रदान करदो और राजा युधिष्ठिर अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ को चले जावें। हे कुरुराज ! इस तरह तुम मित्र-द्रोही और राजाओं के मध्य में क्षुद्र विचार वाले नहीं कहाओगे और न तुमको संसार में अकीर्ति प्राप्त हो सकेगी ॥५३।।

ममाऽवसानाच्छान्तिरस्तुप्रजानां सङ्गच्छन्तांपार्थिवाःप्रीतिमन्तः
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन्।।

हे राजन् ! मेरी मृत्यु प्रजा की शान्ति का कारण हो जानी चाहिए। ये सारे राजा भी प्रसन्न होकर अपनी २ राजधानी को जावें। पिता-पुत्र, मामा-भानजे और भाई, भाई से गले मिलकर प्रसन्न हो जावें ।।५४।।

न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्ध्या।
तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे सत्यामेतां भारतीमीरयामि।

हे भारत ! यदि अज्ञान के वश में रह कर तुमने मेरे इस समयानुसारी वचन का निर्बुद्धिता के कारण अनुसरण नहीं किया-

तो तुम परिणाम में पछिताओगे और इन सारे राजाओं का अन्त हो जावेगा। यह मैं सत्य वाणी कह रहा हूँ ॥५५॥

एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा।
तूष्णीमासीच्छल्यसन्तप्तमर्मा योज्याऽऽत्मानं वेदनां संनियम्य॥

गङ्गापुत्र भीष्म ने भरतवंश श्रेष्ठ राजा दुर्योधन को राजाओं के मध्य में यह वाणी अपनी हितकारी बुद्धि के कारण बड़े प्रेम से सुनाई। इस समय बाणों की चोट से इनके मर्मों में पीड़ा हो रही थी। इन्होंने अपने को आत्मा में लीन करके वेदना के प्रभाव को कम कर लिया और फिर आप चुप होगए ॥५६॥

सञ्जय उवाच—

धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम्।
नाऽरोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम् ॥५७॥

सञ्जय बोले—हे राजन! भीष्म के ये धर्म और नीति के अनुसार हितकारी; कल्याणजनक वचन भी मरने वाले को औषध की भांति रुचिकारक प्रतीत नहीं हुए ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधनं प्रति भीष्मवाक्ये एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म के उपदेश का एक सौ इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

एकसौ बाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान्पुनः ।
तूष्णीम्भूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जब शान्तनु-पुत्र भीष्म चुप हो गए, तो फिर सारे राजा अपने निवास स्थानों को चले गए ॥१॥

श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः।
ईषदागतसन्त्राससत्वरयोपजगाम ह ॥२॥

पुरुषप्रवीर राधा-पुत्र कर्ण ने जब सुना, कि भीष्म मारे जा चुके, तो उनको थोड़ासा दुःख उत्पन्न हुआ और वे शीघ्रता से भीष्म के पास पहुंचे ॥२॥

स ददर्श महात्मानं शरतल्पगतं तदा ।
जन्मशय्यागतं वीरं कार्तिकेयमिव प्रभुम् ॥३॥

इस महात्मा ने भीष्म को शरशय्या पर पड़ा हुआ इस प्रकार देखा, कि जैसे उत्पत्ति के समय शक्तिशाली वीर कार्तिकेय शरों पर सो रहा हो ॥३॥

निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः ।
भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः ॥४॥

आंखें मींच कर पड़े हुए वीर भीष्म को देखकर महाकान्तिमान् कर्ण रोने लगे और हे भीष्म ! भीष्म ! हे महाबाहो ! इस प्रकार उन्हें सम्बोधित करके जगाने लगे ॥४॥

राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव ।

द्वेष्योऽहं तव सर्वत्र इति चैनमुवाच ह ॥५॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मैं राधा-पुत्र (भाग्यहीन) कर्ण हूं, जो तुम्हारी आंखों में खटकता था और सर्वत्र तुम्हारा द्वेष का पात्र बनता था।

तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि वलीसंवृतलोचनः ।

शनैरुद्वीक्ष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥

कर्ण का शब्द सुनकर बलियों द्वारा ढकी आंखोंवाले कुरु-वृद्ध भीष्म ने धीरे से आंखें खोल कर स्नेह के साथ कर्ण को देखकर यह वचन कहा ॥६॥

रहितं धिष्ण्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः ।

पितेव पुत्रं गाङ्गेयः परिरभ्यैकपाणिना ॥७॥

गङ्गापुत्र भीष्म ने सारे रक्षकों को हटवा दिया और शून्य स्थान करके पुत्र को पिता की भांति एक हाथ से ही कर्ण का आलिङ्गन किया ॥७॥

एह्येहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह ।

यदि मां नाऽधिगच्छेथा न ते श्रेयो ध्रुवं भवेत् ॥८॥

मेरे सर्वदा विरोध करने वाले कर्ण ! आओ ? आओ ? तुम ही एक थे—जो मुझ से स्पर्धा (बराबरी की इच्छा) करते रहते थे। यदि तुम मेरे पास इस समय नहीं आते-तो यह तुम्हारे लिए बहुत ही अशुभ (भद्दी) बात होती ॥८॥

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाऽधिरथः पिता ।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ॥९॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः ।
न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते ॥१०॥

तुम तो कुन्ती-पुत्र हो राधा-पुत्र नहीं हो और न तुम्हारा अधिरथ सूत पिता है। हे महाबाहो ! तुम्हारी उत्पत्ति तो सूर्य से है, यह बात मुझे नारद से विदित हो चुकी है। यही बात मुझे कृष्णद्वैपायन व्यास ने सुनाई थी, जो नितान्त (बिल्कुल) सत्य है-इस में सन्देह नहीं है। हे तात ! मेरा तुम से कोई द्वेष नहीं है-यह मैं सत्य कहता हूं ॥१०॥

तेजोवधनिमित्तं तु परुषं त्वाऽहमब्रुवम् ।
अकस्मात्पाण्डवान्सर्वानवाक्षिपसि सुव्रत ॥११॥
येनाऽसि बहुशो राज्ञा चोदितः सूतनन्दन ।
जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥१२॥

हे सुव्रत ! मैं तो तुम्हारे अभिमान को न्यून करने को यह सब कठोर वचन कहा करता था। हे सूतनन्दन, कर्ण ! तुम वृथा ही सारे पाण्डवों पर अभिमानवश आक्षेप किया करते थे, क्योंकि तुमको राजा दुर्योधन ऐसा करने को बार २ प्रेरित किया करता था। तुमने इसी धर्म-लोप से अपनी उन्नति करके विकास पाया है, इससे तुम्हारी ऐसी नीच बुद्धि है ॥११-१२॥

नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि ।
तेनाऽसि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥१३॥

नीच विचार वाले राजा का आश्रय होने से तुमको मत्सर उत्पन्न हो गया, इससे तुमने गुणवान् पाण्डवों से भी द्वेष करना आरम्भ किया । यही कारण था, जो तुमने कौरवों की सभा में पाण्डव या द्रौपदी को कठोर वचन सुनाए ॥१३॥

जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि ।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम् ।१४।
न त्वया सदृशः कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम ।
कुलभेदभयाच्चाऽहं सदा परुषमुक्तवान् ॥१५॥

मैं यह जानता हूं, कि रण में तुम्हारे पराक्रम को शत्रु नहीं सह सकते हैं । तुम्हारी ब्राह्मणभक्ति, शौर्य, दान में परम श्रद्धा आदि गुणों को भी मैं खूब समझता हूं । हे देवतुल्य पराक्रमधारी ! तुम्हारे सदृश पृथिवी पर अन्य पुरुष मिलना दुर्लभ है । कौरव पाण्डवों की फूट बहुत न बढ़ जावे, इसलिए मैं तुम से कभी कठोर वचन कह देता था ॥१४-१५॥

इष्वस्त्रे चाऽस्त्रसन्धाने लाघवेऽस्त्रबले तथा ।
सदृशः फाल्गुनेनाऽसि कृष्णेन च महात्मना ॥१६॥

बाणों के फैंकने, अस्त्रोंके चढ़ाने, लाघव (फुर्ती) और अस्त्रोंके अन्य प्रकार के बल में तुम अर्जुन और महावीर श्रीकृष्ण के बराबर हो ॥१६॥

कर्ण काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता ।
कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥१७॥

हे कर्ण ! तुमने काशिपुरी में जाकर अकेले ने ही अपने धनुष के भरोसे पर कुरुराज दुर्योधन को कन्या लाकर प्रदान की और सारे राजाओं को परास्त कर दिया ॥१७॥

तथा च बलवान्राजा जरासन्धो दुरासदः ।
समरे समरश्लाघिन्न त्वया सदृशोऽभवत् ॥१८॥

हे युद्ध के अभिलाषी ! इसी तरह बलवान दुरासद राजा जरासन्ध भी रण में तुम्हारे समान नहीं हो सका था ॥१८॥

ब्रह्मण्यः सत्त्वयोधी च तेजसा च बलेन च ।
देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैरधिको युधि ॥१९॥

तुम ब्राह्मण-रक्षक, आत्मबल के साथ युद्ध करने वाले, तेज और बल में देवों के सदृश तथा रण में मनुष्यों से अत्यन्त बलवान् हो ।१९॥

व्यपनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः ।
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम् ॥२०॥

जो मेरा तुम पर पहिले कुछ क्रोध भी था वह आज दूर हो चुका ।कौन पुरुष है, जो उद्योगसे दैव को हटाने में समर्थ हो सके; इसीसे मेरे कठोर वचन का भी तुम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ॥

सोदर्याः पाण्डवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन ।

सङ्गच्छ तैर्महाबाहो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥२१॥

हे अरिसूदन ! महाबाहो ! कर्ण ! पाण्डव, तेरे सहोदर भ्राता हैं। तू उनके साथ मेल करले, इसी में तेरा कल्याण है ॥२१॥

मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनन्दन ।

पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः ॥२२॥

हे आदित्यनन्दन ! यह वैर तो अब मेरे साथ २ समाप्त हो जाना चाहिए। इस तरह सारी पृथिवी के राजा अब दुःखों से मुक्त हो जाने चाहिए ॥२२॥

कर्ण उवाच—

जानाम्येव महाबाहो सर्वमेतन्न संशयः ।

यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः ॥२३॥

अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्धितः ।

भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥२४॥

कर्ण बोले—हे महाबाहो ! हे भीष्म ! जो तुम कह रहे हो-मैं यह सब कुछ जानता हूं । मैं कुन्ती-पुत्र हूं, सूत पुत्र नहीं हूं-यह सब कुछ सत्य है, परन्तु कुन्ती ने तो मुझे फैंक दिया था, मेरा पालन पोषण तो सूत ने ही किया है। अब मैं राजा दुर्योधन के ऐश्वर्य का उपयोग कर रहा हूं, फिर सूत और दुर्योधन के साथ कैसे विश्वासघात कर सकता हूं ॥२३-२४॥

वसुदेवसुतो यद्वत्पाण्डवाय दृढव्रतः ।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥२५॥
सर्वं दुर्योधनस्याऽर्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण ।

हे बड़ी दक्षिणा देनेवाले ! भीष्म ! वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, जैसे पाण्डवों के निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञा करके युद्ध में सम्मिलित हैं-इसी तरह मेरा भी धन, शरीर, पुत्र, स्त्री और यश सब कुछ दुर्योधन को समर्पित है ॥२५॥

मा चैतद्व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥२६॥
कोपिताः पाण्डवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम् ।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम् ।२७।
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ।

हे कौरव ! मैं क्षत्रिय हूं, इससे व्याधि से मरना भी नहीं चाहता हूं । राजा सुयोधन के आश्रय में रहकर मैंने पाण्डवों को सब तरह अप्रसन्न कर दिया है । अब जो होनहार थी, वह हो चुकी-यह हटायी नहीं जा सकती है । उद्योग से कौन पुरुष दैव के हटाने में समर्थ हो सकता हो ॥२६-२७॥

पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥२८॥
भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि ।

हे पितामह ! आपने स्वयं पृथिवी के विनाश के चिन्ह देखे हैं और उनको सभा में सुनाया है-फिर सन्धि कैसे हो सकती है ।२८।

पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥२९॥

अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे ।

विजयिष्ये रणे पाण्डूनिति मे निश्चितं मनः ॥३०॥

पाण्डव और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण अन्य पुरुषों से अजेय हैं-यह सब जानते हैं और इसी कारण से मैं उनसे युद्ध करना चाहता हूं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि मैं पाण्डवों को अवश्य जीत लूंगा

न च शक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।

धनञ्जयेन योत्स्येऽहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥३१॥

मेरा और पाण्डवों का बड़ा दारुण वैर पड़ चुका है, यह छोड़ा नहीं जा सकता है। मैं तो अपने क्षत्रियधर्म के प्रेम से उत्साहित होकर अर्जुन से युद्ध करना चाहता हूं ॥३१॥

अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम् ।

अनुज्ञातस्त्वया वीर युद्ध्येयमिति मे मतिः ॥३२॥

हे तात ! मैं तो युद्ध का निश्चय कर चुका-अब तो आप मुझे युद्ध की ही आज्ञा दीजिए। मैं आपकी आज्ञा लेकर ही युद्ध करना चाहता हूं ॥३२॥

दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात्तथा ।

यन्मयेह कृतं किञ्चित्तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥३३॥

हे महाबाहो ! किसी वेग या मूर्खता से मैंने जो कुछ कटु वचन या विपरीत वचन आपसे कह दिया हो, उसे क्षमा करना।

भीष्म उवाच—

न चेच्छक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।
अनुजानामि कर्ण त्वां युद्ध्यस्व स्वर्गकाम्यया ।३४।

भीष्म बोले—हे कर्ण ! यदि यही बात है, कि तुमसे यह दारुण वैर नहीं छोड़ा जाता-तो मैं अनुमति देता हूं, कि तुम युद्ध करो, विजय नहीं तो स्वर्ग प्राप्ति तो अवश्य हो जावेगी ॥३४॥

निर्मन्युर्गतसंरम्भः कृतकर्मा रणे स्म ह ।
यथाशक्ति यथोत्साहं सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥३५॥

अहं त्वामनुजानामि यदिच्छसि तदाप्नुहि ।
क्षत्रधर्मजिताँल्लोकानवाप्स्यसि धनञ्जयात् ॥३६॥

शोक और क्रोध या आवेग को छोड़कर युद्ध करो, क्योंकि तुम युद्ध में कुशल हो। तुम जहां तक हो सके अपनी शक्ति और उत्साह के अनुसार सज्जनों के आचरण को स्वीकार करो-मैं तुम को आज्ञा देता हूं। अब तुम्हारी इच्छा हो वह करो। क्षत्रिय धर्म के आचरण से प्राप्त होने वाले लोकों को तुम धनञ्जय से युद्ध करके प्राप्त कर सकोगे ॥३५-३६॥

युध्यस्व निरहङ्कारो बलवीर्यव्यपाश्रयः ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३७॥

हे कर्ण ! तुम निरभिमान होकर और बलवीर्य का आश्रय लेकर युद्ध करना। धर्मानुसार युद्ध कर्म से अधिक कल्याणकारी कर्म, क्षत्रिय के लिए अन्य नहीं हो सकता है ॥३७॥

प्रशमे हि कृतो यत्नः सुमहान्सुचिरं मया ।
नचैव शकितः कर्तुं कर्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥३८॥

हे कर्ण ! मैंने तो सन्धि के लिए बहुत काल से बड़ा भारी प्रयत्न किया यह सत्य कहता हूं, परन्तु सब कुछ करने पर भी मैं उसमें कृत कार्य नहीं हो सका यह तुम जानते हो ॥३८॥

सञ्जय उवाच—

इत्युक्तवति गाङ्गेये अभिवाद्योपमन्त्र्य च ।
राधेयो रथमारुह्य प्रायात्तव सुतं प्रति ॥३६॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इतना कहकर गङ्गा-पुत्र भीष्म चुप हो गए। राधा-पुत्र कर्ण भी प्रणाम करके और अनुज्ञा (इजाजत) लेकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के पास चला आया ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥ समाप्तं भीष्मवधपर्व

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म और कर्ण के सम्वाद का एकसौ बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर भीष्मवधपर्व और भीष्मपर्व समाप्त होगया।

* इति भीष्मपर्व समाप्तम् । *

अस्याऽनन्तरं द्रोणपर्व भविष्यति ।

तस्याऽयमाद्यः श्लोकः–

तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितम् ।

हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥१॥

अथद्रोणपर्व

द्रोणाभिषेकपर्व

पहला अध्याय

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवेदव्यासाय नमः ।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

जनमेजय उवाच—

तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यपराक्रमम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥१॥

धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥२॥

जनमेजय बोले—हे विप्रर्षे ! अद्भुत, तेज, ओज, बल, वीर्य और पराक्रम धारी देवव्रत भीष्म को पञ्चाल राजकुमार शिखण्डी द्वारा मारा हुआ सुनकर शोक से व्याकुल नेत्रवाले, वीर्यवान् राजा धृतराष्ट्र ने अपने पिता भीष्म के मरने पर क्या चेष्टा की ॥१-२॥

तस्य पुत्रो हि भगवन्भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान्पाण्डवान्राज्यमिच्छति ॥३॥

हे भगवन् ! राजा धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन, भीष्म द्रोण आदि महारथियों के बल पर ही महाधनुर्धर पाण्डवों को जीत कर अकण्टक राज्य करना चाहते थे ॥३॥

तस्मिन्हते तु भगवन्केतौ सर्वधनुष्मताम् ।
यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥४॥

हे ब्रह्मन् ! सारे धनुष धारियों में ध्वजा की तरह उत्तम भीष्म के मारे जाने पर जो कुछ कुरुराज दुर्योधन ने किया-हे तपोधन ! आप मुझे वह वृत्तान्त ज्यों का त्यों सुनाइए ॥४॥

वैशम्पायन उवाच—

निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥५॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब कुरुवंश-श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र ने अपने पिता भीष्म की मृत्यु के समाचार सुने-तभी से वे चिन्ता और शोक में डूब गए और उन को किसी भी प्रकार शान्ति प्राप्त नहीं होती थी ॥५॥

तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् ।
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥६॥

राजा धृतराष्ट्र के रातदिन चिन्ता में व्याकुल होने के समय में महात्मा गवल्गण के पुत्र सञ्जय फिर उनके पास पहुंचे ॥६॥

शिविरात्सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् ।
आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥७॥

हे महाराज ! रात को युद्धस्थल से लौट कर हस्तिनापुर में आये हुए सञ्जय को देखकर अम्बिका-पुत्र राजा धृतराष्ट्र उससे पूछने लगे ॥७॥

श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।
पुत्राणां जयमाकांक्षन्विललापाऽऽतुरो यथा ॥८॥

जब से राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म का वध सुना था, तभी से वे अत्यन्त शोकातुर हो रहे थे । राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों की जय के अभिप्राय से सञ्जय के सन्मुख पागल की तरह बहुत सा प्रलाप किया ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥९॥

धृतराष्ट्र बोले—हे तात ! सञ्जय ! भयङ्कर पराक्रम कर दिखाने वाले महात्मा भीष्म के शोक के अनन्तर काल प्रेरित, कौरवों ने क्या किया ॥९॥

तस्मिन्विनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि ।
किं नु स्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥१०॥

हे सञ्जय ! दुराधर्ष वीर महात्मा भीष्म के मारे जाने पर शोक सागर में निमग्न, कौरव क्या कर सके होंगे ॥१०॥

तदुदीर्णं महत्सैन्यं त्रैलोक्यस्याऽपि सञ्जय ।
भयमुत्पादयेत्तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥११॥

अभिमन्यु का पराक्रम

महाभारत द्रोणपर्व अ० ३६ । ४१ पृष्ठ ८५६

को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः ।

यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये ॥१२॥

हे सञ्जय ! महावीर पाण्डवों की विशाल सेना, इस समय त्रिलोकी में भी तीव्र भय का सञ्चार कर सकती थी। इस भयानक समय में दुर्योधन की सेना में कौन महारथी वीर था, जिस के भरोसे पर रणाङ्गण में फिर कौरवों को कुछ भय नहीं रहा।

देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।

किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१३॥

हे सञ्जय ! कुरुवंशश्रेष्ठ देवव्रत भीष्म के मारे जाने पर अन्य वीर राजाओं ने क्या किया, तुम यह सब कुछ मुझे सुनाओ

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।

यत्ते पुत्रास्तदाऽकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥१४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुम अब अपने मन को एकाग्र कर लो और मेरे वचन को सुनो, कि रण में देवव्रत भीष्म के मारे जाने पर तुम्हारे पुत्रों ने क्या किया ॥१४॥

निहते तु तदा भीष्मे राजन्सत्यपराक्रमे ।

तावकाः पाण्डवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥१५॥

हे राजन् ! सत्यपराक्रमी देवव्रत भीष्म के मारे जाने पर तुम्हारे पुत्र और पाण्डु-पुत्र पृथक् २ चिन्ता करने लगे ॥१५॥

विस्मिताश्चा प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशम्य ते ।
स्वधर्मं निन्द्यमानास्ते प्रणिपत्य महात्मने ॥१६॥
शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायाऽमितकर्मणे ।
सोपधानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१७॥
विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् ।
अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥१८॥
क्रोधसंरक्तनयनाः समवेत्य परस्परम् ।
पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥१६॥

इन्होंने अपने क्षत्रिय धर्म का यह कर्म देखकर बड़ा विस्मय और उदासीनता प्रकट की। ये अपने इस कठोर क्षत्रिय धर्म की निन्दा करते जाते थे। इसके अनन्तर अपरिमितबलशाली कर्म कर दिखाने वाले, महात्मा भीष्म को प्रणाम करके इन्होंने उन के लिए सन्नतपर्ववाले बाणों से उपधानसहित शरशय्याका निर्माण किया। हे नरव्याघ्र ! ये लोग, भीष्म की रक्षा का प्रबन्ध और परस्पर जो उचित वार्तालाप करना था, उसे समाप्त करके तथा गङ्गा-पुत्र भीष्म की प्रदक्षिणा करके उनकी अनुमति से फिर युद्ध के लिए चल पड़े। काल प्रेरित इन क्षत्रियों की अब आंखें लाल हो गई और परस्पर शत्रुभाव से एक दूसरे को देखने लगे।

ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां निनदेन च ।
तावकानामनीकानि परेषां च विनिर्ययुः ॥२०॥

अब तुरी आदि बाजे और भेरी के शब्दों के साथ तुम्हारी और पाण्डवों की सेना रणाङ्गण में पहुंची ॥२०॥

व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते ।

अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥२१॥

अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः ।

निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वराः ॥२२॥

हे राजेन्द्र ! भीष्म के गिर जाने के अनन्तर सूर्योदय होने पर काल से हत बुद्धि हुए, क्रोधाविष्ट भरतवंशोद्भव वीर, शस्त्र लेकर और पूर्वोक्त महात्मा भीष्म के शिक्षा पूर्ण वचनों को न मान कर बड़ी शीघ्रता से युद्ध के लिए चल पड़े ॥२१-२२॥

मोहात्तव सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च ।

कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः ॥२३॥

हे राजन् ! तुम्हारे और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के अज्ञान तथा शान्तनु-पुत्र भीष्म की मृत्यु हो जाने से सारे राजाओं के सहित कौरव, मृत्युपाश में बँध गए ॥२३॥

अजावय इवाऽगोपा वने श्वापदसंकुले ।

भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥२४॥

सिंह आदि हिंसक प्राणियों से व्याप्त वन में रक्षक से हीन भेड़ बकरियों की तरह देवव्रत-भीष्म से हीन हुए कौरव, अत्यन्त ही व्याकुल हो उठे ॥२४॥

पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी ।
द्यौरिवाऽपेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥२५॥

भरतवंशश्रेष्ठ, भीष्म के रणस्थली में गिर जाने पर कौरव सेना, नक्षत्रों से हीन अन्तरिक्ष और वायु से हीन आकाश की भाँति निःसार दिखाई देने लगी ॥२५॥

विपन्नसस्येव मही वाक्चैवाऽसंस्कृता तथा ।
आसुरीव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ ॥२६॥

हरित अन्नादि के वृक्षों से हीन पृथिवी की भाँति संस्कार से रहित वाणी के तुल्य तथा, बलिदैत्य के पकड़ लेने पर असुरों की सेना के सदृश, कौरव सेना भीष्म के विना हो रही थी ॥२६॥

विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥२७॥
शरभाहतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।
भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥२८॥

भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म के रणभूमि में गिर जाने पर सुन्दरी विधवा के तुल्य व्यर्थ, जल से हीन नदी के सदृश निरर्थक, रक्षक के मारे जाने पर भेड़िये से पकड़ी हुई हिरणी के तुल्य और शरभ नामक भीषण जन्तु द्वारा सिंह से हीन हुई विशाल गुहा की तरह कौरव सेना हो रही थी ॥२७-२८॥

विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवाऽऽसीन्महार्णवे ।
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता ॥२९॥

जिस तरह समुद्र में टूटी हुई वायु के झपेटों में पड़ी हुई नौका की दशा होती है, उसी तरह अपने लक्ष्य को बींध डालने वाले वीर बलवान् पाण्डवों से पीड़ित कौरवसेना की दशा हो रही थी ॥

सा तदाऽऽसीद्भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥३०॥

इस समय कौरव सेना में अश्व, रथ और हाथी अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे । इसमें अधिकांश वीर नर मर चुके थे । इसके मन का उत्साह क्षीण होने से यह दीन सी दिखाई देती थी ॥

तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः ।
पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ॥३१॥

उस सेना में बड़े राजा और साधारण सैनिक सारे ही भयभीत हो रहे थे । वे सब देवव्रत भीष्म से हीन हुए पाताल में डूबे से जा रहे थे ॥३१॥

कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवाऽतिथिम् ॥३२॥

जैसे-विद्या और सदाचार से सम्पन्न अतिथि की गृहस्थी अभिलाषा करते हैं, अब कौरव भी, इसी तरह कर्ण का स्मरण करने लगे, क्योंकि यही देवव्रत भीष्म के तुल्य पराक्रमी थे ॥३२॥

बन्धुमापद्गतस्येव तमेवोपागमन्मनः ।
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥३३॥

हे भारत ! आपत्ति में फँसे हुए मनुष्य ज्यों अपने रक्षक बन्धु का स्मरण करते हैं त्योंही जिधर देखो ? उधर राजा लोग, कर्ण को पुकार रहे थे ॥३३॥

राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
स हि नाऽयुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥३४॥
सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम् ।

रण में शरीर के मोह को नहीं करनेवाले सूत-पुत्र, कर्ण हमारे हित में तत्पर है। उन महायशस्वी ने दश दिन तक अपने मन्त्री और सेना सहित युद्ध नहीं किया, जिससे आज यह दिन देखना पड़ा है। अब उसे शीघ्र बुलाओ, देर, न करो ॥३४॥

भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥३५॥
रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥३६॥
रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसम्मतः ।
सासुरानपि देवेशान्रणे यो योद्धमुत्सहेत् ॥३७॥

भीष्म ने सारे क्षत्रियों के देखते २ जब बलपराक्रमशाली महारथियों की गणना की तो कर्ण को अर्ध-रथी कहकर अपमानित किया था, यद्यपि कर्ण अन्य अतिरथों से द्विगुण शक्ति रखने वाले थे। रथी और अतिरथों की गणना में कर्ण सर्वश्रेष्ठ हैं यह शूरवीर मानते हैं। यह असुर और देवों से एक साथ युद्ध करने में समर्थ है ॥३५-३७॥

स तु तेनैव कोपेन राजन्गाङ्गेयमुक्तवान् ।
त्वयि जीवति कौरव्य नाऽहं योत्स्ये कदाचन ॥३८॥

हे राजन् ! इसी बात से अप्रसन्न होकर कर्ण ने कोप-पूर्वक गङ्गा-पुत्र भीष्म से कह दिया था, कि हे भीष्म ! जब तक तुम जीवित हो, तब तक मैं कभी युद्ध नहीं करूंगा ॥३८॥

त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ॥३९॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! तुमने इस भीषण रण में पाण्डवों को मार लिया, तो राजा दुर्योधन से अनुमति लेकर मैं वन में चला जाऊंगा

पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि ।
हन्ताऽस्म्येकरथेनैव कृत्स्नान्यान्मन्यसे रथान् ॥४०॥

हे भीष्म ! यदि तुम को पाण्डवों ने मार लिया और तुम स्वर्ग चले गए, तो जिनको तुम अतिरथी मानते हो मैं अकेला ही उन सबको मार लूंगा ॥४०॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशाः ।
नाऽयुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव सम्मते ॥४१॥

हे राजन् ! महायशस्वी कर्ण इतना कहकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की अनुमति से दश दिन तक युद्ध से विरक्त रहा ॥४१॥

भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत ।
जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥४२॥

हे भारत ! अपरिमितबलशाली रण में पराक्रम दिखानेवाले भीष्म ने राजा युधिष्ठिर के बहुत से योद्धा मार डाले ॥४२॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्यसन्धे महौजसि ।
त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥४३॥

अब महा ओजस्वी, सत्यपराक्रमी शूरवीर भीष्म के मारे जाने पर तुम्हारे पुत्रों ने कर्ण का ऐसे स्मरण किया है जैसे-जल राशि को पार करने वाले प्राणीनौका का ध्यान करते हैं ॥४३॥

तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः ।
हा कर्ण इति चाऽऽक्रन्दन्कालोऽयमिति चाऽब्रुवन् ॥

हे भारत ! तुम्हारे सैनिकवीर, पुत्र और राजा लोग, केवल कर्ण को ही पुकार रहे हैं, कि हे कर्ण ! अब तुम्हारे आने का यह समय है ॥४४॥

एवं ते स्म हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥४५॥

हे राजन ! इस प्रकार सेना में जिधर देखो-उधर ही शरीर के मोह नहीं करने वाले, सूत-पुत्र कर्ण की ही महाबली योधा चर्चा कर रहे थे ॥४५॥

जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।
अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥४६॥

जमदग्नि पुत्र परशुराम से शस्त्रविद्या प्राप्त करनेवाले, अस्त्र विद्या में अत्यन्त पुरुषार्थी कर्ण पर ही हम लोगों की आशा जा लगी, जैसे-विपत्ति में रक्षक बन्धुओं पर मन जा लगता है ॥४६॥

स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान्महाभयात् ।
त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥४७॥

हे राजन् ! कर्ण, इस भय से हम लोगों की रक्षा करने में समर्थ हैं । जैसे-भगवान् विष्णु, महाभय से देवों की रक्षा करते रहते हैं ॥४७॥

वैशम्पायन उवाच—

तथा तु सञ्जयं कर्णं कीर्तयन्तं पुनः पुनः ।
आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥४८॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब इस प्रकार सञ्जय कर्ण के बार २ गुणानुवाद कर रहे थे, उस समय सर्प के समान दीर्घ श्वास लेकर राजा धृतराष्ट्र कहने लगे ॥४८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

यत्तद्वैकर्त्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा ।
अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥४९॥

हे सञ्जय ! जो तुम लोगों का मन सूर्य-पुत्र कर्ण पर जा लगा, तो क्या ? शरीर की अपेक्षा नहीं करने वाले सूतपुत्र कर्ण से तुम मिल चुके हो ॥४९॥

अपि तन्न मृषाऽकार्षीत्कच्चित्सत्यपराक्रमः ।
सम्भ्रान्तानां तदार्त्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम्।५०।

उस सत्यपराक्रमी वीर कर्ण ने लोगों की आशाओं पर पानी तो नहीं फेर दिया, जो लोग घबरा कर दुःखी हो रहे थे और रक्षा के अभिलाषी थे ॥५०॥

अपि तत्पूरयाञ्चक्रे धनुर्धरवरो युधि ।
यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपाकृतम् ॥५१॥

तत्खण्डं पूरयन्कर्णः परेषामादधद्भयम् ।
स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके सञ्जय कथ्यते ॥५२॥

धनुषधारियों में श्रेष्ठ, कर्ण ने भीष्म के मारे जाने पर जो कमी हो गई थी और कौरवों का जो अपकार हो चुका था, क्या कर्ण ने उसको पूरा कर दिया। उस गड्ढे को कर्ण ने भर कर क्या शत्रुओं को भय-भीत कर दिया। हे सञ्जय ! कर्ण, पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ महारथी गिने जाते हैं ॥५१-५२॥

आर्त्तानां बान्धवानां च क्रन्दतां च विशेषतः ।
परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च शर्म च ।
कृतवान्मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने

प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

हे सञ्जय ! कर्ण ने दुःखी और रोते चिल्लाते हुए कौरव वीरों के निमित्त रण में प्राणों की अपेक्षा (परवाह) न करके और उनकी रक्षा के लिए अपने सुख को छोड़कर क्या मेरे पुत्रों की विजयाभिलाषा को कर्ण ने कुछ पूर्ण किया ? ।।५३।।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में धृतराष्ट्र प्रश्न का पहला अध्याय समाप्त हुआ

दूसरा अध्याय

सञ्जय उवाच—

हतंभीष्ममथाधिरथिर्विदित्वाभिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम्
सोदर्यवद्व्यसनात्सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ।

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! अगाध समुद्र में नौका के सदृश कौरवों के सेनापति भीष्म की मृत्यु का समाचार सुनकर अधिरथ पुत्र कर्ण विपत्ति से तुम्हारे पुत्र की सेना के उद्धार के निमित्त सहोदर भाई के तुल्य उपस्थित हो गया ।।१।।

श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शान्तनवं महारथम्
अथोपयायात्सहसाऽरिकर्षणो धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप

हे नृप ! पुरुषों में श्रेष्ठ, युद्ध से नहीं हटने वाले, शान्तनु-पुत्र महारथी भीष्म की मृत्यु के होते हीं धनुर्धरों में उत्तम, शत्रुविजयी कर्ण, एकदम तय्यार हो गया ।।२।।

हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवाऽर्णवे कुरून्
पितेवपुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततःसन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम्

रथियों में प्रवर भीष्म के मरने पर कौरवों की नौका समुद्र में डूब सी गई। पिता-पुत्र की रक्षा के निमित्त जैसे उद्यत हो जाता है, ऐसी ही तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की सेना के उद्धार के लिए कर्ण उद्यत हो गए ॥३॥

कर्ण उवाच—

यस्मिन्धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे।
अस्त्राणि दिव्यान्यथ सन्नतिर्ह्रीः प्रिया च वागनसूया च भीष्मे
सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म।
स चेत्प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव च सर्ववीरान्॥

कर्ण ने उस समय कहा—जिस भीष्म में धैर्य, बुद्धि, पराक्रम ओज, सत्य, स्मृति आदि सारे वीरों के गुण विद्यमान थे। जो सारे दिव्य अस्त्रों के प्रयोगों को जानते थे। विनय, लज्जा, मधुर वाणी और किसी की निन्दा न करना आदि गुणों से भीष्म सुसम्पन्न थे। जो कृतज्ञ, द्विजों के शत्रुओं के घातक थे। जिनमें उपर्युक्त गुण चन्द्रमा में विद्यमान चिन्ह की भांति सर्वदा विद्यमान रहते थे, वे हीं शत्रुवीरनाशक भीष्म आज शान्त हो गए तो मैं तो समझता हूं, कि अब सारे ही वीर मार लिये गए ॥४-५॥

नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते लोके ह्यस्मिन्कर्मणोऽनित्ययोगात्
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताऽऽर्यमहाव्रतेहते

इस संसार में अनित्य कर्मों के योग से कोई भी कभी सदा विद्यमान नही रह सकता है। जब महाव्रत शील आर्य भीष्म ही मारे गए-तो सूर्योदय तक जीवित रहने की कौन निःसन्देह आशा कर सकता है ॥६॥

वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे गते वसूनेव वसुन्धराधिपे ।
वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा कुरूंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम्

वसु के समान प्रभावशाली, वसु देवता के अंश से उत्पन्न, पृथिवी के अधिकारी भीष्म के वसुलोक को चले जाने पर अब लोगों को धन, पुत्र, पृथिवी, कौरव और कौरवसेना के लिए अवश्य शोक करना पड़ेगा ॥७॥

सञ्जय उवाच—

महाप्रभावे वरदे निपातिते लोकेश्वरे शास्तरिचाऽमितौजसि
पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्त्तयन्

सञ्जय बोले—हे राजन्! अपरिमित प्रभाव और संसार भर के शासनकी शक्ति रखने वाले वरदायी भीष्मके धराशायी हो जाने तथा कौरव सेना के पराजित होने पर कर्ण, अश्रुपात करने और बड़े २ लम्बे श्वास छोड़ने लगा ॥८॥

इदं च राधेयवचो निशम्य सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह
परस्परं चुक्रुशुरार्तिजं मुहुस्तदाऽश्रु नेत्रैर्मुमुचुश्च शब्दवत् ॥

हे राजन्! इस प्रकार कर्ण के वचन सुनकर तुम्हारे पुत्र और सैनिक वीर, एक दूसरे की ओर देखकर चिल्लाने तथा दुःख से उत्पन्न अश्रुओं की धारा करुणास्वर के साथ नेत्रों से छोड़ने लगे।

प्रवर्त्तमाने तु पुनर्महाहवे विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः।
अथाऽब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो रथर्षभान्सर्वमहारथर्षभः ॥१०॥

हे महीपति ! जब फिर युद्ध का प्रारम्भ हुआ-तो राजा लोगों ने अपनी २ सेना को जा सम्हाला । इस समय महारथियों में श्रेष्ठ कर्ण ने सारे उत्तम २ महारथियों से इस प्रकार हर्षोत्पादक वचन कहे ॥१०॥

जगत्यनित्ये सततं प्रधावति प्रचिन्तयन्नस्थिरमद्य लक्षये ।
भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवःकथम्

हे वीरो ! यह जगत् अनित्य और सदा परिवर्तन शील हैं। जब मैं विचार करता हूं-तो इस में प्राणियों के जीवन को बिल्कुल अस्थिर देखता हूं । इस दशा में तुम जैसे-प्राणों के मोह न करने वाले वीरों के रहने पर भी युद्ध में पर्वतोपम निश्चल कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म कैसे गिरा लिए गए ॥११॥

निपातिते शान्तनवे महारथे दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा
न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं गिरिप्रवोढारमिवाऽनिलं द्रुमाः

महारथी शान्तनु-पुत्र भीष्म का गिराना तो मानो पृथिवी पर सूर्य का गिराना है। अब पर्वत में टक्कर लगानेवाले वायु का वृक्षों के तुल्य कोई भी धनञ्जय अर्जुन के पराक्रम के सहने में समर्थ नहीं है ॥१२॥

हतप्रधानं त्विदमार्त्तरूपं परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै ।
मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे बलं यथा तेन महात्मना तथा

कौरव सेना के प्रधान २ वीर मर चुके। यह बड़ी घबरायी हुई है। शत्रुओं द्वारा हतोत्साह की हुई इस अनाथ कौरव सेना की रण में आज उन्हीं महावीर भीष्म के तुल्य रक्षा करनी है-यह कितना कठिन भार है ॥१३॥

समाहितं चाऽऽत्मनि भारमीदृशं जगत्तथाऽनित्यमिदं च लक्षये
निपातितं चाऽऽहवशौण्डमाहवे कथं नु कुर्यामहमीदृशे भयम्

मैंने इस दशा में भी अपने ऊपर इसका सारा भार ले लिया है, क्योंकि जगत् अनित्य है-फिर जीवन के मोह से क्या लाभ है। यद्यपि रण-कुशल भीष्म को रण में गिरा दिया गया है, परन्तु इससे मुझे भय करने की क्या आवश्यकता है ॥१४॥

अहं तु तान्कुरुवृषभानजिह्मगैः प्रवेशयन्यमसदनं चरन्रणे
यशः परं जगति विभाव्यवर्तिता हतोभुविशयिताऽथवा पुनः

अब तो मैं अपने सीधे लक्ष्य पर जाने वाले बाणों से रण में कुशलता दिखाता हुआ कुरुवंशश्रेष्ठ, पाण्डवों को यमराज के घर भेज कर जगत् में पूर्ण यश प्राप्त करूंगा या उनसे मारा जाकर सदा के लिए पृथिवी पर सो जाऊंगा ॥१५॥

युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्ववान्वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः
तथाऽर्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा न तद्बलं सुजयमिहाऽमरैरपि

राजा युधिष्ठिर, धैर्य, बुद्धि, सत्य और आत्मबल से सम्पन्न हैं। वृकोदर भीम, सैंकड़ों हाथियों के समान बलधारी है।

अर्जुन भी इन्द्र के अंश से समुद्भूत युवा (नौजवान) वीर है, इन बातों से यही ज्ञात होता है, पाण्डव सेना देवों से भी सीधी तरह नहीं जीती जा सकती है ॥१६॥

यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले स सात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः
न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान्निवर्त्तते मृत्युमुखान्न चाऽसुभृत्

यम (नकुल-सहदेव) बल में यमराज के तुल्य विक्रम शाली हैं। सात्यकि और देवकी पुत्र-श्रीकृष्ण उनके पक्ष में है। इस सेना के सन्मुख, कायरताधारी वीर नहीं जा सकता है और न प्राण लेकर कोई पाण्डव सेना रूपी-मृत्यु के मुख से बच निकल सकता है ॥१७॥

तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः
मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाऽचलवद्व्यवस्थितम्

विस्तीर्ण तप की रोक थाम तप से ही होती है और सेना को सेना द्वारा ही रोका जा सकता है । इन बातों को देखकर मेरा मन, शत्रु के वेग को रोकने को उत्साहित हो रहा है और अपनी रक्षा के लिए भी पर्वत की भांति अचल है ॥१८॥

एवं चैषां बाधमानः प्रभावं गत्वैवाऽहं ताञ्जयाम्यद्य सूत ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने सैन्ये यः समेयात्स मित्रम्

हे सारथि ! इस प्रकार अपनी सेना द्वारा पाण्डवों के प्रभाव के रोकने में समर्थ हो सकूंगा। आज मैं रण में जाकर उनको जीतने की अभिलाषा करता हूँ। मैं इस समय हिचकिचाहट

दिखा कर मित्रद्रोह नहीं करना चाहता। जब सेना निर्बल पड़ी हो-उस समय ही जो सहायता करता है-वही सच्चा मित्र है ॥१६॥

कर्त्तास्म्येतत्सत्पुरुषार्यकर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम्
सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥

हे सूत! अब तो-सत्पुरुषोचित इसी आर्यकर्म को कर दिखाऊंगा, कि इस रण में प्राण तक छोड़कर भीष्म का अनुगमन करूंगा। मैं या तो रण में सारे शत्रुओं को मार लूंगा या उनके द्वारा आज मारा जाकर वीरगति को प्राप्त करूंगा ॥२०॥

सम्प्राक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराहते पौरुषे धार्त्तराष्ट्रे।
मया कृत्यमिति जानामि सूत तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून्विजेष्ये

हे सूत! इस समय कौरवों के स्त्री और बच्चे-रोकर चिल्ला रहे हैं। धृतराष्ट्र-पुत्रों का पौरुष क्षीण हो चुका है। मैं अपने कर्तव्य को पहचानता हूं, इससे अब तो राजा दुर्योधन के शत्रुओं को मैं जीतकर ही छोड़ूंगा ॥२१॥

कुरून्रक्षन्पाण्डुपुत्राञ्जिघांसंस्त्यक्त्वा प्राणान्घोररूपे रणेऽस्मिन्
सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्निहत्य दास्याम्यहं धार्त्तराष्ट्राय राज्यम्

कौरवों की रक्षा और पाण्डवों का विनाश करता हुआ, मैं इस रण में प्राणों की भी आहुति प्रदान करदूंगा। मैं तो आशा करता हूं कि-इस भीषण संग्राम में शत्रुओं को मार कर मैं राजा दुर्योधन को राज्य प्रदान कर दूंगा ॥२२॥

निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
शिरस्त्राणं चाऽर्कसमानभासं धनुः शरांश्चाऽग्निविषाहिकल्पान्
उपासङ्गान्षोडश योजयन्तु धनूंषि दिव्यानि तथाऽऽहरन्तु
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः शङ्खं च जाम्बूनदचित्रनालम्
इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां ध्वजंचित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्कम्
श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्याऽऽनयन्तु चित्रां मालां चारुबद्धां सलाजाम्

हे सारथि ! अब तुम लोग, सुवर्ण का विचित्र कवच मुझे पहना दो, जिसमें श्वेत रंग की मणियां जड़ी हुई हैं। सूर्य के तुल्य, देदीप्यमान शिरस्त्राण (टोप) धनुष तथा अग्नि, विष और सर्प तुल्य बाण, सोलह तूणीर तथा अन्य अनेक धनुषों से मुझे सुसज्जित करदो खड्ग, शक्ति, भारी गदा, सुवर्ण से चित्रित शंख सुवर्ण मयी हाथी की माला चन्द्रमा से अङ्कित विचित्र ध्वजा से मुझे अलंकृत करो। बड़े २ सुन्दर कोमल वस्त्र धुले हुए लाओ। विचित्र २ सुवर्ण आदि की माला और कन्याओं द्वारा लाजा-प्रक्षेप से मेरा सत्कार होने दो ॥२३-२५॥

अश्वानग्र्यान्पाण्डुराभ्रप्रकाशान्पुष्टान्स्नातान्मन्त्रपूताभिरद्भिः
तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेताञ्शीघ्राञ्शीघ्रं सूतपुत्राऽऽनयस्व

हे सूतपुत्र ! श्वेत मेघ के तुल्य श्वेतवर्णधारी, मन्त्रों से पवित्र जल से स्नान कराए हुए, पुष्प और श्रेष्ठ सुवर्णके आभरणों से सम्पन्न, शीघ्रगामी अश्वों को शीघ्र ले आओ ॥२६॥

रथं चाऽग्र्यं हेममालावनद्धं रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः ।
द्रव्यैर्युक्तं सत्प्रहारोपपन्नैर्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्त्तयस्व ॥२७॥

सुवर्ण की मालाओं से सुशोभित चन्द्र सूर्य के तुल्य मणियों से विचित्र तथा युद्धोपयोगी सामग्री और तीव्रगामी अश्वों से सुसम्पन्न रथ को सजाकर कर शीघ्र लाओ ॥२७॥

चित्राणि चापानि च वेगवन्ति ज्याश्चोत्तमाः सन्नहनोपपन्ना
तूणांश्च पूर्णान्महतः शराणामासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥

वेगवाले विचित्र २ धनुष, उत्तम २ धनुष की प्रत्यञ्चा, कवच. बाणों से भरे हुए तूणीर एवं युद्धोपयोगी वस्त्र लाओ ॥

प्रायात्रिकं चाऽऽनयताऽऽशु सर्वं दध्ना पूर्णं वीर कांस्यंच हैमम्
आनीय मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः॥

हे वीर ! युद्धयात्रा के समय उपयोगी साधन तथा आचारार्थ कांसी और सुवर्ण के पात्रों में दही लाओ । ये सब कुछ लाकर और माला पहनाकर भेरी आदि रण के बाजे बजादो ॥२८॥

प्रयाहि सूताऽऽशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय गच्छामिहतो द्विषद्भिः

हे सूत ! अब तुम रण भूमि में उसी स्थान पर चलो, जहां पर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव या युधिष्ठिर हो । इस रण में या तो मैं उनको मार लेता हूं या उनसे मारा जाकर मैं भीष्म का अनुगमन करता हूं ॥३०॥

यस्मिन्राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौच
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥

जिस सेना का स्वामी सत्यवादी राजा युधिष्ठिर हो और जिसमें भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा अन्य सृञ्जय सम्मिलित हों, मैं उस सेना को अन्य राजाओं से अजेय समझता हूं ॥३१॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाऽप्रमत्तः समरे किरीटिनम्।
तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय

आज यदि रण में सब का संहार करनेवाला काल भी सावधानी के साथ अर्जुन की रक्षा करे तो भी रण में सन्मुख पहुंच कर में उसे मार कर छोडूंगा और यदि उसने मुझे मार लिया तो भीष्म के अनुसार यमराज का अथिति होकर मैं वीर-गति प्राप्त करूंगा ॥३२॥

न त्वेवाऽहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्र चाऽहं ब्रवीमि
मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥

अब यह तो हो नहीं सकता, कि मैं शूरवीर शत्रुओं के सन्मुख जाने से पीछे पग रखूं। इस समय तो मैं यही कहता हूं, कि मित्र द्रोही थोड़ी भक्ति रखने वाले पापाचारी मेरी सेना में कोई न चलने पावे ॥३३॥

सञ्जय उवाच—

समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं सकूबरं हेमपरिष्कृतं शुभम्।
पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! युद्ध की सामग्री से सम्पन्न, सुवर्ण जटित, उत्तम कूबर से दृढ़, ध्वजा से सुशोभित, वायु के तुल्य वेगशील उत्तम २ अश्वों से युक्त, श्रेष्ठ रथ में बैठ कर कर्ण, विजय के लिए चल दिए ॥३४॥

सम्पूजयमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः ।
ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा यत्राऽवसानं भरतर्षभस्य ॥३५॥

देवों से इन्द्र की भांति कौरववीरों ने महारथियों में श्रेष्ठ कर्ण की पूजा की । अब उग्र धनुष लिए हुए कर्ण, उसी रणस्थली में पहुंचे, जहां भीष्म की समाप्ति हुई थी ॥३५॥

वरूथिना महता स ध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना ।
सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्वनेनाऽर्क इवाऽमितौजाः ॥

मुक्ता, मणि और रत्नों से जटित सुवर्ण, की माला पहने हुए, ध्वजा से सम्पन्न, विशाल सेना के साथ तथा उत्तम अश्वों से युक्त मेघ के तुल्य ध्वनि करनेवाले रथ के द्वारा सूर्य के तुल्य तेजस्वी, अपरिमित ओजस्वी कर्ण, युद्ध के लिए चल दिए ॥३६॥

हुताशनाभः स हुताशनप्रभे
शुभःशुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
स्थितो रराजाऽधिरथिर्महारथः
स्वयं विमाने सुरराडिवाऽऽस्थितः ॥३७॥

अग्नि के तुल्य कान्तिमान्, धनुर्धर, अधिरथपुत्र महारथी कर्ण, अग्नि के तुल्य दिव्य रथ में बैठा हुआ विमान में स्थित साक्षात् इन्द्र सा प्रतीत होता था ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में कर्ण की युद्ध यात्रा का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।
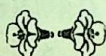
तीसरा अध्याय

संजय उवाच—

शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम् ।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥१॥
दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रान्तकं गुरुम् ।
दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ॥२॥
जयाशा तव पुत्राणां सम्भग्ना शर्म वर्म च ।
अपराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम् ॥३॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! प्रलय काल की महा वायु से सुखाये हुए समुद्र की भांति शरशय्या पर सोये हुए अत्यन्त ओजस्वी, समस्त पाण्डव सेना के नाशक प्रभावशाली, महाधनुर्धर महात्मा भीष्म को सव्यसाची अर्जुनद्वारा दिव्य अस्त्रों से गिराया देखकर तुम्हारे पुत्रों की विजय की आशा बिल्कुल ही नष्ट हो गई। कौरवों का गण, अपार समुद्र में डूबते हुए अपना अवलम्ब चाहते थे, परन्तु उनका सारा कल्याण और कवचभूत भीष्म, रणभूमि में गिर चुके ॥१-३॥

स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिप्लुतम् ।
महेन्द्रेणेव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम् ॥४॥
नभश्च्युतमिवाऽऽदित्यं पतितं धरणीतले ।
शतक्रतुमिवाऽचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम् ॥५॥
मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम् ।
ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ॥६॥

भीष्म का गिराना मानो शरसमूह से यमुना के स्रोत का व्याप्त कर देना, असह्य मैनाक पर्वत का इन्द्रद्वारा भूमि में गिराना, आकाश से च्युत होकर पृथिवी पर सूर्य का टपक पड़ना, अपरिमितबलशाली इन्द्र को पूर्वकाल में जीत लेना था। भीष्म का गिरना था, कि सारी कौरवसेना, मोहित हो गई। भीष्म सारे धनुर्धरों में प्रधान, और सारी सेना के शिरोधार्य थे ॥४-६॥

धनञ्जयशरैर्व्याप्तं पितरं ते महाव्रतम् ।
तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम् ॥७॥
भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः ।
अवतीर्य रथादार्त्तो बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ॥८
अभिवाद्याऽञ्जलिं बध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ।

धनञ्जय अर्जुन के बाणों से व्याप्त, महाव्रतशील तुम्हारे पिता, वीरशय्या पर सोते हुए पुरुषश्रेष्ठ, भरतवंश में वीर, भीष्म को अधिरथपुत्र, महाकान्तिमान् कर्ण देखकर बड़े दुःख के साथ रथ से उतरे। अब कर्ण ने हाथ जोड़ कर भीष्म को प्रणाम किया और प्रणाम के अनन्तर गद्गद वाणी से यह कहा ॥७-८॥

कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत ॥९॥
पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चाऽवलोकय ।

हे भरतर्षभ! भीष्म! मैं (कम्बख़्त) कर्ण उपस्थित हूं। तुम मुझ से कुछ तो पवित्र और कल्याणकारी वाणी से बोलो और आंख खोलकर देखो ॥९॥

न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ॥१०॥
यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ।

हे महाबाहो! अब मुझे प्रतीत हो गया, कि इस संसार में कोई पूर्ण रूप से पुण्य के फल, सुख का उपभोग नहीं कर पाता है। यह कितने क्लेश की बात है, कि धर्मशील, वृद्ध, पितामह आप, रणभूमि में पड़े हो ॥१०॥

कोशसञ्चयने मन्त्रे व्यूहे प्रहरणेषु च ॥११॥
नाऽहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव ।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद्भयात् ॥१२॥
योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यति ।

हे कुरुवंशश्रेष्ठ! कौरवों के धन की रक्षा, मन्त्रणा, व्यूह रचना और शस्त्रप्रहार में कुशल तथा विशुद्ध बुद्धि से युक्त अन्य किसी पुरुष को नहीं देखता हूं, जो इस महाभय से कौरवों की रक्षा में समर्थ होसके। अब आप, पाण्डवों के अनेक योधाओं को मार कर, पितृलोक जा रहे हो ॥११-१२॥

अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयम् ॥१३॥
पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ।

हे भरतश्रेष्ठ! अब आगे क्रोध में भरे हुए, पाण्डव. मृगों को व्याघ्रों की तरह कौरव सेना का नाश करते रहेंगे ॥१३॥

अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः ॥१४॥
कुरवः सन्त्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवाऽसुराः ।

आज गाण्डीवधारी, सव्यसाची अर्जुन के पराक्रम के देखने वाले, कौरव, वज्रपाणि इन्द्र से असुरों की भांति भयभीत हो जावेंगे ॥१४॥

अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ॥१५॥
त्रासयिष्यति बाणानां कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।

आज गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए वज्र तुल्य बाणों की ध्वनि, कुरुवीर और अन्य राजाओं को भयातुर कर देगी ॥१५॥

समिद्धोऽग्निर्यथा वीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ॥१६॥

धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यन्ति तथा बाणाः किरीटिनः ।

हे वीर ! ज्वालाओं से प्रदीप्त अग्नि, जिस तरह बड़े वृक्षों को जला डालती है, इसी तरह धनञ्जय अर्जुन के बाण, धृतराष्ट्र-पुत्र की सेना को भष्म कर देंगे ॥१६॥

येन येन प्रसरतौ वाय्वग्नी सहितौ वने ॥१७॥

तेन तेन प्रदहतो भूरिगुल्मतृणद्रुमान् ।

यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक्पार्थो न संशयः ॥१८॥

यथा वायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ।

वायु और अग्नि, वन में जिस ओर निकल जाते हैं, उसी ओर बहुत सी झाड़ी, घास और वृक्ष समूह को भस्म करते जाते हैं, उसी तरह अर्जुन भी कुरुसेना को भस्म कर देगा, क्योंकि प्रज्वलित अग्नि के तुल्य ही अर्जुन का प्रताप है । हे नरव्याघ्र ! वायु के तुल्य श्रीकृष्ण सहायक हैं, इसमें सन्देह न समझो ॥१८॥

नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाण्डिवस्य च ॥१९॥

श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत ।

हे भारत ! पाञ्चजन्य श्रीकृष्ण के शंख के घोष, और गाण्डीव धनुष की ध्वनि को सुनकर सारी कुरुसेना त्रास युक्त हो जावेगी ।

कपिध्वजस्योत्पततो रथास्याऽमित्रकर्षिण: ॥२०॥
शब्दं सोढुं न शक्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवा: ।

हे वीर ! शत्रु-नाशक, कपिध्वज अर्जुन के रथ से उठी हुई ध्वनि को तुम्हारे बिना आज कोई भी वीर नृपति, नहीं सह सकेंगे।

को ह्यर्जुनं योधयितुं त्वदन्य: पार्थिवोऽर्हति ॥२१॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणा: ।

जिस अर्जुन के दिव्य कर्मों का वर्णन विद्वान् करते रहते हैं, उस अर्जुन से तुम्हारे सिवा कौन कुरुवीर है, जो युद्ध कर सकेगा.

अमानुषैश्चसंग्रामस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥२२॥
तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभि: ।
कोऽन्य: शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया ॥

अर्जुन का निवात-कवच आदि राक्षसवीर और महात्मा शिव से युद्ध हो चुका है। शिवको युद्ध में प्रसन्न करके अर्जुन ने ऐसे महावरों की प्राप्ति की है, जो विना पुण्यात्मा वीर के कोई नहीं प्राप्त कर सकता है। इस युद्ध में कौन वीर विजयी हो सकता है। ऐसा कोई वीर ही नहीं है, जिसको तुमने न जीत रखा हो अर्थात् सब तुम से न्यून बल वाले है ॥२२-२३॥

जितो येन रणे रामो भवता वीर्यशालिना ।
क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥२४॥

तुम महापराक्रमी ने तो पूर्व काल में जमदग्नि-पुत्र परशुराम को भी जीत लिया है, जो क्षत्रियों का नाशक, महाभयङ्कर और देवदानवों के घमण्ड का चूर करने वाला था ॥२४॥

तमद्याऽहं पाण्डवं युद्धशौण्डममृष्यमाणो भवता चाऽनुशिष्टः
आशीविषं दृष्टिहरं सुघोरं शूरं शक्ष्याम्यस्त्रबलान्निहन्तुम्॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हे महाभाग ! आज मैं, अर्जुन की इस करतूत को नहीं सह सकता हूं। अब यदि आपकी आज्ञा हो-तो युद्धविशारद, पाण्डु पुत्र, दृष्टि में ही विषधारी सर्प के तुल्य भयङ्कर शूरवीर अर्जुन को अपने अस्त्रबल से रणभूमि में मार गिराना चाहता हूँ ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में कर्णवाक्य का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

सञ्जय उवाच—

तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः ।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्प्रीतमानसः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! इस प्रकार कर्ण के विलाप करनेपर कुरुवृद्ध, भीष्मपितामह, प्रसन्नतापूर्वक देशकालोचित यह बचन बोले ॥१॥

समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः ।
सत्यस्य च यथा सन्तो बीजानामिव चोर्वरा ॥२॥
पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव ।
बान्धवास्त्वाऽनुजीवन्तु सहस्राक्षमिवाऽमराः॥३॥

हे कर्ण ! तुम नदियों को समुद्र, प्रकाशमान ग्रहों को सूर्य, सत्य के लिए साधु पुरुष, बीज धारण के निमित्त पृथिवी और प्राणियों को मेघ की भांति अपने मित्रों के आश्रय होते रहो। सारे बन्धु बान्धव, तुम्हारी सहायता से इस तरह पोषित हों जैसे-इन्द्र से देवता सहायता पाते हैं ॥२-३॥

मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्धनः ।
कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥४॥

हे महाबाहो ! तुम शत्रुओं के मान नाशक और मित्रों के मान बर्धक हो तथा कौरवों के इस भांति सहायक बने रहो-जैसे देवों के विष्णु सहायक ॥४॥

स्वबाहुबलवीर्येण धार्त्तराष्ट्रजयैषिणा।

कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजा निर्जितास्त्वया ॥५॥

गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः।

अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥६॥

हे कर्ण! राजा दुर्योधन की विजय की अभिलाषावाले तुमने राजपुर में जाकर कम्बोज, गिरिव्रज में नग्नजित तथा अम्बष्ठ, विदेह और गान्धारों को जीता था ॥५-६॥

हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः।

दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥७॥

हे कर्ण! तुमने हिमालय पर्वत पर दुर्ग बनाकर रहने वाले रण-कर्कश किरातों को राजा दुर्योधन के वश में किया है ॥७॥

उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः कलिङ्गान्ध्राश्च संयुगे

निषादाश्च त्रिगर्ताश्च बाह्लीकाश्च जितास्त्वया ॥८॥

हे कर्ण! तुमने ही उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिङ्ग, निषाद, त्रिगर्त और बाल्हीक जीते हैं। हे कर्ण! तुम महा-ओजस्वी हो। तुमने दुर्योधन के हित में तत्पर होकर बहुत से महावीरों को जीत लिया है ॥८॥

तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा।

बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसा॥६॥

यथा दुर्योधनस्तात सजातिकुलबान्धवः ।
तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥१०॥

हे कर्ण ! जैसे-राजा दुर्योधन अपनी जाति कुल और बान्धवों की सहायता कर रहे हैं, उसी तरह तुम भी कौरवों के आश्रय बने रहो ॥१०॥

शिवेनाऽभिवदामि त्वां गच्छ युद्ध्यस्व शत्रुभिः ।
अनुशाधि कुरून्संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥११॥

हे कर्ण ! अब मैं तुम को कल्याणकारी आशीर्वाद देता हूँ, तुम जाओ और शत्रुओं से युद्ध करो; तथा युद्ध में कौरवसेना का विजयी बनाओ ॥११॥

भवान्पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा ।
तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥१२॥

हे कर्ण ! तुम भी मेरे पौत्र के तुल्य हो, जैसा राजा दुर्योधन है, वैसे ही तुम भी एक हो। धर्म की दृष्टि से हम लोग,राजा दुर्योधन की भांति तुम्हारे भी उतने ही साथी है ॥१२॥

यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सताम् ।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१३॥

हे नरश्रेष्ठ ! लोक में योनि-सम्बन्ध से भी सज्जनों का सज्जनों के साथ होनेवाला सम्बन्ध अधिक माना जाता है- ऐसा विचारशील मनुष्यों का मत है ॥१३॥

स सत्यसङ्गतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः ।
कुरूणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥१४॥

अब तुम सत्यको धारण करके कौरवसेना को अपनी समझो और जैसे कौरवसेना की राजा दुर्योधन रक्षा कर रहे हैं, इसी तरह तुम भी करो ॥१४॥

निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च ।
ययौ वैकर्त्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥१५॥

हे राजन्! भीष्म के प्रेम-पूर्ण वचन सुन कर और उनके चरणों में प्रणाम कर के सूर्यपुत्र कर्ण, सारे कौरव धनुर्धरों के पास पहुंचे ॥१५॥

सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत् ।
व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत्समबृंहयत् ॥१६॥

कर्ण ने वहां पहुँच कर कौरवसेना का अद्वितीय, विशाल स्थान देखा। सेना ने व्यूह बना रखा था और शस्त्र धारण कर रखे थे। कर्ण ने सेना को बड़ा ही उत्साहित कर दिया ॥१६॥

हृषिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥१७॥
कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् ।

राजा दुर्योधन से लेकर सारे कौरववीर, सारी सेना में अग्रगण्य, युद्ध के लिए उपस्थित, महावीर कर्ण को देखकर बड़े ही हर्षित हुए ॥१७॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि ।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णाश्वासे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इस समय ताल फटकार कर मेघ गर्जना और सिंहनाद तथा धनुष आदि की ध्वनि करके कौरवसेना ने कर्ण का स्वागत किया।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में कर्ण के स्वागत का चौथा अध्याय समाप्त हुआ

पांचवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अब पुरुषश्रेष्ठ कर्ण को रथ में स्थिर देखकर उल्लास में भरे हुए राजा दुर्योधन यह वचन बोले ॥१॥

सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम् ।
अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत्सम्प्रधार्यताम् ॥२॥

हे कर्ण ! तुमसे सुरक्षित सेना को मैं आज सनाथ समझता हूँ। अब जो हमारा सर्वोत्तम हित हो उसको आप सम्पादन करें ॥२॥

कर्ण उवाच—

ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप।
यथा चाऽर्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥३॥

कर्ण बोले—हे पुरुष-व्याघ्र ! राजन् ! अब आप आज्ञा कीजिए क्योंकि आप रण-विद्या में कुशल हो। जिस तरह सेना का अधिपति अपने कृत्य को विचार सकता है- उस तरह अन्य योधा नहीं सोच सकता ॥३॥

ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर।
नाऽन्याय्यं हि भवान्वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥४॥

हे नरेश्वर ! हम सब वीर, आपके वचन सुनने के अभिलाषी हैं। आप कोई अनुचित बात नहीं कहेंगे-ऐसा मेरा मत है ॥४॥

दुर्योधन उवाच—

भीष्मः सेनाप्रणेताऽऽसीद्वयसा विक्रमेण च।
श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा ॥५॥

दुर्योधन कहने लगे—हे महाबाहो ! आयु और पराक्रम के कारण भीष्म सेनापति थे तथा सारे योद्धाओं से अधिक वेद-शास्त्र के ज्ञाता थे ॥५॥

तेनाऽतियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान्मम।
सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्म महात्मना

हे कर्ण ! उन महायशस्वी महावीर भीष्म ने युद्ध-कौशल दिखा कर दश दिन तक पाण्डवों की सेना का नाश उड़ा दिया और इस तरह वे हमारी रक्षा करते रहे ॥६॥

तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् ।
कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥७॥

भीष्म ने इस प्रकार दुष्कर कर्म कर दिखाया । अब उनके स्वर्ग चले जाने पर तुम किसको सेनापति बनाने की अनुमति देते हो ॥७॥

न विना नायकं सेना मुहूर्त्तमपि तिष्ठति ।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥८॥

हे युद्धविशारद ! युद्धों में विना सेनापति के सेना क्षण-मात्र भी जल में कर्णधार से हीन नौका की भांति नहीं रह सकती है ।

यथा ह्यकर्णधाग नौ रथश्चाऽसारथिर्यथा ।
द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥६॥

कर्णधार के विना नौका और सारथि के विना रथ, जैसे-बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, इसी तरह विना सेनापति के सेना की दशा होती है ॥६॥

अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति ।
अनायका तथा सेना सर्वान्दोषान्समर्छति ॥१०॥

मार्ग नहीं जाननेवाला व्यापारीगण, जैसे-संकट में पड़ जाता है, उसी तरह सेनापति से रहित सेना सारी बुराइयों का घर बन जाती है ॥१०॥

स भवान्वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥११॥

अब तुम मेरी सेना के सारे महावीरों पर दृष्टि डालो और शान्तनु-पुत्र भीष्म के पीछे जिसे सेनापति बनाना उचित हो-उसे बताओ ॥११॥

यं हि सेनाप्रणेतारं भवान्वक्ष्यति संयुगे ।
तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥१२॥

हे कर्ण ! अब तुम रण में जिसे सेनापति बनाना उचित समझोगे-हम सब लोग निश्चय उसको ही सेनापति बनावेंगे ॥१२॥

कर्ण उवाच—

सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
सेनापतित्वमर्हन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१३॥

कर्ण बोले—ये सारे ही पुरुषश्रेष्ठ महावीर हैं । इन सब में सेनापति बनने की योग्यता है-इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है।

कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।
युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥१४॥

युगपन्न तु ते शक्याः कर्त्तुं सर्वे पुरःसराः ।
एक एव तु कर्त्तव्यो यस्मिन्वैशेषिका गुणाः ॥१५॥

ये सब, कुल, शरीर, ज्ञान, बल, विक्रम और बुद्धि से युक्त हैं तथा शस्त्र विद्या के जानने वाले विचारशील और युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले हैं, परन्तु इन सबको एक-दम सेनापति नहीं बनाया जा सकता है । इस समय तो एक ही सेनापति बनाना है । अब उसे ही बनालो-जिसमें सबसे अधिक विशेष गुण हों ॥१४-१५॥

अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि ।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव ॥१६॥

ये परस्पर एक दूसरे से स्पर्धा (बराबरी) करने वाले हैं । इनमें से एक को सेनापति बनाया-तो अन्य अप्रसन्न हो जावेंगे और वे ही तुम्हारे मित्र, प्रेम-पूर्वक युद्ध नहीं करेंगे ॥१६॥

अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
युक्तः सेनापतिः कर्त्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥१७॥

इन सारे योद्धाओं में आचार्य द्रोण, वृद्ध और सबके पूज्य हैं, इससे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ इन द्रोणाचार्य को ही इस समय सेनापति बनाना उचित है ॥१७॥

को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे ।
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥१८॥

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, दुर्धर्ष द्रोणाचार्य के अतिरिक्त कौन बली है, जो सेनापति बनाया जा सके। ये शुक्राचार्य और बृहस्पति के तुल्य नीतिमान हैं ॥१८॥

न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत ।
द्रोणं यः समरे यान्तमनुयास्यति संयुगे ॥१९॥

हे भारत ! तुम्हारे राजाओं में कोई भी ऐसा उद्दण्ड नहीं है, जो द्रोणाचार्य के पीछे रण में चलने में अपना अपमान समझता हो ॥१९॥

एष सेनाप्रणेतृणामेष शस्त्रभृतामपि ।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन्गुरुस्तव ॥२०॥

हे राजन् ! तुम्हारे गुरु द्रोणाचार्य, सब सेनापतियों में शस्त्रधारी वीर और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं ॥२०॥

एवं दुर्योधनाऽऽचार्यमाशु सेनापतिं कुरु ।
जिगीषन्तोऽसुरान्संख्ये कार्तिकेयमिवाऽमराः ॥२१॥

हे दुर्योधन ! अब तुम शीघ्र आचार्य द्रोण को युद्ध में विजय की अभिलाषावाले देवों ने कार्तिकेय को जैसे सेनापति बनाया, इसी तरह सेनापति बनाओ ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये पंचमोऽध्यायः ॥५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में द्रोण के सेनापति बनाने में कर्ण को अनुमति प्रदान का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

छठा अध्याय

सञ्जय उवाच—

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन ! इस प्रकार राजा दुर्योधन, कर्ण के वचन सुन कर सेना के मध्य में स्थित द्रोणाचार्य से यह वचन बोले—॥१॥

दुर्योधन उवाच—

वर्णश्रैष्ठ्यात्कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया ।
वीर्याद्दाक्ष्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥२॥
तपसा च कृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्वगुणैरपि ।
युक्तोऽभवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥३॥

स भवान्पातु नः सर्वान्देवानिव शतक्रतुः ।
भवन्नेत्राः पराञ्ज्तुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥४॥

हे द्विजसत्तम ! आपका ब्राह्मणवर्ण और कुल सर्वोच्च है। आप शास्त्र, वय, बुद्धि, पराक्रम, कुशलता में अद्वितीय हो। शत्रु आप पर आक्रमण करते भय खाते । विषय-चिन्तन और नीतिशास्त्र के जानने में तुम्हारी समानता कोई भी नहीं रखता है। तप, कृतज्ञता आदि अनेक गुणों में आप बढ़े हुए हो । आप के सदृश राजाओं में कोई भी हमारा योग्य रक्षक नहीं हो सकता है। अब आप ही देवों की इन्द्र की तरह हमारी रक्षा करने को तत्पर हो जाइए। हम लोग आपको सेनापति बना कर शत्रुओं को जीतना चाहते हैं ॥२-४॥

रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥५॥
वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
पितॄणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाऽम्बुराट् ॥६॥
नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः ।
श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥७॥

रुद्रों में शङ्कर, वसुओं में अग्नि, यक्षों में कुबेर, देवों में इन्द्र, विप्र में वसिष्ठ, तेजस्वियों में सूर्य, पितरों में धर्मराज, जल-चारियों में वरुण, नक्षत्रों में चन्द्रमा, दैत्यों में शुक्राचार्य के

तुल्य आप हम सब में मुख्य हो, अतएव आप ही हमारे सेनापति बनिए ॥५-७॥

अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु नेऽनघ ।
ताभिः शत्रून्प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥८॥

सर्व-गुण-सम्पन्न ! मेरी यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना सब आपके अधीन है । इस सेना का व्यूह बनाकर दानवों का इन्द्र की तरह शत्रुओं का नाश करो ॥८॥

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।
अनुयास्यामहे त्वाऽऽजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥९॥

अब आप देवों के सेनापति कार्तिकेय की भाँति हम सब में अग्रणी बन जाइए । हम भी रण में तुम्हारे पीछे २ वृषभ के पीछे बछड़ों की तरह चलने को उद्यत हैं ॥९॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन्धनुः ।
अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नाऽर्जुनः प्रहरिष्यति ॥१०॥

आप उग्र रूप में धनुष चलाने वाले महाधनुर्धर हो । अपने दिव्य धनुष के उपयोग करने तथा कौरवों के सेनापति बन जाने पर अर्जुन की क्या शक्ति है, जो हम पर प्रहार कर सके ॥१०॥

ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम् ।
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान्सेनापतिर्यदि ॥११॥

हे पुरुषव्याघ्र! यदि आप हमारे सेनापति बन गए-तो यह निश्चय है, कि मैं युधिष्ठिर को उनके बन्धु और सेना के सहित अवश्य जीत लूंगा ॥११॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवाऽऽत्मजम् ॥१२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने इतना कहा-तो सारे राजा, जयघोष करने लगे और उन्होंने अपने सिंहनाद से तुम्हारे पुत्र को प्रफुल्लित कर दिया ॥१२॥

सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः ।
दुर्योधनं ततो राजन्द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥१३॥

सैनिक वीर भी आनन्द में भरे हुए, द्रोणाचार्य को उल्लसित करने लगे। ये लोग, राजा दुर्योधन के साथ विजय प्राप्त करके महान् यश की अभिलाषा कर रहे थे। हे राजन्! इसी समय द्रोणाचार्य, राजा दुर्योधन से बोले ॥१३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रोत्साहने षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तगत द्रोणाभिषेकपर्व में द्रोण के प्रोत्साहन का छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

सातवां अध्याय

द्रोण उवाच—

वेदं षडङ्गं वेदाऽहमर्थविद्यां च मानवीम् ।
त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥१॥
ये चाऽप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकांक्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान्योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥२॥

द्रोण बोले— हे राजन् ! यह ठीक है, कि मैंने षडङ्ग वेद पढ़ने में परिश्रम किया है। मैं मनुष्यों की उन्नति करनेवाली नीति को भी जानता हूं। महादेवजी के अस्त्र तथा अन्य अनेक शस्त्रों के प्रयोग भी मुझे ज्ञात हैं। तुम लोगों ने विजय की अभिलाषा से जो मेरे गुणों का कीर्तन किया है, मैं उनको सत्य सिद्ध करने के निमित्त पाण्डवों से अवश्य लडूंगा ॥१-२॥

पार्षतं तु रणे राजन्न हनिष्ये कथश्चन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥३॥

हे राजन् ! मैं पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न को नहीं मार सकूंगा, क्योंकि वह पुरुषप्रवीर तो मेरे मारने को ही उत्पन्न हुआ है ।३॥

योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन्सर्वसोमकान् ।
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः ॥४॥

मैं सारे सोमकों की सेना का नाश करता हुआ, पाण्डव सेना से युद्ध करूंगा। पाण्डव, मेरे साथ युद्ध करके किसी भी आनन्द को प्राप्त नही हो सकेंगे ॥४॥

सञ्जय उवाच—

स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः।
द्रोणं तव सुतो राजन्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन्! जब द्रोणाचार्य ने सेनापति बनना, स्वीकार कर लिया, तो तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने शास्त्रानुसार विधि द्वारा द्रोणाचार्य को सेनापति बना दिया ॥५॥

अथाऽभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः।
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥६॥

अब दुर्योधन आदि अनेक राजाओं ने द्रोणाचार्य का सेनापति पद पर पूर्वकाल में इन्द्रादि देवों द्वारा स्कन्द के सेनापति बनाने के तुल्य अभिषेक किया ॥६॥

ततो वादित्रघोषेण शङ्खानां च महास्वनैः।
प्रादुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥७॥

इस प्रकार द्रोणाचार्य के सेनापति बनाने पर भेरी आदि बाजों के घोष और शंखों की महान् हर्षध्वनि रणभूमि में होने लगी।

ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधबन्दिनाम् ॥८॥

जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्त्तितैस्तथा ।
सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥९॥

अब ब्राह्मण, पुण्याहघोष और स्वस्तिवाचन करने लगे । परमात्मा की प्रार्थना, सूत, मागध और बन्दियों के यशोगान तथा उत्तम २ ब्राह्मणों के जयाशीर्वादों से रणस्थली गूंज उठी । सुन्दर वेश्याओं के नांच के साथ द्रोणाचार्य का आदर करके उसे उत्साहित किया । अब कौरवों को इतना उत्साह हुआ, कि उन्होंने पाण्डवों को जीता हुआ ही समझ लिया ॥९॥

सञ्जय उवाच—

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥१०॥

सञ्जय ने कहा—भरद्वाजपुत्र महारथी, द्रोणाचार्य, सेनापति बनकर युद्ध की अभिलाषा से व्यूह बनाकर तुम्हारे पुत्रों के साथ चल दिए ॥१०॥

सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥११॥

सिन्धुराज जयद्रथ, कलिङ्गराज तथा तुम्हारापुत्र विकर्ण, ये सारे सुसज्जित होकर द्रोणाचार्य के दक्षिण पक्ष पर स्थित हुए ॥११॥

प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥१२॥

हे राजन्! चमकीले प्रासों (भालों) से युद्ध करने वाले उत्तम २ अश्वारोही गान्धार वीरों के साथ शकुनि, दांयी ओर के योद्धाओं के सहायक होकर चलने लगे ॥१२॥

कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥१३॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन विविंशति और दुःशासन आदि महारथी द्रोणाचार्य के वामपक्ष में स्थित हुए ॥१३॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥१४॥

इनके सहायक राजा सुदक्षिण के साथ काम्बोज वीर हुए। इनके ही साथ यवनों सहित शक, महावेगशाली अश्वों की सेना लेकर चल दिये ॥१४॥

मद्रास्त्रिगर्ताः साम्बष्ठाः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥१५॥
सौवीराः कितवाः प्राच्या दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तवाऽऽत्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥१६॥
हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तव सुतैः सह ।

मद्र, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, प्रतीच्य उदीच्य, मालव, शिबि- शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर, कितव, प्राच्य, दाक्षिणात्य वीर, तुम्हारे राजा दुर्योधन को आगे करके सूत-पुत्र कर्ण के पृष्ठरक्षक होकर चले।

ये सारे महारथी, अपनी २ सेना को उत्साहित करते हुए तुम्हारे पुत्रों के साथ हो लिए ॥१५-१६॥

प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत् ॥१७॥
ययौ वैकर्त्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ।

सारे योद्धाओं में श्रेष्ठ, सूर्यपुत्र कर्ण, सारे धनुर्धरों के अग्रगामी होकर सारी सेना में बल का सञ्चार करता हुआ युद्ध यात्रा के लिए चल पड़ा ॥१७॥

तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥१८॥
हस्तिकक्ष्यो महाकेतुर्बभौ सूर्यसमद्युतिः ।

इसकी तेज से देदीप्यमान विशाल देह, अपनी सेना में उत्साह भर रही थी। सूर्य के तुल्य चमकती हुई हाथी की सुवर्ण शृङ्खला के चिन्हवाली विशाल कर्ण की ध्वजा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥१८॥

न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥१९॥
विशोकाश्चाऽभवन्सर्वे राजानः कुरुभिः सह ।

महावीर कर्ण को देखकर कोई ऐसा योद्धा नहीं था, जिसको भीष्म की मृत्यु का दुःख ध्यान में हो। इस समय तो सारे राजा कौरवों के साथ प्रफुल्लित हो रहे थे ॥१९॥

हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राऽजल्पन्त वेगतः ॥२०॥
नहि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः।

कुछ वीर तो उल्लास में भरे हुए बड़े वेग से यह कह रहे थे, कि रण में कर्ण को देखकर अब पाण्डव, खड़े नहीं रह सकेंगे ॥

कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान्सवासवान् ॥२१॥
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।

कर्ण तो रण में इन्द्र के सहित देवों के भी जीतने में समर्थ हैं; फिर पराक्रम और बल से हीन पाण्डवों का युद्ध में जीतना क्या बड़ी बात है ॥२१॥

भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥२२॥
तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ।

विशालबाहुधारी, भीष्म तो रण में पाण्डवों को बचाते रहे। अब कर्ण, रण में अपने तीक्ष्ण बाणों से इनका नाश करके रहेगा ॥

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं हृष्टरूपा विशाम्पते ॥२३॥
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ।

हे विशाम्पते ! इस प्रकार बड़ी प्रसन्नता में भरे हुए कौरव वीर एक दूसरे से कह रहे थे ! ये राधा-पुत्र कर्ण का बहुत सा आदर और प्रशंसा करते हुए युद्ध के लिए चल दिए ॥२३॥

अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥२४॥
परेषां क्रौञ्च इवाऽऽसीद्व्यूहो राजन्महात्मनाम् ।
प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥२५॥

हे राजन् ! इस समय द्रोणाचार्य ने हमारी सेना का शकट व्यूह बनाया और महावीर पाण्डवों ने क्रौंच-व्यूह की रचना की। हे भारत! यह व्यूह बड़े उल्लास में भरे हुए धर्मराज ने स्वयं बनाया।

व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ ।
वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥२६॥
ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।

पाण्डवों के व्यूह के मुख पर वानर के चिह्न से सुशोभित, महाध्वजा से सम्पन्न, श्रीकृष्ण और अर्जुन स्थित हुए। ये दोनों वीर, सारी सेना में उच्च और सारे धनुर्धरों के आश्रय थे ॥२६॥

आदित्यपथगः केतुः पार्थस्याऽमिततेजसः ॥२७॥
दीपयामास तत्सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।

आकाश में फड़फड़ाती हुई अत्यन्त तेजस्वी अर्जुन की ध्वजा, महावीर धर्मराज की सेना को प्रकाशित कर रही थी ॥२७॥

यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुन्धराम् ॥२८॥
दीप्यन्दृश्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः ।

प्रलय में पृथिवी को प्रज्वलित करता हुआ जिस भाँति से सूर्य चमकता है, उसी तरह महावीर अर्जुन की कपिचिन्हविभूषित ध्वजा चमक रही थी ॥२८॥

योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम् ॥२९॥
वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ।
चत्वार्येतानि तेजांसि वहञ्श्वेतहयो रथः ॥३०॥
परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम् ।

सारे योद्धाओं में अर्जुन, धनुषों में गाण्डीव, प्राणियों में वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, चक्रों में सुदर्शन श्रेष्ठ है। इन चारों तेजस्वी बातों को धारण कियेहुए, श्वेत अश्वोंसहित अर्जुन का रथ, उद्यत कालचक्र की भाँति शत्रुसेना के सन्मुख डटकर खड़ा हो गया ॥२६-३०॥

एवं तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ॥३१॥

तावकानां मुखे कर्णः परेषां च धनञ्जयः।

हे राजन्! इस समय तुम्हारे कौरव वीरों के मुख पर कर्ण और पाण्डव वीरों की जिह्वा पर अर्जुन का नाम था। कर्ण, कौरवसेना और अर्जुन अपनी पाण्डवसेना के अग्रभाग में स्थित था ॥३१॥

ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥३२॥

अवेक्षेतां तदाऽन्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ।

इसके अनन्तर विजय की कामना से उत्साहित, एक दूसरे के वध के अभिलाषी, कर्ण और अर्जुन परस्पर एक दूसरे को रण में देखने लगे ॥३२॥

ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ॥३३॥

आर्त्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत।

इस प्रकार सेनापति पद पर आरूढ़ होकर जब महारथी द्रोणाचार्य ने युद्ध यात्रा का प्रस्थान किया-तो घोर आर्तनाद करके पृथिवी डगमगाने लगी ॥३३॥

ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥३४॥
वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ।
ववर्ष चौरनभ्रापि मांसास्थिरुधिराण्युत ॥३५॥

इस समय वायु इतने तीव्रवेग से चला, कि उससे बहुत ही अधिक रज उड़ने लगी, जिसने सूर्यसहित आकाश को ढक लिया। यह रजसमूह कौशाय (रेशमी) वस्त्रों का समूह सा तना हुआ प्रतीत होता था। आकाश से बादलों के विना ही मांस, हड्डी और रुधिर की वर्षा होने लगी ॥३४॥

गृध्राः श्येना बकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः ।
उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन्नृप ॥३६॥

हे राजन् ! इस समय गीध, श्येन, बक, काक, कङ्क आदि पक्षी तुम्हारी सेनाओं के ऊपर मँडराने लगे ॥३६॥

गोमायवश्च प्राक्रोशन्भयदान्दारुणान्रवान् ।
अकार्षुरपसव्यं च बहुशः पृतनां तव ॥३७॥
चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ।

इसी तरह गीदड़ रणभूमि में चारों ओर भयदायी दारुण शब्द करने और अनेक तरह से तुम्हारी सेना के दांयी ओर जाने लगे। ये जन्तु, मांस भोजनके लोलुप और रक्त पान के पिपासु थे

अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ॥३८॥
उल्का ज्वलन्ती संग्रामपुच्छेनाऽऽवृत्य सर्वशः ।

इसी समय बड़ा शब्द करती हुई, फड़फड़ाती, चमकीली उल्का, सारी संग्राम भूमि को व्याप्त करके गिर गई ॥३८॥

परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥३९॥
भास्करस्याऽभवद्राजन्प्रयाते वाहिनीपतौ ।

हे राजन् ! सेनापति द्रोणाचार्य के चलने के समय बिजय और मेघोंसहित सूर्य के चारों ओर महान् मण्डल प्रतीत होने लगा ॥३९॥

एते चाऽन्ये च बहवः प्रादुरासन्सुदारुणाः ॥४०॥
उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः ।

हे भारत ! इस तरह अनेक दारुण उत्पात रणभूमि में दिखाई दे रहे थे-जिनसे योद्धाओं के विनाश के लक्षण सूचित होते थे।

ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥४१॥
कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनाऽपूरयञ्जगत् ।

इसके अनन्तर कौरव और पाण्डव सेना में परस्पर वध की इच्छा से युद्ध प्रवृत्त हुआ । युद्ध के कोलाहल से सारी भूमि भर गई ॥४१॥

ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥४२॥
अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः ।

इस समय अपनी २ विजय के अभिलाषी, प्रहार करने में कुशल, आवेश में भरे हुए कौरव और पाण्डव वीर, तीक्ष्ण शस्त्रों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥४२॥

स पाण्डवानां महती महेष्वासो महाद्युतिः ॥४३॥
वेगेनाऽभ्यद्रवत्सेनां किरञ्शरशतैः शितैः ।

अब महाधनुर्धर अत्यन्त कान्तिमान् द्रोणाचार्य, सैंकड़ों तीक्ष्ण बाण छोड़ते हुए बड़े वेग से पाण्डवों की विशाल सेना पर टूट पड़े ॥४३॥

द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ॥४४॥
प्रत्यगृह्णंस्तदा राजञ्छरवर्षैः पृथक्पृथक् ।

हे राजन् ! युद्ध के लिए उद्यत द्रोणाचार्य को देखकर सृञ्जय वीरों के साथ, पाण्डवों ने भी अपनी बाणवर्षा से पृथक् २ वीरों का सामना (मुकाबिला) करना आरम्भ किया ॥४४॥

विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥४५॥
व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ।

इस समय द्रोणाचार्य से आलोडित की हुई पाण्डवों की विशाल सेना बिखर गई और वह पाञ्चालों के साथ इस तरह छिन्न भिन्न हो गई, जैसे-वायु से बादल उड़ जाते हैं ॥४५॥

बहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥४६॥
अपीडयत्क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।

द्रोणाचार्य ने इस युद्ध में अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया, जिनसे पाण्डव सेना और सृञ्जय वीरों को क्षण भर में व्याकुल कर दिया ॥४६॥

ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ॥४७॥
पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।

इन्द्र से आहत किये हुए दानवों की तरह द्रोणाचार्य से पीड़ित किये हुए धृष्टद्युम्न आदि पञ्चाल वीर, धैर्य को छोड़ बैठे ॥४७॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥४८॥
अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।

दिव्य अस्त्रों के प्रयोगों के जाननेवाले, शूरवीर, महारथी यज्ञसेन के पुत्र धृष्टद्युम्न भी, अनेक तरह से बाण छोड़कर द्रोण सेना को आहत करने लगे ॥४८॥

द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः ॥४९॥
सन्निवार्य ततः सर्वान्कुरूनप्यवधीद्बली ।

महाबली धृष्टद्युम्न ने भी द्रोणाचार्य की बाणवर्षा को अपनी बाणवर्षा से रोक कर बहुत से कौरवों को मार डाला ॥४९॥

संयम्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाऽऽहवे ॥५०॥
स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपाद्रवत् ।

महाधनुर्धर द्रोणाचार्य ने जैसे-तैसे अपनी सेना को रोककर युद्ध में स्थित किया तथा पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न पर आक्रमण करने को प्रेरित किया ॥५०॥

सबाणवर्षं सुमहदसृजत्पार्षतं प्रति ॥५१॥
मघवान्समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव ।

द्रोणाचार्य ने, पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न पर बहुत अधिक-बाणवर्षा करना आरम्भ किया, जैसे-क्रोध में भरे हुए इन्द्र, एक, दम दानवों पर बाणों की झड़ी लगा देते हैं ॥५१॥

ते कम्प्यमाना द्रोणेन बाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ॥५२॥

पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।

द्रोणाचार्य ने अपने बाणों से पाण्डव और सृञ्जय सेना को विकम्पित कर दिया और वह बार २ इस तरह भागने लगी, जैसे-सिंह के सामने से साधारण वनैले जन्तु भागने लगते हैं ॥५२॥

तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां बले बली ।

अलातचक्रवद्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥५३॥

हे राजन् ! इस समय पाण्डवों की सेना में महाबली द्रोणाचार्य अलातचक्र (पलीते) की भांति घूमने लगे-जो दृश्य बड़ा ही अद्भुत था ॥५३॥

खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या
चलदनिलपताकं ह्लादनं वल्गिताश्वम् ।
स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शात्रवाणां
स्थवरमधिरूढः सञ्जहाराऽरिसेनाम् ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

द्रोणाचार्य का घूमना, शास्त्रानुसार रचे हुए आकाशगामी नगर सा प्रतीत होता था। वायु से कम्पायमान इनकी दिव्य पताका बड़ी ही सुन्दर प्रतीत हो रही थी। इनके अश्व अठखेलियाँ करते हुए चल रहे थे। द्रोण स्वयं भी गर्जना करते जाते थे। इनकी ध्वजा स्फटिक पत्थर के तुल्य उज्ज्वल थी। ये शत्रुओं को त्रास भूत हो रहे थे। इस तरह उत्तम रथ पर बैठे हुए द्रोणाचार्य अपने शत्रुओं की सेना का संहार करने लगे ॥५४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में द्रोणपराक्रम का सातवां अध्याय समाप्त हुआ

आठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! अश्व, सूत, रथ और हाथियों को मारते हुए द्रोणाचार्य को देखकर पाण्डव, बड़े व्यथित हुए और वे किसी तरह भी द्रोण के रोकने में समर्थ नहीं हुए ॥१॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनञ्जयौ ।
अब्रवीत्सर्वतो यत्तैः कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥२॥

अब राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न और अर्जुन से कहा-तुम लोग, सब प्रकार से प्रयत्न करके सबसे प्रथम द्रोणाचार्य को रोको

तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः ।

प्रत्यगृह्णात्ततः सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥३॥

अब अर्जुन और सेनासहित, धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का सामना रोका । इसी समय पाण्डवों के अन्य महारथियों ने भी द्रोण पर आक्रमण किया ॥३॥

केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ।

युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्याऽऽत्मजास्तथा ॥४॥

द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः ।

चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥५॥

ये चाऽन्ये पार्थिवा राजन्पाण्डवस्याऽनुयायिनः ।

कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥६॥

हे राजन् ! केकय-राजकुमार, भीमसेन, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, घटोत्कच, धर्मराज, नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद और उसके पुत्र, उल्लसित द्रौपदी-पुत्र, धृष्टकेतु, सात्यकि, चेकितान, क्रोधाविष्ट महारथी युयुत्सु तथा अन्य पाण्डवों के अनुयायी राजा, अपने २ कुल और पराक्रम के अनुसार अनेक वीर-कर्म करने लगे ॥६॥

संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे ।

व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद्भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥७॥

इस प्रकार पाण्डवों द्वारा अपनी सेना के सुरक्षित कर लेने पर भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य, कुपित हो उठे और वे आंख फाड़ २ कर देखने लगे ॥७॥

स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः ।
व्यधमत्पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥८॥

युद्ध में अत्यन्त दुर्जय, द्रोण, क्रोध के साथ रथ में बैठ कर बादलों को वायु के समान पाण्डवसेना को फिर इधर उधर भगाने लगे ॥८॥

रथानश्वान्नरान्नागानभिधावन्नितस्ततः ।
चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥९॥

द्रोणाचार्य वृद्ध हो चुके थे, परन्तु वे अब भी युवा पुरुष की भांति, रथ, अश्व, नर और हाथियों के पीछे उन्मत्त की तरह घूम रहे थे ॥९॥

तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः ।
आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥१०॥

हे राजन्! रक्त में भीगे हुए, वायु के तुल्य वेग वाले, रक्त वर्ण-धारी आजानेय (पारसी) द्रोण केघोड़े, विना थकावट सब ओर घूम रहे थे ॥१०॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम् ।
दृष्ट्वा सम्प्राद्रवन्योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः ॥११॥

मृत्यु की तरह कुपित हुए व्रतशील, द्रोणाचार्य को आक्रमण करते देखकर पाण्डवों के योद्धा इधर उधर भागने लगे ॥११॥

तेषां प्राद्रवतां भीमः पुनरावर्त्ततामपि ।
पश्यतां तिष्ठतां चाऽऽसीच्छब्दः परमदारुणः ॥१२॥

उनके इधर उधर भागने, फिर लौटने, देखने, ठहरने के समय होने वाले भयानक शब्द से रणभूमि भर गई ॥१२॥

शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥१३॥

यह आघोष, शूरवीरों को हर्षजनक, कायरों को भयवर्द्धक था, जिसने भूमि और आकाश के मध्य में अन्तरिक्ष भाग को भर दिया ॥१३॥

ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन्युधि ।
अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् ॥१४॥

इसके अनन्तर द्रोणाचार्य, दर्प के साथ अपने नामका उच्चारण करके सैंकड़ों बाणों से शत्रुओं को छेदते हुए भयानक रूप धारी हो रहे थे ॥१४॥

ते तथा तेष्वनीकेषु पाण्डुपुत्रस्य मारिष ।
कालवद्व्यचरद् द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥१५॥

हे आर्य ! पाण्डु-पुत्र धर्मराज की सेना में महाबली द्रोणाचार्य, काल की भाँति दौड़ रहे थे । ये वृद्ध होकर भी युवा की भांति घूमते थे ॥१५॥

उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान्बाहूनपि सुभूषणान् ।
कृत्वा शून्यान्रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथान् ॥१६॥

द्रोणाचार्य, वीरों के शिरों और भूषणों से सुशोभित भुजाओं को उखाड़ लेते थे। ये रथों को महारथियों से शून्य करते हुए प्रत्येक महावीर को ललकारने लगे ॥१६॥

तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन वा विभो ।
प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥१७॥

हे विभो ! द्रोणाचार्य की हर्ष-ध्वनि और बाणवेग से योद्धा इस भांति पीड़ित होकर कांपने लगे, जैसे शीत से पीड़ित गायों की दुर्दशा हो जाती है ॥१७॥

द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषणेन च ।
धनुःशब्देन चाऽऽकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥१८॥

द्रोण के रथ के घोष, धनुष की डोरी की टक्कर तथा धनुष की टङ्कार से आकाश में महान् शब्द होने लगा ॥१८॥

अथाऽस्य धनुषो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्वरथपत्तिषु ॥१९॥

द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए सहस्रों की संख्या में बाण, हाथी, अश्व, रथ और पैदल सैनिकों पर सारी दिशाओं से आ २ कर गिरने लगे ॥१९॥

तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् ।
द्रोणमासादयाञ्चक्रुः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥२०॥

अस्त्रों से प्रज्वलित अग्निधारी और महावेगशील धनुष के धारण करनेवाले, द्रोणाचार्य पर पाण्डवों के साथ पाञ्चालों ने आक्रमण किया ॥२०॥

तान्स कुञ्जरपत्यश्वान्प्राहिणोद्यमसादनम् ।
चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम् ॥२१॥

हाथी और अश्वों के सवारों को द्रोण, बड़ी शीघ्रता से यम-राज के घर भेजने लगा। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने सारी रण-भूमि को रक्तकी कीचड़ से युक्त कर दिया ॥२१॥

तन्वता परमास्त्राणि शरान्सततमस्यता ।
द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥२२॥

बड़े उत्तम २ अस्त्रों को फैलाते और उन के द्वारा बाणों को फैंकते हुए द्रोण ने सारी दिशाओं में बाणों का ताना तान दिया ॥२२॥

पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः ।
तस्य विद्युदिवाऽऽभ्रेषु चरन्केतुरदृश्यत ॥२३॥

पैदल सैनिक, रथ, अश्व और हाथियों के समूह में बादलों में बिजली की तरह फड़फड़ाती हुई द्रोणाचार्य की ध्वजा, दिखाई दे रही थी ॥२३॥

स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च पञ्चालराजं च शरैः प्रमथ्य ।
युधिष्ठिरानीकमदीनसत्वो द्रोणोऽभ्ययात्कार्मुकबाणपाणिः।

धनुषबाणधारी, महाबलशाली द्रोणाचार्य, पाँच वीर केकय राजकुमार और पञ्चालराज द्रुपद को अपने बाणों से आहत करके राजा युधिष्ठिर की सेना पर झपटे ॥२४॥

तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च ।
शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च दृष्ट्वा नदन्तो व्यकिरञ्छरौघैः

यह देखकर भीमसेन, अर्जुन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शैब्य पुत्र, काशीपति, शिबि आदि महारथी गर्जना करते हुए बाणों से द्रोण को पाटने लगे ॥२५॥

तेषामथ द्रोणधनुर्विमुक्ताः पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः ।
भित्वा शरीराणि गजाश्वयूनां जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः

द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए, सुवर्ण से चित्र विचित्र पुङ्खधारी, रक्त में सने हुए ही बाण, गज, अश्व और वीरों के शरीरों को चीर २ कर पृथिवी में घुस जाते थे ॥२६॥

सा योधसङ्घैश्च रथैश्च भूमिः शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥

योद्धाओं के समूह, रथ, बाणों से छिन्न-भिन्न शरीरधारी गिरे हुए हाथी घोड़ों से रणभूमि, इस तरह ढ़क गई, जैसे-प्रलय का लीन मेघों से आकाश आवृत हो जाता है ॥२७॥

शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् ।
अन्यांश्च वीरान्समरे ममर्द द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य ने, तुम्हारे पुत्रों के ऐश्वर्य की कामना से शिनि-पुत्र सात्यकि, भीम, अर्जुन, सेनापति धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, पञ्चालराज द्रुपद और काशिराज तथा अनेक वीरों को रण में क्षतविक्षत कर दिया ॥२८॥

एतानि चाऽन्यानि च कौरवेन्द्र कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा
प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन्

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! इस प्रकार अनेक अद्भुत रण-कर्म करके महात्मा द्रोण, प्रलयकाल के सूर्य की तरह रण में वीरों को सन्तापित करके अन्त में स्वर्ग सिधार गए ॥२६॥

एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः ।
पाण्डवानां रणे योधान्पार्षतेन निपातितः ॥३०॥

हे भारत, इस तरह सुवर्ण के रथ वाले, वीर, आचार्य द्रोण, पाण्डवों के रण में सहस्रों की सङ्ख्या में वीरों का हनन करके पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न के हाथ से मर कर परलोक चले गए ॥३०॥

अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
निहत्य पश्चाद्धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥३१॥

हे राजन् ! रण में धैर्य शाली, आचार्य, द्रोण, युद्ध से पीछे नहीं हटने वाली पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना से भी अधिक सेना का विध्वंस करके अन्त में परमगति प्राप्त कर गए ॥३१॥

पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः ।
हतो रुक्मरथो राजन्कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥३२॥

हे राजन् ! क्रूरकर्म करनेवाले, भयानक, पाञ्चाल और पाण्डवों ने मिलकर घोर युद्ध में सुवर्ण के रथ पर स्थित द्रोणाचार्य का वध कर डाला ॥३२॥

ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत ।
सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥३३॥

हे राजन ! आचार्य द्रोण के मारे जाने पर आकाश में देवों के गणों में चर्चा फैल गई और भूतल पर सेनाओं में हाहाकार मच गया ॥३३॥

द्यां धरां खं दिशो वाऽपि प्रदिशश्चाऽनुनादयन् ।
अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद्भृशम् ॥३४॥

द्युलोक, आकाश, पृथिवी, दिशा और विदिशाओं में यही चर्चा भरी हुई थी, कि प्राणियों को धिक्कार है, जो अपने २ स्वार्थ में फँस कर ऐसे २ अशुभ कर्म कर डालते हैं ॥३४॥

देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चाऽस्य बान्धवाः ।
ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥३५॥

देवता, पूर्वज पितर तथा बन्धु बान्धवों ने महारथी, भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य को रणभूमि में मृतावस्था में देखा ॥३५॥

पाण्डवस्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
सिंहनादेन महतः समकम्पत मेदिनी ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणवधश्रवणोऽष्टमोऽध्यायः

पाण्डवों को तो विजय प्राप्त हुई, इससे वे सिंहनाद करने लगे। उनके विस्तृत सिंहनाद से सारी पृथिवी कांपने लगी ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में द्रोणवध-श्रवण का आठवां अध्याय समाप्त हुआ

नौवां अध्याय

धृतराष्ट उवाच—

किंकुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नु: पाण्डवसृञ्जयाः।
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥१॥

धृतष्टराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! द्रोणाचार्य रण में क्या करते रहे, जिससे पाण्डव और सृञ्जयों ने द्रोणाचार्य को मार लिया। वे तो सारे शस्त्रधारियों में अस्त्रविद्या में बड़े ही कुशल थे ॥१॥

रथभङ्गो बभूवाऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः।
प्रमत्तो वाऽभवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् ॥२॥

हे सञ्जय! क्या द्रोण का रथ टूट गया था या बाण फैंकते २ धनुष बिखर गया या द्रोणाचार्य, कुछ प्रमाद में भूलकर गए, जिससे वे मृत्यु को प्राप्त हुए ॥२॥

कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम्।
किरन्तमिषुसङ्घातान्रुक्मपुङ्खाननेकशः ॥३॥

क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम्।
दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥४॥

प श्चा [illegible] त्रो न्यव [illegible] ोद्दिव्यास्त्रधरमच्युतम्।
[illegible] ारि [illegible] ारुणं क [illegible] रणे यत्तं महारथमम् ॥५॥

[illegible] ात [illegible] शत्रुअ दुष्प्रधर्ष, सुवर्णपुङ्खधारी बाणसमूह को अनेक भांति से फैंकनेवाले, बड़े शीघ्रताकारी, युद्ध में कुशल

विचित्र ढ़ंग से युद्ध करने वाले, दूर तक बाण के फैंक देने में समर्थ, अस्त्र विद्या में कुशल, उदार वीर, रण में दारुण कर्म कर दिखाने वाले, सावधान महारथी, दिव्यास्त्रधारी, युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले, द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न ने कैसे मार गिराया ॥३-५॥

व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः ।
यद् द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥६॥

अब तो स्पष्ट हो गया, कि पुरुषार्थ से दैव प्रबल है, जो महावीर धृष्टद्युम्न ने शूरवीर द्रोणाचार्य को मार लिया ॥६॥

अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् ।
तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥७॥

इस शूरवीर आचार्य द्रोण में तो शस्त्रयोजना, सन्धान, मोक्ष और संहार आदि चारों अस्त्रोंके प्रकार भली-भांति स्थित थे। उन्हीं बाण और अस्त्रों के आचार्य, द्रोण को तुम मुझे मृत हुआ-कह रहे हो-यह कितनी आश्चर्य की बात है ॥७॥

श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम् ।
जातिरूपपरिष्कारं नाऽद्य शोकमुपाददे ॥८॥

व्याघ्रचर्म से आच्छन्न, सुवर्ण के रथ में बैठनेवाले, सुवर्ण के कवचधारी द्रोण के मरने का समाचार सुनकर आज शोक का अन्त नहीं होता है ॥८॥

न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय ।

यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ॥९॥

दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् ।

हे सञ्जय ! अन्य के दुःख से कोई भी प्राणी अपने प्राण नहीं छोड़ सकता है, इसी से तो आज बुद्धिहीन मैं द्रोण की मृत्यु सुन कर जीवित हूं, इससे दैव ही बलवान् है, पुरुषार्थ कुछ नहीं है।

अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥१०॥

यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते ।

मेरा हृदय, लोहसे भी अधिक कठोर है, यह निश्चय हो गया, जो द्रोणाचार्य की मृत्यु सुनकर भी सौ टुकड़े होकर छिन्न-भिन्न नहीं होता है ॥१०॥

ब्राह्मे दैवे तथेष्वस्त्रे यमुपासन्गुणार्थिनः ॥११॥

ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हृतः ।

जिस द्रोण के समीप ब्राह्मण और क्षत्रिय, तथा अन्य गुणाभिलाषी विद्यार्थी ब्राह्म, दैव आदि अस्त्र तथा बाणविद्या सीखने को शिष्य बनते थे, क्या आज मृत्युने उनको भी दबोच दिया ॥११

शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥१२॥

पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम् ।

समुद्र के सूखने, मेरु के चलने और सूर्य के पतन के तुल्य द्रोणाचार्य का पतन मुझसे नहीं सहा जाता है ॥१२॥

दुष्टानां प्रतिषेद्धाऽऽसीद्धार्मिकाणां च रक्षिता ॥१३॥
योऽहासीत्कृपणस्याऽर्थे प्राणानपि परन्तपः।

द्रोणाचार्य, दुष्टों के घातक और धार्मिकों के रक्षक थे। ये परन्तप, दीन-दुःखियों के निमित्त अपने प्राणों की बलि भी प्रदान करने को उत्सुक रहते थे ॥१३॥

मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥१४॥
बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम्।

मेरे मूर्ख पुत्रों की तो विजय की सारी आशाएँ इन्हीं पर निर्भर थी। ये बुद्धि में बृहस्पति और शुक्राचार्य के तुल्य थे, वे भी आज कैसे मार लिए गए ॥१४॥

ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः ॥१५॥
रथे वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगा रणे।
बलिनो ह्रेषिणो दान्ता सैन्धवाः साधुवाहिनः ॥१६
दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्नविह्वलाः।

द्रोणाचार्य के लालवर्ण के अश्व, सदा सुवर्ण की शृङ्खलाओंसे सुशोभित रहते थे। जब ये रथ में जोते जाते थे-तब वायु के तुल्य वेगवाले और रण में सारे शस्त्रों के सहन करने में समर्थ थे। ये बड़े बली, पुष्ट, सिन्धुदेशोत्पन्न, रथ को सुन्दर प्रकार से ले जाने वाले, हिनहिनाते हुए संग्राम में बड़े दृढ़ रहते थे। क्या वे तो व्याकुल नहीं होगए ॥१५-१६॥

करिणां बृंहतां युद्धे शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥१७॥
ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणां च सहिष्णवः ।

जब युद्ध में हाथी चिघाड़ते थे, शंख दुन्दुभियों के शब्द होते थे, धनुष की प्रत्यञ्चा से बाण निकलते रहते थे, इस समय भी ये अश्व, सारे शस्त्रों के आघातों से विचलित नहीं होते थे ॥१७॥

आशंसन्तः पराञ्जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥१८॥
हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः ।

ये शत्रुओं के जीतने की आशा में भरे हुए, कभी नहीं थकने वाले, व्यथाहीन, द्रोणाचार्य के रथ के अश्व भी किस तरह इतने शीघ्र पराजित हो गए ॥१८॥

ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहताः ॥१९॥
कथं नाऽभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ।

हे तात ! अनेक उत्तम वीरों से सुरक्षित, द्रोण के सुवर्ण रथ में जुते हुए अश्व भी पाण्डवों की सेना को कैसे पार नहीं कर सके ॥

जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥२०॥
भारद्वाजः किमकरोद्युधि सत्यपराक्रमः ।

उज्ज्वल सुवर्ण से स्वच्छ, उत्तम रथ में बैठकर सत्यपराक्रमी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य ने क्या किया ॥२०॥

विद्या यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥२१॥
स सत्यसन्धो बलवान्द्रोणः किमकरोद्युधि ।

सारे संसारमें धनुर्धर क्षत्रियों ने जिनकी धनुष-विद्या की धाक मान रखी थी, उन्हीं सत्यप्रतिज्ञाधारी, बलवान् द्रोण ने युद्ध में क्या २ किया ॥२१॥

दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् ॥२२॥
के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ।
ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ॥२३॥

स्वर्ग में इन्द्र के तुल्य, भूतल पर सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, भयानक कर्म कर दिखाने वाले, द्रोण के सन्मुख कौन २ महारथी युद्ध करने को आए, पाण्डव तो द्रोण के सुवर्ण के रथ को देखते ही भाग निकले होंगे ॥२२-२३॥

दिव्यमस्त्र विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् ।
उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥२४॥
पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।

दिव्य अस्त्रों के फैंकने वाले, महाबली द्रोणाचार्य पर क्या सारी सेना और छोटे भाइयों के साथ धर्मराज ने आक्रमण कर दिया धर्मराज को पाञ्चाल सेना का बड़ा ही भरोसा है । इन्होंने द्रोणाचार्य को सब ओर से घेरा होगा ॥२४॥

नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः ॥२५॥
ततो द्रोणं समारोहत्पार्षतः पापकर्मकृत् ।

मुझे तो यही अनुमान होता है, कि पहिले अर्जुन ने अपने सीधे जाने वाले बाणों से अन्य महारथियों को रोका होगा और फिर पापकर्म में तत्पर धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया होगा ॥२५॥

नह्यहं परिपश्यामि वधे कञ्चन शुष्मिणः ॥२६॥

धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्पाल्यमानात्किरीटिना ।

तैर्वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥२७॥

मैं तो पाण्डवसेना में किसी भी वीर को नहीं देखता, जो तेजस्वी द्रोण पर आक्रमण कर सके । अर्जुनद्वारा सुरक्षित धृष्टद्युम्न ही द्रोण पर आक्रमण करने का साहस कर सकता था॥

केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः ।

व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ॥२८॥

कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम ।

केकय, चेदि, कारूष, आदि मत्स्य देशों के वीरों तथा अन्य राजाओं से युक्त, शूरवीर, नीच पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने युद्धमें क्षत-विक्षत आचार्य को इतना व्याकुल किया होगा, जितना सर्प के व्रण में लगी हुई चींटियां सर्प को कर देती है। युद्ध के दुष्कर कर्म में लगे हुए द्रोण को धृष्टद्युम्न ने इसी तरह मारा होगा॥

योऽधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गानाख्यानपञ्चमान् ॥२९॥

ब्राह्मणानां प्रतिष्ठाऽऽसीत्स्रोतसामिव सागरः ।

क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत्परन्तपः ॥३०॥

स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान् ।

जिस द्रोणने षडङ्गों सहित तथा इतिहास के साथ वेदों को पढ़ा था। जो नदियों को समुद्र की तरह ब्राह्मणों का आश्रय था। क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों ही जिस परन्तप द्रोण पर एक सी श्रद्धा रखते थे, वह वृद्ध ब्राह्मण आज कैसे शस्त्र द्वारा मारा गया ॥३०॥

अमर्षिणा मर्षितवान्क्लिश्यमानान्सदा मया ॥३१॥
अनर्हमाणान्कौन्तेयान्कर्मणस्तस्य तत्फलम् ।

यद्यपि द्रोणाचार्य किसी की नहीं सहते थे, परन्तु हमारे दिये हुए क्लेशों (आक्षेपों) को सहते रहे। जब उन्होंने वन के अयोग्य पाण्डवों का वन जाना भी सह लिया, तो यह उनके उस पाप कर्म का फल प्राप्त हुआ ज्ञात होता है ॥३१॥

यस्य कर्माऽनुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ॥३२॥
स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् ।

सारे धनुर्धर, जिसकी धनुर्विद्या की प्रशंसा करके कुछ सीखते रहते थे, उसी सत्य-प्रतिज्ञाधारी, पुण्यकर्म करनेवाले द्रोण को ऐश्वर्यलोलुप पाण्डवों ने कैसे मार गिराया ॥३२॥

दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥३३॥
स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः ।

यह आत्मबलधारी, महाबली, स्वर्ग में इन्द्र के तुल्य इस लोक में श्रेष्ठ था। उसी को छोटे मत्स्यों-द्वारा बड़े जल-जन्तु की तरह कैसे पाण्डवों ने मार लिया ॥३३॥

क्षिप्रहस्तश्च बलवान्दृढधन्वाऽरिमर्दनः ॥३४॥
न यस्य विजयाकांक्षी विषयं प्राप्य जीवति ।

द्रोणाचार्य, बड़े शीघ्र हाथ चलाने वाले, बलवान्, दृढ़ धनुष धारी और शत्रुविजयी थे। इनसे विजय की अभिलाषा रखने वाला, कौन इनके सन्मुख जाकर जीता बच सकता था ॥३४॥

यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥३५॥
ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम् ।

जब तक द्रोणाचार्य जीवित रहे तब तक वेद पढ़ने वालों को वेदध्वनि और धनुष विद्या सीखने वाले धनुर्धरों को प्रत्यञ्चा का शब्द सुनाते रहे। इन दोनों शब्दोंने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा

अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥३६॥
नाऽहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।

दीनता से हीन, पुरुषप्रवीर, लज्जाशील, पराजित नहीं होने वाले, सिंह और हाथी के तुल्य पराक्रमी द्रोण की मृत्यु के समाचार मुझ से नहीं सहे जाते हैं ॥३६॥

कथं सञ्जय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोबलम् ॥३७॥
पश्यतां पुरुषेन्द्राणां समरे पार्षतोऽवधीत् ।

हे सञ्जय ! दुर्धर्ष, किसी से नहीं दबाए जाने वाले, यश और बल से सम्पन्न, द्रोण को पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न ने सारे वीर पुरुषों के देखते २ रण-स्थल में कैसे मार गिराया ॥३७॥

के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात् ॥३८॥

के नु पश्चादवर्त्तन्त गच्छतो दुर्गमां गतिम् ।

द्रोण की सन्मुख रक्षा करने वाले कौन वीर थे, जिनके साथ प्रथम युद्ध हुआ और कौन से वीरों को पीछे युद्ध करना पड़ा, जब द्रोणाचार्य वीरगति पा चुके ॥३८॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः ॥३९॥

पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे ।

किन कौरववीरों ने द्रोणाचार्य के दांयी ओर की रक्षा की और किन्होंने बांयी ओर से द्रोण को सुरक्षित रखा तथा युद्ध करते हुए द्रोण के आगे रण में कौन वीर चल रहे थे ॥३९॥

के च तस्मिंस्तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥४०॥

द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम् ।

उन वीरों के मुझे नाम बताओ, जिन्होंने द्रोण के साथ युद्ध करके भीषण मृत्यु का स्वागत किया और किन वीरों ने युद्ध में द्रोणाचार्य को धैर्य बँधाया ॥४०॥

कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन्रणे ॥४१॥

रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चिन्नैन हताः परैः ।

कुछ कायर क्षत्रिय वीरों ने भय से द्रोणाचार्य का रण में साथ तो नहीं छोड़ दिया। क्या इसी शून्यता में शत्रुओं ने द्रोण के रक्षकों को मार तो नहीं गिराया ॥ १॥

न स पृष्ठमरेस्त्रासाद्रणे शौर्यात्प्रदर्शयेत् ॥४२॥
परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।

द्रोणाचार्य तो शत्रु के भय से कभी डिगने वाले नहीं थे । वे अपने पराक्रम के बल पर कभी शत्रु को पीठ नहीं दिखा सकते थे। जो किसी भी संकट के आ पड़ने पर पीछे नहीं हटते थे वे भी शत्रुओं ने कैसे मार लिये ॥४२॥

एतदार्येण कर्त्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥४३॥
पराक्रमेद्यथा शक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।

हे सञ्जय ! कठिन विपत्ति के समय में भी आर्य पुरुषों को यथाशक्ति पराक्रम करना चाहिए यह वीरता भी द्रोणाचार्य में अत्यन्त रूप में विद्यमान थी ॥४३॥

मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ॥४४॥
भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रशोके
नवमोऽध्यायः ॥९॥

हे सञ्जय। अब मेरा मन मोहित सा होता जा रहा है, तुम अपनी कथा को थोड़ी देर तक रोक दो । हे तात ! जब मुझे चेतनता आवेगी-तब मैं तुम से इसे पूछूँगा ॥४४-४५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में धृतराष्ट्र के
शोक का नौवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

दशवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एतन्पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनाऽर्दितो भृशम् ।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत्क्षितौ ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! धृतराष्ट्र ने इतना प्रश्न तो कर दिया, परन्तु वे हृदय की अन्तर वेदना से अत्यन्त क्लेशित हो रहे थे। वे सहसा भूमि पर गिर गए और उनको अपने पुत्रों की जीत की तनक भी आशा न रही ॥१॥

तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः ।
जलेनाऽत्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना ॥२॥

अचेत पड़े हुए राजा धृतराष्ट्र को उत्तम सुगन्धिमिश्रित अत्यन्त शीतलजल से सेवक गण सींचने और पङ्खा करने लगे।

पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
परिवव्रुर्महाराज मस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥३॥

महाराज धृतराष्ट्र को अचेत देखकर भरतवंश की स्त्रियां घेर कर खड़ी हो गईं और अपने हाथों से छू कर उसे सचेत करने लगीं ॥३॥

उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः ॥४॥

इन स्त्रियों ने राजा को पृथिवी पर से धीरे से उठाया और शय्या पर लिटाया । ये सुन्दर मुखवाली सारी स्त्रियां रोती जाती थी ॥४॥

आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ॥५॥

यद्यपि राजा शय्यापर लिटा दिया गया, परन्तु अभी तक उनकी मूर्च्छा दूर नहीं हुई । राजा धृतराष्ट्र निश्चेष्ट पड़े थे और सब ओर से लोग उनको पंखा कर रहे थे ॥५॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥६॥

थोड़ी देर में राजा धृतराष्ट्र को चेतनता आई, परन्तु अब वे कांपने लगे । इसके अनन्तर गवल्गण के पुत्र सञ्जय से वे फिर युद्ध का सत्य २ वृत्तान्त पूछने लगे ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच—

यः स उद्यन्निवाऽऽदित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः ।
अजातशत्रुमायान्तं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥७॥

धृतराष्ट्र ने कहा—अपनी ज्योति से अन्धकार का नाश करके उदय होते हुए सूर्य के तुल्य तेजस्वी, धर्मराज, जब द्रोणाचार्य के सन्मुख आये-तो किस कौरव महारथी ने उन्हें द्रोण के समीप से हटाया ॥७॥

प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥८॥
वासितासङ्गमे यद्वदजय्यं प्रतियूथपैः ।

मद टपकते हुए वेगवान क्रोधातुर, प्रफुल्लित, कामातुर हथिनी के सङ्गम के समय दूसरे हाथी पर झपटते हुए हाथीके तुल्य राजा युधिष्ठिर, किसी भी यूथपति महारथी से नहीं जीते जा सकते हैं।

निजघान रणे वीरान्वीरः पुरुषसत्तमः ॥९॥
यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान्सत्यसङ्गरः ॥१०॥

पुरुषप्रवीर धर्मराज, अकेला ही रण में अनेक वीरों का विनाश कर सकता है। यह महाशक्तिशाली तो अपने घोर दृष्टि पात से ही सारी दुर्योधन की सेना को दग्ध कर सकता है, क्योंकि यह बड़ा धैर्य-शाली और सत्य-प्रतिज्ञाधारी है ॥९-१०॥

चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् ।
दान्तं वहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ॥११॥

धर्मराज को तो लोग कहते ही चक्षुर्हण हैं, जो देखते ही भस्म कर सकता है। यह महाधनुर्धर युद्ध से नही हटने वाला विजयी वीर है। उसने अपनी उदारता से जगत में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर रखी है। इसको उस समय किन वीरों ने रोका ॥११॥

के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् ।
समासेदुर्नरव्याघ्र कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥१२॥

बड़े उत्तम धनुष के धारण करने वाले, महापराक्रमी, दुष्प्रधर्ष नरश्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर का किन मेरे पक्ष के महारथियों ने सामना किया ॥१२॥

तरसैवाऽभिपद्याऽथ यो वै द्रोणमुपाद्रवत् ।
यः करोति महत्कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥१३॥

धर्मराज ने बड़े वेग का आश्रय लेकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया था। यह महाबली रण में बहुत तीखे कर्म कर दिखाता है ।

महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले ।
त भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥१४॥

विशालकायधारी और महान् उत्साहवाले दश हजार हाथियों के बल से सम्पन्न, भीमसेन के झपटने पर उसको किस ने रोका ॥१४॥

यदाऽयाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनीं सृजन् ॥१५॥
विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव ।
अवस्फूर्जन्दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥१६॥

मेघों के समान उमड़ते हुए, अत्यन्तवीर्यशाली, मेघ के वर्ण के धारी अर्जुन, जब भीषण वज्र का सा प्रयोग करते हुए बाण

वर्षा की इन्द्र के तुल्य झड़ी लगा रहे थे और जिन्होंने अपनी धनुष की टंकार और रथ की नेमि की ध्वनि से सारी दिशा गुंजादी थी, उसको किसने रोका ॥१५-१६॥

चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
सनेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥१७॥
रोषनिर्जितजीमूतो मनोभिप्रायशीघ्रगः ।
मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥१८॥
सम्प्लावयान्दिशः सर्वा मानवैरास्तरन्महीम् ।

धनुष रूपी बिजली से सम्पन्न, रथ की छतरी रूप मेघवाले बाणों की सनसनाहट से बढ़ी हुई रथनेमि की घोर ध्वनिरूपी गर्जना से युक्त, रोष से मेघ के वेग के धारी, मन और अभिप्राय के समान शीघ्रगामी, मर्मों को काट देनेवाले बाणसमूह की झड़ियों से युक्त, अर्जुन रूपी मेघ, रक्तरूपी जल से सारी दिशाओं को ढक देता है। यह रण में मनुष्यों से सारी रण-भूमि को पाट देता है ॥१७-१८॥

भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधमपुरोगमान् ॥१९॥
युद्धेऽभ्यषिञ्चद्विजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
गाण्डीवं धारयन्धीमान्कीदृशं वो मनस्तदा ॥२०॥

भयानक सिंहनाद करने वाले, भयानक आकारधारी, अर्जुन ने गृध्रपक्षी की पांखों से युक्त शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से दुर्योधन आदि महारथियों को पाट दिया होगा। जब बुद्धि

मान् अर्जुन ने गाण्डीव धारण करके युद्ध में क्रीड़ा करना आरम्भ किया-तो उस समय तुम्हारे मनों की क्या दशा हुई ॥१९-२०॥

इषुसम्बाधमाकाशं कुर्वन्कपिवरध्वजः ।
यदाऽयात्कथमासीत्तु तदा पार्थं समीक्षताम् ॥२१॥

कपि की उत्तम ध्वजा के धारी अर्जुन, आकाश को बाणों से व्याप्त करते हुए, ज्योंही कौरवों के सन्मुख आए-तो उस समय अर्जुन को देखकर तुम्हारी क्या दशा हुई ॥२१॥

कच्चिद्गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम् ।
यद्धः स भैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥२२॥

जब अर्जुन, अत्यन्त भयानक सिंहनाद करता हुआ, तुम लोगों के सन्मुख आया-तो उस समय गाण्डीव धनुष की टङ्कार से ही क्या तुम्हारी सेना विचलित नहीं हो गई ॥२२॥

कच्चिन्नाऽपानुदत्प्राणानिषुभिर्वो धनञ्जयः ।
वातो वेगादिवाऽऽविध्यन्मेघाञ्शरगणैर्नृपान् ॥२३॥

क्या अर्जुन ने अपने बाणों तुम्हारे वीरों के प्राणों का इस तरह से अपहरण नहीं किया, जैसे वायु मेघों को उड़ा ले जाती है। बाणों के प्रहार से तो उसने सारे राजाओं की भी यही दशा कर दी होगी ॥२३॥

को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति ।
यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥२४॥

जब वीरगण, सेना के अग्रभाग में अर्जुन को सुनते है, तो सारे भाग निकलते हैं, फिर किस की शक्ति हुई होगी-जो गाण्डीव धारी अर्जुन के वेग को रण में सह सका हो ।।२४।।

यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद्भयम् ।
के तत्र नाऽजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ।।२५।।

जिस अर्जुन से सेनाएँ कांपती रहती हैं जिससे वीरों को भय लगा रहता है, उस समय भी किन वीरों ने द्रोणाचार्य का साथ नहीं छोड़ा और कौन शूरवीर उनका साथ छोड़कर भय से भाग निकले ।।२५।।

के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ।
अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनञ्जयम् ।।२६।।

देव और दानवों के भी विजय करनेवाले अर्जुन को युद्ध में पाकर किन वीरों ने सब को विपरीत प्रतीत होनेवाली मृत्यु का स्वागत किया ।।२६।।

न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिःस्वनम् ।।२७।।

मेरे पक्ष के महारथी, श्वेत अश्वों के वाहनवाले अर्जुन के वेग और उसके गाण्डीव धनुष की ध्वनि को नहीं सम्हाल सकते हैं, जिनकी ध्वनि, वर्षा कालीन मेघ के तुल्य तीव्र है ।।२७।।

विष्वक्सेनो यस्य यन्ता यस्य योद्धा धनञ्जयः ।
अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि ।।२८।।

मैं तो उस महारथी राजा को देव और असुरों से भी अजेय समझता हूं, जिसके नेता श्रीकृष्ण और योधा धनञ्जय अर्जुन हैं।

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
मेधावी निपुणो धीमान्युधि सत्यपराक्रमः ॥२९॥
आरावं विपुलं कुर्वन्व्यथयन्सर्वसैनिकान् ।
यदाऽयान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥३०॥

सुकुमार, युवा, शूरवीर, सुन्दर, बुद्धिमान्, चतुर, समझदार, युद्ध में पराक्रमी नकुल, विपुल सिंहनाद करता हुआ और सारे सैनिकों को व्यथा पहुंचाता हुआ जब द्रोणाचार्य के सन्मुख आया-तो उसको किन शूरवीरों ने रोका ॥२९-३०॥

आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाऽभ्ययात् ।
कदनं करिष्यञ्शत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥३१॥
आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥३२॥

शत्रुओं का विनाश करने वाला, तेज से युद्ध में देदीप्यमान, दुर्जयी, सहदेव, जब सर्प की भांति कुपित होकर युद्ध करने सन्मुख आया-तो उसको किन कौरव वीरों ने रोका। सहदेव आर्यव्रत में तत्पर, सफल बाण चलानेवाला, लज्जाशील और किसी से पराजित नहीं होने वाला है ॥३१-३२॥

यस्तु सौवीरराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
आदत्त महिषीं भोजां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥३३॥

सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुर्षभे ॥३४॥

जिसने सौवीर राज की विशाल सेना का मन्थन करके सर्वाङ्ग सुन्दरी, कमनीय भोजकन्या का ग्रहण किया, उस पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि में सत्य, धैर्य, शौर्य और ब्रह्मचर्य सर्वदा विद्यमान रहता है ॥३३-३४॥

बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥३५॥
धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रमर्मणि ।
पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥३६॥

जो बड़ा बलवान, सत्यकर्म करनेवाला, दीनता से हीन, पराजित नहीं होने वाला, श्रीकृष्ण के तुल्य शक्तिशाली और आयु में उनसे कुछ छोटा है। इसने अर्जुन से बाण विद्या सीखी है, जिससे यह बाणविद्या में बड़ा कुशल माना जाता है अस्त्र विद्या में अर्जुन के तुल्य पराक्रमी इस सात्यकि को द्रोणाचार्य के समीप से किसने हटाया ॥३५-३६॥

वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥३७॥
सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चाऽस्त्रमनुत्तमम् ।
सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे ॥३८॥

जो वृष्णिवंश में श्रेष्ठ, सारे शूरवीरों में उत्तम वीर, अस्त्र यश और पराक्रम में परशुराम के तुल्य है। जिसमें सत्य, धैर्य बुद्धि, शौर्य, सब कुछ विद्यमान है। भगवान् विष्णु में जैसे त्रिलोकी स्थित है, इसी तरह सात्यकि में सारे ब्रह्मास्त्र विद्यमान हैं

तमेवं गुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः।
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥३९॥

इस सर्वगुणसम्पन्न, देवों से भी दुर्वार महाधनुर्धर, सात्यकि को युद्ध में पाकर किन कौरव वीरों ने उन्हें रोका ॥३९॥

पञ्चालेषूत्तमं वीरमुत्तमाभिजनप्रियम्।
नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥४०॥
युक्तं धनञ्जयहिते ममाऽनर्थार्थमुत्थितम्।
यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥४१॥
महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्के शूराः समवारयत् ॥४२॥

उत्तम कुलीन मनुष्यों के प्रिय, पाञ्चाल वीरों में उत्तम, नित्य उत्तम २ कर्म करने वाले, रण में उत्तम ओजधारी, धनञ्जय अर्जुन के हित में तत्पर और हमारे अनर्थ के लिये उद्यत, यम, कुबेर, सूर्य, इन्द्र, वरुण के तुल्य पराक्रमी, प्राणों की अपेक्षा (परवा) न करके द्रोणाचार्य से युद्ध के अभिलाषी महारथी उत्तमौजा को किन कौरव वीरों ने रोका ॥४०-४२॥

एकोऽपसृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥४३॥

जिसने सारे चेदिवंशज वीरों को छोड़कर अकेले ने ही पाण्डवों का साथ दिया है, उस धृष्टकेतु के आक्रमण करने पर किसने उसे रोका ॥४३॥

योऽवधीत्केतुमान्वीरो राजपुत्रं दुरासदम् ।
अपरान्तगिरिद्वारे द्रोणात्कस्तं न्यवारयत् ॥४४॥

जिस वीर केतुमान् ने अपरान्त पर्वत पर दुरासद राजपुत्र का वध किया, उसे द्रोणचार्य के समीप बढ़ने पर किस महारथी ने रोका ॥४४॥

स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् ।
शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥४५॥
देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥४६॥

जो महावीर, स्त्री और पुरुष दोनों योनियों के तत्वों का जानने वाला है, युद्ध में प्रसन्न चित्त रहने वाले उस यज्ञसेन के पुत्र शिखण्डी को द्रोण के सन्मुख पहुंचने पर किसने पीछे हटाया। महात्मा भीष्म की रण में मृत्यु का कारण यही शिखण्डी बताया जाता है ॥४५-४६॥

यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात् ।
यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च सर्वदा ॥४७॥

वासुदेवसमं वीर्ये धनञ्जयसमं बले ।
तेजसाऽऽदित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मतौ ॥४८॥

अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः समवारयन् ॥४९॥

जिसमें अर्जुन से भी अधिकरूप में सारे गुण विद्यमान हैं। जिसमें सारे अस्त्र और सत्य ब्रह्मचर्यादि विद्यमान हैं । जो पराक्रम में श्रीकृष्ण, बल में अर्जुन, तेज में सूर्य, बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य हैं उसी काल के समान मुख फाड़े हुए महावीर अभिमन्यु को द्रोणाचार्य के सन्मुख पहुंच जाने पर किन शूरवीरों ने रोका ॥

तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा ।
यदाऽभ्यधावद्वै द्रोणं तदाऽऽसीद्वो मनः कथम् ॥५०॥

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, तरुण आयुवाला और तरुण बुद्धिमान् हैं। यह शत्रु विजयी, जब द्रोणाचार्य पर झपटा-तो उस समय तुम लोगों के मन की क्या दशा थी ॥५६॥

द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः ।
यद् द्रोणमाद्रवन्संख्ये के शूरास्तान्न्यवारयन् ॥५१॥

नरों में श्रेष्ठ महावीर, द्रौपदीपुत्रों ने समुद्र में नदियों की भांति जब द्रोणाचार्य पर वेग से आक्रमण किया-तो उस समय रण में किन हमारे शूरवीरों ने उन्हें वहां से हटाया ॥५१॥

एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः ।
अस्त्रार्थमवसन्भीष्मे बिभृतो व्रतमुत्तमम् ॥५२॥

इन द्रौपदी पुत्रों ने खेलना छोड़कर बाल्यावस्था में ही भीष्म के समीप ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करके अस्त्र विद्या को ग्रहण किया था ॥५२॥

क्षत्रञ्जयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः ।
धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान्द्रोणादवारयन् ॥५३॥

क्षत्रञ्जय, क्षत्रदेव, क्षत्रवर्मा और मानद नामक धृष्टद्युम्न के चारों वीर पुत्रों को किस कौरव महारथी ने द्रोणाचार्य के पास से दूर किया ॥५३॥

शताद्विशिष्टं यं युद्धे सममन्यन्त वृष्णयः ।
चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥५४॥

वृष्णिवंशोद्भव वीर, जिस धनुषधारी चेकितान को सैंकड़ों महारथियों से अधिक बलशाली मानते हैं, उनको द्रोण पर आक्रमण करने पर किस वीर ने दूर हटाया ॥५४॥

वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद्युधि ।
अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥५५॥

जिसने युद्ध करके कलिङ्गराज की कन्या का अपहरण किया, उस वृद्धक्षेम के पुत्र महाबली, अनाधृष्टि को द्रोणाचार्य के समीप से किस महाबली कौरव वीर ने हटाया ॥५५॥

भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः ।
इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्तवर्मायुधध्वजाः ॥५६॥

मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः ।
तान्द्रोणं हन्तुमायातान्के वीराः पर्यवारयन् ॥५७॥

केकय देश के राजकुमार पांच भाई, बड़े धार्मिक और सत्य पराक्रमी हैं। इनका इन्द्रगोप (वीरबहूटी) के तुल्य लाल रङ्ग है और ये लाल ही कवच, शस्त्र और ध्वजा धारण करते हैं । ये पाण्डवों की मौसी के बेटे भाई हैं। ये वीर भी पाण्डवों की विजयी की अभिलाषा से उनके सहायक हैं।इन्होंने जब द्रोण वध के लिए द्रोण पर आक्रमण किया तो उनका किसने प्रतीकार किया ॥५६-५७॥

यं योधयन्तो राजानो नाऽजयन्वारणावते ।
षण्मासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥५८॥
धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं महाबलम् ।
द्रोणात्कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥५९॥

वारणावत नगर में युद्ध होने के समय विरोधी राजा, बहुत सी मार काट करते हुए आवेश में भरे हुए भी, योद्धाओं में श्रेष्ठ, धनुषधारियों में उत्तम, सत्यप्रतिज्ञाधारी, महाबली शूरवीर, जिस युयुत्सु को छः महीने में भी पराजित नहीं कर सके, उस नरवीर युयुत्सु को द्रोण के समीप से किसने हटाया ॥५८-५९॥

यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् ।
समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनाऽपाहरद्रथात् ॥६०॥
धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥६१॥

निर्दहन्तं रणे योधान्दारयन्तं च सर्वतः ।
द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥६२॥

जिसने काशी नगरी में ही महारथी काशिराजके पुत्र को स्त्रियों की कामुकता के कारण एक बाण में ही रथ से नीचे गिरा दिया, उन पाण्डवों की मन्त्रणा के सर्वाधार, महाधनुर्धर, दुर्योधन के कष्ट और द्रोण की मृत्यु के लिए उत्पन्न हुए धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने के समय किस वीर ने रोका । यह धृष्टद्युम्न, सब ओर से योद्धाओं का विध्वंस करता हुआ मार-काट मचानेमें बड़ा ही सिद्धहस्त है ॥६०-६२॥

उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्याऽस्त्रवित्तमम् ।
शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणादवारयन् ॥६३॥

राजा द्रुपद की गोदीं में बढ़ा हुआ, अस्त्र विद्या में कुशल, शिखण्डी के पुत्र, शस्त्रगुप्त का द्रोण पर आक्रमण करने पर किस योद्धा ने सामना किया ॥६३॥

य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत्समवेष्टयत् ।
महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥६४॥
दशाश्वमेधानाजह्रे स्वन्नपानाप्तदक्षिणान् ।
निरर्गलान्सर्वमेधान्पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥६५॥
गङ्गास्रोतसि यावत्यः सिकता अप्यशेषतः ।
तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥६६॥

जिसने इस सारी पृथिवी को चर्म की तरह लपेट दिया। जो महारथी अपने रथ की ध्वनि से ही मुख्य २ शत्रुओं का नाश कर देता है! जिसने उत्तम २ अन्नपान और उत्तम दक्षिणाओं से पूर्ण दश अश्वमेध यज्ञ किए। जिनके सारे यज्ञों में कुछ भी विघ्न नहीं हुआ और जो स्वच्छन्दता के साथ पूरे हुए। जो पुत्र की भांति प्रजा का पालन करने वाला है। गङ्गा के तट पर जितने असंख्य रजकण हैं, उशीनर के पुत्र शिवि ने इतनी ही गौओं के यज्ञ में दान किये हैं ॥६४-६६॥

न पूर्वे नाऽपरे चक्रुरिदं केचन मानवाः।
इतीदं चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥६७॥
पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्नुचारिषु।
जातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयं चापि साम्प्रतम् ॥
अन्यमौशीनराच्छैब्याद्धुरो वोढारमित्युत।
गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥६९॥
तस्य नप्तारमायान्तं शैब्यं कः समवारयन्।
द्रोणायाऽभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥७०॥

जब इस शैव्य ने इतने दक्षिणापूर्ण दुष्कर यज्ञ कर्म किये तो देवोंने घोषणा करदी, कि इतने यज्ञ अब तक कोई भी पूर्वज राजा नहीं कर सका है। यज्ञ करने वालों में तीनों लोकों में आज तक न तो कोई उत्पन्न हुआ न होगा और न इस समय कोई इनके बराबर दूसरा है। उशीनर वंशज शैव्य से अधिक कोई भी

यज्ञ की धुर का धारण करने वाला नहीं है। कोई भी लोकवासी मनुष्य शिबि पुत्र (शैव्य) की प्रक्रिया को नहीं जान पाता है। उसी शैब्य के नप्ता, इस शैब्य को द्रोणाचार्य पर झपटने पर किस महारथी ने रोका। यह तो रण में मुख खोले हुए काल के समान भयङ्कर रहता है ॥६७-७०॥

विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥७१॥

शत्रुघाती, मत्स्यराज, विराट के रथियों की सेना ने जब द्रोणाचार्य का वध करना चाहा-तो उसका सामना किस कौरव वीर ने किया ॥७१॥

सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः ।
मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद्भयम् ॥७२॥
पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् ।
घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥७३॥

थोड़े ही दिन हुए, जब भीमसेन से उत्पन्न हुआ, महाबल और पराक्रम से सम्पन्न, मायावी, राक्षसराज, महावीर, घटोत्कच को मैं जानता हूं। उससे मुझे बड़ा ही भय है। यह पाण्डवों की विजय का अभिलाषी और मेरे पुत्रों का कांटा है। इसको द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने से किस कौरव महारथी ने रोककर पीछे हटा दिया ॥७२-७३॥

एते चाऽन्ये च वहवो येषामर्थाय सञ्जय ।
त्यक्तारः संयुगे प्राणान्कि तेषामजितं युधि ॥७४॥

हे सञ्जय ! इस प्रकार वहुत से महारथी हैं, जो पाण्डवों के पक्ष में उनकी विजय के चाहने वाले हैं। ये पाण्डवों के निमित्त प्राणों को भी छोड़ने को उद्यत हैं, फिर इनको रण में कौन अजेय हो सकता है ॥७४॥

येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥७५॥

जिन पाण्डवों का पुरुषोत्तम शार्ङ्गधनुषधारी, श्रीकृष्ण सहायक और हितकारी हैं उन पाण्डवों का रण में कौन कैसे पराजय कर सकता है ॥७५॥

लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः ।
नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥७६॥

जो श्रीकृष्ण, लोकों में पूज्य, सनातन लोकों के स्वामी, नारायण, दिव्य, दिव्यरूपधारी, प्रभु और पाण्डवों के रण में सहायक हैं, फिर पाण्डवों का पराजय कैसे हो सकता है ॥७६॥

यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः।
तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ।७७।

मनीषी लोग, श्रीकृष्ण के दिव्य कर्मों का गान करते रहते हैं। मैं भी अपनी आत्मा की शान्ति के लिए भक्ति के साथ उनके ही गुणों का कीर्तन करूंगा ॥७७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्याय ॥१०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेक पर्व में धृतराष्ट्र के कथन का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

ग्यारहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय ।
कृतवान्यानि गोविन्दो यथा नाऽन्यः पुमान्क्वचित् ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुम अब प्रथम, वसुदेव-पुत्र श्री कृष्ण के दिव्य कर्मों को सुनो-जिनको जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण ने किया है तथा अन्य कोई भी पुरुष जिनको नहीं कर सकता है।

संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना ।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु सञ्जय ॥२॥

हे सञ्जय ! गोपों के कुल में अपने पालन के समय में ही जिन महावीर ने बचपन में ही अपनी भुजाओं का बल तीनों लोकों में विख्यात कर दिया था ॥२॥

उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे ।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥३॥

श्रीकृष्ण उच्चैःश्रवा अश्व के तुल्य बलशाली और वायु के तुल्य वेगशाली हैं। इन्होंने ही अश्वरूपधारी असुर का यमुनातट पर वध किया है ॥३॥

दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम् ।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ॥४॥

एक वृषभरूपधारी राक्षस गायों की मृत्यु रूप में उपस्थित हुआ श्रीकृष्ण ने इस घोर कर्म करनेवाले राक्षस को बचपन में ही अपनी भुजा के आश्रय से मार गिराया ॥४॥

प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् ।
मुरं चाऽन्तकसङ्काशमवधीत्पुष्करेक्षणः ॥५॥

कमल के तुल्य नेत्रधारी श्रीकृष्ण ने प्रलम्बासुर, नरकासुर, जम्भासुर, पीठासुर, मुर आदि महासुरों को मारकर यमधाम पहुंचा दिया। ये राक्षस, काल के तुल्य महाभयङ्कर थे ॥५॥

तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः ।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥६॥

जरासन्ध से सुरक्षित कंस बड़ा ही तेजस्वी था, श्रीकृष्ण ने अपना पराक्रम दिखाकर सेनासहित उसे रण में मार डाला ॥६॥

सुनामा रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः ।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥७॥

बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनाऽमित्रघातिना ।
तरस्वो समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥८॥

रण में अत्यन्तपराक्रमी, बहुत सी अक्षौहिणी सेना का स्वामी सुनामा नामक असुर, भोजराज कंस का मँझला बड़ा वीर्यवान् भ्राता था। शत्रुघाती श्रीकृष्णने अपने भ्राता बलदेवको साथ लेकर इस वेगधारी असुर को सेनासहित नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यह शूरसेन देश का राजा था ॥७-८॥

दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः ।
आराधितः सदारेण स चाऽस्मै प्रददौ वरान् ॥९॥

श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कोप करने वाले ब्रह्मर्षि दुर्वासा की अपनी भार्या के साथ बड़ी ही सेवा की। उसने इनको कई वर-प्रदान किए।

तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे ।
निर्जित्य पृथिवीपालानावहत्पुष्करेक्षणः ॥१०॥

कमल नेत्र वीर श्रीकृष्ण ने स्वयम्वर में गान्धारराज की कन्या से विवाह किया और वहां पर सारे राजाओं को जीत लिया

अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव ।
रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥११॥

विवाह के रथ में जुते हुए, उत्तम जाति में उत्पन्न, अश्वों को प्रतोद (चाबुक) से आहत करने के तुल्य श्रीकृष्ण ने इन सब राजाओं को विक्षत (जख्मी) कर दिया ॥११॥

जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् ॥१२॥

महाबाहु जरासन्ध को जनार्दन कृष्ण ने बड़े भारी उपाय द्वारा मरवा डाला। इसके पास भी विशाल अक्षौहिणी सेना थी।

चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
अर्घे विवदमानं च जघान पशुवत्तदा ॥१३॥

राजाओं के संघ का अधिपति बने हुए, पराक्रमी चेदिराज, शिशुपाल को राजसूय यज्ञ में प्रथम पूजा का विरोध करने पर पशु के समान मार गिराया ॥१३॥

सौभं दैत्यपुरं स्वस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् ।
समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥१४॥

सौभ नामक आकाशचारी एक दैत्य नगर बड़ा ही दुरासद था, जिसकी शाल्वराज रक्षा करता रहता था। श्रीकृष्ण ने अपना पराक्रम दिखाकर उसे भी समुद्र में गिरा दिया ॥१४॥

अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च मागधान्काशिकोसलान् ।
वात्स्यगार्ग्यकरूषांश्च पौण्ड्रांश्चाऽप्यजयद्रणे ॥१५॥

श्रीकृष्ण ने रणमें अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, मागध, काशी, कोसल वात्स्य, गार्ग्य, करूष, पौण्ड्र आदि देशोंके वीरों को जीत लिया ॥१५॥

आवन्त्यान्दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयान्दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान्पिशाचांश्च समुद्गलान् ॥१६॥

काम्बोजान्वाटधानांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च सञ्जय ।
त्रिगर्त्तान्मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥१७॥
नानादिग्भ्यश्च सम्प्राप्तान्स्वशांश्चैव शकांस्तथा ।
जितवान्पुण्डरीकाक्षो यवनं च सहानुगम् ॥१८॥

हे सञ्जय ! आवन्त्य, दाक्षिणात्य, पर्वतदेशोद्भव, दशेरक, काश्मीरक, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, वाटधान, चोल, पाण्ड्य, त्रिगर्त, मालव, दुर्जय, दरद तथा अनेक दिशाओं से आये हुए खश, शक और सेना सहित यवनों को श्रीकृष्ण ने जीत लिया है।

प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिषेवितम् ।
जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥१६॥

जल-जन्तुओं से भरे हुए जलके भीतर मकरावास में रहने वाले वरुणदेव को जल में प्रविष्ट होकर श्रीकृष्णने रण में जीत रखा है ॥१६॥

युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् ।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् ॥२०॥

पातालतलवासी पञ्चजन दैत्य को युद्ध में मारकर हृषीकेश श्रीकृष्ण ने दिव्य पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को प्राप्त किया ॥२०॥

खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम् ।
आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥२१॥

महाबली श्रीकृष्ण ने खाण्डववन में अर्जुन को साथ लेकर अग्नि को तृप्त किया और उनसे ही दुर्धर्ष आग्नेयास्त्र को अच्छी तरह प्राप्त किया ॥२१॥

वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥२२॥

महावीर, श्री कृष्ण, गरुड़ पर चढ़ कर और इन्द्र की नगरी अमरावती को भयभीत बनाकर इन्द्र भवन से पारिजात नामक कल्पवृक्ष को ले आए ॥२२॥

तच्च मर्षितवाञ्छक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
राज्ञां चाप्यजितं कश्चित्कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥२३॥

इन्द्र, श्रीकृष्ण के पराक्रम को अच्छी तरह जानते हैं, इससे उसने सब कुछ सह लिया। हमने तो आज तक सुना नहीं, कि जो राजा श्रीकृष्ण से लड़ने आया और वह पराजित न हो सका।

यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय ।
कृतवान्पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहाऽर्हति ॥२४॥

हे सञ्जय ! मेरी सभा में कमलनयन श्रीकृष्ण ने जो आश्चर्य की बात (चीरवर्धन) कर दिखाई, उसे अन्य कौन मनुष्य कर सकता है ॥२४॥

यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम्।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चाऽऽगमम् ॥२५॥

मैं ने उस समय भक्ति के कारण बड़ी प्रसन्नता से वैभवशाली श्रीकृष्ण के दर्शन किये थे। वह सब कुछ मुझे आज भी प्रत्यक्ष सा दिखाई दे रहा है ॥२५॥

नाऽन्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः ।
कर्मणा शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य सञ्जय ॥२६॥

हे सञ्जय ! इन पराक्रमशील, बुद्धीयुक्त, हृषीकेश श्रीकृष्ण के कर्मों की गणना नहीं की जा सकती है ॥२६॥

तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
अगावहोऽनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥२७॥
उल्मुको निशठश्चैव झिल्ली बभ्रुश्च वीर्यवान् ।
पृथुश्च विपृथुश्चैव शमीकोऽथाऽरिमेजयः ॥२८॥
एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
कथञ्चित्पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥२९॥
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना ।
ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥३०॥

गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अजावह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, पराक्रमी झिल्ली और बभ्रु पृथु, विपृथु, शमीक, अरिमेजय, आदि यदुवीर तथा अन्य अन्य प्रहारमें कुशल बलवान वृष्णिवीर, पाण्डव सेना में सम्मिलित होकर युद्ध करने लगें और वृष्णिवीर महात्मा श्रीकृष्ण, इनको निमन्त्रित करलें

तो कौरवों की सारी विजय संशय में पड़ जावे-इसमें सन्देह नहीं है; मेरा तो यह निश्चय मत है ॥२७-३०॥

नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥३१॥

दश सहस्र हाथियों के बल से युक्त, कैलास पर्वत के तुल्य उच्च कायधारी, वीर, वनमाली, हलधर बलराम भी, तो उधर ही रहेंगे; जिधर जनार्दन श्रीकृष्ण होंगे ॥३१॥

यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः ।
अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय सञ्जय ॥३२॥

द्विजातिगण, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण को सब के पिता कहते हैं। हे सञ्जय ! क्या वे भी कभी पाण्डवों के निमित्त युद्ध करेंगे ॥३२॥

स यदा तात सन्नह्येत्पाण्डवार्थाय सञ्जय ।
न तदा प्रतिसंयोद्धा भविता तत्र कश्चन ॥३३॥

हे तात ! सञ्जय ! जब श्रीकृष्ण पाण्डवों की विजय के लिए कवच पहन कर युद्ध में प्रवृत्त होंगे-तो उस समय हमारी ओर कोई भी वीर, उनका सामना करने में समर्थ नहीं हो सकेगा ॥३३॥

यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम पाण्डवान् ।
वार्ष्णेयोऽर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम् ॥३४॥

यदि सारे कौरवो ने मिलकर पाण्डवों को जीत भी लिया-तो अन्त में वृष्णिवीर श्रीकृष्ण, उनके निमित्त सब प्रकार से उत्तम शस्त्र ग्रहण करेंगे ॥३४॥

ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन्रणे ।
कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात्स मेदिनीम् ॥३५॥

नरश्रेष्ठ, महाबाहु श्रीकृष्ण, रण में सारे राजाओं को मार कर कुन्ती के लिए सारी भूमि प्रदान कर देंगे ॥३५॥

यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ॥३६॥

जिसका सारथि कृष्ण, युद्ध करने वाला वीर अर्जुन हो, उस महारथी (युधिष्ठिर) का रण में कौन रथी सामना कर सकता है॥

न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः ।
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्त्तत ॥३७॥

मुझे तो किसी भी उपाय से कौरवों की विजय की आशा नहीं है। अब तुम मुझे यह बताओ-कि युद्ध कैसे २ हुआ ॥३७॥

अर्जुनः केशवस्याऽऽत्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः ।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ॥३८॥

अजुन श्रीकृष्ण की और श्रीकृष्ण अर्जुन की आत्मा है। अर्जुन सदा विजय प्राप्त करता है और श्रीकृष्ण की सर्वत्र चिर-स्थायी कीर्ति छाई हुई है ॥३८॥

सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः ।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ॥३९॥

सारे संसार में अर्जुन, सब का जीतने वाला है और श्रीकृष्ण में प्रधान २ बहुत से अगणित गुण हैं ॥३९॥

मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह केशवम् ।
मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥४०॥

दुर्योधन तो मोह से संसार के स्वामी श्रीकृष्ण को जानता नहीं है। उसको यह मोह दैवयोग से प्राप्त हुआ है, जिससे यह मृत्युपाश से बँध गया है ॥४०॥

न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् ।
पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ॥४१॥

यह दुर्योधन दशार्ह देशोत्पन्न श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन को नहीं जानता है, कि ये दोनों पूर्वकाल के देवता महात्मा नर-नारायण ऋषि हैं ॥४१॥

एकात्मानौ द्विधा भूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि ।
मनसाऽपि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥४२॥
नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः ।

इनकी एक आत्मा है, परन्तु ये मनुष्यों को पृथक् २ दिखाई देते हैं। ये दोनों यशस्वी इतने दुर्धर्ष हैं, कि कौरवसेना को इच्छा करते ही नाश कर सकते हैं, परन्तु मनुष्यचरित करने से ऐसा नहीं कर रहे हैं ॥४२॥

युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ॥४३॥
भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः ।

नह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥४४॥
न क्रियाभिर्न चाऽस्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते ।

हे तात ! भीष्म और महावीर द्रोण का वध होना, युग का उलट पलट हो जाना और त्रिलोकी का मोहन करने वाला है हे वीर ! ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, यज्ञक्रिया और अस्त्र द्वारा कोई भी मृत्यु से नहीं बच सकता है ॥४४॥

लोकसम्भावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥४५॥
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि सञ्जय ।

हे सञ्जय ! लोक में प्रतिष्ठा पाये हुए, अस्त्र विद्या में कुशल भीष्म और द्रोण युद्धदुर्मद वीर थे । उनकी मृत्यु सुनकर भी जो मैं जीवित हूं, इससे मेरे जीवन को धिक्कार है ॥४५॥

यां तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥४६॥
अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन ह ।

राजा युधिष्ठिरके जिस वैभवको देखकर हम डाह करते रहते थे, आज भीष्म और द्रोण के वध से उसी राज्यश्री को बढ़ती देख रहे हैं ॥४६॥

मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ॥४७॥
पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत ।

हे सूत ! मेरे पाप कर्मों के उदय से कौरवों का यह विनाश उपस्थित हुआ है । पके फलों के गिराने में तो तृण भी वज्र बन जाता है ॥४७॥

अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥४८॥
यस्य कोपान्महात्मानौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।

राजा युधिष्ठिर को यह बहुत अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, जिसके कोप से महावीर भीष्म और द्रोण मार लिए गए हैं ॥४८॥

प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न धर्मो मामकान्प्रति ॥४९॥
क्रूरः सर्वविनाशाय कालोऽसौ नाऽतिवर्त्तते ।

राजा युधिष्ठिर, स्वभाव से ही धर्म की ओर प्रवृत्त है । मेरे पुत्रों पर धर्म का कुछ भी प्रभाव नहीं है। अब सब के विनाश के निमित्त प्रवृत्त हुए इस क्रूरकाल का कौन अतिक्रमण कर सकता है॥

अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ।
अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैवादिति मतिर्मम ॥५०॥

हे तात ! बुद्धिमान् मनुष्य, अपने विषयों को किसी अन्य ही प्रकार से सोचते हैं और देव उनको बिलकुल उलट-पलट कर देता है--यह मैंने अच्छी तरह देख रखा हैं ॥५०॥

तस्मादपरिहार्येऽर्थे सम्प्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥५१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

यह तो अब टलने वाली बात नहीं रही । बड़ा भारी संकट उपस्थित हो गया है । इस दुस्तर अविचारणीय संकट के समय जो युद्ध घटनाएँ हुई हैं; अब तुम उन्हें सुनाते चलो ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोण-पर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में धृतराष्ट्र विलाप का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

बारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
यथा स न्यपतद् द्रोणः सूदितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अब मैं तुम को सारी बातें सुनाता हूं; जो मैंने प्रत्यक्ष देखी है, कि किस तरह द्रोण, रण-भूमि में गिरा दिए और किस तरह पाण्डव और सृञ्जयों ने उसका वध कर डाला।

सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

जब भारद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य को सेनापति बना दिया--तो महारथी द्रोण, सारी सेना के मध्य में तुम्हारे पुत्र दुर्योधन से कहने लगा।

यत्कौरवाणामृषभादापगेयानन्तरम् ।
सैनापत्येन यद्राजन्मामद्य कृतवानसि ॥३॥

सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत।
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि ॥४॥

हे राजन ! कुरुवंशश्रेष्ठ गङ्गा-पुत्र भीष्म के अनन्तर तुमने मुझे सेनापति बनाया है। हे भारत ! मैं उसी पद के अनुसार कर्म करके तुमको उसका उत्तम फल प्रदान करना चाहता हूं। अब तुम आज यह बताओ, कि में सब मैं प्रथम तुम्हारी क्या इच्छा पूर्ण करूं॥

ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः।
सम्मन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥५॥
ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम्।
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहाऽऽनय ॥६॥

अब राजा दुर्योधन ने भी कर्ण और दुःशासन से मन्त्रणा करके विजयी दुर्धर्ष आचार्य द्रोण से कहा कि जो तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करने का मुझे वर देते हो-तो रथियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर को प्रथम जीता ही मेरे पास पकड़ लाओ ॥५-६॥

ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः।
सेनां प्रहर्षयन्सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥

कौरवों के आचार्य द्रोण तुम्हारे पुत्र द्रोणाचार्य के ये वचन सुनकर सारी सेना को हर्षित करते हुए ये वचन बोले ॥७॥

धन्यः कुन्तीसुतो राजन्यस्य ग्रहणमिच्छसि।
न वधार्थं सुदुर्धर्ष वरमद्य प्रयाचसे ॥८॥

हे राजन् ! कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर आज धन्य है, जिसको तुम जीता ही पकड़ना चाहते हो । हे महावीर ! तुम उसके वध के निमित्त क्यों वर नहीं मांगते हो ॥८॥

किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य कांक्षसे ।
नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥९॥

हे नर व्याघ्र ! दुर्योधन ! जो तुम राजा युधिष्ठिर के वध की इच्छा नहीं करते-इस में क्या रहस्य है और इस कार्य को मुझ से सम्पादन कराने में तुमने क्यों उचित नहीं समझा ॥९॥

आहोस्विद्धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते ।
यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चाऽऽत्मनः ॥१०॥

क्या धर्मराज का द्वेष करने वाला संसार में कोई है ही नहीं; जो तुम भी उसे जीता ही पकड़ना चाहते और अपने कुल की रक्षा की वाञ्च्छा रखते हो ॥१०॥

अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान् ।
राज्यं सम्प्रति दत्वा च सौभ्रात्रं कर्त्तुमिच्छसि ॥११॥

हे भरतश्रेष्ठ ! क्या तुम प्रथम पाण्डवों को युद्ध में जीतकर फिर उनको उनका राज्य-प्रदान करके भ्रातृसम्बन्ध की स्थापना की अभिलाषा रखते हो ॥११॥

धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातं चाऽस्य धीमतः ।
अजातशत्रुता सत्या तस्य यत्स्निह्यते भवान् ॥१२॥

हे राजन् ! मैं तो राजा युधिष्ठिर को धन्य समझता हूं और इस महात्मा का जन्म भी सफल मानता हूं। आज उसकी अजात शत्रुता सिद्ध हो गई-जो तुम भी उससे स्नेह करने लगे ॥१२॥

द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत।
सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥

हे भारत ! द्रोणाचार्य के इतना कहने पर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के हृदय में जो भाव सदा छुपा रहता था, वह अचानक निकल पड़ा ॥१३॥

नाऽऽकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि ।
तस्मात्तव सुतो राजन्प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

हे राजन् ! बृहस्पति के समान नीति-कुशल पुरुष भी अपने भाव को छुपाने में सफल नहीं होते हैं, इसी से तुम्हारा पुत्र भी खुल गया और प्रसन्नता-पूर्वक यह वचन बोला ॥१४॥

वधे कुन्तिसुतस्याऽऽजौ नाऽऽचार्य विजयो मम ।
हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान्हि नो ध्रुवम् ॥१५॥
न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि ।
य एव तेषां शेषः स्यात्स एवाऽस्मान्न शेषयेत् ॥१६॥

हे आचार्य ! कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर के रण में वध से मेरी विजय नहीं है। यदि राजा युधिष्ठिर को मार लिया-तो शेष पाण्डव हम सब को निश्चय मार लेंगे और सारे पाण्डवों को एक दम

रण में मार लेना देवों को भी अशक्य है। इनमें से जो बचा रहेगा-वही हम सब के मारने में पर्याप्त है॥१५-१६॥

सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते।
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥१७॥

सत्य-प्रतिज्ञाधारी राजा युधिष्ठिर को जब तुम जीते ही पकड़ लाओगे-तो मैं फिर उसे जुआ में जीत लूंगा। वह फिर वन को चल देगा और अन्य सारे पाण्डव फिर उसके पीछे २ वन में चले जावेंगे ॥१७॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति।
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥१८॥

इस प्रकार दीर्घकाल के लिए मेरी विजय हो जावेगी-यह निश्चित है। यही कारण है, कि मैं किसी भी दशा में राजा युधिष्ठिर का वध नहीं चाहता हूं ॥१८॥

तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित्।
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥१९॥

राजा दुर्योधन का कुटिल अभिप्राय जानकर नीतितत्व के जानने वाले बुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने कुछ सोच विचार कर बन्धन (शर्त) के साथ उसे यह वरदान दिया ॥१९॥

द्रोण उवाच—

न चेद्युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि।
मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥२०॥

न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि ।
प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥२१॥

द्रोण बोले—हे राजन् ! यदि आज रण में राजा युधिष्ठिर की रक्षा पर वीर अर्जुन नहीं हुए, तो तुम वश समझ लो कि मैंने राजा युधिष्ठिर को पकड़ ही लिया है, क्योंकि अर्जुन को इन्द्र, देव और असुर कोई भी नहीं जीत सकते हैं और न उसका सामना कर सकते हैं और न मैं ही उसके जीतने में समर्थ हूं ॥२०-२१॥

असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चाऽस्त्रकर्मणि ।
तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह ॥२२॥

वह मेरा शिष्य अवश्य है और उसने प्रारम्भ से ही मुझ से अस्त्र विद्या सीखी है, परन्तु वह युवा है। उसने न्याय-पक्ष का अवलम्ब लेकर मृत्यु या विजय इनमेंसे एकका निश्चय कर लिया है।

अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान् ।
अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नाऽमर्षयाम्यहम् ॥२३॥

मुझसे अस्त्रविद्या सीखने के अनन्तर भी उसने इन्द्र और रुद्र से भी अस्त्रविद्या सीखी है। हे राजन् ! वह आवेश में भरा हुआ है अब मैं इस समय उसका सामना नहीं कर सकता हूँ ॥२३॥

स चाऽपक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते ।
अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥२४॥

अब तुम जिस उपाय से हो सके—उसे युद्ध से दूर खैंच ले जाओ। यदि अर्जुन को दूर खैंच ले गए—तो राजा युधिष्ठिर को जीता ही समझो ॥२४॥

ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ ।
एतेन चाऽप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥२५॥

हे पुरुषर्षभ! यह तुम्हारा कथन सत्य है, कि धर्मराज के पकड़ने में ही विजय है, वध में नहीं है। धर्मराज का पकड़ (कैद कर) लेना इसी उपाय से हो सकता है ॥२५॥

अहं गृहीत्वा राजनं सत्यधर्मपरायणम् ।
आनयिष्यामि ते राजन्वशमद्य न संशयः ॥२६॥

हे राजन्! सत्यधर्मपरायण राजा युधिष्ठिर को पकड़ कर आज मैं तुम्हारे अधीन कर दूंगा—इसमें सन्देह नहीं है ॥२६॥

यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥२७॥

जो नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र, धनञ्जय अर्जुन धर्मराज के समीप से दूर चला गया और धर्मराज मेरे सामने आपहुंचा—तो अवश्य उसे पकड़ दूंगा ॥२७॥

फाल्गुनस्य समीपे तु नहि शक्यो युधिष्ठिरः ।
ग्रहीतुं समरे राजन्सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥२८॥

हे राजन्! अर्जुन के समीप रहने पर तो राजा युधिष्ठिर के इन्द्र के साथ देव या असुर कोई भी पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥२८॥

सञ्जय उवाच—

सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥२९॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब द्रोण ने कुछ बन्धनों के साथ राजा युधिष्ठिर के पकड़ लेने की प्रतिज्ञा की—तो तुम्हारे मूर्ख पुत्रों ने युधिष्ठिर को पकड़ा हुआ ही समझ लिया ॥२९॥

पाण्डवेयेषु साक्षेपं द्रोणं जानाति ते सुतः ।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः ॥३०॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, द्रोणाचार्य को पाण्डवों का पक्ष (लिहाज़) करने वाला समझता था, इससे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने के विचार से द्रोण की इस प्रतिज्ञा को फैला दिया ॥३०॥

ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत् ।
सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितमरिन्दम ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

हे अरिमर्दन ! राजा दुर्योधन ने स्वयं ही धर्मराज युधिष्ठिर के पकड़ने की इस घोषणा को अपनी सेना के सारे पड़ावों पर सुघोषित करा दिया ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में द्रोण की प्रतिज्ञा का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तेरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सान्तरे तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम् ॥१॥
सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाहुशब्दांश्च कृत्स्नशः ।

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार बन्धन (शर्त) के साथ द्रोणाचार्य की धर्मराज युधिष्ठिर के पकड़ने की प्रतिज्ञा सुनकर सारे कुरुसैनिक सिंहनाद करके अपनी भुजा और ताल फटकारने लगे ॥१॥

तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत ॥२॥
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् ।

हे भारत ! धर्मराज युधिष्ठिर ने यह सब कुछ द्रोणाचार्य के उद्योग को अपने आप्त दूतों द्वारा ज्यों का त्यों जान लिया ॥२॥

ततः सर्वान्समानाय्य भ्रातॄनन्यांश्च सर्वशः ॥३॥
अब्रवीद्धर्मराजस्तु धनञ्जयमिदं वचः ।

अब धर्मराज भी अपने सारे भाई और अन्य सहायक राजाओं को बुलाया और सबके सन्मुख धनञ्जय अर्जुन से यह वचन कहा ॥३॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याऽद्य चिकीर्षितम् ॥४॥
यथा तन्न भवेत्सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् ।

हे पुरुषश्रेष्ठ ! धनञ्जय ! तुमने द्रोणाचार्य के विचार को सुन लिया है। अब वह जिस तरह पूरा न हो सके—तुम लोग, उसी नीति का अवलम्बन करो ॥४॥

सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनाऽमित्रकर्षिणा ॥५॥

तच्चाऽन्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् ।

हे महाधनुर्धर ! शत्रु विजयी द्रोणाचार्य ने इस प्रतिज्ञा में एक बन्धन रखा है और वह बन्धन तुम पर ही निर्भर है ॥५॥

स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥६॥

यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ।

हे महाबाहो ! आज तुमको मेरे पास रह कर ही युद्ध करना चाहिए, जिससे आचार्य द्रोण द्वारा दुर्योधन का अभीष्ट सिद्ध न हो सके ॥६॥

अर्जुन उवाच—

यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन ॥७॥

तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः।

अर्जुन ने कहा—हे राजन् ! मैं अपने हाथ से आचार्य द्रोण का वध नहीं करना चाहता हूं और न तुमको ही रण में अकेला छोड़ सकता हूं ॥७॥

अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥८॥

प्रतीपो नाऽहमाचार्ये भवेयं वै कथञ्चन ।

हे धर्मराज ! मैं इस युद्ध में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकता हूं, परन्तु आचार्य द्रोण के विरुद्ध होकर उनका वध नहीं कर सकता ॥८॥

त्वां निगृह्याऽऽहवे राज्यं धार्त्तराष्ट्रोऽयमिच्छति ॥९॥
न स तं जीवलोकेऽस्मिन्कामं प्राप्येत्कथञ्चन ।

जो धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन, तुमको रण में पकड़ कर अपना राज निष्कण्टक प्राप्त करना चाहता है, वह इस संसार में जीवन-पर्यन्त अपनी इस कामना को पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥९॥

प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ॥१०॥
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ।

नक्षत्रों के सहित अन्तरिक्ष लोक गिर सकता है। पृथिवी के टुकड़े २ हो सकते हैं, परन्तु मेरे जीते रहते तुम्हें द्रोणाचार्य कभी पकड़ने में सफल नहीं हो सकते हैं ॥१०॥

यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ॥११॥
विष्णुर्वा सहितो देवैर्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे ।

यदि इस युद्ध में स्वयं इन्द्र या देवों के साथ विष्णु भी दुर्योधन की सहायता करें—तो भी वे तुमको इस रण में नहीं पकड़ सकते हैं ॥११॥

मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ॥१२॥
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात्सर्वशस्त्राभृतामपि ।

हे राजेन्द्र ! मेरे जीवित रहने तक तुमको इस प्रकार का भय द्रोणाचार्य या अन्य किसी शस्त्रधारी वीर से नहीं करना चाहिए।

अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम् ॥१३॥
न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम् ।
न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥१४॥

हे राजेन्द्र ! मैं एक अन्य निश्चल प्रतिज्ञा करता हूं, क्योंकि मेरी कभी कोई प्रतिज्ञा झूंठी हो गई हो या मेरा कभी पराजय हुआ हो--इसका मुझे कोई स्मरण ही नहीं आता। मैंने कभी प्रतिज्ञा करके उसे उलटा नहीं किया है ॥१३-१४॥

सञ्जय उवाच—

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥१५॥
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक्सुभैरवः ॥१६॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! अर्जुन के इतना कहने पर पाण्डवों के शिबिर में शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, आनक आदि बाजे बड़े जोर से बजने लगे। पाण्डववीर बड़ा भारी सिंहनाद करने लगे और धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) और करतलध्वनि से भयानकता के साथ आकाश गूंज उठा ॥१५-१६॥

श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः ।
त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥१७॥

महाओजस्वी धर्मराज की सेना में शङ्खध्वनि सुनकर तुम्हारी सेना में भी बाजे बजने लगे ॥१७॥

ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत।
शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे ॥१८॥

हे भारत! इस समय तुम्हारी और पाण्डवों की सेना व्यूह रचना करने लगी। व्यूह रचना के अनन्तर ये धीरे २ युद्ध की अभिलाषा से एक दूसरे के सन्मुख हुए ॥१८॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि ॥१६॥

इसके अनन्तर महाघोर लोमहर्षण युद्ध का, कौरव और पाण्डव तथा द्रोण और पाञ्चाल वीरों में आरम्भ हुआ ॥१६॥

यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने।
न शेकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥२०॥

सृञ्जयों ने द्रोणाचार्य की सेना के विध्वंस उड़ा देने की बहुत ही चेष्टा की, परन्तु आचार्य द्रोण से सुरक्षित होने के कारण वे उसका कुछ भी नाश नहीं कर सके ॥२०॥

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः।
न शेकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥२१॥

इसी तरह तुम्हारे भी प्रहार करने में कुशल, उत्तम २ महारथी, पाण्डवों की सेना का विनाश नहीं कर सके, क्योंकि वह भी किरीट धारी अर्जुन द्वारा सुरक्षित थी ॥२१॥

आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्षमाणे परस्परम् ।
सम्प्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते ॥२२॥

अपने २ महारथी द्वारा सुरक्षित हुई दोनों सेनाएं इस तरह एक स्थान पर खड़ी रहीं-जैसे-रात में पुष्पों से खिली हुई वन की दो पंक्ति सुशोभित होती हैं ॥२२॥

ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता ।
वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत्पृतनामुखे ॥२३॥

हे राजन् ! अब सूर्य की तरह देदीप्यमान, सुवर्णरथधारी, आचार्य द्रोण, अपने रथ के द्वारा पाण्डवों की सेना को पीड़ित करते हुए रणभूमि में विचरने लगे ॥२३॥

तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः ॥२४॥

रण में शीघ्रता के साथ विचरण करने वाले, युद्ध के लिए उद्यत द्रोणाचार्य को देखकर पाण्डववीर और पाञ्चाल, अकेले द्रोण को अनेक महारथियों के तुल्य समझने लगे ।.२४॥

तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम् ।
त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम् ॥२५॥

हे महाराज ! द्रोणाचार्य के छोड़े हुए अनेक घोर बाण, पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर की सेना को पीड़ित करते हुए सब दिशाओं में अच्छी तरह घूमने लगे ॥२५॥

मध्यन्दिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः ।
यथा दृश्येत घर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥२६॥

अपनी सहस्रों किरणों से व्याप्त, सूर्य, मध्यान्हकाल में जैसा प्रतीत होता है, उसी तरह आचार्य द्रोण भी प्रचण्ड दिखाई दे रहे थे ॥२६॥

न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत ।
वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥२७॥

भारत ! इस समय पाण्डवों की सेना में कोई ऐसा महारथी नहीं था, जो इन्द्र को दानवों की भांति आचार्य द्रोण के देखने में भी समर्थ हो सके ॥२७॥

मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥२८॥

प्रतापी भरद्वाज वंशोद्भव, द्रोणाचार्य, इस तरह पाण्डव सेना को मोहित करके धृष्टद्युम्न की पाञ्चालसेना को बुरी तरह तीक्ष्ण बाणों से विचलित करने लगे ॥२८॥

स दिशः सर्वतो रुध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः ।
पार्षतो यत्र तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृत-युधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

आचार्य द्रोण ने सारी दिशाओं को रोककर और सीधे जाने वाले अपने बाणों से आकाश को व्याप्त करके जहां पर पर्षत कुलोद्भव धृष्टद्युम्न थे, वहीं पर वे पाण्डवसेना का विनाश करने लगे ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर के आश्वासन का तेरहवां अध्याय पूरा हुआ

चौदहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः स पाण्डवानीके जनयन्सुमहद्भयम् ।
व्यचरत्पृतनां द्रोणो दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! इसके अनन्तर महान भय का सञ्चार करते हुए, आचार्य द्रोण, पाण्डवों की सेना में सेना को पीड़ित करते हुए इस तरह बढ़ने लगे, जैसे-तृण समूह को दग्ध करता हुआ अग्नि फैलता है ॥१॥

निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥२॥

साक्षात् अग्नि की भांति सेना को दग्ध करते हुए सुवर्ण के रथ के धारण करने वाले क्रोध-पूर्ण आचार्य द्रोण को देखकर सारे सृञ्जय कांपने लगे ॥२॥

सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याऽऽशुकारिणः ।
ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥३॥

लगातार बड़ी शीघ्रता से रण में धनुष की प्रत्यञ्चा से ऐसा घोर शब्द सुनाई देता था-जैसे कहीं वज्र टूट पड़ा हो ॥३॥

रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान्पदातिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः संमृद्नन्ति स्म सायकाः ॥४॥

हाथ की पटुता से छोड़े हुए भीषण बाण, रथी, अश्वारोही हाथी, अश्व और पैदलों को चीरते चले जाते हैं ॥४॥

नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।
अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेषामावहद्भयम् ॥५॥

ग्रीष्म काल के अन्त में वर्षा ऋतु में उमड़ते और गर्जते हुए मेघ से ओले बरसाने की तरह द्रोण बाणवर्षा करने लगे-जिससे शत्रुओं में बड़ा ही भय छा गया ॥५॥

विचरन्स तदा राजन्सेनां संक्षोभयन्प्रभुः ।
वर्धयामास सन्त्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥६॥

हे राजन् ! शक्तिशाली आचार्य द्रोण, सेना में घूम २ कर उसे संक्षुभित करने लगे। यह असुरों की भांति शत्रुओं के त्रास को बढ़ाने लगे ॥६॥

तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
अभद्रथाम्बुदे चाऽस्मिन्दृश्यते स्म पुनः पुनः ॥७॥

आचार्य द्रोण का सुवर्णोज्ज्वल धनुष, बादलों में बिजली की भांति रथरूपी बादल में बार २ चमचमाने लगा ॥७॥

स वीरः सत्यवान्प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः ।
युगान्तकालवद्घोरां रौद्रां प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥८॥

इस वीर सत्य प्रतिज्ञाधारी, बुद्धिमान्, धर्मशील द्रोणाचार्य ने प्रलयकालीन भीषण, घोर रक्त की नदी बहा दी ॥८॥

अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम् ॥९॥
शोणितोदां रथावर्त्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ।
कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥१०॥
मेदोमज्जास्थिसिकतामुष्णीषचयफेनिलाम् ।
संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥११॥
नरनागाश्वकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् ।
शरीरदारुसङ्घट्टां रथकच्छपसंकुलाम् ॥१२॥
उत्तमाङ्गैः पङ्कजिनीं निस्त्रिंशझषसंकुलाम् ।
रथनागह्रदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥१३॥
महारथशतावर्त्तां भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥१४॥

शरीरशतसम्बाधां गृध्रकङ्कनिषेविताम् ।
महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसादनम् ॥१५॥

यह नदी क्रोध रूपी वेग से सम्पन्न, मांसभोजी जन्तु से परिपूर्ण, सैनिक रूपी प्रवाहवाली ध्वजा रूपी वृत्तों को उखाड़ती हुई, रक्तके जल से पूर्ण रथों के आवर्तों से सम्पन्न, हाथी, अश्व, आदि के तटों वाली; कवचों की नौका से समन्वित, माँस की कीचड़ वाली, मेद, मज्जा, हड्डीरूपीबालुका से युक्त, उष्णीषों (पगड़ियों) रूपी फेनों से सुशोभित, संग्राम रूपी बादलों वाली, प्रास आदि शस्त्रों से मत्स्य धारिणी, नर, हाथी और अश्वों रूपी जल जन्तुओं से व्याप्त, बाण वेग के प्रवाह सम्पन्न, मृतकों के शरीर से शुष्क काष्ठों वाली, रथरूपी कच्छपों से व्याप्त, वीरों के मस्तकों से कमलों वाली, खड्गरूपी मीनों से सुशोभित, रथ, हाथीरूपी बीच २ में तालाबों से सम्पन्न, नाना आभूषणों से आभूषण वाली, बड़े २ वीरों से आवर्तधारिणी पृथिवी की रेणुरूपी लहरों वाली थी। यह बड़े बल विक्रमों से युक्त वीरों से भी डरते २ पार की जाती थी,। यह सैंकड़ों शरीरों से भरी हुई, गीध और कङ्क आदि पक्षियों से निषेवित थी, जो सहस्रों की संख्या में महारथियों को यमराज के घर ले जा रही थी॥६-१५॥

शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिषेविताम् ।
छिन्नछत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥१६॥
चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् ।
बकगृध्रसृगालानां घोरसङ्घैर्निषेविताम् ॥१७॥

यह नदी, शूलरूपी व्यालों (सर्पों) से भरी हुई, अनेक प्राणी-रूपी जलपक्षियों से सुशोभित, मुकुटरूपी अन्य पक्षियों से युक्त, रथचक्ररूपी कछुओं वाली, गदारूपी मकरों से समन्वित, बाण रूपी क्षुद्र मछलियों वाली, बक, गीध और शृगालों के घोर समूह से भयानक थी ॥१६-१७॥

निहतान्प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे ।
वहन्ती पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥१८॥

हे राजसत्तम ! महाबली द्रोणद्वारा रण में मारे हुए सैंकड़ों प्राणियों को यह नदी पितृलोक ले जा रही थी ॥१८॥

शरीरशतसम्बाधां केशशैवलशाद्वलाम् ।
नदीं प्रावर्त्तयद्राजन्भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥१६॥

हे राजन् ! सैंकड़ों शरीरों से भरी हुई, केशरूपी शैवालों से सम्पन्न, यह नदी थी, जिसको देखकर कायरों को बहुत ही भय हो जाता था ॥१६॥

तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥२०॥

सारी सेनाओं की टुकड़ियों और महारथियों को ललकार कर घूमने वाले द्रोणाचार्य धर्मराज आदि महारथियों ने सब ओर से आक्रमण किया ॥२०॥

तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः ।
सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तदभूल्लोमहर्षणम् ॥२१॥

उन पाण्डवों के महारथियों के आक्रमण को देखकर तुम्हारे दृढ़पराक्रमी वीरों ने सब ओर से सामना किया, जो अत्यन्त लोमहर्षण दृश्य था ॥२१॥

शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥२२॥

सैंकड़ों माया करनेवाले शकुनि ने सहदेव पर आक्रमण किया । उसने सारथि, रथ और ध्वजाको तीक्ष्ण बाणोंसे बींध डाला

तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि ।
नाऽतिक्रुद्धः शरैश्छित्वा षष्ट्या विव्याध सौबलम् ॥

माद्री-पुत्र सहदेव ने भी उसकी ध्वजा, धनुष, सारथि और अश्वों को साधारण क्रोध में भर कर ही काट डाला और साठ बाण मार कर सुबलपुत्र शकुनि को घायल कर दिया ॥२३॥

सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
स तस्य गदया राजन्रथात्सूतमपातयत् ॥२४॥

हे राजन् ! सुबल-पुत्र शकुनि भी गदा लेकर रथ से कूद पड़ा और उसने उस गदा से सहदेव के सारथि को नीचे गिरा दिया ।

ततस्तौ विरथौ राजन्गदाहस्तौ महाबलौ ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सशृङ्गाविव पर्वतौ ॥२५॥

अब इन दोनों ने ही गदा हाथ में ले ली । शिखरधारी पर्वत की भांति अब ये दोनों वीर, रण में क्रीड़ा करने लगे ॥२५॥

द्रोणः पाञ्चालराजानं विध्वा दशभिराशुगैः ।
बहुभिस्तेन चाऽभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः ॥२६॥

आचार्य द्रोण ने भी पाञ्चालराज को दश बाण मार कर आहत किया। द्रुपद ने क्षतविक्षत होकर भी अपने से अधिक द्रोण को आहत कर दिया ॥२६॥

विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः ।
विध्वा नाऽकम्पयद्वीरस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२७॥

भीमसेन ने बीस तीक्ष्ण बाण मारकर विविंशति को बींध डाला। परन्तु वह वीर कुछ भी विचलित नहीं हुआ, जो बड़ी ही अद्भुत घटना मानी गई ॥२७॥

विविंशतिस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् ॥२८॥

हे महाराज ! विविंशति ने एक दम झपट कर भीमसेन के अश्व धनुष और ध्वजा को छेद डाला, जिससे विविंशति की सारी सेनाओं ने बड़ी प्रशंसा की ॥२८॥

स तन्न ममृषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे ।
ततोऽस्य गदया दान्तान्हयान्सर्वानपातयत् ॥२९॥

वीर भीमसेन से यह शत्रु का पराक्रम नहीं सहा गया; उसने गदा उठाकर इसके उत्तम सारे अश्वों को मार गिराया ॥२९॥

हताश्वात्स रथाद्राजन्गृह्य चर्म महाबलः ।
अभ्यायाद्भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥३०॥

हे राजन् ! जब महाबली विविंशति के अश्व मारे गए-तो वह उस रथ से कूद पड़ा और और ढाल तलवार लेकर एक मस्त हाथी पर दूसरे मदोन्मत्त हाथी की भांति भीमसेन पर झपटा ॥३०॥

शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः ।
विव्याध प्रहसन्बाणैर्लालयन्कोपयन्निव ॥३१॥

मद्राधिपति वीर शल्य ने अपने प्रिय भगिनीपुत्र, नकुल को हँसते २ बाणों से बिद्ध कर दिया—मानो यह लालन करना या उसे कुपित करना था ॥३१॥

तस्याऽश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥३२॥

प्रतापवान् नकुल भी शल्य के अश्व, छत्र, ध्वजा, सारथि और धनुष को रण में गिरा कर बड़े आवेश में शंख बजाने लगा ॥३२॥

धृष्टकेतुः कृपेणाऽस्तांश्छित्वा बहुविधाञ्शरान् ।
कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चाऽस्याऽऽहरत्त्रिभिः ॥

राजा धृष्टकेतु ने भी कृपाचार्य के फैंके हुए बहुत से बाणों को काटकर सत्तर बाणों से उसे क्षत-विक्षत कर दिया और तीन बाण मार कर उसकी ध्वजा काट गिराई ॥३३॥

तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत् ।
विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ॥३४॥

कृपाचार्य ने भी असहिष्णु धृष्टकेतु पर बाणों की झड़ी लगादी, जिससे उसे उसी स्थान पर रोककर अत्यन्त आहत कर दिया ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥३५॥

सात्यकि ने भी कृतवर्मा की छाती में बाण मारकर उसे छेद दिया और फिर मुस्कुराते हुए अन्य सत्तर बाणों से उसे आहत (घायल) किया ॥३५॥

तं भोजः सप्तसप्तत्या विध्वाऽऽशु निशितैः शरैः ।
नाऽकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाऽचलम् ॥३६॥

कृतवर्मा ने भी सतहत्तर तीक्ष्ण बाण मारकर सात्यकि को आहत किया, परन्तु वायु जैसे पर्वत को नहीं हिला सकता-इसी तरह यह शिनिपौत्र सात्यकि को कुछ भी कम्पित नहीं कर सका ॥

सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वाताडयत् ।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ॥३७॥

सेनापति धृष्टद्युम्न ने त्रिगर्तराजसुशर्मा के मर्मों पर बुरी तरह आघात किया। सुशर्मा ने भी तोमर शस्त्र से धृष्टद्युम्न के जत्रु प्रदेश पर प्रहार किया ॥३७॥

वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत्।
सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥३८॥

सूर्यपुत्र कर्ण को रण में विराट ने अपने मत्स्यदेशोत्पन्न वीरों को साथ लेकर रोका-जो बड़ी आश्चर्य की बात थी ॥३८॥

तत्पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् ।
यत्सैन्यं वारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३९॥

सूतपुत्र कर्ण का भी यह दारुण पुरुषार्थ माना गया, जो अकेले ने ही अपने सन्नतपर्ववाले बाणों से विराटराज की सेना को रोके रखा ॥३६॥

द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन सङ्गतः ।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ॥४० ॥

द्रुपदराज भी राजा भगदत्त से भिड़ गए। हे महाराज ! इन दोनों का युद्ध भी उस समय बड़ा ही विचित्र माना गया ॥४०॥

भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः ॥४१॥

पुरुष प्रवीर राजा भगदत्त ने अपने झुकेपर्ववाले बाणों से राजा द्रुपद, सारथि, ध्वजा और रथ को छिन्न भिन्न कर दिया॥

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम् ।
आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥४२॥

इस समय राजा द्रुपद भी क्रोध में भर गए और इन्होंने महारथी राजा भगदत्त के वक्षस्थल में झुके पर्ववाले बाणों से शीघ्रता के साथ प्रहार किया॥४२॥

युद्धं योधवरौ लोके सौमदत्तिशिखण्डिनौ ।
भूतानां त्रासजननं चक्राातेऽस्त्रविशारदौ ॥४३॥

अस्त्र विद्या में कुशल, सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा और शिखण्डी प्रसिद्ध योद्धा हैं, इन्होंका ऐसा भीषण युद्ध हुआ, जिससे समस्त-प्राणियों को भय खड़ा हो गया ॥४३॥

भूरिश्रवा रणे राजन्याज्ञसेनिं महारथम् ।
महता सायकौघेन च्छादयामास वीर्यवान् ॥४४॥

हे राजन् ! वीर्यवान् भूरिश्रवा ने रण में यज्ञसेन के पुत्र महारथी शिखण्डी को बड़े भारी बाणसमूह से ढ़क दिया ॥४४॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते ।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ॥४५॥

हे विशाम्पते ! भारत ! इसके अनन्तर शिखण्डी भी क्रोध में भर गया और इसने नव्वे बाण मार कर भूरिश्रवा को कम्पित कर दिया ॥४५॥

राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुषावुभौ ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ ॥४६॥

हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच और ऋष्यशृङ्ग पुत्र अलम्बुष--ये दोनों ही राक्षस थे, जो बड़े क्रूर कर्म कर दिखाने वाले थे। इन्होंने भी परस्पर विजय की अभिलाषा से बड़ा ही अद्भुत युद्ध किया ॥४६॥

मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम् ।
अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥४७॥

ये दोनों ही सैकड़ों प्रकार की माया रचना जानते थे और बड़े उद्धत थे। य परस्पर छल करने के लिए माया रचकर छुपे २ रणभूमि में विचरने लगे, जिससे वीरों को बड़ा ही विस्मय होता था ॥४७॥

चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चाऽतिभैरवम् ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥४८॥

चेकितान भी अनुविन्द के साथ बड़ी भीषणता के साथ इस तरह भिड़ गए-जैसे देवासुर संग्राम में महाबली बलासुर और इन्द्र भिड़ गए थे ॥४८॥

लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद्भृशम् ।
यथा विष्णुः पुरा राजन्हिरण्याक्षेण संयुगे ॥४९॥

हे राजन्! दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण ने भी धृष्टद्युम्न के पुत्र क्षत्रदेव के साथ बड़ा घमासान युद्ध किया, जैसे-पूर्व काल में हिरण्याक्ष ने विष्णु के साथ किया था ॥४९॥

ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
रथेनाऽभ्यपतद्राजन्सौभद्रं पौरवो नदन् ॥५०॥

हे राजन्! राजा पौरव, सिंहनाद करता हुआ विधि-पूर्वक जोते हुए भागते हुए अश्वों वाले रथ से सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु पर झपटा ॥५०॥

ततोऽभ्ययात्स त्वरितो युद्धाकांक्षी महाबलः ।
तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युररिन्दमः ॥५१॥

युद्ध का अभिलाषी महाबली अभिमन्यु भी बड़े वेग से झपटा और इस अरिन्दम वीर ने उसके साथ बड़ा भीषण संग्राम किया।

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् ।
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥५२॥

पौरव ने भी शरसमूह से अभिन्मयु को पाट दिया। अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने भी इसकी ध्वजा, छत्र और धनुष को काट कर पृथिवी में गिरा दिया ॥५२॥

सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विध्वा सप्तभिराशुगैः।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥५२॥

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने अन्य सात तीक्ष्ण बाण मारकर आहत किया और पांच बाणों से इसने इसके अश्व और सारथि को क्षत-विक्षत कर दिया ॥५३॥

ततः प्रहर्षयन्सेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः।
समादत्ताऽऽर्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ॥५४॥

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने बड़े उच्चस्वर में सिंहनाद करके अपनी सेना को प्रहर्षित किया और इसने एक बाण पौरव के वध के निमित्त धनुष पर चढ़ाया ॥५४॥

तं तु सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम्।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः ॥५५॥

इस तरह भीषण बाण को धनुष पर चढ़ा देखकर हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने दो बाण छोड़कर अभिमन्यु के धनुष और उस बाण को ही काट गिराया ॥५५॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा।
उद्बबर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥५६॥

शत्रुवीरनाशक अभिमन्यु ने इस कटे हुए धनुष को फैंककर चमकीली तलवार और बाणों के रोकने में समर्थ ढालको उठाया

स तेनाऽनेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
भ्रान्तासिना चरन्मार्गान्दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥५७॥

अनेक तारों से सुशोभित उस ढाल और चमकीली तलवार को घुमाता हुआ अभिमन्यु, अपने हाथों का कौशल और पराक्रम दिखाता हुआ युद्धमार्ग (पैंतरों) को दिखलाने लगा ॥५७॥

भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।
चर्म निस्त्रिंशयो राजन्निर्विशेषमदृश्यत ॥५८॥

हे राजन् ! अभिमन्यु द्वारा घुमायी, फिरायी, कम्पायी और उठायी हुई ढाल तथा तलवार का रणभूमि में किसी को भी पृथक् २ आकार तक दिखाई नहीं देता था ॥५८॥

स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन् ।
पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥५९॥

अभिमन्यु गर्जना करता हुआ पौरव के रथ की ईषा (पेटी) को दाबकर रथ में चढ़ गए और रथ पर चढ़कर उन्होंने पौरव के बाल पकड़ लिए ॥५९॥

जघानाऽस्य पदा सूतमसिनापातयद् ध्वजम् ।
विक्षोभ्याऽम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तं नागमिव चाऽक्षिपत् ॥

अभिमन्यु ने लात मार कर इसके सारथि को नीचे गिरा दिया और तलवार से ध्वजा काट गिराई । इसने पौरव पर इस तरह

आक्रमण किया, जैसे-समुद्र को मथ कर गरुड़ ने नागराजपर आक्रमण किया हो ॥६०॥

तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥६१॥

सारे राजाओं ने देखा, कि पौरव के सारे बाल उखड़ गए और उसको अभिमन्यु ने इस तरह गिरा लिया, जैसे सिंहद्वारा वृषभ गिरा लिया गया हो ॥६१॥

तमार्जुनिं वशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
पौरवं पातितं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत जयद्रथः ॥६२॥

अनाथ की तरह खैंचे जाते हुए अभिमन्यु के वश में पड़े हुए रणभूमि में पतित पौरव को देखकर जयद्रथ से नहीं रहा गया।

स बर्हिबर्हावततं किङ्किणीशतजालवत् ।
चर्म चाऽऽदाय खड्गं च नदन्पर्यपतद्रथात् ॥६३॥

वह मयूर पँख से सुशोभित, सैंकड़ों किङ्कणियों के जाल से विभूषित, ढाल और तलवार लेकर गर्जना करता हुआ एकदम रथ से कूद पड़ा ॥६३॥

ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥६४॥

अभिमन्यु ने भी सिन्धुराज जयद्रथ को झपटता देखकर पौरव को छोड़ दिया और रथ से शीघ्रता के साथ कूद कर श्येन पक्षी की तरह जयद्रथ पर आक्रमण किया ॥६४॥

प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्छत्रुभिः सम्प्रचोदितान् ।
चिच्छेद चाऽसिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च ॥६५॥

कृष्ण (अर्जुन) पुत्र, अभिमन्यु शत्रुओं द्वारा छोड़े हुए प्रास, पट्टिश और खड्गों को अपनी करवाल (तलवार) से काट रहे थे और उनके प्रहारों को चर्म (ढाल) पर रोकते थे ॥६५॥

स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाऽथ पुनर्बली ॥६६॥

यह महाबली, अपने विशाल खड्ग और उत्तम ढाल को उठा कर सारी सेनाओं को अपनी उत्तम भुजाओं के बल का प्रदर्शन कर रहा था ॥६६॥

वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ससाराऽभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥६७॥

इसके अनन्तर महावीर अभिमन्यु, हाथी पर सिंह की भांति अपने पिता के अत्यन्त वैरी, वृद्धक्षत्र के पुत्र जयद्रथ पर बड़े वेग से झपटे ॥६७॥

तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
हृष्टवत्सम्प्रजह्राते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥६८॥

ये दोनों खड्ग और दन्तनख शस्त्र लेकर व्याघ्र और केशरी की भाँति परस्पर प्रसन्नता के साथ प्रहार करने लगे ॥६८॥

सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
न तयोरन्तरं कश्चिद्ददर्श नरसिंहयोः ॥६९॥

इन दोनों वीरों के ढाल और तलवार के चलाने, मारने, फिराने के समय किसी को भी प्रहार का क्षण (मौका) नहीं मिलता था।

अवक्षेपोऽसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥७०॥

शस्त्रों के चलाने, खड्ग की टक्कर तथा अन्य अस्त्रों के प्रदर्शन एवं बाहरी भीतरी प्रहारों में इन दोनों महारथियों में कोई विशेषता (फ़र्क) दृष्टि नहीं आती थी ॥७०॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥७१॥

बाहरी और भीतरी उत्तम मार्ग (पैंतरे) दिखाते हुए दोनों महावीर जयद्रथ और अभिमन्यु, पक्षवाले पर्वतों के तुल्य दिखाई देते थे ॥७१॥

ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥७२॥

महायशस्वी, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के खड्ग चलाते २ जयद्रथ ने उसकी ढाल पर प्रहार किया ॥७२॥

रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे ।
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः ॥७३॥

अभिमन्यु के चमकीले चर्म (ढाल) के सुवर्ण पत्रों में टकरा कर सिन्धुराज के बल से प्रेरित, उसकी महान् करवाल (तलवार) के टुकडे २ हो गए ॥७३॥

भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥७४॥

जयद्रथ, अपने खड्ग को खण्डित देखकर छः पद तक कूद गया और क्षणमात्र में फिर अपने रथ पर जा बैठा ॥७४॥

तं कार्ष्णि समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम्
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥७५॥

अब किसी के साथ भी युद्ध में प्रवृत्त उत्तम महारथी अभिमन्यु को न देखकर सारे राजाओं ने एक दम सब ओर से उस पर आक्रमण कर दिया ॥७५॥

ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
ननादाऽर्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥७६॥

महाबली, अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु खड्ग और ढाल को उठाकर तथा राजा जयद्रथ की ओर देखकर गर्जना करने लगा ॥७६॥

सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
तापयामास तत्सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥७७॥

शत्रुवीरनाशक, अभिमन्यु, सिन्धुराज जयद्रथ को छोड़कर उसकी सेना को इस तरह पीड़ित करने लगा जैसे-संसार को सूर्य, सन्तापित करता है ॥७७॥

तस्य सर्वायसीं शक्तीं शल्यः कनकभूषणाम् ।
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥७८॥

अब मद्रराज शल्य ने रण में अभिमन्यु के ऊपर सुवर्ण जटित, लोहमयी घोरशक्ति का प्रहार किया, जो अग्नि की ज्वाला के तुल्य भीषण थी ॥७८॥

तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाऽकरोदसिम् ।
वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तम ॥७९॥

अभिमन्यु ने झपट कर उस शक्ति को पकड़ लिया और अपनी करवाल (तलवार) को कोश (म्यान) से बाहर निकाला। यह असि (तलवार) इस तरह प्रतीत होती थी जैसे गरुड़ने उड़ता हुआ सर्प पकड़ा हो ॥७९॥

तस्य लाघवमाज्ञाय सत्वं चाऽमिततेजसः ।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथाऽनदन् ॥८०॥

अत्यन्ततेजस्वी अभिमन्यु की इस शीघ्रता (फुर्ती) और शक्ति को देखकर इकट्ठे हुए सारे राजाओंने एक दम सिंहनाद किया

ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम् ॥८१॥

शत्रुवीरनाशक अभिमन्यु ने उसी शक्ति को अपनी भुजाके बल से उलटी फेरकर शल्य पर ही चलाई। यह शक्ति लोहमय होने से कृष्ण वर्ण और नील मणियों से जटित थी ॥८१॥

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघानसूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥८२॥

कांचुली से रहित सर्प के समान भीषण, उस शक्ति ने शल्य के रथ पर गिरकर शल्य का सारथि मार कर उसे रथ से नीचे गिरा लिया ॥८२॥

ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥८३॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ।

अब राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकि, केकय राजकुमार, भीम, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पांचों पुत्र, अभिमन्यु की बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥८३॥

बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥८४॥
प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।

युद्ध से नहीं हटने वाले सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को हर्षित करते हुए अनेक तरह से बाणों के शब्द और बहुत प्रकार से सिंहनाद होने लगे ॥८४॥

तन्नाऽमृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥८५॥
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥८६॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि से शत्रु की विजय के चिह्न नहीं सहे जा सके । हे महाराज ! अब उन्होंने तीक्ष्ण बाण लेकर

एक दम सब ओर से अभिमन्यु पर पर्वत पर मेघ की भांति बाणों की झड़ी लगादी ॥८५-८६॥

तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवम् ।
आर्त्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥८७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अपने सारथि का पराभव देखकर तुम्हारे पुत्रों की विजय की अभिलाषा से प्रेरित ऋतायन का पुत्र, शत्रुनाशक, शल्य क्रोध के साथ अभिमन्यु पर झपटा ॥८७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में अभिमन्यु के पराक्रम का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

पन्द्रहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच--

बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय ।
त्वयोक्तानि निशम्याऽहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुम ने बहुत से विचित्र द्वन्द्-युद्धों का वर्णन किया-जिनको सुनकर मुझे नेत्र वाले मनुष्यों से स्पर्धा होती है अर्थात् मैं भी दृष्टिवाला होने की अभिलाषा करने लगता हूँ।

आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥२॥

देव और असुरों के युद्ध के तुल्य आश्चर्य-जनक इस कौरव पाण्डवों के युद्ध का मनुष्य लोकों में कीर्तन किया करेंगे ॥२॥

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम् ।
तस्मादार्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥३॥

इस उत्तम युद्ध को सुनते २ मुझे तृप्ति नहीं होती है। अब तुम ऋतायन के पुत्र शल्य और सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के युद्ध का वर्णन करो ॥३॥

सञ्जय उवाच—

सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
समुत्क्षिप्य नदन्क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥४॥

सञ्जय बोले—हे राजन् अपने सारथि का हनन देखकर शल्य क्रोध में भर गए और वे भारी लोह की बनी हुई सुदृढ़ गदा उठा कर अपने रथ से कूद पड़े ॥४॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम्।
जवेनाऽभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥५॥

दण्डधारी अन्तक और कालाग्नि के समान प्रचण्ड मद्रराज शल्य को देखकर भीमसेन भी विशाल गदा उठाकर अपने रथ से शीघ्रता के साथ कूद पड़ा ॥५॥

सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ॥६॥

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु भी वज्रतुल्य भारी गदा लेकर शल्य से कहने लगा-आओ ? आओ ? तनिक आगे बढ़ो । भीमसेन ने बड़े प्रयत्न से अभिमन्यु को रोका ॥६॥

वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् ।
शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥७॥

प्रतापवान् भीमसेन ने सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को रोक दिया और रण में शल्य के सन्मुख आप अचल पर्वत की भांति खड़ा हो गया ॥७॥

तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम् ।
ससाराऽभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥८॥

मद्रराज शल्य ने भी जब सन्मुख महाबली भीम को देखा-तो हाथी पर सिंह की भांति बड़ी शीघ्रता से उस पर आक्रमण किया

ततस्तूर्यनिनादाश्च शङ्खानां च सहस्रशः ।
सिंहनादाश्च सञ्जज्ञुर्भेरीणां च महास्वनाः ॥९॥

इस समय सहस्रों तुरी और शङ्खों के शब्द होने लगे । वीर लोग सिंहनाद मचाने लगे और भेरियों का बड़ा घोर शब्द रण भूमि में उठ खड़ा हुआ ॥९॥

पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योऽन्यमभिधावताम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च साधु साध्विति निःस्वनाः ॥

अब पाण्डव और कुरुओं की सेना में इन दोनों वीरों को देखने वाले और एक दूसरे की ओर दौड़ने वाले वीरों के साधु वाद से आकाश गूंज उठा ॥१०॥

न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥११॥

हे भारत ! मद्रराज शल्य को छोड़कर सारे राजाओं में कोई ऐसा वीर नहीं था, जो भीमसेन के वेग को रण में सह सके।

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात् ॥१२॥

इसी तरह मद्राधिपति महावीर शल्य के गदा के वेग को वृकोदर भीम के सिवा कौन इस संसार में युद्ध में सह सकता था

पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षणी ।
प्रजज्वाल तदा विद्धा भीमेन महती गदा ॥१३॥

सुवर्ण के पत्रों से सुशोभित, भीमद्वारा फिराई हुई, विशाल गदा-प्रज्वलित हो उठी, जिसको देखकर सारे पाण्डव वीरों का चित्त प्रफुल्लित हो गया ॥१३॥

तथैव चरतो मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः ।
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा ॥१४॥

शल्य भी, अनेक युद्ध के मार्ग (पैंतरे) और गदा के मण्डल बना रहे थे, जिससे गदा बिजली के आकार में प्रकाशित हो रही थी ॥१४॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्त्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥१५॥

ये दोनों महारथी शल्य और भीम, अपनी २ गदा को घुमाते हुए दो महावृषभ (सांड) से प्रतीत होते थे और उनकी घूमती हुई गदा, उन वृषभों के शृङ्ग सी प्रतीत होती थीं ॥१५॥

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥१६॥

इन दोनों पुरुषसिंह भीम और शल्य के गदामण्डलों के चक्कर, मार्ग तथा गदा का घुमाना आदि बिल्कुल समान ही था । कोई भी इन में न्यूनता या अधिकता बताने में समर्थ नहीं था ।

ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा ।
साग्निज्वाला महारौद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥१७॥

भीमसेन ने शल्य की विशाल गदा पर अपनी गदा की चोट लगाई, जिससे उसमें से महाभीषण अग्नि की ज्वाला निकल पड़ी और उसके टुकड़े २ हो गए ॥१७॥

तथैव भीमसेनस्य द्विषताऽभिहता गदा ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाऽऽबभौ ॥१८॥

जब विरोधी वीर शल्य की भीमसेन की गदा से टकराती थी, तब वर्षा ऋतु में सायंकाल में खद्योतों (जुगनूं) से व्याप्त वृक्ष की भांति उससे चिनगारी निकलती थीं ॥१८॥

गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत ।
व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः ॥१९॥

हे भारत ! अब मद्रराज ने दूसरी गदा लेकर चलाई, जिससे आकाश प्रदीप्त हो गया और उससे बार २ आग निकलने लगी।

तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा ।
तापयामास तत्सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥२०॥

भीमसेन ने भी अपने विरोधी वीर शल्य पर अपनी गदा चलाई । यह भी महान् उल्कापात की तरह शल्य की सेना को सन्तापित करने लगी ॥२०॥

ते गदे गदिनां श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् ।
श्वसन्त्यो नागकन्येव ससृजाते विभावसुम् ॥२१॥

गदा चलाने में कुशल वीर भीम और शल्य, गदा उठा कर एक दूसरे पर प्रहार कर रहेथे। ये गदाएँ श्वास लेती हुई नागन की तरह रणभूमि में आग छोड़ रही थीं ॥२१॥

नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ ।
तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्र्याभ्यां परस्परम् ॥२२॥

बड़े २ सिंह, नखों से और बड़े २ हाथी, दांतों से जिस तरह युद्ध करते है, उसी तरह अपनी उत्तम २ गदाओं से दोनों वीर परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥२२॥

ततो गदाग्र्याभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
ददृशाते महात्मनौ किंशुकाविव पुष्पितौ ॥२३॥

ये दोनों महावीर गदा से आहत हुए रुधिर में भीग गए, जिस- से ऐसे प्रतीत होने लगे, जैसे-किंशुक (ढाक) का वृक्ष पुष्पित हो रहा हो ॥२३॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥२४॥

उन दोनों पुरुषप्रवीर भीम और शल्य की गदाओं के आघात की ध्वनि, इन्द्र के वज्र की तरह सारी दिशाओं में भीषण सुनाई देती थीं ॥२४॥

गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
नाऽकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाऽचलः ॥२५॥

मद्रराज शल्य ने बांई दांई ओर से गदा द्वारा भीम पर कई आघात किए। परन्तु वह आघातों को सहकर अचल पर्वत की तरह निश्चल खड़ा रहा ॥२५॥

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः ।
धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाऽऽहतः ॥२६॥

इसी तरह भीमसेन द्वारा भीम गदा से आहत हुआ महाबली मद्राधिपति शल्य भी वज्र से आहत पर्वत की तरह धैर्य-पूर्वक खड़ा रहा ॥२६॥

आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥२७॥

दोनों ही महावेगशाली वीर गदा उठाकर एक दूसरे पर झपटने और बीच २ में गदा के हाथ दिखाकर मण्डल बनाने लगे॥

अथाऽऽप्लुत्य पदान्यष्टौ सन्निपत्य गजाविव ।
सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥२८॥

ये दोनों आठ २ पद (क़दम) पीछे हटकर फिर हाथियों की तरह झपट कर लोहदण्डमयी गदाओं से एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे ॥२८॥

तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ ।
युगपत्पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥२९॥

इनके परस्पर आक्रमण और गदाओं के आघात से अत्यन्त आहत हुए दोनों वीर, इन्द्र की ध्वजा की तरह एक दम रणभूमि में गिर गए ॥२६॥

ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥३०॥

महाबली शल्य, बड़े विह्वल हो रहे थे और बार २ श्वास ले रहे थे-तो इसी समय महारथी कृतवर्मा बड़े वेग से शल्य के पास पहुंच गया ॥३०॥

दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाऽभिनिपीडितम् ।
विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतम् ॥३१॥

हे महाराज ! कृतवर्मा ने शल्य को गदा से आहत और सर्प की तरह तड़फड़ाते रण भूमि में मूर्छित पड़े देखा ॥३१॥

ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे ।
अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥३२॥

महारथी कृतवर्मा ने बड़ी शीघ्रता से मद्राधिपति शल्य को रण में अपने रथ में डाल लिया और बड़ी शीघ्रता से उसे रण से बाहर निकाल ले गया ॥३२॥

क्षीबवद्विह्वलो वीरो निमेषात्पुनरुत्थितः ।
भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥३३॥

महाबाहु वीर भीमसेन थोड़ी देर रणभूमि में विह्वल और मूर्छित पड़े रहे, परन्तु फिर शीघ्र ही मदोन्मत्त वीर की तरह उठ खड़े हुए और गदा हाथ में लेकर रणभूमि में घूमने लगे॥

ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम् ।
सनागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥३४॥

हे आर्य! तुम्हारे पुत्रों ने जब मद्राधिपति शल्य को रणभूमि से बाहर गए हुए देखा-तो अपने गजारोही, अश्वारोही, पैदल सैनिक और महारथियों के साथ वे कुछ कांप उठे ॥३४॥

ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः ।
भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥३५॥

जीतने के प्रयत्न में लगे हुए पाण्डवों से आहत किये हुए तुम्हारे वीर, वायु से प्रेरित किये हुए मेघ की तरह भयभीत होकर इधर उधर खसकने लगे॥३५॥

निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः ।
व्यरोचन्त रणे राजन्दीप्यमाना इवाऽग्नयः ॥३६॥

महारथी पाण्डु-पुत्र तुम्हारे पुत्रों को जीत कर प्रदीप्त अग्नि की तरह रण भूमि में प्रकाशित हो रहे थे॥३६॥

सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च हर्षिताः ।
भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चाऽऽनकैः सह ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

वे सिंहनाद करके हर्ष पूर्वक शङ्ख बजाने लगे तथा आनक वाद्य के सहित मृदङ्ग और भेरियों की ध्वनि होने लगी ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में शल्य और भीम के युद्ध का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

सोलहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तद्बलं सुमहद्दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान्।
दधारैको रणे राजन्वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! तुम्हारी विशाल सेना को इधर उधर बिखरी हुई देखकर भी वीर्यवान् कर्णपुत्र वृषसेन अपने अस्त्रों के प्रभाव से रण में स्थित रहा ॥१॥

शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् ॥२॥

महावीर वृषसेन ने रण में दशों दिशाओं में बाण फेंके, वे बाण, वीर, अश्व, रथी और हाथियों के शरीर को चीरकर इधर उधर उड़ने लगे ॥२॥

तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः ।
भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥३॥

हे महाराज ! ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणों की तरह इस वीर वृषसेन के सहस्रों प्रदीप्त बाण, रणभूमि में उड़ते दिखाई दे रहे थे ॥३॥

तेनाऽर्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा ।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥४॥

हे महाराज ! वायु से तोड़े मरोड़े हुए वृक्षों की भांति वृषसेन से पीड़ित हुए रथी और अश्वारोही, एक दम रणभूमि में गिरने लगे।

हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः ।
अपातयद्रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥५॥

हे राजन् ! इस महावीरने अश्व, रथी और हाथी, सैंकड़ों हजारों की संख्या में रणभूमि में मार गिराये ॥५॥

दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥६॥

इस प्रकार निर्भीकभाव से रणभूमि में अकेले वृषसेन को घूमते देखकर पाण्डवपक्ष के अनेक राजाओं ने सब ओर से उसे घेर लिया ॥६॥

नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात् ।
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥७॥

अब नकुल-पुत्र शतानीक ने वृषसेन पर आक्रमण किया और दश मर्म-भेदी बाणों से इसको बींध डाला ॥७॥

तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्वा केतुमपातयत् ।
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥८॥

कर्णपुत्र वृषसेन ने शतानीक के धनुष को काट कर उसकी ध्वजा को भी काट गिराया। इस समय अपने भाई शतानीक की सहायता के लिए सारे द्रौपदी-पुत्र दौड़े ॥८॥

कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा ।
तान्नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥९॥

इन वीरों ने कर्ण-पुत्र वृषसेन को अपने बाणसमूह से बड़ी शीघ्रता के साथ ढक दिया। इस समय द्रौपदी-पुत्रों पर गर्जना करते हुए द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा आदि महारथी झपटे ॥९॥

छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान्महारथान् ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वताञ्जलदा इव ॥१०॥

हे महाराज ! पर्वतों को बादलों की भांति इन महारथियों ने महारथी द्रौपदी-पुत्रों को अनेक तरह के बाणों से बहुत शीघ्र पाट दिया ॥१०॥

तान्पाण्डवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः ॥११॥

अपने पुत्रों की रक्षा के अभिलाषी पाण्डव, बड़े वेग से इन महारथियों पर झपटे। इनके साथ ही पञ्चाल, केकयराजकुमार मत्स्य, सृञ्जय वीर, शस्त्र लेकर दौड़ पड़े ॥११॥

तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥१२॥

इनके अनन्तर तुम्हारे पुत्र कौरव और पाण्डवों में देवों का दानवों के साथ जिस तरह युद्ध हुआ था, वैसा ही बड़ा लोमहर्षण घोर युद्ध हुआ ॥१२॥

एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपाण्डवाः ।
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥१३॥

इस प्रकार आवेश में भरे हुए कौरव पाण्डव वीर, युद्ध करने लगे। ये एक दूसरे को कोपदृष्टिसे देख रहे थे और एक दूसरे का प्रहाररूप अपराध कर रहे थे ॥१३॥

तेषां ददृशिरे कोपाद्वपूंष्यमिततेजसाम् ।
युयुत्सूनामिवाऽऽकाशे पतत्रिवरभोगिनाम् ॥१४॥

अत्यन्त तेजस्वी इन वीरों का कोप से ऐसा भीषण शरीर दिखाई देता था, जैसे-युद्ध के इच्छुक गरुड़ और सर्पराज का आकाश में दिखाई देता है ॥१४॥

भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः ।
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥१५॥

भीष्म, कर्ण, कृप; द्रोण, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि वीरों से रणाङ्गण ऐसा प्रतीत होता था, जैसे प्रलय काल में सूर्य उदित हो गया हो ॥१५॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ।
महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥१६॥

एक दूसरे पर प्रहार करने वाले कौरव पाण्डवों का यह घोर संग्राम इस तरह हो रहा था, जैसे-महाबली दानवों के साथ युद्ध हो रहा हो ॥१६॥

ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धूतार्णवनिःस्वनम् ।
त्वदीयमवधीत्सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥१७॥

अब उड़ते हुए समुद्र के तुल्य ध्वनि करती हुई राजा युधिष्ठिर की सेना ने तुम्हारी सेना का विनाश करना आरम्भ किया । इस समय तुम्हारे अनेक महारथी भी विचलित हो गए ॥१७॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिभृशमर्दितम् ।
अलंद्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥१८॥

इस प्रकार शत्रुओं द्वारा पीड़ित और भागती हुई अपनी सेना को देखकर द्रोणाचार्य कहने लगे-हे शूरवीरों ! तुमको भागना नहीं चाहिए ॥१८॥

ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः ।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥१६॥

अब रक्तवर्ण के अश्वों के रथ में स्थित, द्रोणाचार्य ने, चार दांत वाले मदोन्मत्त हाथी की भांति पाण्डवों की सेना में घुसकर राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥१६॥

तमाविध्यच्छितैर्बाणैः तं द्रुतं समुपाद्रवत्

तस्य द्रोणो धनुश्छित्वा तंद्रुतं समुपाद्रवत् ॥२०॥

राजा युधिष्ठिर ने भी कङ्कपक्षी के पंख से विभूषित अपने तीक्ष्ण बाणों से द्रोण को घायल कर दिया। द्रोणाचार्य ने भी धर्मराज के धनुष को काटकर उस पर बड़े वेग से आक्रमण किया।

चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः।

दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥२१॥

इस समय धर्मराज का चक्ररक्षक एक कोई यशस्वी पाञ्चाल राजकुमार था, उसने समुद्र को वेला की तरह आगे बढ़ते हुए, द्रोणाचार्य को रोक दिया ॥२१॥

द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम्।

सिंहनादरवो ह्यासीत्साधु साध्विति भाषितम् ॥२२॥

पाञ्चाल कुमार द्वारा रोके हुए द्विज-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को देख कर पाण्डव सेना में सिंहनाद होने लगा और सब ने पाञ्चाल कुमार की बड़ी प्रशंसा की ॥२२॥

कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे।

विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन्मुहुः ॥२३॥

पाञ्चालकुमार ने इस महायुद्ध में अपने तीक्ष्ण बाण से द्रोणाचार्य को रोक दिया और बार २ सिंह की भांति गर्जना कर के द्रोण की छाती में क्रोध के साथ प्रहार किया ॥२३॥

संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः ।
शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥२४॥

महाबली कुमार ने रणमें द्रोणाचार्य को सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में बाण छोड़कर रोका, इस वीर कुमार का हस्तकौशल बहुत ही विचित्र था और युद्ध करते २ इस को परिश्रम नहीं प्रतीत होता था ॥२४॥

तं शूरमार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् ।
चक्ररक्षं परामृद्नात्कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥२५॥

मन्त्रों के साथ चलाये जाने-वाले, अस्त्र प्रयोग में कुशल, आर्यव्रत वाले, शूरवीर, चक्र रक्षक कुमार को, द्विजश्रेष्ठ, आचार्य द्रोण ने क्षत-विक्षत कर दिया ॥२५॥

स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्ताऽऽसीद्भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥२६॥

आचार्य द्रोण, सेनाओं के मध्य में पहुंचकर सारी दिशाओं में घूमने लगा। इस तरह तुम्हारी सेनाओं को द्विजश्रेष्ठ द्रोण, रक्षा कर रहे थे ॥२६॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
नकुलं पञ्चभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥२७॥

युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
सात्यकिं पञ्चभिर्विध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः ।२८।
व्यक्षोभयद्रणे योधान्यथामुख्यमविद्रवन् ।
अभ्यवर्त्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥२९॥

द्रोणाचार्य ने शिखण्डी के बारह, उत्तमौजा के बीस, नकुल के पांच, सहदेव के सात, युधिष्ठिर के बारह प्रत्येक द्रौपदीपुत्र के तीन २ सात्यकि के पांच, मत्स्यराज के दश बाण मारे । द्रोणाचार्य अपने स्थान से विचलित नहीं होते थे और मुख्य २ पाण्डव महारथियों को विचलित कर रहे थे । ये कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के पकड़ने की इच्छा से उन पर झपटे ॥२७-२९॥

युगन्धरस्ततो राजन्भारद्वाजं महारथम् ।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धूतमिवाऽर्णवम् ॥३०॥

हे राजन् ! इस समय भरद्वाजपुत्र क्रोधातुर महारथी द्रोणाचार्य को वीरश्रेष्ठ युगन्धर ने रोक दिया । आचार्य द्रोण का यह आक्रमण वायु से उछाले हुए समुद्र के तुल्य वेगशाली था ॥३०॥

युधिष्ठिरं स विध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥३१॥

आचार्य द्रोण ने सन्नतपर्ववाले बाणों से राजा युधिष्ठिर को बींध कर भाले से युगन्धर (सारथि) को रथ के ऊपर से नीचे गिरा दिया ॥३१॥

ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिबिः ।
व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥३२॥
एते चाऽन्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं किरन्त्यः सायकान्बहून् ॥३३॥

इसके अनन्तर विराट, द्रुपद, केकय, सात्यकि, शिबि, पाञ्चाल वीर व्याघ्रदत्त, और वीर्यवान् सिंहसेन आदि बहुत से वीरोंने राजा युधिष्ठिर की सहायता की। इन्होंने बाणों की झड़ी लगाकर द्रोण का मार्ग रोक लिया ॥३२-३३॥

व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।
पञ्चाशता शितै राजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥३४॥

पाञ्चाल वीर व्याघ्रदत्त ने अपने पचास तीक्ष्ण बाणोंसे द्रोणाचार्य को बींध डाला। इस को देखकर पाण्डव वीर सिंहनाद करने लगे ॥३४॥

त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विद्ध्वा महारथम् ।
प्राहसत्सहसा हृष्टस्त्रासयन्वै महारथान् ॥३५॥

इस प्रकार सिंहसेन ने बड़े वेग से महारथी द्रोणाचार्य को आहत करके बड़े उच्चस्वर से एक दम अट्टहास किया, जिससे तुम्हारे महारथी भयभीत से हो गए ॥३५॥

ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥३६॥

अब आचार्य द्रोण, क्रोध-पूर्वक आंखें निकालकर और धनुष की डोरी को खैंचकर उसके साथ करतल ध्वनि करते हुए सिंहसेन पर झपटे ॥३६॥

ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
व्याघ्रदत्तस्य चाऽऽक्रम्य भल्लाभ्यामहरद्बली ॥३७॥

इस समय महाबली द्रोणने आक्रमण करके कुण्डलों से विभूषित सिंहसेन और व्याघ्रदत्त के सिर को धड़ से पृथक् (जुदा) कर दिया ॥३७॥

तान्प्रमृज्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् ।
युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवाऽन्तकः ॥३८॥

इस प्रकार अनेक पाण्डवों के महारथियों को अपने बाण समूहसे मार्ग में से हटाकर अन्तकारी मृत्यु के सदृश द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिर के रथ के पास पहुंचे ॥३८॥

ततोऽभवन्महाशब्दो राजन्यौधिष्ठिरे बले ।
हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥३९॥

हे राजन् ! इस समय जब व्रतशील द्रोणाचार्य, धर्मराज के समीप पहुंचे- तो सारे योद्धाओं में यह कोलाहल मच गया, कि राजा युधिष्ठिर अब मारे ही जाने वाले हैं ॥३९॥

अब्रुवन्सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् ।
अद्य राजा धार्त्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ॥४०॥

द्रोणाचार्य के पराक्रम को देखकर सारे सैनिक यही कह रहे थे, कि धर्मराज के मारे जाने पर आज राजा दुर्योधन कृतार्थ हो जावेगा ।।४०।।

अस्मिन्मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः ।
आगमिष्यति नो नूनं धार्त्तराष्ट्रस्य संयुगे ।।४१।।

कौरव सैनिक तो यहां तक कहने लगे कि अभी थोड़ी देर में बड़े आनन्द के साथ रण में धर्म-राज को पकड़कर अभी राजा दुर्योधन की सेना में हमारे पास द्रोण आये जाते हैं ।।४१।।

एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ।।४२।।

इस प्रकार तुम्हारे और पाण्डवों के वीरों में बातचीत हो रही थी, कि महारथी कुन्ती-पुत्र अर्जुन, अपने रथ की ध्वनि से दिशाओं को गुंजाता हुआ वहाँ आ पहुंचा ।।४२।।

शोणितोदां रथावर्तां कृत्वा विशसने नदीम् ।
शूरास्थिचयसङ्कीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ।।४३।।
तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ।
नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून्विद्राव्य पाण्डवः ।।४४।।

अर्जुन ने इतनी मार काट मचाई कि जिससे रक्त के जल से पूर्ण, रथों के आवर्तों वाली, शूरवीरों के अस्थिसमूह से व्याप्त, भूत प्रेतों से सेवित तटवाली, नदी बह निकली । इस नदी में बाण

समूह फेनों (झागों) की भाँति प्रतीत होते थे। प्रास (भाले) मत्स्यों सदृश दिखाई पड़ते थे। पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने इस नदी को पार करके झटपट कौरव सैनिकों को भगा दिया ॥४३-४४॥

ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥४५॥

अब अर्जुन ने अपने बहुत से बाणसमूह से सब को ढक दिया और मोहित सा कर दिया। ऐसा करने के अनन्तर उन्होंने द्रोण की सेना पर आक्रमण किया ॥४५॥

शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्सन्दधानस्य चाऽनिशम् ।
नाऽन्तरं ददृशे कश्चित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥४६॥

इस प्रकार बड़ी शीघ्रता से यशस्वी अर्जुन के बाण फेंकने और फिर झटपट से धनुष पर बाण चढ़ाने के अन्तर को कोई भी नहीं देख पाता था ॥४६॥

न दिशो नाऽन्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी ।
अदृश्यन्त महाराज बाणभूता इवाऽभवन् ॥४७॥

हे महाराज! इस समय दिशा, अन्तरिक्ष, भूलोक और पृथिवी आदि कुछ दिखाई नहीं देती थी। जिधर देखो उधर ही अर्जुन के बाण ही बाण दृष्टि आते थे ॥४७॥

नाऽदृश्यत तदा राजंस्तत्र किञ्चन संयुगे ।
बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥४८॥

हे राजन् ! गाण्डीव-धनुष-धारी अर्जुन के द्वारा बाणों के महान अन्धकार कर देने से रणभूमि में कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

सूर्ये चाऽस्तमनुप्राप्ते तमसा चाऽभिसंवृते ।
नाऽज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥४६॥
ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।

इस प्रकार जब अन्धेरा होगया और सूर्य अस्त होगया—तो शत्रु और मित्र किसी की भी पहचान नहीं होती इस समय द्रोण और राजा दुर्योधनादि ने अपनी सेना को युद्ध बन्द करने की आज्ञादी ॥४६॥

तान्विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥५०॥
स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।

अर्जुन ने भी भयातुर और युद्ध से हटने वाले विरोधियों को जानकर अपनी सेना को भी धीरे २ पीछे हट जाने की आज्ञा दी।

ततोऽभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पाण्डुसृञ्जयाः ॥५१॥
पाञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ।

अब प्रसन्न हुए पाण्डव और सृञ्जय वीर तथा पाञ्चालों ने सुन्दर २ वाणी से सूर्य की ऋषियों की तरह अर्जुन की स्तुति करना आरम्भ किया ॥५१॥

एवं स्वशिबिरं प्रायाज्जित्वा शत्रून्धनञ्जयः ॥५२॥
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै स केशवः ॥५३॥

धनञ्जय अर्जुन इस प्रकार अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अपने शिबिर को गए। इनके पीछे सारी सेना के चल देने पर प्रसन्नता-पूर्वक श्रीकृष्ण भी चल दिए ॥५२-५३॥

मसारगल्वर्कसुवर्णरूपैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।

चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः । १६॥ समाप्तं च द्रोणाभिषेकपर्व

इन्द्रनील, पद्मराग, सुवर्ण, हीरे, प्रवाल, स्फुटिक आदि मणियों से जटित विचित्र रथ में बैठे हुए पाण्डु-पुत्र अर्जुन, इस तरह दिव्य प्रतीत होते थे, जैसे—नक्षत्रों से विचित्र आकाश में चन्द्रमा सुन्दर प्रतीत होते हैं ॥५४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में प्रथम दिन के युद्ध की समाप्ति का सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर द्रोणाभिषेकपर्व भी समाप्त होगया।

अथ संशप्तकवधपर्व

सत्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ते सेने शिबिरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते ।
यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मं च सर्वशः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे विशाम्पते ! अपने विभाग के अनुकूल न्यायानुसार अपनी टुकड़ियाँ बटी हुई दोनों सेना, सब ओर से चलकर अपने २ शिबिर में पहुंची और वहां जाकर विश्राम करने लगी ॥१॥

कृत्वाऽवहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥२॥

अपनी सेनाओं का युद्ध समाप्त करके द्रोणाचार्य बड़े ही उदास हुए। उन्होंने अपने पास आये हुए राजा दुर्योधन को देख-कर लज्जा-पूर्वक यह वचन कहा ॥२॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये ।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥३॥

हे राजन् ! मैंने प्रथम ही कह दिया था, कि यदि राजा युधिष्ठिर के समीप अर्जुन रहे—तो उन्हें रण में देवता भी नहीं पकड़ सकते हैं ॥३॥

इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।
मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥४॥

यह तुम लोगों ने देख ही लिया, कि तुम्हारे सबके बड़ा प्रयत्न करने पर भी संग्राम में अर्जुन ने जो दुष्कर कर्म कर दिखाया। तुम मेरे वचन पर अश्रद्धा न रखो, श्रीकृष्ण और अर्जुन बड़े ही अजेय हैं ॥४॥

अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने ।
तत एष्यति ते राजन्वशमेष युधिष्ठिरः ॥५॥

हे राजन्! यदि तुम किसी उपाय से श्वेत-अश्व-धारी अर्जुन को धर्मराज के समीप से हटा सको—तो फिर धर्मराज किसी प्रकार तुम्हारे वश में पड़ सकते हैं ॥५॥

कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु ।
तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथञ्चन ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप ।
ग्रहीष्यामि चमूं भित्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥७॥

तुम्हारा कोई महारथी रण में अर्जुन को ललकार कर अन्य स्थान पर खैंच लेजावे। कुन्तीपुत्र अर्जुन उसे जीते विना लौट नहीं सकेगा। हे राजन्! इसी अन्तर में अर्जुन से पृथक् होने के कारण मैं सारी सेना को चीर फाड़ कर सेनापति धृष्टद्युम्न के देखते २ धर्मराज को पकड़ लूंगा ॥६-७॥

अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् ।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥८॥

अर्जुन से पृथक् होकर यदि राजा युधिष्ठिर मेरे सन्मुख आते हो रणाङ्गण से भाग नहीं निकला—तो मैं उसे पकड़ ही दूंगा—यह निश्चय समझ लो ॥८॥

एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥६॥

हे महाराज ! मैं तो इसी प्रकार आज सेना के सहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को तुम्हारे वश में कर सकता हूँ—यह निःसन्देह बात है ।.६॥

यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्त्तमपि पाण्डवः ।
अथाऽपयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते ॥१०॥

यदि पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, इस दशा में क्षण भर भी मेरे सम्मुख स्थित हुआ—तो यही बात होगी—और यदि वे भाग निकले—तो यह विजय से भी अधिक प्रशंसनीय होगा ॥१०॥

सञ्जय उवाच—

द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्त्ताधिपतिस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥११॥

संञ्जय बोले—हे राजन् ! द्रोणाचार्य के इतने वचन सुनकर त्रिगर्त देशाधिपति, अपने भाइयों के साथ यह वचन कहने लगा।

वयं विनिकृता राजन्सह गाण्डीवधन्वना ।
अनागःस्वपि चाऽऽगस्तत्कृतमस्मासु तेन वै ॥१२॥
ते वयं स्मरमाणास्तान्विनिकारान्पृथग्विधान् ।
क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि ॥१३॥

हे राजन्! हम लोगों का गाण्डीवधारी अर्जुन ने बड़ा तिरस्कार किया है। हमारा कोई अपराध नहीं था और उसने सारा दोष हम पर लाद दिया। अर्जुनके द्वारा किये गए बार २ अपमानों का स्मरण करके हम क्रोध की अग्नि से भुनते रहते हैं और हमको रात में भी नींद नहीं आती है ॥१२-१३॥

स नो दिष्टयाऽस्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
कर्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥१४॥

आज बड़े हर्ष की बात है, युद्ध में शस्त्रधारण करके हम लोगों का अर्जुन से सामना पड़ रहा है। अब जो हमारे हृदय में आग जल रही है, इसके अनुकूल कर्म कर दिखाना चाहते हैं ॥१४॥

भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकं च यशस्करम् ।
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्याऽऽयोधनाद्बहिः ॥१५॥

अर्जुन का वध कर देने में तुम्हारा हित और हमारी कीर्ति है। अब हम लोग, इसको रणभूमि से पृथक् खैंचकर ले जावेंगे और वहां इसको मार डालेंगे ॥१५॥

अद्याऽस्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्त्ताऽथवा पुनः ।
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥१६॥

आज या तो पृथिवी अर्जुन से शून्य हो जावेगी या त्रिगर्त ही नहीं रहेंगे। मैं यह सत्य प्रतिज्ञा कर रहा हूँ, इसमें कभी मिथ्यांश नहीं हो सकता ॥१६॥

एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत।
सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥१७॥
सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च।
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥१८॥

हे भारत ! सत्यरथ, सत्यवर्मा सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा-इन पांचों भाइयों ने इस प्रकार कहकर और दश सहस्र रथों की सेना लेकर गमन किया। हे महाराज ! इन सबने ही रण से पीछे नहीं हटने की प्रतिज्ञा की ॥१७-१८॥

मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः।
सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्त्तः प्रस्थलाधिपः ॥१९॥
मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि।
रथानामयुतेनैव सोऽगमद्भ्रातृभिः सह ॥२०॥

इस तरह मालव और तुण्डीकेर तीस सहस्र रथों को लेकर युद्ध के लिये इनके साथ चले। नरों में उत्तम वीर त्रिगर्त देशके प्रस्थल प्रदेश का अधिपति सुशर्मा भी, मावेल्लक, ललित्थ और मद्रक वीरों को साथ लेकर दशसहस्र रथी सेना सहित अपने भाइयों के साथ रणभूमि की ओर चलने को उद्यत हो गया ॥१९-२०॥

नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥२१॥

इसी तरह पृथक् राजाओं के दश हजार प्रसिद्ध २ रथी वीर शपथ करने के लिए सेना से बाहर निकल आए ॥२१॥

ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् ।
जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥२२॥

ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥२३॥

यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
योक्ष्यमाणास्तदाऽऽत्मानं यशसा विजयेन च ॥२४॥

अब सब ने अग्नि की पूजा करके पृथक् २ हवन किया। इन्होंने कुशा हाथ में लेकर बल्कल वस्त्र धारण किए और उनके ऊपर विचित्र कवच पहने इन्होंने शरीर की रक्षा के निमित्त कवच धारण कर लिए। घृत का मर्दन करके कुश और वस्त्र पहने तथा मौर्वी और मेखला धारण की। लाखों की दक्षिणा देनेवाले, यजनशील, पुत्रवान्, उत्तम लोकों के प्राप्त करने वाले, कृतकृत्य हुए इस युद्ध में प्राण छोड़ने तक को उद्यत हो गए। ये वीर अपने को यश और विजय से विभूषित करने की अभिलाषा कर रहे थे।

ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ।
प्राप्यांल्लोकान्सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥२५॥

इन्होंने ब्रह्मचर्य धारण करके वेदाध्ययन किया था । उत्तम दक्षिणा देकर बहुत से यज्ञ कर रखे थे। अब ये उत्तम युद्ध के द्वारा उत्तम स्वर्गादि लोकों को गमन करना चाहते थे ॥२५॥

ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान्दत्वा पृथक्पृथक् ।
गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्परम् ॥२६॥
प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम् ।
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥२७॥

इन्होंने सुवर्ण मुद्रा, गौ, वस्त्र आदि प्रदान करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। उनसे परस्पर वार्तालाप की। अग्नि को प्रज्वलित करके हवन किया, और रण में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की। इन्होंने यह प्रतिज्ञा अग्नि के सन्मुख करके अपने निश्चय को और भी दृढ़ बना लिया ॥२६-२७॥

शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे ।
सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥२८॥

सारे प्राणी सुन रहे थे इन्होंने बड़े उच्चस्वर से अपनी वाणी का उच्चारण किया और सबने ही अर्जुनके वध की प्रतिज्ञा की।

ये वै लोकाश्चाऽव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम् ।
मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥२९॥
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।
शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ॥३०॥

आगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि ।
अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥३१॥
स्वभार्यामृतुकालेषु मोहाद्वै नाऽभिगच्छताम् ।
श्राद्धमैथुनिकानां च ये चाऽप्यात्मापहारिणाम् ।३२।
न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥३३॥
नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निमातृपितृत्यजाम् ।
तानाप्नुयामहे लोकान्ये च पापकृतामपि ॥३४॥
यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्त्तेम धनञ्जयम् ।
तेन चाऽभ्यर्दितास्त्रासाद्भवेम हि पराङ्मुखाः ॥३५॥

व्रतहीन, ब्रह्मघाती, सुरापान और गुरु की भार्या के साथ गमन करने वाले, ब्राह्मण के द्रव्य के अपहरण में तत्पर, राजा के अन्न का उपभोग करके समय पर सेवा न करने वाले, शरणागत त्यागी, याचक को पीठ देने वाले, आग लगा देने वाले, गायों के वधकर्ता, सबके अपकारकारी, ब्रह्मद्वेषी, ऋतुकाल में भी दुष्टता वश अपनी भार्या के साथ गमन नहीं करने वाले, श्राद्ध के दिन मैथुन करने वाले, अपने आत्मा के प्रवञ्चक, किसी की धरोहर को मार जाने वाले, वेदादि उत्तम शास्त्रों के नाशक, क्लीब (कायर) से युद्धकर्ता, नीच के साथ संगति करनेवाले, नास्तिक, माता पिता और अग्नि के त्यागी, तथा इनके अतिरिक्त पापी मनुष्यों को जिन लोकों की प्राप्ति होती है, उन लोकों को हम प्राप्त होवें;

जो धनञ्जय अर्जुन के विना मारे युद्ध भूमि से पीछे पद रख देवें या अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर भय से युद्ध से पराङ्मुख हो जावें ॥२९-३५॥

यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
इष्टाँल्लोकान्प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥३६॥

यदि आज हम लोगों ने संसार में दुष्कर-कर्म को कर दिखाया तो हम लोग अवश्य अपने अभीष्ट लोकों को प्राप्त करेंगे-इसमें सन्देह नहीं है ॥३६॥

एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥३७॥

हे राजन् ! ये वीर, इस तरह प्रतिज्ञा करके रणभूमि में चल दिए और अर्जुन को युद्ध के लिए ललकार कर उन्हें दक्षिण दिशा में खैंच ले जाना चाहा ॥३७॥

आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरञ्जयः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥३८॥

उन नरवीरों से आमन्त्रित किये हुए शत्रुपरविजयी अर्जुन, तत्क्षण धर्मराज से यह वचन बोले ॥३८॥

आहूतो न निवर्त्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥३९॥

जब कोई मेरा युद्ध में आह्वान करता है, तो मैं पीछे नहीं हटता हूँ-यह मेरा व्रत है । हे राजन ! आज इस महायुद्ध में संशप्तक वीर मेरा आह्वान कर रहे हैं ॥३९॥

एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयते रणे ।
वधाय सगणस्याऽस्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥४०॥

यह अपने भाइयों के साथ त्रिगर्ताधिपति सुशर्मा मुझे रण में ललकार रहा है । अब तुम सेनासहित इसके वध करने की मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥४०॥

नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतान्विद्धि परान्युधि ॥४१॥

हे पुरुषर्षभ ! मैं रण में दी हुई किसी वीर की ललकार को नहीं सह सकता हूं । मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं अभी इनको मार कर लौटता हूं । तुम इनको युद्ध में मारा हुआ ही समझो ।

युधिष्ठिर उवाच—

श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम् ।
यथा तदनृतं तस्य भवेत्तत्त्वं समाचर ॥४२॥

युधिष्ठिर बोले—हे तात ! तुमने यह भी अच्छी तरह सुन रखा है, कि द्रोणाचार्य क्या करना चाह रहे हैं । अब जिस तरह उनके मन की अभिलाषा पूरी न हो सके-तुम को वैसा ही करना चाहिए ॥४२॥

द्रोणो हि बलवाञ्शूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः ।
प्रतिज्ञातं च तेनैतद्ग्रहणं मे महारथ ॥४३॥

आचार्य द्रोण, बड़े बलवान् शूरवीर हैं । वे अस्त्र विद्या में बड़े सिद्धहस्त और युद्ध के श्रम की कुछ भी अपेक्षा (परवा) नहीं करते

वाले हैं। हे महारथी! उन्होंने मेरे पकड़ लेने की भयङ्कर प्रतिज्ञा कर रखी है ॥४३॥

अर्जुन उवाच—

अयं वै सत्यजिद्राजन्नद्य त्वां रक्षिता युधि।
म्रियमाणे च पाञ्चाल्ये नाऽऽचार्यः काममाप्स्यति ॥

अर्जुन ने कहा—हे राजन्! ये सत्यजित् प्रसिद्ध योद्धा हैं- आज के रण में ये तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे। जब तक ये पाञ्चाल वीर सत्यजित् जीवित रहेंगे; तब तक तुम को पकड़ कर आचार्य अपनी कामना पूर्ण नहीं कर सकेंगे ॥४४॥

हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथञ्चन ॥४५॥

हे महाभाग! यदि पुरुष-प्रवीर सत्यजित किसी प्रकार रण में मारे जावें-तो सारे महारथियों के साथ भी तुम युद्ध-भूमि में न ठहरना। ॥४५॥

सञ्जय उवाच—

अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः।
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्च ऽस्य योजिताः ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दे दी और उसका आलिङ्गन किया तथा अर्जुन की ओर बड़ी प्रेम भरी दृष्टिसे देखकर इनको बहुतसे आशीर्वाद दिए ॥४६॥

विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्त्तान्प्रत्ययाद्बली ।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥४७॥

इसके अनन्तर धर्मराज को छोड़ कर महाबली अर्जुन, इस प्रकार त्रिगर्तों की ओर चल दिए, जैसे-अपनी क्षुधानिवृत्ति के लिए भूखा सिंह मृगगणों पर झपटता है ॥४७॥

ततो दौर्याधनं सैन्यं मुदा परमया युतम् ।
ऋतेऽर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥४८॥

अब दुर्योधन की सेना बड़ी आनन्द में भर गई। उन्होंने क्रोधाविष्ट अर्जुन के विना धर्मराज का पकड़ना सरल समझ लिया।

ततोऽन्योन्येन ते सैन्ये समाजग्मतुरोजसा ।
गङ्गासरय्वौ वेगेन प्रावृषीवोल्बणोदके ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तवधपर्वणि धनञ्जययाने सप्तदशोऽध्याय ॥

अब अपने २ ओज में भरी दोनों सेना, एक दूसरे पर इस वेग से झपटीं, जैसे-वर्षा ऋतु में जल से उछलती हुई गङ्गा और सरयू नदी बहती हैं ॥४९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तक वधपर्व में अर्जुन के युद्ध के निमित्त गमन करने का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठाहरवां अध्याय

सञ्जय उवाच--

ततः संशप्तका राजन्समे देशे व्यवस्थिताः ।
व्यूह्याऽनीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ।

सञ्जय कहने लगा—हे राजन्! इसके अनन्तर संशप्तकगण, चलकर समप्रदेश (एक सी भूमि) पर स्थित हो गए। इन्होंने बड़े उल्लास से अपने रथों से सेना का चन्द्राकार व्यूह बनाया ॥१॥

ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष ।
उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥२॥

हे आर्य! ये नरवीर किरीटधारी अर्जुन को आता देखकर हर्ष में भर गए और बड़े उच्चस्वर से गर्जना करने लगें ॥२॥

स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत् ।
आवृतत्वाच्च लोकस्य नाऽऽसीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥३॥

इस गर्जना से दिशा, विदिशा और आकाश भर गया। जब सारा संसार इससे भर गया-तो कोई प्रतिस्वर सुनाई नहीं देता था।

सोऽतीव संप्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनञ्जयः ।
किञ्चिदभ्युत्स्मयन्कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥४॥

धनञ्जय अर्जुन भी त्रिगर्तों के समीप पहुंच कर बड़े प्रफुल्लित हुए और कुछ मुसकुराकर श्रीकृष्ण से ये वचन बोले ॥४॥

पश्यैतान्देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे ।
भ्रातृंस्त्रैगर्त्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥५॥

हे देवकीपुत्र ! आज तुम इन मरनेवाले त्रिगर्तों को देख रहे हो जो ये सारे भ्राता, रोने के स्थान पर प्रहर्ष प्रकट कर रहे हैं

अथवा हर्षकालोऽयं त्रैगर्त्तानामसंशयम् ।
कुनरैर्दुरवापान्हि लोकान्प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥६॥

हे महभाग ! अथवा यह इन त्रिगर्तोंके हर्षका ही समय है, जो इन दुराचारियों को अब दुर्लभ लोकों की प्राप्ति हो जावेगी ॥६॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम् ॥७॥

महाबाहु अर्जुन ने हृषीकेश कृष्ण से इस प्रकार कहकर त्रिगर्तों की व्यूह रचना में खड़ी हुई सेना पर आक्रमण किया ॥७॥

स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम् ।
दध्मौ वेगेन महता घोषेणाऽऽपूरयन्दिशः ॥८॥

अर्जुन ने प्रथम देवदत्त शंख को बड़े वेग से लेकर बजाया, जो सुवर्ण से जटित था। इसकी ध्वनि से सारी दिशाएँ भर गई ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
विचेष्टाऽवस्थिता संख्येह्यश्मसारमयी यथा ॥९॥

इस शंखध्वनि से संशप्तकों की सेना भयभीत हो गई और वह इस तरह स्तम्भित होकर खड़ी रही, जैसे-पत्थर की मूर्तियां खड़ी हों ॥९॥

वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः ।
विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुस्रुवुः ॥१०॥

संशप्तकों की सेना के अश्वों की आंखे फटी तथा इनके कान और ग्रींवा ज्यों की त्यों स्तम्भित रह गई । इनके चरण आगे नहीं बढ़ते थे और ये भय से रक्त मूत रहे थे ॥१०॥

उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
युगपत्पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥११॥

थोड़ी ही देर में संशप्तकों को चेतनता आई-तो उन्होंने अपनी सेना को सम्हाला । फिर ये सारे भ्राता, एक दम पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर कङ्कपक्षी के पत्रों से विभूषित बाण छोड़ने लगे ॥११॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः ।
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाऽऽशु पराक्रमी ॥१२॥

पराक्रमी अर्जुन ने उन सहस्रों बाणों को अपने दश पांच बाण छोड़कर मार्ग में ही काट गिराया ॥१२॥

ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्राविध्यन्त ततः पार्थस्तानविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥१३॥

इसके अनन्र संशप्तक नेताओं ने दश २ तीक्ष्ण बाण छोड़कर अर्जुन को बींध दिया । अर्जुन ने भी तीन २ बाण छोड़कर उनको आहत कर दिया ॥१३॥

एकैकस्तु ततः पार्थं राजन्विव्याध पञ्चभिः ।
स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥१४॥

हे राजन्! अब इन प्रत्येक वीरों ने पांच २ बाण छोड़कर अर्जुन को घायल किया। पराक्रमी अर्जुन ने भी दो २ बाण मार कर उनको आहत कर दिया ॥१४॥

भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम्।
आपूरयञ्शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः ॥१५॥

ये संशप्तक भ्राता, फिर क्रोध से भर गए और श्रीकृष्ण सहित अर्जुन को अपने तीक्ष्ण बाणों से इस तरह पाट रहे थे जैसे वर्षा से तालाब भर जाता है ॥१५॥

ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति।
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने ॥१६॥

अर्जुन के ऊपर इस प्रकार सहस्रों बाण आ २ कर गिरने लगे जैसे-वन में पुष्पों से भरे हुए वृक्ष समूह पर भ्रमरों के गण आ २ कर गिरते हों ॥१६॥

ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः।
अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥१७॥

अब सुबाहु ने लोहमय तीस बाण छोड़े, जिनसे इसने सव्य-साची अर्जुन को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर दिया ॥१७॥

तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः।
शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवोत्थितः ॥१८॥

किरीटधारी अर्जुन, सुवर्ण की पुङ्ख (मूल) वाले, मुकुट में लगे हुए इन बाणों से ऐसे सुशोभित हुए, जैसे-सुवर्ण की माला धारण किये हुए सूर्य उदित हुए रहा हो ॥१८॥

हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः ।
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥१९॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने सुबाहु का हस्तत्राण, रण में अपने बाण से काट डाला और फिर इस पर बाणवर्षा करके उसको बाणों से व्याप्त कर दिया ॥१९॥

ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् ।
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत् ॥२०॥

अब सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधनु और सुबाहु ने दश २ बाण मार कर किरीटधारी अर्जुन को आहत कर डाला ॥२०॥

तांस्तु सर्वान्पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः ।
प्रत्यविध्यद् ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान् ॥२१॥

वानर के चिन्ह से विभूषित अर्जुन ने पृथक् २ बाण मार कर उन सब को बींध दिया, उनकी ध्वजा काट डाली और अपने बाणों से उनके बाण भी काट दिए ॥२१॥

सुधन्वनो धनुश्छित्वा हयांश्चाऽस्याऽवधीच्छरैः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत् ॥२२॥

अर्जुन ने सुधन्वा के धनुष को काट कर अपने बाणों से उनके अश्वों को भी आहत कर दिया तथा शिरस्त्राण के सहित इसके शिर को भी शरीर से पृथक् कर दिया ॥२२॥

तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
व्यद्रवन्त भयाद्भीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥२३॥

इसके मारे जाते ही उसके साथी घबड़ा गए और वे भयभीत होकर राजा दुर्योधन की सेना की ओर भागे ॥२३॥

ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम् ।
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांऽशुभिः ॥२४॥

इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने क्रोध में आकर अपने बाणसमूह से इस सेना का इस तरह संहार करना आरम्भ किया, जिस तरह अपने किरण जाल से सूर्य अन्धकार का नाश कर देता है ॥२४॥

ततो भग्ने बले तस्मिन्विप्रलीने समन्ततः ।
सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्त्तान्भयमाविशत् ॥२५॥

इस प्रकार सुधन्वा की सेना के भागने और इधर उधर छुप जाने तथा सव्यसाची अर्जुनके क्रोधाविष्ट हो जाने पर त्रिगर्तों में भय छा गया ॥२५॥

ते वध्यमानः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव ॥२६॥

झुके पर्ववाले बाणों से अर्जुन द्वारा बाधित किये हुए सैनिक, व्याकुल मृगों की तरह जहां तहां मूर्च्छित होने लगे ॥२६॥

ततस्त्रिगर्त्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ ॥२७॥

अब त्रिगर्तराज सुशर्मा ने क्रोध में भर कर उन महारथियों से कहा-हे शूरवीरो ! तुम भागो मत और न किसी प्रकार का भय करो॥

शप्त्वाऽथ शपथान्घोरान्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः ॥२८॥

हे महाभागो ! तुमने सारी सेनाओं के सन्मुख बड़ी २ शपथ खाकर रण यात्रा की थी, अब तुम दुर्योधन की सेना में जाकर क्या कहोगे ॥२८॥

नाऽवहास्याः कथं लोके कर्मणाऽनेन संयुगे ।
भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम् ॥२९॥

रण में इस कायरतां पूर्ण कर्म के करने से हम सब लोग क्यों नहीं उपहास को प्राप्त होंगे । तुमको अपने बल के अनुसार लौट कर युद्ध करना चाहिए ॥२९॥

एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः ।
शङ्खांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥३०॥

हे राजन् ! त्रिगर्तराज के इतना कहने पर वीर लोग, बार २ गर्जना करने लगे और उन्होंने शङ्ख बजाकर एक दूसरे को प्रफुल्लित किया ॥३०॥

ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः ।
नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि सुधन्ववधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥

इसके अनन्तर सारे संशप्तकगण, नारायण और गोपाल संज्ञक सैनिक, मृत्यु को ही युद्ध से पृथक् होने का केवल निमित्त जानकर युद्ध के लिए लौट पड़े ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में सुधन्वा के वध का अट्ठारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उन्नीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा तु सन्निवृत्तांस्तान्संशप्तकगणान्पुनः ।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अर्जुनने जब संशप्तकों को फिर लौटते देखा तो वे महावीर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहने लगे ॥१॥

चोदयाऽश्वान्हृषीकेश संशप्तकगणान्प्रति ।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥२॥

हे हृषीकेश ! अब तुम शीघ्र अश्वों को संशप्तकों की ओर हांको। ये जीवित रहते हुए संग्रामभूमि को नहीं छोड़ेंगे-मुझे यह निश्चय प्रतीत होता है ॥२॥

पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च ।
अद्यैतान्पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥३॥

अब तुम मेरी भुजा, अस्त्र और धनुष का घोर बल देखना। मैं इनको इस तरह गिरा देता हूं-जैसे क्रुद्ध हुआ रुद्रदेवता पशुओं को गिरा लेता है ॥३॥

ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम् ।
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥४॥

अर्जुन के इस कथन को सुनकर श्रीकृष्णने कुछ मुसकुराते हुए अर्जुन को धन्यवाद दिया और उन्होंने अर्जुन को वहां पहुंचा दिया, जहाँ वह जाना चाहता था॥४॥

स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा ।
उह्यमानमिवाऽऽकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥५॥

अश्वों के ऊपर चलता हुआ रथ, रण में बड़ा ही सुशोभित हो रहा था, मानो श्वेत अश्व किसी विमान को आकाश ही आकाश में ले जा रहे हों ॥५॥

मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च ।
यथा शक्ररथो राजन्युद्धे देवासुरे पुरा ॥६॥

हे राजन् ! देवासुर संग्राम में जिस तरह इन्द्र का रथ चक्कर लगाता था-उसी तरह अर्जुन का रथ भी मण्डल बनाकर रण में चक्कर लगा रहा था ॥६॥

अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥७॥

अब नारायणी सेना के वीरों ने क्रुद्ध होकर अनेक शस्त्र हाथ में लिए और उन्होंने धनञ्जय अर्जुन को अपने शर-समूह से सब ओर से ढक दिया ॥७॥

अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ ।
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥८॥

हे भरतर्षभ ! श्रीकृष्ण के सहित कुन्ती-पुत्र अर्जुन को इन नारायण वीरों ने थोड़ी ही देर में बाणों में अदृश्य कर दिया ॥८॥

क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः ।
गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥९॥

इस समय अर्जुन भी रण में क्रोधातुर होकर द्विगुण पराक्रम दिखाने लगा । इसने गाण्डीव. धनुष खैंचकर बहुत शीघ्र उठाया ।

बध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम् ।
देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः ॥१०॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने अपने मुख पर भ्रुकुटी चढ़ा ली, जो क्रोध का चिह्न है । इसके अनन्तर इसने देवदत्त नामक महाशङ्ख को बजाना आरम्भ किया ॥१०॥

अथाऽस्त्रमरिसङ्घघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः ।
ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन्पृथक्पृथक् ॥११॥

अब अर्जुन ने अरियों के समूह के नाशक त्वाष्ट्र नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे पृथक् २ सहस्रों रूप निकल पड़े ।

आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः ।
अन्योऽन्येनाऽर्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जघ्निरे॥१२॥

ये अपने समान ही अनेक रूप देखकर बड़े चकित हुए। ये एक दूसरे को अर्जुन समझ कर अपने ऊपर या अपने सैनिकों पर ही शस्त्राघात करने लगे ॥१२॥

अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ ।
इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥१३॥

यह अर्जुन है-यह श्रीकृष्ण है-इस प्रकार कहते हुए संशप्तक वीर, मोहित हुए परस्पर एक दूसरे को रण में मारने लगे ॥१३॥

मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् ।
अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥१४॥

इस त्वाष्ट्र नामक अस्त्र से मोहित हुए संशप्तक, परस्पर एक दूसरे को मार कर क्षीण होने लगे । ये योद्धा रण में रक्त में भीगे हुए रक्त पुष्पों से लदे हुए किंशुक (ढाक) वृक्ष से प्रतीत होते थे ।

ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् ।
कृत्वा तदस्त्रं तान्वीराननयद्यमसादनम्॥१५॥

इस त्वाष्ट्र नामक अस्त्र ने संशप्तक वीरों के छोड़े हुए, सहस्रों बाणों को भस्म करके मिट्टी में मिला दिया और उनके अनेक वीरों को यमराज के घर का अतिथि बनाया॥१५॥

अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान्मालवानपि ।
मावेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चाऽर्दयच्छरैः ॥१६॥

अब कुछ मुसकुराकर अर्जुन ने ललित्थ, मालव, मावेल्लक त्रिगर्त, और यौधेय आदि वीरों को अपने बाणों से आहत कर डाला ॥१६॥

ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥१७॥

वीर अर्जुन द्वारा पीड़ित किये हुए कालप्रेरित क्षत्रिय, अर्जुन पर नाना प्रकार के बाणसमूह को छोड़ने लगे ॥१७॥

न ध्वजो नाऽर्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥१८॥

इन वीरों के छोड़े हुए बाणसमूह की वर्षा से न तो अर्जुन, न कपिचिह्नाङ्कित ध्वजा, न रथ और न श्रीकृष्ण ही दिखाई देते थे ॥१८॥

ततस्तेऽलब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा ॥१९॥

यद्यपि संशप्तक वीरों का लक्ष्य सिद्ध नहीं हुआ था, तो भी कृष्णार्जुन मार लिए गए-वे ऐसा मानकर प्रसन्नता के चिह्न अपने दुपट्टों को उड़ाने लगे ॥१९॥

भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥२०॥

हे आर्यगुणसम्पन्न! राजन! ये सहस्रों संशप्तक वीर भेरी मृदङ्ग, और शङ्खों को बजाकर उग्र सिंहनाद करने लगे ॥२०॥

ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चाऽर्जुनमब्रवीत्।
क्वाऽसि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥

इस समय श्रीकृष्ण के शरीर से स्वेद (पसीना) गिरने लगा। वे कुछ दुःखी हो कर अर्जुन से बोले—हे शत्रुघाती! अर्जुन! तुम कहां हो, दिखाई नहीं दे रहे हो-जीवित तो हो ॥२१॥

तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥२२॥

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर धनञ्जय अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता से वायव्यास्त्र का प्रयोग किया और उन वीरों की छोड़ी हुई बाण वृष्टि को छिन्न भिन्न कर दिया ॥२२॥

ततः संशप्तकव्रातान्साश्वद्विपरथायुधान्।
उवाह भगवान्वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥२३॥

अब अश्व, हाथी, रथ और अस्त्रों के सहित संशप्तक वीरों को सूखे पत्तों की ढेरी को भगवान् वायु, की तरह अर्जुन उड़ाने लगा

उह्यमानास्तु ते राजन्बह्वशोभन्त वायुना।
प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥२४॥

हे आर्य! वायु से उड़ाये हुए संशप्तक वीर इस तरह अत्यन्त सुशोभित होने लगे-जैसे वृक्षों से उड़े हुए पक्षी सुशोभित होते हैं

तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥२५॥

बड़ी शीघ्रता से उन वीरों को व्याकुल करके धनञ्जय अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में वीर काट गिराए।

शिरांसि भल्लैरहरद्बाहूनपि च सायुधान् ।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरूञ्छरैरुर्व्यामपातयन् ॥२६॥

अर्जुन ने अपने बाणों से संशप्तकों के शिर, आयुधों सहित भुजाएँ, हाथी की सूंड के समान सुडोल जंघाएँ काट कर रणभूमि में गिरा दी ॥२६॥

पृष्ठच्छिन्नान्विचरणान्बाहुपार्श्वेक्षणाकुलान् ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकाराऽरीन्धनञ्जयः ॥२७॥

अर्जुन ने बहुत से वीरों की पीठ काट डाली; चरण काट दिए; बहुतों को बाहु, पसली, और आंखों से हीन कर दिया। इस प्रकार बहुत से शत्रुओं को अनेक अङ्गों से हीन कर दिया ॥२७॥

गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
शरैर्विशकलीकुर्वंश्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥२८॥

गन्धर्व नगर के समान उड़ने वाले विधि-पूर्वक बनाये हुए, रथों को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न करके अर्जुन, सेना को रथ, हाथी और अश्वों से हीन करने लगे ॥२८॥

मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे ।
छिन्नरथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित्क्वचित् ॥२९॥

जिन रथों की ध्वजाएँ कट गई, वे जहाँ तहां कटे छटे हुए तालवन के समान प्रतीत होते थे ॥२६॥

सोत्तरायुधिना नागाः सपताकांकुशध्वजाः ।
पेतुः शक्राशनिहता द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥३०॥

उत्तम २ आयुधों से युक्त पताका, ध्वजा और अंकुश से सुशोभित हाथी, इन्द्र के वज्र से आहत हुए वृक्षों से सम्पन्न पर्वतों की तरह गिरने लगे ॥३०॥

चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा ।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ ॥३१॥

अर्जुन के बाण से आहत होकर अश्व, अपने सवारों के साथ पृथिवी में गिरने लगे, जिन्होंने चंवर माला और कवच पहन रखे थे; उनमें बहुत से अश्वों की आंतें कट गई और आंखें फूट गई।

विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः ॥३२॥

तीक्ष्ण तलवार से कटे हुए, कवच ऋष्टि और शक्ति के छिन्न भिन्न हो जाने तथा कवचों के कट जाने से बेचारे पैदल सैनिक मर २ कर भूमि में गिरने लगे ॥३२॥

तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि ।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ ॥३३॥

बहुत से मरे हुए मारे जाते हुए, रणभूमि में पड़े हुए और और गिराये जाते हुए तथा घूमते हुए और कहराते हुए वीरों से रण स्थान बहुत ही क्रूर दिखाई दे रहा था ॥३३॥

रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।

मही चाऽप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसंकुला ॥३४॥

रणाङ्गण में उठी हुई, रज, रक्त की वर्षा से शान्त हो गई। सैंकड़ों कबन्धों से भरी हुई रणभूमि, चलने के लिए बड़ी ही दुर्गम बन गई ॥३४॥

तद्बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे ।

आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥३५॥

इस समय रण में अर्जुन का रथ बड़ा ही भयानक और बीभत्स दिखाई देता था, मानो प्रलय काल में पशुओं (प्राणियों) को मारते हुए रुद्र का क्रीड़ास्थान हो ॥३५॥

ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः ।

तमेवाऽभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्याऽतिथितां गताः ॥

अर्जुन से मारे हुए रथी और हाथी व्याकुल होगए। वे क्षीण हुए अर्जुन के रथ की ही ओर दौड़े, जिससे स्वर्ग में जाकर इन्द्र के अतिथि बन गए ॥३६॥

सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः ।

आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥३७॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मारे हुए उन महारथी वीरों से रणभूमि इतनी व्याप्त हो गई, मानो सारी भूमि, प्रेतों के निवास या श्मशानरूप में बदल गई हो ।।३७।।

एतस्मिन्नन्तरे चैवः प्रमत्ते सव्यसाचिनि ।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।।३८।।

इस प्रकार जब सव्यसाची अर्जुन, संशप्तक गणों के वध में संलग्न था, उसी समय व्यूह रचना से सुदृढ़ सेना को लेकर द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ।।३८।।

तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ।।३९।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुनसंशप्तकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

प्रहार करने में कुशल, व्यूह रचना में सुदृढ़, पाण्डव सैनिक भी राजा युधिष्ठिर की सहायता करने को बड़ी शीघ्रता से लपके। इस समय दोनों सेनाओं में घोर युद्ध प्रवृत्त हो गया ।।३९।।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में अर्जुन संशप्तक युद्ध का उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

बीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः ।
उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥१॥
विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह ।
निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥२॥
व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् ।
अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥३॥

सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! भरद्वाज पुत्र महारथी द्रोणाचार्य वह रात व्यतीत करके और बहुत से शान्तिमय वचन सुयोधन को सुनाकर तथा अर्जुन का संयोग संशप्तक गणों के साथ करके एवं संशप्तकों के वध के निमित्त अर्जुन के चले जाने पर अपनी सेना का व्यूह बनाकर पाण्डवों की विशाल सेना पर आक्रमण किया। हे भरतश्रेष्ठ ! उनका उद्देश्य धर्मराज को पकड़ लेना था ॥१-३॥

व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा ।
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः ।
मुखं त्वासीत्सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ॥४॥
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ।
चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद्गौतमश्चाऽस्यतां वरः ॥५॥

भरद्वाज वंशोद्भव द्रोणाचार्य द्वारा गरुड़व्यूह देखकर राजा युधिष्ठिर ने भी अपनी सेना का मण्डलार्ध व्यूह बनाया। इस गरुड़व्यूह का मुख स्वयं महारथी आचार्य द्रोण थे। अपने भ्राता और अनुचरों के साथ राजा दुर्योधन इस व्यूह के शिर थे। कृतवर्मा और बाण फैंकने वालों में श्रेष्ठ, गौतमवंशोत्पन्न, कृपाचार्य इसकी आंख थे ॥४-५॥

भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान्।
कलिङ्गाः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः ॥६॥
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये।
ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥७॥

भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, वीर्यवान करकाश, कलिङ्ग सिंहल, प्राच्य, शूरवीर आभीर, दशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूरसेन, दरद मद्र, केकय, इस गरुड़ पक्षी की ग्रीवा बनाये गए॥

गजाश्वरथपत्त्योघास्तस्थुः परमदंशिताः।
भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥८॥
अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥९॥
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः।

गज, अश्व, रथ पैदल सैनिकों के समूह, बड़ी सन्नद्धता से युद्ध में स्थित थे। भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त, बाल्हीक एक अक्षौ-

हिणी सेना लेकर इस गरुड़व्यूह के दक्षिण पक्ष पर स्थित थे। अवन्तीराज कुमार, विन्द, अनुविन्द काम्बोजाधिपति सुदक्षिण, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आदि को आगे करके वीरों के बांये पार्श्व पर स्थित हुए ॥८-९॥

पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥
गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः पार्वतीया वसातयः ।

पृष्ठ की ओर कलिङ्ग, अम्बष्ठ, मागध, पौण्ड्र, मद्रक, गान्धार, शकुन, प्राच्य, पर्वतीय, वसाति वीर स्थित हुए ॥१०॥

पुच्छे वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिबान्धवः ॥११॥
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया ।

इस गरुड़व्यूह की पुच्छपर अपने पुत्र, जाति और बान्धवों के साथ कर्ण स्थित हुए, जिनके साथ अनेक देशों के राजाओं की बहुत सी सेना थी ॥११॥

जयद्रथो भीमरथः सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥१२॥
भूमिञ्जयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः ।
वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपरिष्कृतः ॥१३॥
व्यूहस्योरसि ते राजन्स्थिता युद्धविशारदाः ।

हे राजन् ! जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिञ्जय वृषक्राथ, महाबली निषधराज,-ये युद्धविशारद राजा बहुत सी सेना से घिरे हुए तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति में परायण हुए, इस गरुड़ व्यूह के वक्षस्थल बनाये गए ॥१२-१३॥

द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ॥१४॥
वातोद्धूतार्णवाकरः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ।

इस व्यूह को पैदल, अश्व, रथी और हाथियों से द्रोण ने बनाया था। यह वायु से उछाले हुए समुद्र के सदृश उछलता सा दिखाई देता था ॥१४॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥१५॥
सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे ।

इस व्यूह के पक्ष और प्रपक्षों में युद्धोत्सुक वीर उछल रहे थे, जैसे वर्षा ऋतु में बिजली के सहित गर्जते हुए मेघ उमड़ते हैं।

तस्य प्राग्जोतिषो मध्ये विधिवत्कल्पितं गजम् ॥१६॥
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ।

हे राजन् ! इस व्यूह के मध्य में युद्ध के ढंग से खड़े किये हुए हाथी पर राजा भगदत्त इस तरह सुशोभित हुए, जैसे-उदय पर्वत पर सूर्य निकला हो ॥१६॥

माल्यदामवता राजञ्श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥१७॥
कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।

हे राजन् ! मालाओं से विभूषित, श्वेतच्छत्र से राजा भगदत्त ऐसे सुन्दर प्रतीत होते थे, जैसे कृतिका के योग से युक्त पूर्णिमा को चन्द्रमा होते हैं ॥१७॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ॥१८॥
अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात्पर्वतो महान् ।

नीले अञ्जन की राशि के तुल्य, मदान्ध राजा भगदत्त का गजराज, बहुत से मेघों से सींचे हुए महान् पर्वत के सदृश दिखाई पड़ता था ॥१८॥

नानानृपतिभिर्वीरैर्विधायुधभूषणैः ॥१९॥
समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।

इस के साथ अनेक शस्त्र और भूषणधारी, पर्वत प्रदेश के अधिपति अनेक राजा थे, जिनसे यह देवों से इन्द्र की तरह सुशोभित था ॥१९॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥२०॥
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् ।

राजा युधिष्ठिर, मनुष्य से नहीं बनने योग्य, रण में शत्रुओं से नहीं जीते जाने वाले इस अभेद्य व्यूह को देखकर पर्षत वंशोद्भव सेनापति धृष्टद्युम्न से यह वचन बोले ॥२०॥

ब्राह्मणस्य वशं नाऽहमियामद्य यथा प्रभो ।
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥२१॥

हे कपोतों के सदृश वर्ण वाले अश्वों के रथ में स्थित, धृष्टद्युम्न ! आज मैं जिस तरह ब्रह्मवंश श्रेष्ठ, आचार्य द्रोण के वश में न आ सकूं, तुम वही उपाय करो ॥२१॥

धृष्टद्युम्न उवाच—

द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥२२॥

धृष्टद्युम्न ने कहा—हे व्रतशील ! राजन् ! तुम आज कभी द्रोणाचार्य के बन्धन में नहीं आ सकते हो-चाहे वह कितना ही प्रयत्न करे। मैं आज सेना के सहित द्रोणाचार्य को बिल्कुल रोके रखूंगा ॥२२॥

मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्त्तुमर्हसि ।
नहि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथञ्चन ॥२३॥

हे कुरुवंश श्रेष्ठ ! जब तक मैं जीवित हूँ-तब तक तुम क. कुछ उद्वेग नहीं करना चाहिये। आचार्य द्रोण, रण में मुझे कभी नहीं जीत सकते हैं ॥२३॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा किरन्बाणान्द्रुपदस्य सुतो बली ।
पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥२४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इतना कहकर कबूतर के रंग के अश्वों से विभूषित रथ में स्थित हुआ, द्रुपद-पुत्र महाबली धृष्ट-द्युम्न, स्वयं द्रोणाचार्य पर झपटा ॥२४॥

अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्षणेनैवाऽभवद् द्रोणो नाऽतिहृष्टमना इव ॥२५॥

अपने सन्मुख अनिष्ट दर्शनवाले धृष्टद्युम्न को देखकर थोड़ी देरके लिए द्रोणाचार्य उदास से हो गए ॥२५॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥२६॥

भारत ! सेनापति धृष्टद्युम्न को आगे बढ़ता देखकर तुम्हारा पुत्र, शत्रुविजयी, दुर्मुख, द्रोणाचार्य की सहायता के निमित्त धृष्टद्युम्न के रोकने में तत्पर हुआ ॥२६॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत ।
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥२७॥

हे भरतर्षभ ! इस समय पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न और शूरवीर दुर्मुख में बड़ा ही घोर युद्ध हुआ ॥२७॥

पार्षतः शरजालेन क्षिप्रम्प्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥२८॥

सेनापति धृष्टद्युम्न, अपने बाण-जाल से शीघ्र ही दुर्मुख को पाट कर अपने उसी ढंग के महान् बाणसमूह से द्रोणाचार्य पर वर्षा करने लगा ॥२८॥

द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवाऽऽत्मजः ।
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् ॥२९॥

आचार्य द्रोण को धृष्टद्युम्न के बाणों से आच्छादित देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्मुख बड़ा ही सटपटाया । उसने अनेक तरह का बाणसमूह छोड़कर पर्षत राजकुमार धृष्टद्युम्न को चकित कर दिया ॥

तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः ।
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥३०॥

पाञ्चाल और कुरुवंशश्रेष्ठ इन दोनों वीरों के युद्ध में संलग्न हो जाने पर द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर की सेना को अपने बाणों से छेद डाला ॥३०॥

अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः।
तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित्क्वचित्

वायु द्वारा जैसे मेघ इधर उधर फैंक दिए जाते हैं, उसी तरह राजा युधिष्ठिर की सेना को जहां तहां से द्रोणाचार्य ने छिन्न भिन्न कर दिया ॥३१॥

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्त्तत ॥३२॥

हे राजन् ! थोड़ी देर तक तो यह युद्ध नियमानुसार होने से देखने के योग्य रहा, परन्तु फिर उन्मत्तों की भांति मर्यादा छोड़कर चल पड़ा ॥३२॥

नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत्समवर्तत ॥३३

हे राजन् ! इस समय अपने पराए का भी कुछ ज्ञान नहीं होता था, केवल अनुमान या आह्वान करके यह युद्ध होने लगा ॥३३॥

चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु ।
तेषामादित्मवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥३४॥

इन वीरों की चूड़ामणि, हार, आभूषण और कवचों से सूर्य के वर्ण के समान उज्ज्वल किरणें निकलने लगी ॥३४॥

तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे ॥३५॥

इस समय फैली हुई पताका तथा रथ हाथी और अश्वों से बलाकाओं से चित्रित मेघों की तरह रणभूमि का रूप हो रहा था।

नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् ।
रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥३६॥

इस घोर रण में वीर वीरों, शक्तिशाली अश्व—अश्वों, रथी रथियों और हाथी-हाथियों को मार रहे थे ॥३६॥

समुच्छ्रितपताकानां गजानां परमद्विपैः ।
क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ॥३७॥

जिन हाथियों पर झण्डे लगे हुए थे, उनका मदोन्मत्त हाथियों के साथ महाघोर संग्राम होने लगा ॥३७॥

तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसङ्घातसङ्घर्षात्सधूमोऽग्निरजायत ॥३८॥

इनके शरीरों की टक्कर तथा एक दूसरे के आकर्षण एवं दाँत समूहों के संघर्ष से धूमसहित अग्नि सी उठने लगी ॥३८॥

विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाऽम्बुदाः ॥३९॥

इन हाथियों पर झण्डे तो उड़ ही रहे थे, अब ज्यों ही दांतों की टक्कर से आग निकली, वह आकाश में बिजली के सहित मेघों की सी कान्ति धारण करने लगी ॥३९॥

विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।
सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव शारदी ॥४०॥

कोई २ हाथी दूसरे हाथी को फैंक देते थे, कोई चिंघाड़ मार रहे थे, कोई आहत होकर गिर रहे थे, उस तरह थोड़ी देर में पृथिवी शरद्कालीन मेघों की तरह व्याप्त हो गई ॥४०॥

तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरऋष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव सम्प्लवे ॥४१॥

बाण, तोमर और ऋष्टि आदि शस्त्रों से वीरों द्वारा आहत हुए हाथी, ऐसी चिंघाड़ मार रहे हैं, जिनसे मेघ के उमड़ने के समय गर्जना की सी प्रतीति होती है ॥४१॥

तोमराभिहताः केचिद्बाणैश्च परमद्विपाः ।
विनेसुः सर्वनागानां शब्दमेवाऽपरेव्रजन् ॥४२॥

कुछ महागज, तोमरों से और कुछ बाणों से आहत हुए बड़ा ही चीत्कार करते हुए दुःखी हो रहे थे। वीर लोग तो अब रण भूमि में केवल हाथियों के ही शब्द सुन पाते थे ॥४२॥

विषाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥४३॥

एक हाथी दूसरे हाथी के दाँत की टक्कर खाकर बड़ा घोर आर्तनाद करते थे, जो उत्पात-कालीन मेघ से प्रतीत होते थे ॥४३॥

प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमांकुशैः ॥४४॥

कुछ हाथी मदोन्मत्त हाथियों द्वारा रण विमुख किये हुए, महावतों के पैने अंकुशों के आघात से सेना को मथते हुए फिर लौट रहे थे ।।४४।।

महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः ।
गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ।।४५।।

एक महावत दूसरे महावत को बाण और तोमरों से घायल कर रहे थे। ये अपने शस्त्र और अंकुश छोड़ २ कर हाथियों की पीठ से नीचे गिर रहे थे ।।४५।।

निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्परम् ।।४६।।

अब अपने सवारों से रहित हुए हाथी, चिंघाड़ मारते हुए इधर उधर भाग रहे थे। ये एक दूसरे से टकराकर छिन्न भिन्न मेघ की तरह गिरते जा रहे थे ।।४६।।

हतान्परिवहन्तश्च पतितान्पतितायुधान् ।
दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ।।४७।।

कुछ हाथी मरे हुए गजारोही वीरों के लिए हुए ही भाग रहे थे और कुछ बड़े २ हाथी वीरों के गिरजाने या उनके अंकुश आदि साधनों के गिरने पर अकेले घूमने वाले वनैले हाथी की भाँति अपनी २ अभीष्ट दिशाओं को भाग रहे थे ।।४७।।

ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
पेतुरार्त्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ।।४८।।

उस महान् मार-काट से भीषण युद्ध में तोमर, ऋष्टि और परशुओं से आहत किये हुए या किये जाते हुए हाथी, आर्तनाद करके रणभूमि में गिर रहे थे ॥४८॥

तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः ।

आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ॥४९॥

सब ओर पर्वतों के समान देहधारी इन हाथियों के गिरने से एक दम भूमि पीड़ित हो गई और वह विकम्पित होकर आर्तनाद सा करने लगी ॥४९॥

सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।

मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकोर्णैरिव पर्वतैः ॥५०॥

गजारोहियों और पताकाओं सहित मारे हुए हाथियों से भूमि ऐसी प्रतीत होने लगी, जैसे उस पर बहुत से पर्वत छिन्न भिन्न होकर गिर गए हों ॥५०॥

गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।

रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णाङ्कुशतोमराः ॥५१॥

रण में हृदय आदि के कट जाने पर भी महावत हाथियों पर ही बैठे रहे। उनके अंकुश या तोमर आदि शस्त्र गिर चुके। अब रथियों ने बाण मार २ कर उनको नीचे गिराया ॥५१॥

क्रौञ्चवद्विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः ।

परान्स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥५२॥

महारथियों के बाणों से आहत हुए हाथी क्रौञ्च पक्षी की भांति चिल्लाकर अपने पराये सारे सैनिकों को कुचलते हुए दशों दिशाओं को भाग रहे थे ॥५२॥

गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता ।
बभूव पृथिवी राजन्मांसशोणितकर्दमा ॥५३॥

हे राजन् ! गज, अश्व, योद्धाओं के सहस्रों शरीरों से व्याप्त, पृथिवी माँस और रक्त की कीचड़ से भर गई ॥५३॥

प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः ।
सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥५४॥

अपने दांतों के अग्रभाग से चकनाचूर करके हाथियों द्वारा फके हुए रथोंके सहित महारथी, नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। इनमें बहुतसे रथों के चक्र टूट गए और बहुत से चक्रसहित ही फैंक दिए गए।

रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः ॥५५॥

अब रथ तो रथियों से रहित हो गए तथा अश्व, अश्वारोहियों और गज, गजारोहियों से हीन होकर भयभीत हुए दशों दिशाओं को भागने लगे ॥५५॥

जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥५६॥

इस युद्ध में पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मार रहे थे। यह इतना घोर घमसान युद्ध था, कि इसमें कुछ भी पता नहीं लगता था ॥५६॥

आगुल्फेभ्योऽवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः ।
दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥५७॥

रक्त की कीचड़ में वीरों के गुल्फ (टखने) सहित पैर घुस जाते थे। ये रक्त में भीगे हुए वीर, प्रदीप्तवन की आग से जलाये जाते हुए बड़े २ वृक्ष से प्रतीत होते थे ॥५७॥

शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च ।
छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥५८॥

रक्त से भिगोये गए इन वीरोंके वस्त्र, कवच, छत्र और पताका सारी लाल ही लाल हो रही थीं ॥५८॥

हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
संक्षुण्णाः पुनरावृत्त्य बहुधा रथनेमिभिः ॥५९॥

रण में गिराये हुए अश्व, रथ और वीरों के समूह को लौट २ कर आने वाले रथों ने और भी चकनाचूर कर दिया ॥५९॥

सगजौघमहावेगः परासुनरशैवलः ।
रथौघतुमुलावर्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥६०॥

यह सेना, समुद्र सी ज्ञात होती थी, जिसका गजसमूह तो महान् जलराशि था। मृतकवीर शैवाल से थे और रथों का समूह बहुत से भँवर प्रतीत होते थे ॥६०॥

तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः ।
अवगाह्याऽथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ॥६१॥

जयरूपी धन के अभिलाषी योद्धारूपी व्यापारी, अपने वाहन रूपी नौकाओं से युक्त हुए, इस समुद्र में उतर कर गोते खाने से भी नहीं हिचकते थे ॥६१॥

शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वञ्चितलक्ष्मसु ।
न तेष्वचित्ततां लेभे कश्चिदाहतलक्षणः ॥६२॥

बाणवर्षा के होने के समय अपने २ चिह्न से अङ्कित योद्धाओं पर कोई भी अपने ध्वजा आदि चिह्नों से रहित वीर, उदासी या स्पर्धा प्रकट नहीं करते थे ॥६२॥

वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान्द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार जब घोर भयानक युद्ध प्रवृत्त हो रहा था, तो शत्रु सैनिकों को मोहित करके आचार्य द्रोण ने राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में घोर
का बीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इक्कीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वाऽन्तिकमुपागतम् ।
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जब राजा युधिष्ठिर ने देखा, कि आचार्य द्रोण समीप आ गए हैं, तो वे निर्भीक रहकर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगे ॥१॥

ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे बले ।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम् ॥२॥

इस समय राजा युधिष्ठिर की सेना में बड़ा हाहाकार मच गया, जैसे गजों के यूथपति को पकड़ने को सिंह के आक्रमण करने पर अन्य हाथियों में खलबली पड़ जाती है ॥२॥

दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
युधिष्ठिरमभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥३॥

जब सत्य पराक्रम कर दिखाने वाले शूरवीर सत्यजित् ने द्रोणाचार्य को समीप देखा-तो वह राजा युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त द्रोणाचार्य पर झपटा ॥३॥

तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते महाबलौ ।
विक्षोभयन्तौ तत्सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥४॥

इस समय महाबली पाञ्चाल वीर सत्यजित और द्रोणाचार्य, परस्पर युद्ध करने लगे। इनका युद्ध इन्द्र और बलिके तुल्य भीषण था, जिसको देखकर दोनों सेनाएँ विक्षोभित हो उठी ॥४॥

ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन् ॥५॥

अपने उत्तम २ अस्त्रों की कुशलता प्रकट करते हुए सत्य पराक्रमी महाधनुर्धर सत्यजित् ने तीक्ष्ण नोक वाले बाण से द्रोण को बींध दिया ॥५॥

तथाऽस्य सारथेः पञ्च शरान्सर्पविषोपमान् ।
अमुञ्चदन्तकप्रख्यान्संमुमोहाऽस्य सारथिः ॥६॥

इसके अनन्तर सत्यजित् ने द्रोणाचार्य के सारथि पर सर्प के विषके तुल्य भयानक कालोपम, पांच बाण छोड़े, जिससे इनका सारथि मूर्च्छित हो गया ॥६॥

अथास्य सहसाऽविध्यद्धयान्दशभिराशुगैः ।
दशभिर्दशभिः क्रुद्धः उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥७॥

फिर सत्यजित् ने क्रोध में भर कर द्रोणाचार्य के अश्वों को एक दम दश बाणों से आहत करके पार्ष्णि (एड़ी) रक्षक और सारथि को भी दश २ बाणों से क्षतविक्षत कर दिया ॥७॥

मण्डलं तु समावृत्त्य विचरन्पृतनामुखे ।
ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्याऽमित्रकर्षणः ॥८॥

शत्रुविजयी सत्यजित् ने मण्डल बनाकर सेना के अग्रभाग मना आरम्भ किया। इसने क्रोधाविष्ट होकर द्रोणाचार्य की ध्वजा काट डाली ॥८॥

द्रोणस्तु ततसमालोक्य चरितं तस्य संयुगे।
मनसा चिन्तयामास प्राप्तकालमरिन्दमः ॥९॥

द्रोणाचार्य ने जब सत्यजित् का इस प्रकार रण में पराक्रम देखा-तो मन में समझा, कि क्या अब अन्तिम काल ही उपस्थित हो गया है ॥९॥

ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्वाऽस्य सशरं धनुः ॥१०॥

अब आचार्य द्रोण ने भी शीघ्रता-पूर्वक इसके बाणयुक्त धनुष को काट कर मर्मभेदी दश तीक्ष्ण बाणों से सत्यजित को बींध दिया ॥१०॥

स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत्प्रतापवान्।
द्रोणमभ्यहनद्राजस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ॥११॥

हे राजन्! प्रतापी सत्यजित् ने भी बड़ी शीघ्रता से दूसरा धनुष उठाया और तीस कङ्कपत्ती के पत्रों से विभूषित बाणों से द्रोण को आहत (घायल) कर दिया ॥११॥

दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाऽऽहवे।
वृकः शरस्तैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्योद्रोणमार्दयत् ॥१२॥

सैनिकों ने देखा, कि रण में सत्यजित् ने द्रोणाचार्य को दबा सा लिया है। अब भेड़िए के तुल्य पाञ्चालवीर ने अपने सैंकड़ों बाणों से आचार्य द्रोण को अत्यन्त ही क्षतविक्षत कर दिया ॥१२॥

सञ्छाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् ।

चुक्रुशुः पाण्डवा राजन्वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥१३॥

हे राजन्! महारथी द्रोण को सत्यजित् द्वारा रण में दाबा हुआ देखकर पाण्डव गर्जना करने और हर्षसूचक अपने वस्त्र उछालने लगे ॥१३॥

वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे ।

विव्याध बलवान्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥१४॥

हे राजन्! इस भेड़िये के तुल्य बलवान् सत्यजित् ने अत्यन्त कुपित होकर द्रोणाचार्य के वक्षस्थल में साठ बाण मार कर उसे छेद डाला। यह बड़ा ही आश्चर्य-जनक कृत्य था ॥१४॥

द्रोणस्तु शरवर्षेण च्छाद्यमानो महारथः ।

वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥१५॥

अब आचार्य द्रोण ने क्रोध में भर कर अपनी आखें चढ़ाई और महावेगधारी महारथी द्रोण, वेग-पूर्वक सत्यजित् को बाण वर्षा से आच्छादित करने लगा ॥१५॥

ततः सत्यजितश्चापं छित्वा द्रोणो वृकस्य च ।

षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद्वृकम् ॥१६॥

इस के अनन्तर द्रोणाचार्य ने वृकवत् पराक्रमी सत्यजित् के धनुष को काट डाला और छः बाण छोड़कर चार अश्व, एक सारथि और स्वयं सत्यजित् को भी बुरी तरह आहत कर दिया ॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥१७॥

सत्यजित् ने फिर दूसरा वेगशाली धनुष लिया और इसने भी अपने बाणों से अश्व, सारथि और ध्वजासहित द्रोणाचार्य को बींध डाला ॥१७॥

स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनाऽर्दितो मृधे ।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥१८॥

द्रोणाचार्य ने पाञ्चालवीर सत्यजित् के इस प्रहार को क्षमा नहीं किया किन्तु उसके विनाश के लिए बड़े वेग से बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥१८॥

हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।
अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥१९॥

अब आचार्य द्रोण ने सहस्रों बाण छोड़कर सत्यजित् के अश्व, ध्वजा धनुष की मुष्टि, पार्ष्णिरक्षक और सारथि को छेद डाला ॥

तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥२०॥

इस प्रकार बार २ धनुषों के काट गिराने पर भी अस्त्र विद्या में कुशल पाञ्चालवीर सत्यजित्, रक्त अश्वों के रथ वाले द्रोणाचार्य से युद्ध करता रहा ॥२०॥

स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥२१॥

इस महायुद्ध में आचार्य द्रोण ने जब देखा कि सत्यजित् बहुत आगे बढ़ गया है, तो उसने अर्धचन्द्र नामक बाण से इस महावीर सत्यजित् का शिर काट डाला ॥२१॥

तस्मिन्हते महामात्रे पञ्चालानां महारथे ।
अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात्त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥२२॥

इस महाबलवान् पाञ्चाल महारथी सत्यजित् के मार लेने पर अपने वेगशील अश्वों के द्वारा राजा युधिष्ठिर, बड़े खेद के साथ द्रोण के सामने से हट गए ॥२२॥

पञ्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥२३॥

इस घटना को देखकर पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारूष कोशल देश के वीर राजा युधिष्ठिर की सहायता के निमित्त द्रोणाचार्य पर झपटे ॥२३॥

ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवाऽनलः ॥२४॥

शत्रुसमूहनाशक, द्रोणाचार्य, राजा युधिष्ठिर को पकड़ना चाहते थे, इससे उन्होंने रुई की[1] ढेरी को अग्नि की तरह इन सारे वीरों की सेना को भस्म करना आरम्भ किया ॥२४॥

निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः ।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥२५॥

जब मत्स्यदेशके अधिपति विराटराज के छोटे भाई शतानीक ने देखा, कि द्रोणाचार्य, सेनाओं को भस्म कर रहे हैं, तो वे उनके सन्मुख पहुंचे ॥२५॥

सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विध्वाऽनदद्भृशम् ॥२६॥

शतानीक, सूर्य की किरण के समान तीक्ष्ण, शाण पर शुद्ध किये हुए छः बाणों से सारथि, अश्व और द्रोणाचार्य को बींध कर बड़े उच्चस्वर में गर्जना करने लगा ॥२६॥

क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।
अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥२७॥

शतानीक, क्रूरकर्म (मारकाट) करने में तत्पर होकर रण में दुष्कर कर्म कर दिखाना चाहता था। इसने महारथी भरद्वाजपुत्र, द्रोणाचार्य को सैकड़ों बाणों से पाट दिया ॥२७॥

तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
क्षुरेणाऽपाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥२८॥

शतानीक इस प्रकार बार २ अत्यन्त गर्जना कर रहा था, कि द्रोणाचार्य ने कुण्डलों से विभूषित शतानीक के शिर को क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण से काट डाला, जिसे देखकर सारे मत्स्यवीर भाग गए ॥२८॥

मत्स्याञ्जित्याऽजयच्चेदीन्करूषान्केकयानपि ।
पञ्चालान्सृञ्जयान्पाण्डून्भारद्वाजः पुनः पुनः ॥२६॥

भरद्वाजवंशोद्भव आचार्य द्रोण ने मत्स्यों को जीत कर इसी तरह एक २ करके चेदि, करूष, केकय, पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवों की सेना को जीत लिया ॥२६॥

तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं वीरं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥३०॥

अग्नि की भांति प्रज्वलित होकर सेना को दग्ध करते हुए, क्रोधाविष्ट सुवर्णोज्ज्वल रथ के धारी, वीर द्रोणाचार्य को देखकर सृञ्जय वीर कांप उठे ॥३०॥

उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याऽऽशुकारिणः ।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान्दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥३१॥

बड़ी शीघ्रताकारी, उत्तम धनुष हाथ में लेने वाले, शत्रुओं के नाशकारी, द्रोणाचार्य की प्रत्यञ्चा का शब्द रणभूमि में सब दिशाओं में सुना जा रहा था ॥३१॥

नागानश्वान्पदातींश्च रथिनो गजसादिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥३२॥

हाथी, अश्व, पैदल, रथी, गजारोही वीरों, को हस्तकौशलधारी द्रोणाचार्य द्वारा छोड़े हुए बाण, मथने लगे ॥३२॥

नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये ।
अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेषां भयमादधत् ॥३३॥

शीतकाल के व्यतीत होने पर वायु से युक्त, बार २ गर्जते हुए मेघों से जल के पत्थर बरसाने की तरह शत्रुओं को भय उत्पन्न करते हुए द्रोणाचार्य, बाण वर्षा करने लगे ॥३३॥

सर्वा दिशः समचरत्सैन्यं विक्षोभयन्निव ।
बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥३४॥

सारी सेना को विह्वल करते हुए महाधनुर्धर, मित्रों को अभय करने वाले, महाबली शूरवीर द्रोणाचार्य, सारी दिशाओं में घूमने लगे॥

तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्याऽमिततेजसः ॥३४॥

अत्यन्त तेजस्वी द्रोणाचार्य का सुवर्णोज्ज्वल धनुष, बादलों में चमकती हुई बिजली की भांति रणभूमि में दिखाई देरहा था ॥

शोभमानां ध्वजे चाऽस्य वेदीमद्राक्ष्म भारत ।
हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे भृशम् ॥३६॥

हे भारत ! रण में घूमते हुए द्रोणाचार्य की ध्वजा में अत्यन्त सुशोभित, हिमालय की शिखर के समान आकारधारी वेदी का चिन्ह, दिखाई देरहा था ॥३६॥

द्रोणस्तु पाण्डवानीकं चकार कदनं महत् ।
यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥३७॥

द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सेना में बहुत ही मारकाट मचाई, जैसे सुर असुरों में प्रतापी विष्णु ने दैत्य गणों के मध्यमें मारकाट की थी ॥३७॥

स शूरः सत्यवाक्प्राज्ञो बलवान्सत्यविक्रमः ।
महानुभावः कल्पान्ते रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥३८॥
कवचोर्मिध्वजावर्त्तां मर्त्यकूलापहारिणीम् ।
गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥३९॥
वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम् ।
चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥४०॥
शरौघिणीं धनुः स्रोतां बाहुपन्नगसङ्कुलाम् ।
रणभूमिवहां तीव्रां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ॥४१॥
मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम् ।
उष्णीषफेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ॥४२॥
वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् ।
हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥४३॥
क्रूरां शरीरसङ्घट्टां सादिनक्रां दुरत्ययाम् ।
द्रोणः प्रावर्त्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥४४॥

सत्यवादी, सत्यपराक्रमी, शूरवीर बलवान् महानुभाव द्रोणाचार्य ने प्रलयकालमें महाभयानक प्रवृत्त होनेवाले जलप्रवाह के समान भीषण नदी प्रवाहित करदी। जिसमें कवच तो लहरें थी, ध्वजाएं भँवर थे। मनुष्यरूपी तटोंको गिरा रही थी। इसमें गज और अश्व बड़े २ ग्राह प्रतीत होते थे। जो तलवार रूपी मत्स्यों से युक्त और दुर्गम थी। वीरों की अस्थियों की इसमें बालू थी और भेरी तथा

मुरज आदि कच्छप के तुल्य थे, इनसे यह बड़ी रौद्र दिखाई देती थी। इसमें ढ़ाल और कवचों की नौका थी। वीरों के बाल शिवाल और दूर्वा सी दिखाई देते, थे जिनसे इसका बड़ा घोर रूप दिखाई देता था। बाणों का समूह प्रवाह, धनुष स्रोत, भुजाएँ जलसर्पों के समान प्रतीत होती थी। यह रणभूमि में तीव्र वेग से वह रही थी। जो कुरु सृञ्जय वीरों को बहाये लिए जाती थी। इसमें मनुष्यों के शिर पाषाण, शक्तिनामक शस्त्र मछलियां, गदा नौका, वीरों की पगड़ियां झागके समान दिखाई देते थे। इसमें वीरोंकी फैली हुई आंते सर्पादि जन्तु थे यह मांस और रक्तकी कीचड़ वाली बड़ी उग्र बहुत से वीरों को बहाए लिए जाती थी। इसमें हाथी ग्राह ध्वजाएँ वृक्ष,थे। यह क्षत्रिय वीरों को डुबा देने वाली थी। यह नदी, बड़ी क्रूर मृत शरीरों के बांध से समन्वित, अश्वारोहीं रूपी मगरों से युक्त, बड़ी दुर्गम थी। जो यमलोक तक पहुंचा देने वाली थी॥३८-४४॥

क्रव्यादगणसञ्जुष्टां श्वशृगालगणायुताम् ।
निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥४५॥
तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥४६॥

यह मांसभोजी जन्तुओं से व्याप्त, कुत्ते गीदड़ों के समूह से भरी हुई, महा भयानक मांसभोजी पिशाचों से घिरी हुई थी॥ काल की तरह सेनाओं को भस्म करते हुए महारथी द्रोणाचार्य को देखकर कुन्ती-पुत्र धर्मराज सहित पाण्डव सैनिक सब ओर से बड़े बेग के साथ झपटे॥४६॥

ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥४७॥

इन सारे शूरवीरों ने एक साथ द्रोणाचार्य को सब ओर से घेर लिया, जैसे संसार को सन्तप्त करनेवाले सूर्य को उसकी किरण घेरे रहती है ॥४७॥

तं तु शूरं महेष्वासं तावकाऽभ्युद्यतायुधाः ।
राजानो राजपुत्राश्च समन्तात्पर्यवारयन् ॥४८॥

महाधनुर्धर शूरवीर, द्रोणाचार्य को घेर कर तुम्हारी ओर के राजपुत्र और राजा लोग भी शस्त्र लेकर उनकी रक्षा करने लगे।

शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभि ॥४९॥
उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः ।
सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाऽष्टभिः ॥५०॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः ।
धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥५१॥

अब शिखण्डी ने नतपर्ववाले पांच, क्षत्रवर्मा ने बीस, वसुदान ने पांच, उत्तमौजाने तीन, क्षत्रदेव ने सात, सात्यकि ने सौ, युधामन्यु ने आठ, राजा युधिष्ठिर ने बारह बाणों से आचार्य द्रोण को बींध डाला। इसी तरह चेकितान ने तीन और धृष्टद्युम्नने दश बाण मार कर द्रोणाचार्य को घायल किया ॥४९-५१॥

ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥५२॥

सत्यप्रतिज्ञावाले द्रोणाचार्यने मदस्रावी गजराजकी तरह झपट कर रथों की सेना को उलांघ कर महारथी दृढ़सेन को जा गिराया ।

ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत् ।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥५३॥

इसके अनन्तर बड़ी निर्भीकता से बाण चलाने वाले क्षेमराज पर नौ बाणों से द्रोणाचार्य ने प्रहार किया, इनसे वह मृत होकर रथ से नीचे गिर पड़ा ॥५३॥

स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
त्राता ह्यभवदन्येषां न त्रातव्यः कथञ्चन ॥५४॥

आचार्य द्रोण, सेना के मध्य में पहुंच कर रणभूमि में सब ओर चक्कर लगा रहे थे । ये अन्य वीरों की रक्षा भी करते जाते थे, इनको अन्य किसी की रक्षा की आवश्यकता नहीं थी ॥५४॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद्यमसादनम् ॥५५॥

द्रोणाचार्य ने बारह बाणों से और उत्तमौजा को बीस बाणों से आहत करके वसुदान को एक ही बाण में यमराज के घर पहुंचा दिया ॥५५॥

अशीत्या क्षत्रवर्माणं षड्विंशत्या सुदक्षिणम् ।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥५६॥

आचार्य द्रोणने अस्सी बाण मारकर क्षत्रवर्मा, छब्बीस बाणों से सुदक्षिणको आहत करके एक बाणसे क्षत्रदेव को रथ के ऊपर से नीचे गिरा दिया ॥५६॥

युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम् ।
विध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥५७॥

अब सुवर्णरथधारी द्रोणाचार्य ने चौसठ बाणों से युधामन्यु और तीस बाणों से सात्यकि को आहत करके बड़ी शीघ्रता से राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥५७॥

ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥५८॥

राजाओं में श्रेष्ठ धर्मराज, बड़ी शीघ्रता से कतराकर वेग शील अश्वों द्वारा आचार्य द्रोण के आगे से हट गए-अब किसी पाञ्चाल राजकुमार ने द्रोण पर आक्रमण कर दिया ॥५८॥

तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत् ।
स हतः प्रापतद्भूमौ रथाज्जोतिरिवाऽम्बरात् ॥५९॥

द्रोणाचार्य ने इसके धनुष, अश्व और सारथि को मारकर पाञ्चाल कुमार को भी मार दिया। वह मरकर आकाश से ज्योति के गिरने की भांति रथ से नीचे गिर गया ॥५९॥

तस्मिन्हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे ।
हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥६१॥

पाञ्चालों के यश के बढ़ाने वाले इस राज-पुत्र के रणभूमि में गिर जाने पर पाण्डवों की सेना में "द्रोण को मारो, "द्रोण को मारो" यही कोलाहल सुनाई दिया ॥६०॥

तांस्तथा भृशसंरब्धान्पञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ।
सृञ्जयान्पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद्बली ॥६१॥

अत्यन्त आवेश में भरे हुए पाञ्चाल मत्स्य, केकय, सृञ्जय और पाण्डव वीरों को महाबली द्रोणाचार्य ने फिर छिन्न-भिन्न कर दिया।

सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम् ॥६२॥
एतांश्चाऽन्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान् ।
सर्वान्द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥६३॥

कौरवों से युक्त हुए द्रोणाचार्य ने सात्यकि, चेकितान, धृष्ट-द्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेम के पुत्र, चित्रसेन-पुत्र, अत्यन्त तेजस्वी सेना विन्दु आदि राजा तथा अन्य अनेक देशोंके अन्य राजाओंको जीत लिया ॥६२-६३॥

तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे ।
पाण्डवेयान्रणे जघ्नुर्द्रवमाणान्समन्ततः ॥६४॥

हे महाराज ! तुम्हारे वीर, इस समय रण में विजय पाकर इधर उधर भागते हुए पाण्डव वीरों का वध करने लगे ॥६४॥

ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना ।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत ॥६५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे एकविंशोऽध्यायः

हे भारत ! महात्मा इन्द्र द्वारा मारे हुए दानव की तरह पञ्चाल, केकय और मत्स्य, सारे पाण्डव वीर घबरा उठे ॥६५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोण-पर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में द्रोणयुद्ध का इक्कीसवां अध्याय पूरा हुआ।

बाईसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे ।
पञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्त्तत ॥१॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम् ।
असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! इस घोर संग्राम में भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डव वीरों और सारे पाञ्चालोंके भगा देने पर कायर पुरुषों के अयोग्य, पुरुषप्रवीरों द्वारा स्वीकार की जाने वाली तथा क्षत्रिय के यश के बढ़ाने वाली आर्य बुद्धि का अवलम्बन लेकर

क्या कोई अन्य वीर द्रोण के सन्मुख आया। मैं उसे ही वीर-व्र
और शूर समझता हूं-जो सेना के भागने पर भी आप लौटकर
युद्ध में संलग्न हो जावे ॥१-२॥

स हि वीरो व्रतः शूरो यो भग्नेषु निवर्त्तते ।
अहो नाऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
त्यजन्तमाहवे प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥४॥
महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतां भयवर्धनम् ।
कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥५॥
भारद्वाजं तथाऽनीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम् ।
के शूरा सन्न्यवर्त्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥६॥

सिंह के सदृश जम्भाई लेने वाले, मदस्रावी गजराज के तुल्य रण में प्राण तक छोड़ने को उद्यत, विचित्र ढंग से युद्ध परायण, सब तरह तय्यार, महाधनुर्धर, वीरश्रेष्ठ, शत्रुओं के भय बढ़ानेवाले, कृतज्ञ, सत्यकर्मों में संसक्त, दुर्योधन के हितकर्त्ता, भरद्वाज पुत्र शूरवीर, युद्ध में स्थित द्रोणाचार्य को देखकर कौन २ पाण्डव वीर, लौट पड़े-तुम मुझे प्रथम यह घटना सुनाओ ॥३-६॥

सञ्जय उवाच—

तान्दृष्ट्वा चलितान्संख्ये प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
पञ्चालान्पाण्डवान्मत्स्यान्सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥७॥

द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणाऽऽशुहारिणा ।
सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान्यथा प्लवान् ॥८॥
कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च ।
रथद्विपनरांश्चैव सर्वतः समवारयन् ॥९॥
तान्पश्यन्सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥१०॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! द्रोणाचार्य के बाणों से रण में व्याकुल किये हुए पाञ्चाल, मत्स्य, सृञ्जय, चेदि, केकय और पाण्डव वीरों को द्रोणाचार्य के शीघ्रगामी बाणसमूह से नदी के महावेग से बहायी हुई नौका की भांति राजा दुर्योधन ने भागती देखा। इस समय कौरव वीरों ने सिंहनाद करके अनेक प्रकार के बाजे बजाए और पाण्डवों के हाथी, रथ और सैनिकों को सब ओर से घेर लिया। इस दशा को अपने बन्धु-बान्धवों सहित सेना के मध्य में स्थित राजा दुर्योधन देखकर मुसकुराता सा हुआ प्रसन्नता कर्ण से कहने लगा ॥७-१०॥

दुर्योधन उवाच—

पश्य राधेय पञ्चालान्प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
सिंहेनेव मृगान्वन्यांस्त्रासितान्दृढधन्वना ॥११॥

हे राधेय! इस समय तुम दृढ़ धनुषधारी आचार्य द्रोण द्वारा अपने बाणों से भगाये हुए पाञ्चाल वीरों को सिंह से पीड़ित किये हुए वन के मृगों की तरह भागते हुए देखो ॥११॥

नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः ।
यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः ॥१२॥

इन पाञ्चालवीरों को द्रोणाचार्य ने इस तरह तोड़ मरोड़ किया है, जैसे वायु बड़े २ वृक्षों को तोड़ देती है। मेरी सम्मति में तो आगे ये युद्ध का नाम भी कभी नहीं लेंगे ॥१२॥

अर्द्यमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना ।
पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्ततः ॥१३॥

महावीर द्रोणाचार्य ने अपने सुवर्ण मूलधारी बाणों से इतना व्याकुल कर दिया कि ये इधर उधर गिरते पड़ते, एक मार्गसे भाग भी नहीं रहे हैं ॥१३॥

सन्निरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना ।
एतेऽन्ये मण्डलीभूताः पावकेनेव कुञ्जराः ॥१४॥

महाशक्तिशाली द्रोण तथा अन्य कौरव वीरों द्वारा घेरे हुए इन पाञ्चाल तथा देशोद्भव वीरों ने ऐसा मण्डल बना लिया है, जैसे आग लगने पर वन में हाथी बना लेते हैं ॥१४॥

भ्रमरैरिव चाऽऽविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।
अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥१५॥

द्रोणाचार्य के तीखे बाण, इन वीरों के शरीरों में भ्रमरों (मधुमक्षिका) की तरह चिपट गए हैं। ये भागने में इतने व्यस्त हैं, कि एक दूसरे में घुसे जाते हैं ॥१५॥

एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवसृञ्जयैः ।
मदीयैरावृतो योधैः कर्ण नन्दयतीव माम् ॥१६॥

हे कर्ण ! महाक्रोधी भीम भी इस समय पाण्डव और सृञ्जय वीरों से बिछुड़ कर अकेला लड़ रहा है, जिसको मेरे वीरों ने घेर रखा है, यह दृश्य, मुझे बड़ा ही आनन्दित करता है ॥१६॥

व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः ।
निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥१७॥

यह स्पष्ट है, कि इस दुष्ट को अब चारों ओर संसार में द्रोण ही द्रोण दृष्टि आता होगा । यह पाण्डु-पुत्र भीम, इस समय अपने राज्य और जीवन तक से निराश हो गया है ॥१७॥

कर्ण उवाच—

नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत् ।
न चेमान्पुरुषव्याघ्रः सिंहनादान्सहिष्यति ॥१८॥

कर्ण ने कहा—हे राजन् ! यह भीम बड़ा बलवान् है । यह प्राण रहते हुए कभी रणभूमि को छोड़ने वाला नहीं है और न यह पुरुषप्रवीर तुम्हारे वीरों के इन सिंहनाद को सहन करेगा ।

न चाऽपि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः ।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥१९॥

मुझे तो यह निश्चय है, कि पाण्डवों में से कोई सा भी पाण्डव, युद्ध छोड़कर नहीं भागेगा, क्योंकि वे शूरवीर, बलवान्, अस्त्रकुशल तथा युद्ध में दुर्मद हैं ॥१९॥

विषाग्निद्यूतसंक्लेशान्वनवासं च पाण्डवाः ।
स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः ॥२०॥

ये पाण्डव, तुम्हारे विषप्रयोग, लाक्षागृह के अग्निदाह, द्यूत (जुआ) तथा वनवास के क्लेशों का स्मरण करके कभी रण नहीं छोड़ेंगे-मैं तो यह निश्चय रूप में जानता हूं ॥२०॥

निवृत्तो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः ।
वरान्वरान्हि कौन्तेयो रथोदारान्हनिष्यति ॥२१॥

अत्यन्तपराक्रमी, महाबाहु, भीमसेन लौट पड़ा है, अब यह कुन्ती-पुत्र, तुम्हारे उत्तम २ महारथियों को चुन २ कर मारने वाला दिखाइ दे रहा है ॥२१॥

असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः ।
आयसेन च दण्डेन व्रातान्व्रातान्हनिष्यति ॥२२॥

यह अपने खड्ग, धनुष, शक्ति, अश्व, हाथी, पैदल सैनिक, महारथियों तथा लोहमय दण्ड (गदा) से तुम्हारी सेना के झुण्ड के झुण्डों को मार गिरावेगा ॥२२॥

तमेनवनुवर्त्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
पञ्चाला केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥२३॥

भीमसेन के पीछे २ सात्यकि आदि महारथी चलेंगे तथा पञ्चाल, केकय, मत्स्य, और पाण्डव वीर लौट पड़ेंगे॥२३॥

शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः ।
विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥२४॥

ये आवेश में भरे हुए, भीमसेन द्वारा प्रेरित किये हुए, महापराक्रमी शूरवीर, बलवान् महारथी, पाञ्चाल आदि वीर, बड़ी ही मारकाट मचावेंगे ॥२४॥

ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥२५॥

ये कुरुवंशश्रेष्ठ, पाण्डव, वृकोदर भीम की रक्षा में तत्पर हुए सूर्य को मेघों की तरह सब ओर से द्रोणाचार्य को घेर लेंगे।

एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् ।
अरक्षमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥२६॥

अपने प्राणों का पण (बाजी) लगाये हुए पाण्डववीर, एक संगठन में होकर दीपक पर मरने को उद्यत पतङ्गों की तरह अरक्षित व्रत शील द्रोणाचार्य पर टूट पड़ेंगे ॥२६॥

असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चाऽपि वारणे ।
अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् ॥२७॥

यह निःसन्देह बात है, कि ये अस्त्र चलाने में सिद्धहस्त और द्रोण के रोकने में अधिक संख्या में होनेसे पर्याप्त हैं। मैं तो समझता हूं कि इस समय आचार्य द्रोण पर बहुत बोझा आ पड़ा है।

शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥२८॥

अब तो हम लोगों को भी बड़ी शीघ्रता से वहीं पर चलना चाहिए, जहाँ पर द्रोणाचार्य युद्ध कर रहे हैं। कहीं मदोन्मत्त हाथी को भेड़िये की तरह ये लोग व्रतशील आचार्य द्रोण का वध न कर डालें ॥२८॥

सञ्जय उवाच—

राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्प्रायाद्द्रोणरथं प्रति ॥२९॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! राधापुत्र कर्ण के ये वचन सुनकर राजा दुर्योधन अपने भाइयों के सहित वहीं पहुँचा, जहाँ पर द्रोणाचार्य का रथ था ॥२९॥

तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम् ।
पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः

एक मात्र द्रोणाचार्य के वध की अभिलाषा में अनेक वर्ण के अश्वों द्वारा लौटे हुए पाण्डव-वीरों का रणभूमि में महान् कोलाहल होने लगा ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में द्रोणयुद्ध का बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

तेईसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि सञ्जय ।
ये द्रोणमभ्यवर्त्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अब तुम मुझे प्रथम, भीष्म आदि उन पाण्डव-वीरों के रथ के चिन्ह अश्व आदि का वर्णन करो, जिन वीरों ने क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया॥१॥

सञ्जय उवाच—

ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् ।
रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः सन्न्यवर्त्तत ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन ! ऋक्ष के सदृश काले वर्ण के अश्वों के रथ द्वारा लौटते हुए वृकोदर भीम को देखकर रजतवत् श्वेत अश्व वाले शूरवीर शिनिपुत्र सात्यकि भी लौट पड़े ॥२॥

सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन्हयान् ।
पर्यवर्त्तत दुर्धर्षः क्रुद्धो द्रोणंरथं प्रति ॥३॥

चित्र विचित्र कई रंगवाले अश्वों को शीघ्रता से दौड़ाता हुआ दुर्धर्ष युधामन्यु, क्रोध-पूर्वक द्रोणाचार्य पर झपटा॥३॥

पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो न्यवर्त्तत ॥४॥

कबूतरों के समान (कुछ सफेद नीले) सुवर्ण के आभरणों से समन्वित, महावेगशाली अश्वों से पाञ्चालराज का पुत्र धृष्टद्युम्न लौट पड़ा ॥४॥

पितरं तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः ।
सिद्धिं चाऽस्य परां कांक्षन्शोणाश्वः सन्न्यवर्त्तत ॥५॥

धृष्टद्युम्न का पुत्र, व्रतशील क्षत्रधर्मा, अपने पिता की सहायता में इसके विजय की इच्छा से लाल अश्वों से लौट पड़ा ॥५॥

पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान्मल्लिकाक्षानस्व ंकृतान् ।
शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु स्वयं प्रत्वरयन्ययौ ॥६॥

कमल पत्र के समान सुन्दर निर्मल आँखों के धारण करने वाले, आभूषणों से समन्वित अश्वों के द्वारा शिखण्डी का पुत्र क्षत्रदेव, बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ा ॥६॥

दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः ।
वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवः ॥७॥

कम्बोज (क़ाबुल) देश के उत्पन्न, शुक (तोते) के समान हरित वर्ण के रोमवाले अश्व, नकुल को लेकर तुम्हारे वीरों पर झपटे ॥७॥

कृष्णास्तु मेघसङ्काशा अवहन्नुत्तमौजसम् ।
दुर्धर्षायाभिसन्धाय क्रुद्धं युद्धाय भारत ॥८॥

हे भारत ! मेघ के तुल्य श्यामवर्णधारी अश्व, क्रोधातुर उत्तमौजा को लेकर दुर्धर्ष युद्ध की ओर ले चले ॥८॥

तथा तित्तिरिकल्माषा हया वातसमा जवे ।

अवहंस्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥९॥

तीतर के वर्ण के भूरे वर्णवाले, वायु के समान वेगधारी, अश्व लोमहर्षण युद्ध में शस्त्रधारी सहदेव को ले चले ॥९॥

दन्तवर्णास्तु राजनं कालवाला युधिष्ठिरम् ।

भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन्वातरंहसः ॥१०॥

हाथी के दांत के समान श्वेत वर्ण वाले, काली पूंछ के भीषण वायु के तुल्य वेगधारी अश्व, नरवीर राजा युधिष्ठिर को ले चले ॥१०॥

हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे ।

अभ्यवर्त्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥११॥

सुवर्ण के उत्तम २ भूषणों से समन्वित, वायु के वेगवाले अश्वों के द्वारा, अन्य सैनिक वीर, राजा युधिष्ठिर की सहायता में चले ॥११॥

राज्ञस्त्वनन्तरो राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत् ।

जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥१२॥

राजा युधिष्ठिर के साथ ही पीछे २ पाञ्चालराज, द्रुपद, चल दिए, जिनके शिर पर सुवर्ण का छत्र था ॥१२॥

ललामैर्हरिभिर्युक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि ।

राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत ॥१३॥

इनकी बहुत से सैनिक रक्षा कर रहे थे। श्वेत तारों से युक्त, सुवर्ण के समान ग्रीवा के बाल वाले, सब शब्दों के सहन करने में समर्थ, अश्वों से राजाओं के मध्य में महाधनुर्धर, निर्भीक, राजा द्रुपद भी युद्ध की ओर लौटे ॥१३॥

तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः ।
केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥१४॥
स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः ।

सारे महारथियों के साथ राजा विराट भी, उनके पीछे २ चल दिए। केकय, राजकुमार शिखण्डी और धृष्टकेतु, अपनी २ सेना को साथ लेकर मत्स्यराज विराट के पीछे चले दिए ॥१४॥

ते तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥१५॥
वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।

शत्रुघाती मत्स्यराज के अश्व, कुछ श्वेत और लाल रंग के थे। ये इनको युद्ध-भूमि की ओर ले जाते हुए बड़े सुन्दर प्रतीत होते थे ॥१५॥

हरिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥१६॥
पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् ।

हरिद्रा के समान लाल पीले, सुवर्ण की माला धारी, वेगशील अश्व, विराटराज के पुत्र उत्तर को लेकर रणभूमि में चले जा रहे थे ॥१६॥

इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥१७॥
जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः ।
ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१८॥
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः ।

इन्द्रगोप (वीरबहुटी) के समान लाल वर्णवाले, अश्वों से पांचों भ्राता केकय राजकुमार युद्धभूमि में लौटे। इन सब की सुवर्ण के तुल्य कान्ति थी और रक्तवर्ण की ध्वजा थी। इन सब ने सुवर्ण की माला पहन रखी थी और ये सारे युद्ध विद्या में कुशल थे। ये मेघ की तरह बाणवर्षा करते हुए बड़े सन्नद्ध दिखाई दे रहे थे ॥१७-१८॥

आमपात्रनिकाशास्तु पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥१९॥
दत्तास्तुम्बुरुणा दिव्या शिखण्डिनमुदावहन् ।

कच्चे मिट्टी के वर्ण के तुल्य कुछ मलिन श्वेत रङ्ग के अश्व, अत्यन्त ओजस्वी, पाञ्चाल राजकुमार के दिव्य अश्व, शिखण्डी को रण में ले जा रहे थे। तुम्बुरु गन्धर्व ने ये अश्व शिखण्डी को प्रदान किये थे ॥१९॥

तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः ॥२०॥
तेषां तु षट्सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः ।

पाञ्चालों के बारह सहस्र महारथी थे; उनमें से छः सहस्र इस समय शिखण्डी के साथ थे ॥२०॥

पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ॥२१॥
आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला हयाः ।
धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ॥२२॥
काम्बोजैः शबलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः ।

हे आर्य ! नरश्रेष्ठ, शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु के अश्व, हरिण की भांति चित्र विचित्र थे, वे उछलते हुए इसे ले जा रहे थे ॥२१॥ यह चेदिराज धृष्टकेतु, अत्यन्त बलवान थे। जो दुर्जय, चित्र-विचित्र, काम्बोज देश के अश्वों से रण भूमि में लौटे ॥२२॥

बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः ॥२३॥
पलालधूमसङ्काशाः सैन्धवाः शीघ्रमावहनाः ।

चमकीले:धूम्र वर्णधारी, सिन्धुदेशोत्पन्न, उत्तम अश्व, केकय राजकुमार सुकुमार बृहत्क्षत्र को शीघ्र लेकर रण में पहुंचे ॥२३॥

मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा बाल्हिजाताः स्वलंकृताः ।२४।
शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेवमुदावहन् ।

हँस के तुल्य निर्मल नेत्र वाले, कुछ श्वेत रक्त वर्णधारी, बाल्हिदेशोत्पन्न, अलङ्कारों से युक्त, अश्व, शिखण्डी के पुत्र, शूर-वीर ऋक्षदेव को रण में ले आए ॥२४॥

रुक्मभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥२५॥
क्षमावन्तोऽवहन्संख्ये सेनाबिन्दुमरिन्दमम् ।

सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित,, श्वेत पीले से अच्छी तरह सीखे हुए कौशेयवर्णधारी, अश्व, रण में अरिमर्दन सेनाबिन्दु को लेकर आए ॥२५॥

युवानमवहन्युद्धे क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमः ॥२६॥

काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम् ।

श्वेत लोमोंसे युक्त ग्रीवा के वाले, क्रौंचवर्णके अश्व, काशीराज अभिभू के महारथी सुकुमार युवा पुत्र को लेकर रणभूमिमें आये।

श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः ।

यन्तुः प्रेष्यकरा राजन्राजपुत्रमुदावहन् ॥२७॥

हे राजन ! मन के समान वेगधारी, काली ग्रीवा के धारण कर्ता (सवार) की आज्ञानुसार उछटने वाले, श्वेत अश्व, धर्मराज के पुत्र प्रतिविन्ध्य को लेकर आए ॥२७॥

सुतसोमं तु यः सौम्यं पार्थः पुत्रमजीजनत् ।

माषपुष्पसवर्णास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ २८॥

चन्द्रमा के तुल्य कान्तिधारी पुत्र को कुन्ती-पुत्र भीमसेन ने उत्पन्न किया, उसको माष (उड़द) पुष्प (कुछ पीले) वर्ण के धारी अश्व, रणमें लेकर पहुंचे ॥२८॥

सहस्रसोमप्रतिमो बभूव पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाम्नि ।

तस्मिञ्जातः सोमसंक्रन्दमध्ये यस्मात्तस्मात्सुतसोमोऽभवत्सः

कुरुवंशश्रेष्ठ पाण्डवों की नगरी इन्द्रप्रस्थ, में सहस्रों चन्द्रमा के तुल्य कान्तिधारी, सोमवल्ली के रस के आकर्षण के समय हुआ इससे इसका नाम सुतसोम रखा गया ॥२६॥

नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः ।
आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ॥३०॥

मध्याह्नकाल के सूर्य के सदृश तेजस्वी, शालवृक्ष के पुष्प के तुल्य कुछ लाल पीले अश्व, प्रशंसा के योग्य नकुल के पुत्र शतानीक को लेकर रण के मध्य में पहुंचे ॥३०॥

काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसन्निभाः ।
द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥३१॥

काञ्चन की रस्सियों से युक्त, मयूर की ग्रीवा के तुल्य नीले अश्व, नरव्याघ्र सहदेव-पुत्र श्रुतकर्माको लेकर रणभूमि में पहुंचे।

श्रुतकीर्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः ।
ऊहुः पार्थसमं युद्धे चाषपत्रनिभा हयाः ॥३२॥

शास्त्र ज्ञान से विभूषित, अर्जुन के पुत्र श्रुतकीर्ति को चाष (नीलकण्ठ) के पंख के समान नीले अश्वों लेकर रणभूमि में आये

यमाहुरध्यर्धगुणं कृष्णात्पार्थाच्च संयुगे ।
अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन्रणे ॥३३॥

जिसमें श्रीकृष्ण और अर्जुनसे आधे २ गुण उत्तमता के साथ भरे हैं, उस अभिमन्यु को भूरे रङ्ग के अश्व, लेकर रणमें पहुंचे ।

एकस्तु धार्त्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान्य समाश्रितः ।
तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन्रणे ।।३४।।

धृतराष्ट्र के पुत्रों में से एक पुत्र, जो पाण्डवों की ओर चला आया था, उस युयुत्सु को विशालकाय अश्व लेकर रण में घुसे।

पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धक्षेमिं तरस्विनम् ।
ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः कृष्णाः स्वलंकृताः ।।३५।।

इस घोर युद्ध में वृद्धक्षेम के तेजस्वी पुत्र को धान की दण्डी के वर्ण के अलङ्कारों से युक्त कृष्ण अश्व, लेकर प्रविष्ट हुए ।।३५।।

कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुरच्छदैः ।
सौचित्तिमवहद्युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः ।।३६।।

सुवर्ण से विचित्र उरच्छद (आभूषण) से युक्त, काले चरण वाले, यन्ता (सवार) की आज्ञा में चलने वाले अश्व, राजकुमार सौचित्ति को लेकर रणभूमि में पहुंचे ।।३६।।

रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः ।
सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ।।३७।।

सुवर्णतन्तुओं से जटित, पीठ की काठी से सुशोभित, कौशेय (कुछ पीले) वर्ण वाले, सुवर्ण मालाधारी क्षमाशील अश्व, राजा श्रेणिमान् को लेकर रणभूमि में लौटे ।।३७।।

रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः ।
काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ।।३८।।

सुवर्ण की माला पहने हुए, सुवर्ण के तन्तुओं से जटित वस्त्र पीठ पर धारण किये हुए, अलङ्कारों से विभूषित शक्तिशाली अश्व प्रशंसा के योग्य, नरश्रेष्ठ काशिराज को लेकर रणभूमि में उठे।

अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् ।
तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥३६॥

अस्त्र और धनुर्विद्या तथा ब्रह्मज्ञान युक्त। वेद में पारङ्गत, राजा सत्यधृति को लालवर्ण के अश्व, रणभूमि में लाये ॥३६॥

या स पाञ्चालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत् ।
पारावसतवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥४०॥

जो पाञ्चालसेनाका अधिपति था और जिसने अपने भाग में द्रोण का वध लिया था, उस को भूरे कबूतर के रंग के अश्व लेकर रणाङ्गण में पहुंचे ॥४०॥

तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥४१॥

धृष्टद्युम्न के पीछे २ सत्यधृति, युद्ध दुर्मद सौचित्ति, श्रेणिमान् वसुदान और काशिराज का पुत्र अभिभू, चल पड़े ॥४१॥

युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेममालिभिः ।
भीषयन्तो द्विषत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥४२॥

प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः षट्सहस्राण्युदायुधाः ।
नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हेमवर्णरथध्वजाः ॥४३॥

शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून्विततकार्मुकाः ।
समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥४४॥

इन्हीं सेनापति धृष्टद्युम्न के पीछे प्रभद्रक और काम्बोज देशोद्भव छः सहस्रवीर, शस्त्र लेकर चल पड़े, जो सुवर्ण की माला पहने हुए, कम्बोज (काबुल) देशोत्पन्न अश्वों पर सवार थे। ये यमराज और कुबेर के समान भीषण दिखाई देते हुए शत्रुसेना को भयभीत कर रहे थे। इनके साथ अन्य अनेक वर्ण के और भी अश्व थे। उन्होंने धनुष खैंच कर उन पर शरसमूह चढ़ा रखा था, जिस से विरोधी कांप उठते थे, ये मृत्यु के तुल्य आकार धारण करके पीछे २ चल दिए ॥४३-४४॥

बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥४५॥

भूरे कौशेय (रेशम) वर्णवाले, सुवर्ण की माला से सुशोभित उत्तम अश्व, उल्लासयुक्त चित्तवाले चेकितान को लिए आ रहे थे।

इन्द्रायुधसवर्णैस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः ।
आयात्सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥४६॥

इन्द्र धनुषके तुल्य तीन रंग वाले। उत्तम अश्वों से अर्जुन के मातुल कुन्तिभोज पुरुजित्, रणभूमि में पधारे ॥४६॥

अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकचित्रिता इव ।
राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥४७॥

तारों (टिमकनों) से चित्रित, आकाश के तुल्य कुछ नीले वर्ण वाले अश्व, राजा रोचमान को लेकर रणभूमि में आए ॥४७॥

कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः ।
जारासन्धि हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ॥४८॥

काले चरण वाले, अनेक रंग के चित्र विचित्र सुवर्ण के आभूषण जाल से अलंकृत, उत्तम २ अश्व, जरासन्धके पुत्र सहदेव को लेकर आए ॥४८॥

ये तु पुष्कारनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः ।
जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ॥४९॥

कमल नील के समान भूरे से वर्णवाले, श्येन (बाज) के तुल्य वेगधारी, उत्तम विचित्र अश्व, सुदामा को रण में लाए ॥४९॥

शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्गतराजयः ।
पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥५०॥

कुछ श्वेत लाल वर्ण के पीली धारीवाले अश्व, पाञ्चाल देशोत्पन्न महारथी गोपति के पुत्र सिंहसेन को रणभूमि में लाए।

पञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः ।
तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥५१॥

पाञ्चाल वीरों में वीरश्रेष्ठ जनमेजय विख्यात है, उसके सर्षप के पुष्प के तुल्य पीले अश्व थे। उन पर चढ़ कर वे रण भूमि में आए ॥५१॥

माषवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः ।

दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन्द्रुतम् ॥५२॥

माष (उड़द) के तुल्य कृष्णवर्ण धारी, सुवर्ण मालासे सुशोभित, दधि के समान श्वेत पृष्ठ वाले, अनेक रंग के मुख से समन्वित बड़े २ अश्व, पाञ्चाल राजकुमार को लेकर आ पहुंचे ॥५२॥

शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः ।

पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥५३॥

सुन्दर मस्तकधारी, शर (सरकन्डे) काण्ड के समान गौर वर्ण वाले, कमल-केशर के तुल्य कान्तिधारी, शक्तिशाली अश्व, राजा दण्डधार को लेकर आए ॥५३॥

रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः ।

वल्गन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदाहन् ॥५४॥

गर्दभ के समान मलिन लाल रंग वाले, पृष्ठभाग पर मूषक की सी मलिन धूसर कान्तिधारी, मुख से कवका (लगाम) को चलाते हुए सावधान अश्व, राजा व्याघ्रदत्त को लेकर युद्धभूमि में पहुंचे ॥५४॥

हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः ।

सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन् ॥५५॥

काले मस्तक वाले, विचित्र मालाओं से विभूषित, विचित्र वेगशील अश्व, पाञ्चाल वीर नरव्याघ्र सुधन्वाको युद्ध-भूमिमें लाए।

इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः ।
काये चित्रान्तराश्चित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥५६॥

इन्द्र के वज्र के तुल्य चोट चलाने वाले, इन्द्रगोप (बीर बहुटी) के तुल्य रक्त वर्णधारी, शरीर में अनेक स्थानों पर अनेक रंगों से चित्रित, अश्व, चित्रायुध को लेकर वहां पहुंचे ॥५६॥

बिभ्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा हयाः ।
कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहत् ॥५७॥

सुवर्ण की माला पहने हुए, चक्रवाक पक्षी के उदर के तुल्य कुछ श्वेत अश्व, कोसल देश के अधिपति के पुत्र सुक्षत्र को लेकर आए ॥५७॥

शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः ।
युद्धे सत्यधृतिं क्षैमिमवहन्प्रांशवः शुभाः ॥५८॥

सुवर्ण की माला से सुशोभित, चित्र विचित्र, बड़े वेगशाली ऊंचे २ सुन्दर अश्व, क्षेमराज के पुत्र सत्यधृति को लेकर रणाङ्गण में जा धमके ॥५८॥

एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्त्तत ॥५९॥

राजा शुक्ल की सारी ही एक श्वेत वर्ण की वस्तुएँ थीं। उसकी ध्वजा, कवच, धनुष और अश्व सब ही श्वेत वर्ण के थे वह इन को लेकर रणभूमि में पधारे ॥५९॥

समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम् ।
अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन् ॥६०॥

समुद्र के प्रदेश में उत्पन्न, चन्द्रमा के तुल्य श्वेतवर्णधारी अश्व, रुद्र के तुल्य तेजस्वी राजा चन्द्रसेनको लेकर आए ॥६०॥

नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः
शैब्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्या वहन्हयाः ॥६१॥

नीले कमल के तुल्य वर्ण वाले, सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित, विचित्र मालाधारी अश्व, विचित्र रथवाले शैब्य को लेकर रण में प्रविष्ट हुए ॥६१॥

कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः ।
रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥६२॥

कलाय के पुष्प के समान कुछ २ मिश्रित काले वर्णवाले, श्वेत और लाल पंक्तिधारी, अश्वश्रेष्ठ, युद्ध-दुर्मद, राजा रथसेनको लेकर युद्धमें आए ॥६२॥

यं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् ।
तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णावहन्हयाः ॥६३॥

जिस राजाको सारे मनुष्यों में अधिक शूरवीर कहा जाता है, पटच्चरों (चोर लुटेरे असुरों) के हनन करने वाले समुद्र देश के स्वामी उस किसी राजा को लेकर शुक (तोते) वर्ण के हरे अश्व, रणभूमि में पहुंचे ॥६३॥

चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् ।

ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥६४॥

विचित्र मालाधारी विचित्र कवच शस्त्र और ध्वजा से युक्त राजा चित्रायुध किंशुक (ढाक) पुष्प वर्ण के लाल अश्व लेकर रणभूमि में आए ॥६४॥

एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।

धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥६५॥

इस राजा नील के भी सारे सामान एक रंग के ही थे। यह नीली ध्वजा, कवच धनुष और रथ के ले जाने वाले अश्वों से रणभूमि में आया ॥६५॥

नानारूपै रत्नचिह्नैर्वरूथरथकार्मुकैः ।

वाजिध्वजपताकाभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥६६॥

अनेक तरह के रत्नों के धारण करने वाला, चित्रनामक नृपति चित्र-विचित्र, रथदण्ड, रथ, धनुष, अश्व, ध्वजा और पताकाओं से युक्त होकर रणभूमि में घुसा ॥६६॥

ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ।

ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥६७॥

पुष्कर (कमल) के समान सुन्दर पीले से रंग वाले उत्तम २ अश्व, राजा रोचमान के पुत्र हेमवर्ण को लेकर रणभूमि में आए।

योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः ।

श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयावहन् ।६८।

युद्ध में समर्थ, सुन्दर क्रिया कर दिखाने वाले, शरदण्ड (सरकन्ने) के सदृश सीधी श्वेत पृष्ठ, श्वेत-अण्डकोश धारी, कुक्कुट

(मुर्गे) के अण्डे के तुल्य श्वेत अश्व, दण्डकेतु को लेकर रणभूमि में आए ॥६७-६८॥

केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे ।
भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च बन्धुषु ॥६९॥
भीष्मादवाप्य चाऽस्त्राणि द्रोणाद्रामात्कृपात्तथा ।
अस्त्रैः समत्वं सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥७०॥
इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां जेतुं च मेदिनीम् ।
निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ॥७१॥
वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः ।
स सागरध्वजः पाण्ड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥७२॥
वैदूर्यजालसञ्छन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।
दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद्बली ॥७३॥

श्रीकृष्ण ने जिनके पिता का रण में वध कर दिया था। जब पाण्ड्य नगर के किवाड़ों के टूट जाने पर जिनके बन्धु-बान्धव भाग निकले थे। जिन्होंने भीष्म, द्रोण, परशुराम और कृपाचार्य से अस्त्र विद्या सीखकर रुक्मी, कर्ण और अर्जुनके तुल्य बाणविद्या जान ली थी। जो पिताके वैरका बदला चुकानेके लिए सारी द्वारका का नाश कर देना चाहते थे और सारी पृथिवीके जीतने का साहस कर रहे थे, परन्तु जिनको उनके हितकारी मित्रोंने रोक दिया। जो फिर श्रीकृष्ण आदि वृष्णियोंसे वैरका परित्याग करके फिर आनन्द

से अपना राज्य भोग रहे थे, वह पाण्डव देश का अधिपति सागरध्वज, चन्द्रमा के तुल्य उज्ज्वल, नीलमणियों से विभूषित अश्वों के द्वारा अपने पराक्रम का आश्रय लेकर दिव्य धनुष को बजाता हुआ द्रोणाचार्य पर झपटा ॥६९-७३॥

आटरूषकवर्णाभा हयाः पाण्ड्यानुयायिनाम् ।
अवहन्रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥७४॥

वासक वृक्ष के पुष्प के तुल्य पीले, अश्व, पाण्ड्य देश के अनुयायी एक लाख चालीस हज़ार महारथियों को लेकर युद्धभूमि में आए ॥७४॥

नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः ।
रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥७५॥

अनेक वर्ण के रंग रूप वाले, अनेक आकृति के अश्व, रथ, चक्र और ध्वजाधारी वीर घटोत्कच को लेकर रणभूमि में पहुंचे ॥

भरतानां समेतानामुत्सृज्यैको मतानि यः ।
गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम् ॥७६॥
लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमगद्धजाः ।
महासत्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥७७॥
सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् ।
राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥७८॥

जो सारे भरतवंशोद्भव वीरों के वचनों का उल्लंघन करके अपने सारे मनोरथों की प्राप्ति की आशा को छोड़कर धर्मराज की

भक्ति के कारण उसकी ओर होगया, उस लालनेत्रधारी धर्मात्मा महाबाहु, सुवर्ण के रथ में स्थित, युद्ध में स्थित रहने वाले, महावीर राजश्रेष्ठ बृहन्त को अरट्टप्रदेशोद्भव महाबलशाली, सुवर्ण के समान आकारधारी, अश्वश्रेष्ठ सब ओर से घेर कर चले ॥७६-७८॥

वर्णैरुच्चावचैरन्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः ।
सन्न्यवर्त्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥७९॥

इसी तरह अन्य अनेक प्रकार के उत्तम २ वर्णों से युक्त, देवों के तुल्य बलवान् प्रभद्रक वीर युद्ध के लिए चल पड़े ॥७९॥

ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥८०॥

हे राजेंद्र ! भीमसेन के सहित बड़ी सावधानी से चलनेवाले ये सुवर्ण ध्वजाधारी राजा लोग, इन्द्रसहित देवों के तुल्य प्रतीत होते थे ॥८०॥

अत्यरोचत तान्सर्वान्धृष्टद्युम्नः समागतान् ।
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत ॥८१॥

इन आये हुए सारे वीरों का सेनापति धृष्टद्युम्न, अपने पराक्रम से उल्लंघन कर रहे थे, परन्तु आचार्य द्रोण इन सब और धृष्टद्युम्न को भी अपने तेज से नीचा बना रहे थे ॥८१॥

अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः कृष्णाजिनोत्तरः ।
कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः ॥८२॥

हे महाराज ! आचार्य द्रोण की कृष्ण मृगचर्म की कमण्डलु के आकार से युक्त सुवर्ण की ध्वजा बड़ी ही सुशोभित हो रही थी।

ध्वजं तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम् ।
भ्राजमानं महासिंहं राजन्तं दृष्टवानहम् ॥८३॥

हे महाराज ! नील मणियों से सुशोभित, सिह के चिन्ह से युक्त, अत्यन्त चमकीली, भीमसेनकी ध्वजा, फड़-फड़ाती मैंने स्वयं देखी थी ॥८३॥

ध्वजं तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः ।
दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम् ॥८४॥

कुरुवंशश्रेष्ठ, महाओजस्वी पाण्डु-पुत्र धर्मराज की सुन्दर ग्रह गणों से समन्वित सुवर्ण की ध्वजा भी मैंने स्वयं युद्ध में देखी है।

मृदङ्गौ चाऽत्र विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ ।
यन्त्रेणाऽऽहन्यमानौ च सुस्वनौ हर्षवर्धनौ ॥८५॥

इस ध्वजा के साथ नन्द-उपनन्द नामक दो बड़े मृदङ्ग (तबले) लग रहे थे, जो यन्त्र से स्वयं बजते थे और जिनसे बड़ा मधुर हर्ष-जनक स्वर निकलता था ॥८५॥

शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महाध्वजम् ।
अपश्याम रथेऽत्युग्रं भीषयाणमवस्थितम् ॥८६॥

नकुल के रथ पर शरभ पक्षी के चिन्हसे युक्त, विशाल सुवर्ण की अत्यन्त उग्र ध्वजा, अपने विरोधी वीरोंको भयभीत करती हुई, फड़फड़ाती रणभूमि में देखी गई थी ॥८६॥

हंसस्तु राजतः श्रीमान्ध्वजे घण्टापताकवान् ।

सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां शोकवर्धनः ॥८७॥

पाण्डुपुत्र सहदेव की ध्वजा में कान्तिमान् घण्टा और पताका से युक्त चाँदी के हंस का चिन्ह था, जो बड़ा दुर्धर्ष और शत्रुओं के शोक का बढ़ाने वाला था ॥८७॥

पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् ।

धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥८८॥

हे राजन् ! पांचों द्रौपदी पुत्रों की ध्वजा की धर्म, वायु, इन्द्र और अश्वनी कुमारों की मूर्तियां शोभा बढ़ा रही थी ॥८८॥

अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः ।

रथे ध्वजवरो राजंस्तप्तचामीकरोज्ज्वलः ॥८९॥

अर्जुन कुमार अभिमन्यु के रथ की ध्वजा में सुवर्ण का शार्ङ्ग नामक पक्षी था, जो तपाये हुए सुवर्ण का बना हुआ था ॥८९॥

घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत ।

अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥९०॥

हे राजेन्द्र ! घटोत्कच की ध्वजा में गृध्र पक्षी था और इसके अश्व भी पूर्वकाल में रावण के अश्वों के तुल्य कामचारी थे ॥

माहेन्द्रं च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे ।

वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभून्नृप ॥९१॥

हे नृप! राजा युधिष्ठिर के धनुष का नाम महेन्द्र और भीमसेन का वायव्य नामक उत्तम धनुष था ॥६१॥

त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् ।
तद्दिव्यमजरं चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः ॥६२॥

त्रिलोकी की रक्षा के निमित्त जिस धनुष की ब्रह्मा ने रचना की थी, वह कभी जीर्ण नहीं होनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुष अर्जुन के समीप था ॥६२॥

वैष्णवं नकुलायाऽथ सहदेवाय चाऽश्विजम् ।
घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम् ॥६३॥

नकुल के पास वैष्णव और सहदेव के पास आश्विन धनुष था तथा घटोत्कच के पास महाभयानक पौलस्त्य नामक दिव्य धनुष था ॥६३॥

रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव च ।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत ॥६४॥

हे भारत! रौद्र, आग्नेय, कौबेर, याम्य और गिरिश नामक पांच उत्तम धनुष पांचों द्रौपदी पुत्रों के पास थे ॥६४॥

रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं लेभे यद्रोहिणीसुतः ।
तत्तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ॥६५॥

रोहिणी पुत्र बलराम को जो रुद्र के पास से भीषण धनुष मिला था, बलराम ने प्रसन्न होकर सुभद्रापुत्र महावीर अभिमन्यु को उस रौद्र धनुष को अर्पण कर दिया था ॥६५॥

एते चाऽन्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः ।
तत्राऽदृश्यन्त शूराणां द्विषतां शोकवर्धनाः ॥६६॥

इस प्रकार की बहुत सी सुवर्ण से विभूषित ध्वजाएँ वहां दिखाई दे रही थी, जिनको देखकर विरोधी वीरों के छक्के छुट जाते थे ॥६६॥

तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसेवितम् ।
द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवाऽर्पितम् ॥६७॥

हे महाराज ! वीर पुरुषों से सेवित, द्रोणाचार्य की सेना संघर्ष में इस तरह ध्वजाओं का संघर्ष हो रहा था। वे ध्वजायें इस तरह दिखाई दे रही थी, जैसे वस्त्र में चित्र बना रखे हों ॥६७॥

शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा ।
द्रोणमाद्रवतां राजन्स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि हयध्वजादिकथने
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हे राजन् ! स्वयंवर में होनेवाले कोलाहल की तरह इस समय रण में द्रोणाचार्य पर आक्रमण करते हुए वीरों के नाम और गोत्रों के उच्चारण से कोलाहल मच रहा था ॥६८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्व में अश्व और ध्वजा आदि के वर्णन का तेईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

चौबीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय ।
आहवे ये न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥१॥

राजा धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! ये जो भीमसेन के सहित नृपति, लौटकर युद्ध में आए-ये तो देवोंकी सेना तकको पीड़ित कर सकते थे ॥१॥

सम्प्रयुक्तः किलैवाऽयं दिष्टैर्भवति पूरुषः ।
तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथिग्वधाः ॥२॥

यह पुरुष सर्वदा दैव के बन्धनों बँधा हुआ उत्पन्न होता है । उसी दैव में सारे कार्य पृथक् २ रूप से बंधे हुए हैं ॥२॥

दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी ।
अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥३॥

स एव महतीं सेनां समावर्त्तयदाहवे ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाऽभवत् ॥४॥

बहुत लम्बे काल तक जटा और मृगचर्म धारण करके राजा युधिष्ठिर ने संसार से छुपकर वन में बिताया, वही साधनहीन युधिष्ठिर रण में एक विशाल सेना लेकर आ पहुंचा है, इसमें मेरे पुत्रों का दैव ही विपरीत है, इसके अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है ॥३-४॥

युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥५॥

यह निश्चय है, कि मनुष्य दैव के अधीन होकर ही उत्पन्न होता है और जहाँ दैव ले जाता है, वही खिंचा २ फिरता है। यह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता है ॥५॥

द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥६॥

द्यूत (जुआ) के द्वारा राजा युधिष्ठिर विपत्ति में फँस गया और महान् क्लेश भोगता रहा, परन्तु यह भाग्य (दैव) की ही बात है, कि उसे फिर भी बहुत बड़ी सहायता मिल गई ॥६॥

अद्य मे केकया लब्धाः काशिकाः कोशलाश्च ये ।
चेदयश्चाऽपरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥७॥
पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा ।
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥८॥

हे तात ! सञ्जय ! मुझसे तो मन्दबुद्धि दुर्योधन, यही कहता रहता था, कि आज मेरी ओर केकय आज काशिक, कोसल, चेदि और वङ्ग देशके राजा मेरी ओर हो गये हैं। पृथिवीका बहुत बड़ा भाग मेरी ओर है। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर का अब किसी पर प्रभाव ही नहीं है ॥७।८॥

तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।
निहतः पार्षतेनाऽऽजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥९॥

अथाऽऽप्लुत्य रथात्तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त्त वरासिना ॥५५॥

शत्रुनाशक, यूपकेतु (भूरिश्रवा) शीघ्र रथ से कूद पड़े और इसने अपने उत्तम खड्ग से राजा मणिमान् के अश्व, सारथि, ध्वजा और रथ को चकनाचूर कर दिया ॥५५॥

रथं च स्वं समास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ।
स्वयं यच्छन्हयान्राजन्व्यधमत्पाण्डवीं चमूम् ॥५६॥

हे राजन् ! भूरिश्रवा फिर दौड़कर अपने रथ पर चढ़ गया और दूसरा धनुष लेकर आप ही रथ के अश्वों को हांकता हुआ, पाण्डवों की सेना का विध्वंस करने लगा ॥५६॥

पाण्ड्यमिन्द्रमिवाऽऽयान्तमसुरान्प्रति दुर्जयम् ।
समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥५६॥

असुरों के ऊपर इन्द्र के समान झपटते हुए पाण्ड्यदेश के राजा को देखकर शक्तिशाली वृषसेन ने अपने बाणसमूह से उसे रोका ॥५७॥

गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोधनोपलैः ।
कडङ्गरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥५८॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
पांसुवाताग्निसलिलैर्भस्मलोष्ठतृणद्रुमैः ॥५६॥

४७

आतुदन्प्ररुजन्भञ्जन्निघ्नन्विद्रावयन्क्षिपन् ।
सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥६०॥

गदा, परिघ, खड्ग, पट्टिश, अयोघन (लोहदण्ड) उपल (पत्थर) कडङ्गर (दण्ड) भुशुण्डी (बन्दूक) प्रास, तोमर, सायक, मुसल, मुद्गर, चक्र, भिन्दिपाल, परशु, मिट्टी, वायु, आग जल, भस्म ढेले, तृण, वृक्ष आदि साधनों से व्यथित, छेदित, मर्दित, हतपलायित, और प्रेरित करता हुआ, घटोत्कच, द्रोण की ओर बढ़ा। जिसने सेना में बड़ा ही भय खड़ा कर दिया ॥५८-६०॥

तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।
राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुषः ॥६१॥

अनेक प्रकार के युद्ध के उपयोगी अनेक शस्त्रों से क्रोधातुर अलम्बुष ने राक्षसराज घटोत्कच पर आक्रमण किया ॥६१॥

तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥६२॥

राक्षसों के उत्तम दो सेनापतियों द्वारा यह युद्ध इतना भीषण हुआ, कि जैसा पूर्वकाल में शम्बर दैत्य और इन्द्र का युद्ध हुआ था।

एवं द्वन्द्वशतान्यासन्रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च सङ्कुले ॥६३॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र और पाण्डव वीरों के रथी, गजारोही और अश्वारोहियों की इस युद्ध में सैंकड़ों जोटें बँध गई ॥६३॥

नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याऽभावभावे तु प्रसक्तानां यथाऽभवत् ॥६४॥

द्रोणाचार्य के मारने और बचाने में तत्पर दोनों ओर के वीरोंमें में जो युद्ध हुआ, वह न तो कभी देखा और न कभी सुना ही गया

इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रतातानि बहूनि च ॥६५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः

हे राजन् ! यह देखो कितना घोर युद्ध है-यह कितना विचित्र है। यह कितना भीषण है-इस प्रकार जिधर देखो-उधर ही बहुत से विस्तृत युद्धों की टोलियाँ दिखाई देती थी ॥६५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में द्वन्द्व-युद्ध का पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ

छब्बीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! पाण्डवसेना के इस तरह लौट आने और यथोचित रीति से युद्ध के लिए डट जाने पर वेगशील हमारे और पाण्डव वीरों ने किस भांति से युद्ध किया ॥१॥

किमर्जुनश्चाऽप्यकरोत्संशप्तकबलं प्रति ।
संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥२॥

हे सञ्जय ! अर्जुन ने संशप्तक सेना में पहुंच कर क्या पराक्रम दिखाया और संशप्तकों ने अर्जुन के साथ क्या किया ॥२॥

सञ्जय उवाच—

तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब इस तरह पाण्डव वीर, लौट आए और अपने २ युद्ध के ढंग के अनुसार खड़े हो गए-तो तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने हाथियों की सेना लेकर भीमसेन पर आक्रमण किया ॥३॥

स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः ।
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥४॥

जैसे—एक मदस्रावी हाथी, मदोन्मत्त दूसरे हाथी पर और एक वृषभ (सांड) दूसरे भीषण वृषभ पर झपटता है, उसी तरह राजा दुर्योधन का ललकारा हुआ भीमसेन, बड़े वेग से झपटा ॥४॥

स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चाऽन्वितः ।
अभिनत्कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष ॥५॥

हे आर्य ! कुन्ती-पुत्र भीमसेन, युद्ध—विद्या में कुशल और भुजाओं के बल से सुसम्पन्न था। इसने थोड़ी ही देर में राजा दुर्योधन की हाथियों की सेना का विध्वंस उड़ाना आरम्भ किया।

ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् ।
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ॥६॥

राजा दुर्योधन की सेना में पर्वत के समान आकारधारी, बड़े २ मदस्रावी गजराज थे, परन्तु भीमसेन के बाणों से उनका सारा मद सूख गया और वे युद्ध से विमुख होकर भाग निकले ॥६॥

विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ॥७॥

जिस प्रकार प्रचण्ड वायु, मेघसमूह को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी तरह पवन-पुत्र भीमसेन भी राजा दुर्योधन की हाथियों की सेना को नष्ट करने लगा ॥७॥

स तेषु विसृजन्बाणान्भीमो नागेष्वशोभत ।
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥८॥

हाथियों के ऊपर बाण फैंकता हुआ भीमसेन, सारे भुवनों पर किरण फैंकने वाले प्रचण्ड सूर्य की तरह देदीप्यमान हो रहा था।

ते भीमबाणाभिहताः संस्यूता विबभुर्गजाः।
गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य व्योम्नि नानाबलाहकाः ॥९॥

भीमसेन के बाणों से आच्छादित हुए, कुरुसेना के हाथी, आकाश में सूर्य किरणों से व्याप्त अनेक मेघों की तरह प्रतीत होते थे

तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम्।
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥१०॥

जब राजा दुर्योधन ने इस तरह हाथियों की सेना का विध्वंस करते हुए पवन-पुत्र भीमसेन को देखा-तो वे क्रोधातुर होकर स्वयं आगे बढ़े और तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को आहत करने लगे।

ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः।
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥११॥

क्षतज (घाव) के समान लाल नेत्रधारी भीमसेन, राजा दुर्योधन का अन्त कर देना चाहते थे, इसलिए वे बड़े तीखे बाण छोड़ २ कर कुरुराज को आहत करने लगे ॥११॥

स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम्।
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव ॥१२॥

राजा दुर्योधन का सारा अङ्ग बाणों से आच्छादित हो रहा था, तो भी वह मुसकुराता हुआ सूर्य किरणवत् तीक्ष्ण बाणों से पाण्डु-पुत्र भीमसेन को बींधने लगे ॥१२॥

तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम् ।
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः ॥१३॥

राजा दुर्योधन की रत्नों से चित्रित ध्वजा में मणि—जटित हाथी का चिह्न था। पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने उस हाथी और कुरु-राज के धनुष को एक दम दो बाण छोड़ कर काट डाला ॥१३॥

दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थित ॥१४॥

हे आर्य ! भीमसेन द्वारा राजा दुर्योधन को पीड़ित देखकर अङ्ग नामक म्लेच्छराज, भीमसेन को व्याकुल करने की इच्छा से हाथी पर बैठा हुआ आगे बढ़ा ॥१४॥

तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद्भृशम् ॥१५॥

मेघ के समान गर्जना करते हुए उस गजराज को आगे बढ़ते देखकर भीमसेन ने उस के मस्तक में अपने बाणों से तीखा प्रहार किया ॥१५॥

तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद्धरणीतले !
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाऽचलः ॥१६॥

भीमसेन के बाण, उस गजराज के मस्तक को भेद कर पृथिवी में घुस गए। इसके अनन्तर वज्र से पीड़ित पर्वत की तरह वह हाथी भी वहीं गिर गया ॥१६॥

तस्याऽऽवर्जितनागस्य म्लेच्छस्याऽधः पतिष्यतिः ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥१७॥

गिरते हुए हाथी से नीचे कूदते हुए, म्लेच्छराज अङ्ग के शिर को भी शीघ्रताकारी (फुर्तीले) भीमसेन ने काट गिराया ॥१७॥

तस्मिन्निपतिते वीरे सम्प्राद्रवत सा चमूः ।
सम्भ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातीनवमृद्नती ॥१८॥

इस वीर म्लेच्छराज के गिरते ही सारी सेना के अश्व, हाथी और रथों में खलबली मच गई । अब कौरवों की सेना, पैदलों को कुचलती हुई, रणभूमि से भाग खड़ी हुई ॥१८॥

तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥१९॥

जब कौरवसेना के पैर उखड़ गए और वह इधर उधर भागने लगी तो इसी समय राजा भगदत्त अपने हाथी के द्वारा रणभूमि मेंआगे बढ़ा ॥१९॥

येन नागेन मघवानजयद्दैत्यदानवान् ।
तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥२०॥

जिस ऐरावत हाथी से इन्द्र ने दैत्य और दानवों को जीता, उसी हाथी के तुल्य गजराज के साथ राजा भगदत्त ने भीमसेन पर आक्रमण किया ॥२०॥

स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् ।
चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥२१॥
व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम् ।
वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥२२॥

राजा भगदत्त के मदोन्मत्त हाथी ने अपने दोनों चरण और सुडोल सूंड को उठा कर भीमसेन के रथ पर आक्रमण किया। इस हाथी की आंखें क्रोध से चढ़ी हुई थी और यह पाण्डुपुत्र भीमसेन का चूरा कर देना चाहता था। इसने अश्वों सहित भीमसेन के सम्पूर्ण रथ को चकनाचूर कर दिया ॥२१-२२॥

पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत ।
जानन्नञ्जलिकावेधं नाऽपाक्रामत पाण्डवः ॥२३॥

अब भीमसेन, रथ से निकल कर पैदल ही दौड़े और हाथी के नीचे शरीर में अन्तर्हित (लीन) होगए। भीमसेन अञ्जलिकावेध (अञ्जलि द्वारा हाथी का पुचकारना) जानता था, इससे हाथी के नीचे से नहीं निकला ॥२३॥

गात्राभ्यन्तरगा भूत्वा करेणाऽताडयन्मुहुः ।
लालयामास तं नागं वधाकांक्षिणमव्ययम् ॥२४॥

भीमसेन हाथी के शरीर के नीचे होकर अपने हाथ से बार २ हाथी को आस्फालित (ताडन) करने लगा। इन्होंने इस तरह वध के उत्सुक शक्तिशाली इस गजराज को इस तरह लडाना आरम्भ किया

कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाऽभ्रमत् ।
नागायुतबलः श्रीमान्कालयानो वृकोदरम् ॥२५॥

दश हज़ार हाथी के बल से सम्पन्न, राजा भगदत्त का वीर हाथी, भीमसेन के पकड़ने को कुम्हार के चक्र की भांति जल्दी २ चक्कर लगाने लगा ॥२५॥

भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत् ।
भीमं करेणाऽवनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥२६॥

भीमसेन भी अब निकल कर उस सुप्रतीक (हाथी) के सन्मुख हुआ। इसने अपनी सूंड में भीम को पकड़ कर अपनी दोनों टांगों से उसे दबोच देना चाहा ॥२६॥

ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत ।
करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्वा व्यमोचयत् ॥२७॥

हाथी ने अपनी सूंड को अलबेटी भीमसेन की ग्रीवा में से भी डाल ली। इस प्रकार इस भीषण हाथी ने भीम की समाप्ति ही कर देनीचाही। भीमसेन ने भी सूंड के वेष्टन (अलबेटी) कोघुमाकर निकाल दिया ॥२७॥

पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः ।
यावत्प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥२८॥

भीमसेन फिर चक्कर लगाकर उसी हाथी के उदर के नीचे घुस गया और यह अपनी सेना से इसके समान बलशाली दूसरे हाथी के आने की प्रतीक्षा करने लगा ॥२८॥

भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो विनिःसृत्याऽपयाज्जवात् ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ॥२६॥
अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ।
तेन नागेन सन्त्रस्ता पाण्डवानामनीकिनी ॥३०॥
सहसाऽभ्यद्रवद्राजन्यत्र तस्थौ वृकोदरः ।

हे आर्य ! इसी अन्तर में भीमसेन इस गजराज के नीचे से निकल कर बड़े वेग से भाग निकला। इस समय सारी पाण्डव सेना में कोलाहल मच गया, कि बड़े खेद की बात है, कि भीमसेन को हाथी ने मार डाला। हे राजन् ! इस प्रकार राजा भगदत्त के हाथी से भयभीत हुई पाण्डवसेना, एक दम भाग खड़ी हुई और भीमसेन दूसरी ओर जाकर खड़ा हो गया ॥२६-३०॥

ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ॥३१॥
भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् ।

जब राजा युधिष्ठिर ने सुना, कि वृकोदर भीम मारे गए-तो उन्होंने पाञ्चालसेना साथ लेकर राजा भगदत्त को सब ओर से घेर लिया॥३१॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परन्तपाः ॥३२॥
अवाकिरञ्छरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इस महारथी राजा भगदत्त को महारथियों में श्रेष्ठ, शत्रुतापी पाञ्चालवीरों ने सैंकड़ों और सहस्रों की संख्या में टोली बना ०

कर सब ओर से घेर कर तीक्ष्ण बाणों से आच्छादित करना आरम्भ किया ॥३२॥

स विघातं पृषत्कानामंकुशेन समाहरन् ॥३३॥
गजेन पाण्डुपञ्चालान्व्यधमत्पर्वतेश्वरः ।

पर्वत प्रदेश के स्वामी राजा भगदत्त, इनके अनेक बाणों के आघातों को अपने अंकुश के द्वारा बचाकर अपने उसी सुप्रतीक हाथी द्वारा पाण्डव और पाञ्चालों की सेना को कुचलने लगा ॥३३॥

तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥३४॥
तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! राजा भगदत्त बहुत वृद्ध थे, परन्तु इस गजराज के द्वारा वे रण में इतना वीर कर्म कर रहे थे, कि जिसको देखकर सारे योद्धा चकित होते थे और इस युद्धको बड़ा ही अद्भुत मानते थे

ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥३५॥
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाऽऽशुगामिना ।

इस प्रकार राजा भगदत्त को गजराज द्वारा आक्रमण करता देखकर दशार्णदेश के महीपति ने भी अपने मदस्रावी शीघ्रगामी हाथी को आगे बढ़ाया। यह अपने हाथी को टेढ़ा चला कर रणमें भगदत्त पर बुरी तरह झपटा ॥३५॥

तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥३६॥
सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।

अब भीषणरूपधारी इन दोनों हाथियों की टक्कर होने लगी, जो पत्त-धारी वृक्षोंके सहित दो पर्वतों की लड़ाई सी प्रतीत होती थी।

प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्याऽपसृत्य च ॥३७॥
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्वा नागमपातयत् ।

प्राग्ज्योतिषपुर केअधिपति भगदत्त का हाथी पीछे हटा और फिर दौड़कर उसने दशार्ण देश के हाथी के पार्श्व में ऐसी टक्कर मारी; कि उसकी पसलियां चूर २ हो गई-इस प्रकार भगदत्त के हाथी ने अपने विरोधी हाथी को मार गिराया ॥३७॥

तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ॥३८॥
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ।

दशार्णाधिपति इस हाथी से कूदना ही चाहता था, कि सूर्य की किरणों के तुल्य सात तोमरों (बाण-विशेषों) से राजा भगदत्त ने अपने शत्रु को हाथी पर ही मार डाला ॥३८॥

व्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥३९॥
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ।

अब राजा युधिष्ठिर ने बड़ी भारी हाथियों की सेना लेकर राजा भगदत्त पर आक्रमण करके उसे सब ओर से घेर लिया ॥३९॥

स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतोवृतः ॥४०॥
पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ।

पाण्डवों के अनेक महारथियों से घिरा हुआ और हाथी पर बैठा हुआ राजा भगदत्त, वन के मध्य में पर्वत पर जलता हुआ अग्नि सा प्रतीत होता था ॥४०॥

मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥४१॥
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ।

उग्रधनुषधारी पाण्डववीरों ने सब ओर से मण्डल बनाकर भगदत्त के हाथी पर बाणवर्षा करना आरम्भ किया, जिससे आहत होकर वह हाथी, वहाँ चारों ओर चकरी की तरह चक्कर लगाने लगा ॥४१॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ॥४२॥
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ।

अब राजा भगदत्त ने अपने हाथी को सम्हाला और उसे एक दम सात्यकि के रथ की ओर आक्रमण के लिए प्रेरित किया ॥४२॥

शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ॥४३॥
अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।

इस गजराज ने शिनिपौत्र सात्यकि के रथ को उठा लिया और बड़े वेग से घुमाकर फैंक दिया, परन्तु सात्यकि उछल कर रथ से निकल गया ॥४३॥

बृहतः सैन्धवानश्वान्समुत्थाप्याऽथ सारथिः ॥४४॥
तस्थौ सात्यकिमासाद्य सम्प्लुतस्तं रथं प्रति ।

सात्यकि के सारथि ने सिन्धुदेशोत्पन्न अपने अश्वों को फिर उठाया और उछल कर अपने रथ पर बैठ कर और महारथी सात्यकि को उसमें बैठाकर फिर युद्धके लिए उठकर खड़ा हो गया।

स तु लब्ध्वाऽन्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ॥४५॥
निश्चक्राम ततः सर्वान्परिचिक्षेप पार्थिवान् ।

अब समय (मौका) पाकर इन रथियों के समूह से हाथी बड़े वेग से बाहर निकला और इसने फिर अनेक राजाओं को उठा २ कर फैंकना आरम्भ किया ॥४५॥

ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥४६॥
तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ।

शीघ्रता से चारों ओर झपटने वाले इस हाथीसे पीड़ित हुए राजा लोग, इस अकेले हाथी को सैंकड़ों हाथियों की बराबर समझते थे।

ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥४७॥
ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ।

इस गजराज पर बैठे हुए राजा भगदत्त, पाण्डवों को इस तरह ललकार रहे थे-जैसे ऐरावत हाथी पर स्थित देवराज इन्द्र, दानवों को ललकारते हैं ॥४७॥

तेषां प्रद्रवतां भीमः पञ्चालानामितस्ततः ॥४८॥
गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान्समजायत ।

पाञ्चाल वीरों के इधर उधर भागने से हाथी घोड़ों का रण भूमि में बड़ा भयानक कोलाहल खड़ा हो गया ॥४८॥

भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥४६॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ।

जब राजा भगदत्त ने बड़े आवेश में पाण्डवों का युद्ध के लिए आह्वान किया-तो अत्यन्त क्रोधातुर होकर भीमसेन रण में आगे बढ़े।

तस्याऽभिद्रवतो वाहान्हस्तमुक्तेन वारिणा ॥५० ।
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्तं पार्थमहरंस्ततः ।

अपने रथ के द्वारा आक्रमण करते हुए भीमसेन के अश्वों को इस दुष्ट हाथी ने अपनी सूंड के जल से भिगोकर पीड़ित करना आरम्भ किया, जिससे वे, भीमसेन को लेकर रणभूमि से बाहर निकल आए ॥५०॥

ततस्तमभ्ययात्तूर्णं रुचिपर्वाऽऽकृतीसुतः ॥५१॥
समग्रन्छरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसन्निभः ।

यह देखकर आकृती-पुत्र रुचिपर्वा बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ा और रथ के मध्य में काल की तरह स्थित होकर बाण-वर्षा करने लगा ॥५१॥

ततः स रुचिपर्वाणं शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥५२॥
सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ।

सुन्दर अङ्गसन्धियों के धारण करनेवाले पर्वतपति राजा भगदत्त ने एक झुके पर्ववाले बाण से राजा रुचिपर्वा को यमधाम पहुंचा दिया ॥५२॥

तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः ॥५३॥
चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चाऽर्दयन्द्विपम् ।

त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ॥५४॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ।

जब यह वीर रुचिपर्वा भी रणभूमि में गिर गया तो सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु, द्रौपदी-पुत्र प्रतिविन्ध्य, चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु इस हाथी को मारने की इच्छा से भयानक गर्जना करते हुए मेघों की भांति झड़ी लगाकर बाणों से आच्छादित करने लगे।

ततः पार्ष्ण्यंकुशांगुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः ।५५।
प्रसारितकरः प्रायात्स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम् ।

युद्धविद्याकुशल राजा भगदत्त ने अपनी एडी, अंकुश और चरण के अगूंठे से इस हाथी को आगे बढ़ने का संकेत किया। यह हाथी भी अपनी सूंड फैलाकर और कान आंखों को निश्चल करके बड़े वेग से दौड़ा ॥५५॥

सोऽधिष्ठाय पदा वाहान्युयुत्सोः सूतमारुजत् ॥५६॥
युयुत्सुस्तु रथाद्राजन्नपाक्रामत्त्वरान्वितः ।

इसने अपने पैरों से अश्वों को दाब कर महारथी युयुत्सु के सारथि को मार डाला। हे राजन् ! इस समय महारथी युयुत्सु, तो बड़ी शीघ्रता से रथ से कूद कर दूर चला गया ॥५६॥

ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम् ॥५७॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ।

इस हाथी के मारने के इच्छुक, पाण्डव वीर, अनेक भांति से सिंहनाद करते हुए इस गजराज को अपनी बाणवर्षा से आच्छादित करने लगे ॥५७॥

पुत्रस्तु तत्र सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याऽऽप्लुतो रथम् ।५८।
स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः ।
बभौ रश्मीनिवाऽऽदित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥५९॥

इससमय अन्य कुछ उपाय न देखकर तुम्हारा पुत्र युयुत्सु, अभिमन्युके रथ पर कूद कर चढ़ गया। राजा भगदत्त भी, अपने हाथीपरबैठकर बाण चलाने लगा। इस समय यह ऐसा प्रतीत होता था-जैसे उदय पर्वत से सूर्य अपनी किरणें फैंक रहा हो ॥५८-५९॥

तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥६०॥

अब अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने बारह, युयुत्सु ने दश, द्रौपदी पुत्र और राजा धृष्टकेतु ने तीन २ बाण छोड़कर राजा भगदत्त के हाथी को बींध दिया ॥६०।

सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥६१॥

बड़े प्रयत्न-पूर्वक चलाये हुए बाणों से आच्छादित हुआ यह गजराज ऐसा प्रतीत होता था, जैसे सूर्य की किरणों से महान् मेघ व्याप्त हो रहा हो ॥६१॥

नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोऽरिशरार्दितः

परिचिक्षेप तान्नागः स रिपून्सव्यदक्षिणम् ॥६२॥

शत्रु के बाणों से व्याप्त हुआ भी गजराज, अपने स्वामी की कारीगरी और प्रयत्न के साथ चलाने के कारण अपने शत्रुओं को दांयी बांयी ओर फैंकने लगा ॥६२॥

गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ।

आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥६३॥

राजा भगदत्त ने पाण्डवसेना को इस समय इस तरह घेर रखा था, जैसे वन में ग्वाला अपने दण्ड के द्वारा गायों को बार २ घेरता रहता है ॥६३॥

क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।

बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥६४॥

थोड़ी ही देर में श्येन (बाज़) पक्षी द्वारा घेरे हुए कौओं का जैसे चीत्कार होने लगता है, उसी तरह राजा भगदत्त से दबाने से भागते हुए पाण्डव वीरों का रणभूमि मेंआर्त स्वर बहुत अधिक रूप में बढ़ने लगा ॥६४॥

स नागराजः प्रवरांकुशाहतः पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप

भयं तदा रिपुषु समादधद्भृशं वणिग्जनानां क्षुभितो यथाऽर्णवः

हे राजन् ! भगदत्त के तीखे अंकुश से आगे बढ़ाया हुआ हाथी, पक्षधारी पर्वत सा दिखाई देता था । इस समय व्यापारियों को

भयातुर करते हुए क्षुभित समुद्र की भांति यह हाथी भी शत्रुओं में अत्यन्त भय उत्पन्न कर रहा था ॥६५॥

ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवैर्भयाद् द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः
क्षितिं वियद्द्यां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत्पार्थिवसंयुगेततः

अब भय से भागते हुए हाथी, रथ, अश्व, और राजाओं की बहुत भयानक ध्वनि होने लगी, जिसने इस घोरसंग्राम में पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, दिशा और विदिशाओं को व्याप्त कर दिया ॥६६॥

स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम्
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥६७॥

राजा भगदत्त ने अपने इस शक्तिशाली हाथी द्वारा शत्रुओं की सेना को इस तरह मथ डाला, जैसे पूर्वकाल में देवों की सेना को रण में दैत्यराज विरोचन ने व्याकुल कर दिया था ॥६७॥

भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः
समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।
तमेकनागं गणशो यथा गजाः
समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः

अब अग्नि का बढ़ाने वाला वायु चलने लगा, जिससे इतनी धूलि उठी, कि जिसने आकाश को ढक कर सैनिकों को आच्छादित

कर लिया। इस समय सारे वीर सैनिक, इस अकेले हाथी को हाथियों की सेना के समान पराक्रम कर दिखाने वाला समझने लगे।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तक वध पर्व में भगदत्त के युद्ध का छब्बीसवां अध्याय संपूर्ण हुआ

सत्ताईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि।
तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रणे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाबाहो! आपने जो रण में अर्जुन के पराक्रम के विषय में प्रश्न किया है तो जो पराक्रम रणमें अर्जुनने कर दिखाये तुम अब उनका श्रवण करो ॥१॥

रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम्।
भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥२॥

राजा भगदत्त के इस प्रकार अपने पराक्रम के विस्तार करने पर जो धूलि रणभूमि में उठ खड़ी हुई-उसको देखकर और इस गज की गर्जना सुनकर कुन्ती-पुत्र, अर्जुन, श्रीकृष्णसे कहने लगे।

यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन।
त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निःस्वनः ॥३॥

हे मधुसूदन ! राजा भगदत्त ने रण में बड़े उत्साह से चढ़ाई की थी, इससे प्रतीत होता है, कि यह उसके ही हाथी की गर्जना है ॥३॥

इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः ।
प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥४॥

राजा भगदत्त, गजारोही वीरों में इन्द्र के तुल्य पराक्रमी है, जो हाथी के चलाने में बड़ा कुशल है । मेरे मत में तो यह पृथिवी पर हाथियों के सवारों में सर्वश्रेष्ठ योद्धा है ॥४॥

स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽप्रतिगजो युधि ।
सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतवर्मा जितक्लमः ॥५॥

राजा भगदत्त का सुप्रतीक गजराज भी अपनी जोड़ का दूसरा हाथी नहीं रखता है। यह रण में किसी शस्त्र की वेदना नहीं मानता है। इस पर सदा कवच पड़ा रहता है और युद्ध में कभी नहीं थकता ॥५॥

सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चाऽनघ ।
स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति ॥६॥

हे अनघ ! यह गजराज सारे शस्त्रों के आघातों का सहने वाला और अग्नि के दाह की भी उपेक्षा करने वाला है। आज यह सारी ही पाण्डव का सेना का नाश कर देगा--ऐसा ज्ञात होता है

न चाऽऽवाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम् ।
त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्जोतिषाधिपः ॥७॥

इस समय हम दोनों के अतिरिक्त उसे वशमें करने की किसी में शक्ति नहीं है। अब तुम शीघ्रता से एक बार वहां पहुंचो, जहां पर प्राग्ज्योतिषपुर का अधिपति राजा भगदत्त युद्ध कर रहा है॥७॥

दृप्तं संख्ये द्विपबलाद्वयसा चापि विस्मितम्।
अथैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥८॥

राजा भगदत्त अपनी गजसेना पर बड़ा घमण्ड रखता है और इसको अपने वृद्ध होने से युद्धानुभवी होने का भी गर्व है। अब से इसको इन्द्र का प्रिय अतिथि बनाकर स्वर्ग भेज देना चाहता हूँ।

वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः।
दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥९॥

सव्यसाची अर्जुन के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण, उधर ही चल दिए-जहां पर राजा भगदत्त द्वारा पाण्डवों की सेना का विध्वंस हो रहा था॥९॥

तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः।
संशप्तकाः समारोहन्सहस्राणि चतुर्दश ॥१०॥

जब अर्जुन राजा भगदत्त की ओर चल पड़े-तो उसके पीछे २ चौदह सहस्र संशप्तक वीर, उसको युद्ध के निमित्त आह्वान करते हुए दौड़े॥१०॥

दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्त्तानां महारथाः।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चाऽनुगाः ॥११॥

इनमें दश हजार तो त्रिगर्त देशके महारथी वीर थे और चार हजार राजा वासुदेव के अनुगामी थे ॥११॥

दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष ।
आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥१२॥

हे आर्य ! अर्जुन एक ओर तो राजा भगदत्त को पाण्डवसेना का विध्वंस करते देख रहे थे और दूसरी ओर संशप्तक वीर आह्वान कर रहे थे । अब कौन सा कार्य प्रथम करना योग्य है, इस में उनका हृदय दुविधा में पड़ गया ॥१२॥

किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदद्येति चिन्तयन् ।
इह वा विनिवर्त्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥१३॥

अर्जुन, बार २ यही सोच रहे थे, कि मैं संशप्तकों के साथ युद्ध करने को लौटूं या राजा युधिष्ठिर के पास चलूं-इनमें कौनसा कार्य कल्याणकारी होगा ॥१३॥

तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह ।
अभवद्भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥१४॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! उसने बार २ बुद्धि पर बल (ज़ोर) देकर विचार किया-तो उसकी बुद्धिने यही स्थिर, किया कि प्रथम संश-प्तकों का ही वध करना चाहिए ॥१४॥

स सन्निवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः ।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥१५॥

कपिश्रेष्ठ के चिह्न से अङ्कित ध्वजावाले इन्द्र-पुत्र अकेले अर्जुन, चौदह सहस्र संशप्तक वीरों के वध के लिए एकदम लौट पड़े ॥१५॥

सा हि दुर्योधनस्याऽऽसीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः ।
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥१६॥

राजा दुर्योधन और कर्ण ने यह सारा घटना चक्र, अर्जुन के निमित्त चलाया था, कि एक ओर संशप्तक युद्ध और एक ओर राजा भगदत्त के हाथी का घोर उपद्रव होना चाहिए। इसी से अर्जुन के सन्मुख यह विकट संकट उपस्थित हुआ ॥१६॥

स तु दोलायमानोऽभूद् द्वैधीभावेन पाण्डवः ।
वधेन तु नराग्र्याणामकरोत्तां मृषा तदा ॥१७॥

यद्यपि अर्जुन का चित्त दो ओर बह जाने से वह झूले पर झूलने की तरह दुविधामें फंस रहा था, परन्तु संशप्तक वीरोंके वध का निश्चय करके अर्जुनने उनकी इस सम्मति को व्यर्थ बना डाला।

ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
असृजन्नर्जुने राजन्संशप्तकमहारथाः ॥१८॥

हे राजन् ! अब सहस्रों की संख्या में इकट्ठे हुए संशप्तक वीरों ने झुके पर्ववाले बाणों की वर्षा करना आरम्भ किया ॥१८॥

नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः ।
न हया न रथो राजन्दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥१९॥

हे राजन् ! इन बाणों से आच्छादित होकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन, जनार्दन कृष्ण और उनके अश्व, कुछ भी दिखाई नहीं देते थे ॥१६॥

तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः ।
ततस्तान्प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥२०॥

इस समय श्रीकृष्ण, कुछ व्यग्र हो गए और उनके शरीर में स्वेद (पसीना) झलकने लगा। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर संशप्तकों का मारना आरम्भ किया ॥२०॥

शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः ।
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चाऽपतन्क्षितौ ॥२१॥

बाण, धनुष की डोरी करतलत्राण और धनुष के साथ बहुतों से वीरों के हाथ कट २ लगे तथा बहुतों के अश्व, ध्वजा, सारथि, एवं बहुत से महारथी, रणभूमि में गिरने लगे ॥२१॥

माचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः ।
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः ॥२२॥

अर्जुन के बाण से आहत हुए, वृक्ष, पर्वत शिखर और मेघों के तुल्य ऊंचे शरीरधारी मदोन्मत्त हाथी, अपने सवारोंके मारेजाने पर स्वयं भी मर कर रणभूमि में गिरने लगे ॥२२॥

विप्रविद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः ।
सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् ॥२३॥

बहुत से हाथियों की झूलें फट गई और आभूषण नष्ट-भ्रष्ट हो गए। अर्जुन के बाणों से अत्यन्त मर्माहत होकर बहुत से हाथी अपने सवारों को ले २ कर रणभूमि में गिरने लगे ।।२३।।

सर्ष्टिप्रासासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः ।
विच्छिन्नबाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना ।।२४।।

किरीटधारी अर्जुन के बाणों से ऋष्टि, प्रास, खड्ग नखर (बाघ नख) मुद्गर, परशु आदि शस्त्रों से सुसज्जित वीरों की भुजाएँ कट २ कर गिरने लगी ।।२४।।

बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष ।
सञ्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे ।।२५।।

हे आर्य ! प्रातःकाल के सूर्य, कमल पुष्प और चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर रूप वाले संशप्तकों वीरों के शिर अर्जुन के बाणों से कट २ कर पृथिवी में गिरने लगे ।।२५।।

जज्वालाऽलंकृता सेना पत्त्रिभिः प्राणिभोजनैः ।
नानारूपैस्तदाऽमित्रान्क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ।।२६।।

क्रोध में भरे हुए अर्जुन द्वारा अनेक ढंगों से शत्रुसेना का नाश करने के समय, प्राणियों के घातक बाणों से अलङ्कृत हुई शत्रुसेना प्रज्वलित हो उठी ।।२६।।

क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
धनञ्जयं भूतगणाः साधुसाध्वित्यपूजयन् ।।२७।।

हाथी जैसे कमलिनी के वन को आलोडित करता है, ऐसे ही शत्रु सेना को आलोडित करने वाले धनञ्जय अर्जुन को देखकर लोग उसकी प्रशंसा करने लगे ॥२७॥

दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥२८॥

श्रीकृष्ण, इन्द्र के सदृश अर्जुन के दिव्य कर्मों को देखकर बड़ा आश्चर्य करने लगे और हाथ जोड़कर अर्जुन से बोले ॥२८॥

कर्मैतत्पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च ।
दुष्करं समरे यत्ते कृतमद्येति मे मतिः ॥२९॥

हे अर्जुन ! आज जो दुष्कर रणकौशल तुम ने इस युद्ध में दिखाया है, उसे इन्द्र, यम और कुबेर भी नहीं कर सकता है, मुझे ऐसा निश्चय है ॥२९॥

युगपच्चैव संग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतिता एव मे दृष्टाः संशप्तकमहारथाः ॥३०॥

हे महाबाहो ! आज मैंने तो एक ही दम सैंकड़ों हजारों की संख्या में संशप्तक वीर रणभूमि में गिरते देखे हैं ॥३०॥

संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।
भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत् ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संशप्तकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

हे कृष्ण ! जो बहुत संख्या में मेरे सन्मुख उपस्थित थे, उन संशप्तकों को मार कर अधिक संख्या में रणभूमि में शयन करा दिया है। अब तुम शीघ्र राजा भगदत्त के समीप चलो-इस प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण को प्रेरित किया ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में संशप्तकों के वध का सत्ताईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

अट्ठाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याऽश्वान्मनोजवान् ।
सम्प्रैषीद्धेमसञ्छन्नान्द्रोणानीकाय सन्त्वरन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! अब राजा भगदत्त पर आक्रमण करने के अभिलाषी अर्जुन के मन के समान वेगशाली, सुवर्ण के अलङ्कारों से युक्त अश्वों को, श्रीकृष्ण, इस ढंग से हांकने लगे, कि वे बहुत शीघ्र द्रोणाचार्य की सेना में पहुंच जावें ॥१॥

तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान्भ्रातॄन्द्रोणतापितान् ।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥२॥

आचार्य द्रोणद्वारा पीड़ित किये हुए अपने भाइयों की सहा-

यता के लिये दौड़कर आते हुए कुरुवंशश्रेष्ठ अर्जुन का त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपने भाइयों के साथ युद्ध के लिए पीछा किया ॥२॥

ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः ।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयतऽच्युत ॥३॥
दीर्यते चोत्तरेणैव तत्सैन्यं मधुसूदन ।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम् ॥४॥

श्वेत अश्वों के रथ में चलने वाले विजयी अर्जुन ने किसी से पराजित होने नहीं वाले श्रीकृष्ण से कहा-हे अच्युत ! अब मुझे अपने भाइयों के साथ दौड़ा आता हुआ राजा सुशर्मा युद्ध के लिए आह्वान कर रहा है। हे मधुसूदन ! दूसरे उत्तर दिशा में हमारी सेना का नाश हो रहा है। इन दुष्ट संशप्तकों ने आज मेरे मनकी बड़ी चञ्चल गति करदी है ॥३-४॥

किं नु संशप्तकान्हन्मि स्वान्रक्षाम्यहितार्दितान् ।
इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥५॥

अब मैं इन संशप्तकोंका वध करूं या शत्रु द्वारा व्याकुल किये हुए अपने परिवार की रक्षा करूं। आप मेरी इस दुबिधा को जानते हो-अब इसमें कौनसा मार्ग श्रेष्ठ है-मुझे वही बताओ ॥५॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्त्तयत् ।
येन त्रिगर्त्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥६॥

अर्जुन के इतना कहने पर श्रीकृष्ण ने फिर अपना रथ उधर को लौटाया, जिधर खड़ा हुआ त्रिगर्ताधिपति सुशर्मा, अर्जुन को युद्ध में ललकार रहा था ॥६॥

ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
ध्वजं धनुश्चाऽस्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥७॥

अर्जुन ने उधर जाते ही सात बाण छोड़ कर राजा सुशर्मा को बींध डाला और क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाणों से उसकी ध्वजा और धनुष को काट फैंका ॥७॥

त्रिगर्त्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः ।
साश्वं ससूतं परितः पार्थः प्रैषीद्यमक्षयम् ॥८॥

अर्जुन ने त्रिगर्ताधिपति सुशर्मा के भ्राता पर भी छः बाण छोड़े, जिनसे उसके चार घोड़े एक सारथि और स्वयं राजा सुशर्मा का भ्राता भी यमनगरी को पहुंचा दिया गया ॥८॥

ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् ।
चिक्षेपाऽर्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥९॥

अब राजा सुशर्मा ने सर्प के समान भीषण, लोहमयी शक्ति उठाई और उसको अर्जुन पर फैंका। इसी तरह वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण पर भी तोमर शस्त्र द्वारा प्रहार किया ॥९॥

शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः ।
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्त्तयत् ॥१०॥

अर्जुन ने तीन बाणों से शक्ति और तीन बाणों से तोमर को काट डाला और वह राजा सुशर्मा को बाणसमूह से मूर्च्छित करके द्रोण सेना की ओर लौट पड़ा ॥१०॥

तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥११॥

हे राजन् ! जब अर्जुन, बहुत से बाणों की वर्षा करते हुए तुम्हारे पक्ष की सेना की ओर झपट रहे थे, तो तुम्हारी सेना में कोई ऐसा वीर सामने नहीं आया, जो इस भीषण वेगधारी अर्जुन को रोक सके ॥११॥

ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान् ।
आयाद्विनिघ्नन्कौरव्यान्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥१२॥

अब अर्जुन, तृणसमूह को भस्म करते हुए अग्नि की तरह कुरुसेना के महारथियों को अपने बाणों से व्याकुल करते हुए आगे बढ़े ॥१२॥

तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
नाऽशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥१३॥

बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुन के इस असह्य वेग को अग्नि के वेग को मनुष्यों की तरह तुम्हारे पक्ष के कोई योद्धा नहीं सह सके ॥

संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः ।
सुपर्णपातवद्राजन्नायात्प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥१४॥

हे राजन् ! इस तरह बाणवर्षा से कौरवसेना को आच्छादित करते हुए अर्जुन, अपने वेग से गरुड़ को भी न्यून करते हुए राजा भगदत्त के सन्मुख पहुंचे ॥१४॥

यत्तदाऽनामयञ्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् ।
धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम् ॥१५॥
तदेव तव पुत्रस्य राजन्दुर्द्यूतदेविनः ।
कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥१६॥

हे राजन् ! किसी भी प्रकारके अपराधसे रहित, भरतवंशोद्भव पाण्डवों के कल्याणकारी, सब प्रकार की न्यूनताओं से रहित, शत्रुओं के अश्रुओं का प्रवर्तक, दुर्द्यूत (पापपूर्ण जुआ) खेलने वाले तुम्हारे पुत्र के पक्ष के क्षत्रियों के नाशकारी अपने गाण्डीव धनुष को अर्जुन ने खैंचकर चढ़ाया ॥१५-१६॥

तथा विक्षोभ्यमाणा सा पार्थेन तव वाहिनी ।
व्यशीर्यत महाराज नौरिवाऽऽसाद्य पर्वतम् ॥१७॥

हे राजन् ! अब अर्जुन से टकरा कर कौरवसेना इस प्रकार बिखरने लगी, जैसे समुद्र में पर्वत की चट्टान से टकरा कर नौका चकनाचूर हो जाती है ॥१७॥

ततो दशसहस्राणि न्यवर्त्तन्त धनुष्मताम् ।
मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये ॥१८॥

अब दश हज़ार कौरव महारथी, वीर अर्जुन के सन्मुख आए, जिन्होंने यह भीषण विचार कर लिया, कि या तो विजय होगी अन्यथा पराजय प्राप्त करके रण में प्राण छोड़ देंगे ॥१८॥

व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः ।
आच्छैत्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥१६॥

इन कौरव महारथियों को भी किसी प्रकार का हृदय में डर नहीं था, उन्होंने आकर अर्जुन का आह्वान किया। अर्जुन भी युद्ध में सब कुछ कठिनाइयों के सह लेने में समर्थ है, इससे उसने इस भारी बोझे को भी अपने शिर पर उठा लिया ॥१६॥

यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्ठिहायनः ।
मृद्नीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नाच्चमूं तव ॥२०॥

जिस तरह मदस्रावी साठ वर्षका युवा गजराज, कमलनालके वन को क्रोध से कुचलता है, उसी तरह लगातार बाण फैंकने वाले, अर्जुन ने कौरवसेना का नाश करना आरम्भ किया ॥२०॥

तस्मिन्प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।
तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥२१॥

अब अर्जुन द्वारा इस प्रकार सेना का विध्वंस देखा, तो राजा भगदत्त, उसी अपने हाथी के द्वारा एक दम, धनञ्जय अर्जुन पर झपटा ॥२१॥

तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद्धनञ्जयः ।
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥२२॥

नरश्रेष्ठ, अर्जुन ने भी इस हाथी की ओर अपना रथ बढ़ाया। अब अर्जुन के रथ और राजा भगदत्त के हाथी में भीषण मुठ-भेड़ होने लगी ॥२२॥

कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च।
संग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥२३॥

युद्ध-शास्त्र की शिक्षा के अनुसार बनाये हुए रथ और सिखाये हुए हाथी से दोनों वीर, धनञ्जय और राजा भगदत्त, रणभूमि में आगे बढ़ने लगे ॥२३॥

ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥२४॥

इन्द्र के तुल्य पराक्रमधारी राजा भगदत्त ने मेघ के तुल्य ऊंचे हाथी पर से अर्जुन के ऊपर बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥२४॥

स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥२५॥

अब महापराक्रमी अर्जुन भी, राजा भगदत्त की बाणवर्षा को अपने बाणों की वर्षा से बीच में ही काट २ कर गिराने लगा ॥२५॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत्।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष ॥२६॥

हे आर्य ! इसके अनन्तर राजा भगदत्त, वर्षा की तरह बाण चलाना छोड़कर विशेष २ बाणों से केवल अर्जुन और श्रीकृष्ण को आहत करने लगा ॥२६॥

ततस्तु शरजालेन महताऽभ्यवकीर्य तौ ।
चोदयामास तं नागं वधायाऽच्युतपार्थयोः ॥२७॥

इस प्रकार बहुत से बाणों से इन दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन को आच्छादित करके राजा भगदत्त ने फिर इनके वध के निमित्त अपने उसी गजराज को आगे बढ़ाया ॥२७॥

तमापन्ततं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥२८॥

क्रुद्ध हुए काल की तरह उस मदोन्मत्त हाथी को झपटता हुआ देखकर जनार्दन श्रीकृष्ण ने झटपट अपने रथ को दायीं ओर चलाया॥

सम्प्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम् ।
सारोहं मृत्युसात्कर्तुं स्मरन्धर्मं धनञ्जयः ॥२९॥

युद्ध के ढंग के विरुद्ध आये हुए इस महागज को अर्जुन ने गजारोही सहित मृत्यु के अधीन (सुपुर्द) नहीं किया, क्योंकि इस तरह मारना युद्ध के धर्म के विरुद्ध था ॥२९॥

स तु नागो द्विपरथान्हयाँश्चाऽऽमृद्य मारिष ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥३०॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

हे आर्य ! परन्तु यह गजराज तो पाण्डवसेना के हाथी, रथ और अश्वों को मार २ कर यमराज के घर भेजने लगा। इस बात को देखकर अर्जुन क्रोध से जल उठा ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में भगदत्त के युद्ध का अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।
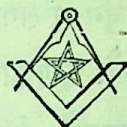
उनतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः ।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! राजा भगदत्त पर कुपित हुए पाण्डु पुत्र ने क्या किया तथा अर्जुन पर कुपित राजा भगदत्त ने क्या २ पराक्रम दिखाया-यह तुम सब कुछ ठीक २ मुझे सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ ।
मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! दशार्हदेशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन, प्राग्ज्योतिष नगर के अधिपति राजा भगदत्त के सन्मुख

जब युद्ध के लिए पहुंचे-तो सारे सैनिकों ने यही समझा, कि ये दोनों अब मृत्यु की दाढ़ के भीतर पहुंच गए हैं ॥२॥

तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो ।
गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ॥३॥

हे महाराज ! राजा भगदत्त, अपने गजराज की पीठ पर बैठा हुआ, रथ में स्थित कृष्ण अर्जुन पर लगातार बाणवर्षा करने लगा।

अथ कार्ष्णायसैबाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः ।
अविध्यद्देवकीपुत्रं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥४॥

राजा भगदत्त ने दृढ़ लोहद्वारा निर्मित, अत्यन्त खैंचे हुए धनुष से छोड़े हुए, सुवर्णमूलधारी, शिलापर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से देवकीपुत्र श्रीकृष्ण को क्षत-विक्षत कर दिया ॥४॥

अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः ।
निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥५॥

भगदत्त के छोड़े हुए बाण, अग्नि के तुल्य तीक्ष्ण थे । सुन्दर पंखधारी वे बाण, श्रीकृष्ण के शरीर को चीर २ कर पृथिवी में घुसने लगे ॥५॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा परिवारं निहत्य च ।
लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥६॥

अर्जुनने राजा भगदत्त का धनुष काटकर कवच काट डाला और लालन करते हुए की तरह राजा भगदत्त से युद्ध करना आरम्भ किया।

सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान्वै चतुर्दश ।
अप्रेषयत्सव्यसाची द्विधैकैकमथाऽच्छिनत् ॥७॥

राजा भगदत्त ने फिर सूर्य की किरणों के तुल्य, चौदह बाण छोड़े, परन्तु अर्जुन ने उन सबके दो २ टुकड़े कर डाले ॥७॥

ततो नागस्य तद्वर्म व्यधमत्पाकशासनिः ।
शरजालेन महता तद्व्यशीर्यत भूतले ॥८॥

इन्द्रपुत्र अर्जुन ने अपने महान् बाणसमूह से उस हाथी के कवच को काट डाला। वह कवच छिन्न भिन्न होकर पृथिवी में बिखर गया ॥८॥

शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमर्दितः ।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥९॥

जब इस गजराज का कवच कट गया-तो पाण्डववीरों ने बाण छोड़ २ उसे बहुत ही पीड़ित (तंग) कर डाला । इस समय यह हाथी, जलधारा से भीगे हुए मेघसमूह से हीन, पर्वत की तरह सुशोभित होने लगा ॥९॥

ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम् ।
व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥१०॥

अब राजा भगदत्त ने, सुवर्ण के दण्डवाली, लोह की शक्ति श्रीकृष्ण पर छोड़ी, जिसको अर्जुन ने, बीच में ही काट गिराया ॥

ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः ।
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन्पर्वतेश्वरम् ॥११॥

इसके अनन्तर अर्जुन ने राजा भगदत्त के छत्र, ध्वजा को बाणों से काट कर दश बाणों से पर्वतेश्वर भगदत्त को हँसते २ बींध डाला ॥११॥

सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः ।
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥१२॥
व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ।

कङ्कपत्ती के पंखों से युक्त, सुन्दरमूलधारी, अर्जुन के बाणों से बिंधे हुए, राजा भगदत्त ने श्वेत अश्वों के वाहनवाले पाण्डु-पुत्र अर्जुन के मस्तक पर तोमर शस्त्र का प्रहार करके बड़े उच्चस्वर से गर्जना की ॥१२॥

तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्त्तितम् ॥१३॥
परीवृत्तं किरीटं तद्यमयन्नेव पाण्डवः ।
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥१४॥

राजा भगदत्त के बाणों से अर्जुन का मुकुट कुछ बांका हो गया। अर्जुन अपने इस बांके किरीट को सीधा करते हुए राजा भगदत्त से कहने लगे, कि अब तुम इस लोक को अच्छी तरह देख लो ॥१३-१४॥

एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ।
अभ्यवर्षत्सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥१५॥

अर्जुन के इतना कहने पर राजा भगदत्त क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और उसने चमकीला धनुष लेकर श्रीकृष्ण सहित पाण्डु पुत्र अर्जुन पर बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥१५॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा तूणीरान्सन्निकृष्य च ।
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥१६॥

अर्जुन ने राजा भगदत्त के धनुष को काट कर और शीघ्र २ बहत्तर बाण निकाल कर उसके सारे मर्मों में पद प्रहार किया ॥१६॥

विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् ।
अभिमन्त्र्यांऽकुशं क्रुद्धो व्यसृजत्पाण्डवोरसि ॥१७॥

अर्जुन के बाण से बिंधने से भगदत्त बहुत पीड़ित हो गए। इसने वैष्णवास्त्र को उठाया और उस से अपने अंकुश को अभिमन्त्रित करके अर्जुन की छाती में प्रहार किया ॥१७॥

विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै ।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थं सञ्छाद्य केशवः ॥१८॥

राजा भगदत्त द्वारा छोड़े हुए सब के प्राण हरण में समर्थ, इस वैष्णवास्त्र द्वारा फैंके हुए अंकुश को श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने पीछे करके अपनी छाती पर ग्रहण किया ॥१८॥

वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि ।
पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वर्तुकुसुमोत्कटा ॥१९॥

इस अस्त्र--प्रहार का आघात, कमलकोश से अद्भुत शोभाधारी, के तुल्य, सब ऋतुओं में कुसुमों से उज्ज्वल, वैजयन्ती माला की भांति श्रीकृष्ण के हृदय की शोभा को बढ़ाने लगा ॥१६॥

ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा ।
तया पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥२०॥
शुशुभेऽभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसन्निभः ।
ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥२१॥

अतसी पुष्प के समान सुन्दर कान्तिधारी श्रीकृष्ण, कमल के पत्तों से सुशोभित, और वायु से प्रकम्पित होने के कारण, अग्नि, सूर्य और चन्द्र की तरह उज्ज्वल, अग्नि की लपटों के तुल्य पल्लवों से समन्वित, वैजयन्ती माला की तरह कान्तिमान्, इस वक्षस्थल के आघात से देदीप्यमान हो उठे । इस समय अर्जुन बड़े चिन्तित होकर श्रीकृष्ण से कहने लगे ॥२०-२१॥

अयुध्यमानस्तुरगान्संयन्ताऽस्मीति चाऽनघ ।
इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि॥२२॥

हे अनघ ! पुण्डरीकाक्ष ! आपने तो यह प्रतिज्ञा की थी, मैं इस झगड़े में युद्ध नहीं करूंगा, केवल अश्वों का सञ्चालन करूंगा, परन्तु इतना कहकर भी आपने अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा नहीं की ॥

यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥२३॥

हे महाबाहो ! जो युद्ध में किसी प्रकार की न्यूनता होती या मैं इसके अस्त्रनिवारण में असमर्थ होता--तो तुमको यह कार्य करना

था, परन्तु मेरे सावधान रहने पर तुम्हें इस संकट में पड़ने से क्या प्रयोजन था ॥२३॥

सबाणः सधनुश्चाऽहं ससुरासुरमानुषान् ।
शक्तो लोकानिमाञ्जेतुं तच्चाऽपि विदितं तव ॥२४॥

जब मेरे हाथ में धनुषबाण होता है, तो मैं सुर, असुर और सारे मनुष्यों के सहित त्रिलोकी के जीतने में भी समर्थ हूं--यह आप भी जानते हैं ॥२४॥

ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचाऽर्थवद्वचः ।
शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरावृत्तं यथाऽनघ ॥२५॥

अब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह सारगर्भित वचन कहा—हे अनघ ! अर्जुन ! तुम मेरे इस गुप्त, पूर्व इतिहास को सुनो ॥२५॥

चतुर्मूर्त्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः ।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥२६॥

हे अर्जुन ! मैं अपनी चार मूर्तियों के द्वारा त्रिलोकी की रक्षा करता हूं । इन मूर्तियों को तुम मेरे एक ही शरीर के चार विभाग समझो, जिनसे लोकों का हित होता है ॥२६॥

एका मूर्त्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता ।
अपरा पश्यति जगत्कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥२७॥
अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकीम् ॥२८॥

मेरी एक मूर्ति तो पृथिवी पर तप करती है, दूसरी मूर्ति, जगत् के शुभ अशुभ कर्मों का निरीक्षण करती है, तीसरी मनुष्य लोक की रक्षा के निमित्त कर्म करती है और चौथी, सहस्रों वर्ष तक योगमाया में लीन रहती है ॥२७॥

यासौ वर्षसहस्रान्ते मूर्त्तिरुत्तिष्ठते मम ।
वरार्हेभ्यो वराञ्श्रेष्ठांस्तस्मिन्काले ददाति सा ॥२८॥

जब सहस्रवर्षपर्यन्त योगनिद्रा में लीन रह कर मेरी चतुर्थ मूर्ति उत्थान काल में उपस्थित होती है, तो वह वर के योग्य व्यक्तियों को वर प्रदान करती है ॥२६॥

तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥३०॥

उस समय पृथिवी ने अपने पुत्र नरकासुर के निमित्त मुझसे जो वरदान मांगा-मैं वह तुम्हें सुनाता हूं ॥३०॥

देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥३१॥

हे भगवन् ! मेरा पुत्र वैष्णवास्त्र से युक्त होकर देव और दानवों से कभी पराजित न हो सके, आप मुझे यह वर प्रदान कीजिए ॥३१॥

एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥३२॥

मैं ने पृथिवी की यह प्रार्थना सुनकर पृथिवी के पुत्र नरकासुर को अमोघ वैष्णवास्त्र प्रदान कर दिया ॥३२॥

अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु त्वमे ।
नरकस्याऽभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्वधिष्यति ॥३३॥

उस समय मैंने पृथिवी से कहा था-हे पृथिवी ! यह मेरा अमोघ वैष्णवास्त्र, है और नरकासुर की रक्षा के निमित्त तुम्हें प्रदान किया है। अब इस का कोई वध नहीं कर सकेगा ॥३३॥

अनेनाऽस्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥४४॥

इस अस्त्र से सुरक्षित तेरा पुत्र, शत्रुसेना का नाशक होकर सब लोकों में बड़ा दुराधर्ष होगा ॥३४॥

तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी ।
स चाऽप्यासीद् दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥३५॥

पृथिवी, यह सुनकर बड़ी प्रफुल्लित हुई और यह मनस्विनी कृत-कृत्य होकर चली गई। इसके अनन्तर शत्रुतापी नरकासुर बड़ा दुराधर्ष हो गया ॥३५॥

तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम् ।
नाऽस्याऽवध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥३६॥

हे अर्जुन ! उसी नरकासुर से राजा भगदत्त को यह मेरा अस्त्र प्राप्त हुआ है। हे आर्य ! इन्द्र, रुद्र कोई भी क्यों न हो-इस अस्त्र के प्रहार से जीवित नहीं बच सकता है ॥३६॥

तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामितम् ।
विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥३७॥

मैंने तुम्हारी रक्षा के निमित्त उस अस्त्र को अपने ऊपर ग्रहण किया है। अब राजा भगदत्त उस वैष्णवास्त्र से रहित हो चुका-इस समय तुम इसका वध कर सकते हो ॥३७॥

वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् ।
यथाऽहं जघ्निवान्पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥३८॥

देवों के द्वेष करने वाले इस अपने वैरी दुराधर्ष राजा भगदत्तका तुम विनाश करो-जैसे मैंने जगत् की रक्षा के निमित्त नरकासुर का वध किया था ॥३८॥

एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना ।
भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥३९॥

जब महात्मा श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इतना कहा—तो अर्जुन, अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राजा भगदत्त पर एकदम बाण वर्षा करने लगे।

ततः पार्थो महाबाहुरसम्भ्रान्तो महामनाः ।
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥४०॥

अब महाओजस्वी, महाबाहु, कुन्ती-पुत्र ने विना किसी घबराहट के राजा भगदत्त के हाथी के मस्तक में तीव्र बाण मारा।

स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवाऽचलम् ।
अभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥४१॥

पर्वत के ऊपर वज्र की तरह उस हाथी के मस्तक पर वह बाण जाकर लगा, वह उसके मस्तक में बल्मीक में सर्प की तरह मूल सहित घुस गया ॥४१॥

स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः ।
न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥४२॥

अब राजा भगदत्त ने बहुतेरा हाथी को आगे बढ़ाने की प्रेरणा की, परन्तु उसने राजा के वचन को इस तरह ग्रहण नहीं किया, जैसे स्त्री अपने दरिद्र पति की आज्ञा नहीं मानती है ॥४२॥

सु तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ ।
नदन्नार्त्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥४३॥

अब राजा भगदत्त का हाथी, अपने शरीर को सिकोड़ कर दांतों के बल पृथिवी पर गिर पड़ा। इस महागज ने एक बड़ी आर्त स्वर भरी चीत्कार करके अपने प्राण छोड़ दिए ॥४३॥

ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥४४॥

वलीसञ्छन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः ।
अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय बद्धपट्टो ह्यसौ नृपः ॥४५॥

इस के अनन्तर श्रीकृष्ण गाण्डीवधारी अर्जुन से बोले–हे पार्थ राजा भगदत्त, बहुत अधिक आयु का हो गया है। इसके सारे बाल, श्वेत हो चुके। इस की आंखों पर बलियां आ पड़ी हैं। यह

बड़ा शूरवीर और दुर्जय है। इसने अपनी आंखें खुली रहने के लिए ललाट में पट्टी बांध रखी है ॥४४-४५॥

देववाक्यात्प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः ।
छिन्नमात्रेंऽशुके तस्मिन्रुद्धनेत्रो बभूव सः ॥४६॥
तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् ।

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अर्जुन ने एक बाण मार कर उस पट्टी के कपड़े को काट डाला। कपड़े के कटते ही उसकी आंखें वलियों से आच्छन्न हो गई। इस प्रतापी राजा भगदत्त की आंखों के सन्मुख, अन्धेरी छा गई और उसको सारे जगत् में अन्धकार के सिवा कुछ नहीं सूझ पड़ा ॥४६॥

ततश्चन्द्रार्धबिम्बेन बाणेन नतपर्वणा ॥४७॥
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदतस्य पाण्डवः ।

अब नतपर्ववाले अर्धचन्द्राकार तीक्ष्ण बाण से पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने राजा भगदत्त के हृदय को चीर डाला ॥४७॥

स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥४८॥
शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह ।

किरीटधारी अर्जुन के बाण से राजा भगदत्त का हृदय छिद गया। इसके हाथ से धनुषबाण छूट पड़ा और वह स्वयं प्राण छोड़ कर परलोक सिधार गया ॥४८॥

शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम् ।
नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥४६॥

वह उत्तम् वस्त्र उसके ललाट से इस तरह गिर गया, जैसे कमलनाल के ताडन से उसके पत्ते झड़ पड़ते हैं ॥४६॥

स हेममाली तपनीयभाण्डात्पपात नागाद्गिरिसन्निकाशात्
सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥

पुष्पों से भरा हुआ कनेर का वृक्ष, जैसे-वायु के वेग से पर्वत से नीचे आ गिरता है, उसी तरह सुवर्ण मालाधारी राजा भगदत्त, उज्ज्वल सुवर्ण से विभूषित, पर्वत के तुल्य ऊंचे हाथी से नीचे आ गिरा ॥५०॥

निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे
ततोऽपरांस्तव जयकांक्षिणो नरान्बभञ्ज वायुर्बलवान्द्रुमानिव

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तवधे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२६॥

इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, इन्द्र के सखा, राजा भगदत्त को, मारकर वृक्षों को बलवान् वायु की तरह इन्द्रपुत्र अर्जुन ने जयाभिलाषी अन्य राजाओं का वध करना आरम्भ किया ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तक वधपर्व में भगदत्त के वधका उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ

तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् ।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्त्तत ।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इन्द्र के प्रिय सखा, अमित ओजस्वी राजा भगदत्त को मार कर अर्जुन ने उसकी आदरार्थ प्रदक्षिणा की।

ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ ।
अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥२॥

अब गान्धारराज के दो पुत्र वृषक और अचल, युद्ध में अर्जुन को बाणों से आच्छादित करने लगे। ये दोनों भाई बड़े ही बली और शत्रुपुर के नाशक थे ॥२॥

तौ समेत्याऽर्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ ।
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥३॥

ये धनुषधारी, अर्जुन के आगे पीछे दोनों ओर से झपटे और महावेगशाली, तीक्ष्ण बाणों से उसे अत्यन्त छेदित करने लगे ॥३॥

वृषकस्य हयान्सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् ।
तिलशो व्यधमत्पार्थः सौबलस्य शितैः शरैः ॥४॥

महाबली अर्जुन ने सुबलपुत्र वृषक के अश्व, सारथि, धनुष, छत्र, रथ और ध्वजा के तिलके बराबर टुकड़े कर डाले ॥४॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि ।
गान्धारानाकुलांश्चक्रे सौबलप्रमुखान्पुनः ॥५॥

इसके अनन्तर सुबल-पुत्र वृषक के साथ २ अनेक गान्धार वीरों को अर्जुन ने अपने बाणसमूह तथा अन्य अनेक अस्त्रों से व्याकुल कर दिया ॥५॥

ततः पञ्चशतान्वीरान्गान्धारानुद्यतायुधान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो बाणैर्धनञ्जयः ॥६॥

अब धनञ्जय अर्जुन ने क्रोध में भरकर शस्त्रधारी पांच सौ गान्धारवीरों को अपने बाणों द्वारा मृत्युलोक को भेज दिया ॥६॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवतीर्य महाभुजः ।
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥७॥

अश्वों के मारे जाने पर अश्वहीन रथ से गान्धार राजकुमार वृषक, बहुत शीघ्र कूद पड़ा और अपने भाई अचल के रथ पर जा बैठा तथा वहां उसने दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥७॥

तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ ।
शरवर्षेण बीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥८॥

अब दोनों भ्राता वृषक और अचल, एक रथ पर बैठे हुए भारी बाणवर्षा से बार २ अर्जुन को बींधने लगे ॥८॥

श्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ ।
भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव ॥९॥

हे राजन्! राजकुमार वृषक और अचल दोनों तुम्हारे महावीर साले थे। ये इन्द्र को बल और वृत्रासुर की भांति अर्जुन को अत्यन्त आहत करने-लगे ॥९॥

लब्धलक्षौ तु गान्धाराववहतां पाण्डवं पुनः ।
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा ॥१०॥

ये दोनों राजकुमार वृषक और अचल, जो बाण छोड़ते थे, वे सीधे जाकर लगते थे। ग्रीष्म और वर्षा के दो मास ज्येष्ठ और आश्विन, उष्ण किरणों से जैसे संसार को सन्तप्त करते हैं, ऐसे ही इन्होंने भी अर्जुन को पीड़ित कर दिया ॥१०॥

तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ ।
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणार्जुनः ॥११॥

हे राजन्! ये दोनों भ्राता बलवान् राजकुमार वृषक और अचल, रथ में अङ्ग से अङ्ग मिलाकर बैठे थे, अर्जुन ने एक बाण से दोनों को बींध लिया ॥११॥

तौ रथात्सिंहसङ्काशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ ।
राजन्सम्पेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥१२॥

हे राजन्! एक से रूप आकृति वाले, महाभुजधारी, सिंह के तुल्य पराक्रमी, लाल आँखों से देदीप्यमान दोनों वीर भ्राता, एक दम रथ से नीचे गिर गए ॥१२॥

तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद्बन्धुजनप्रियौ ।
यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥१३॥

अपने बन्धुजनों के प्रिय, इन दोनों भ्राताओं के शरीर, दशों दिशाओं में यश का विस्तार करके रथ से नीचे गिरकर भूमि में स्थित हो गए ॥१३॥

दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते ॥१४॥

हे विशाम्पते ! युद्ध में पीछे पैर नहीं रखने वाले अपने मातुलों को रण में मरे हुए देखकर तुम्हारे दुर्योधनादि-पुत्र, बहुत ही अश्रु धारा छोड़ने लगे ॥१४॥

निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
कृष्णौ सम्मोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥१५॥

अपने दोनों भाइयों की मृत्यु देखकर सैंकड़ों प्रकार की माया करने में कुशल, शकुनि, श्रीकृष्ण और अर्जुन को मोहित करता हुआ अपनी माया का विस्तार करने लगा ॥१५॥

लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
गदापरिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥१६॥
सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः ।
क्षुराः क्षुरप्रणालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः ॥१७॥
चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च ।
प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चाऽर्जुनं प्रति ॥१८॥

इस समय अर्जुन के ऊपर लगुड (लट्ठ) लोहदण्ड, पत्थर, शतघ्नी, शक्ति, गदा, परिघ, खड्ग, शूल, मुद्गर, पट्टिश, कम्पन,

ऋष्टि, नखर, मुसल, परशु, क्षुर क्षुरप्र, नालीक, आदि बाण, वत्स-दन्त, अस्थिसन्धि, चक्र, विशिख (बाणविशेष) प्रास तथा अन्य अनेक सैकड़ों शस्त्र, दिशा विदिशाओं से गिरने लगे ॥१६-१८॥

खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचित्रकाः ।
ऋक्षाः शालावृका गृध्राः कपयश्च सरीसृपाः ॥१६॥
विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।
संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥२०॥

गर्दभ, ऊंट, भैंस, सिंह, व्याघ्र, सृमर (गवय) चीते, रीछ भेड़िये, कुत्ते, गीध, वानर, सर्पादि कीड़े तथा अनेक, भूखे राक्षस अर्जुन पर टूट पड़े तथा क्रोध में भरे अनेक श्येन आदि पक्षी अर्जुन की ओर झपटे ॥१६-२०॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥२१॥

कुन्ती-पुत्र धनञ्जय अर्जुन भी दिव्य अस्त्रों के प्रयोग जानने वाले शूरवीर थे। ये बाणों के समूह छोड़कर इनको आहत करने लगे ॥२१॥

ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः ।
विरुवन्तो महारावान्विनेशुः सर्वतो हताः ॥२२॥

शूरवीर अर्जुन के बाणों से क्षत-विक्षत हुए सिंह आदि हिंसक जन्तु, चिल्लाते पुकारते हुए सब ओर को भाग गए ॥२२॥

ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति।
तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥२३॥

अब अर्जुन के रथ पर अन्धकार छा गया। इस अन्धकार में से बड़ी भयानक वाणी निकल २ कर अर्जुन को डराने लगी॥

तत्तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे।
उत्तमास्त्रेण महता ज्योतिषेणाऽर्जुनोऽवधीत् ॥२४॥

इस महायुद्ध में यह घोर अन्धकार बड़ा ही भयानक और भीषण था। अर्जुन ने अपने प्रकाशशील महान उत्तम अस्त्र से इसका भी विनाश कर दिया ॥२४॥

हते तस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरासन्भयानकाः।
अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथाऽर्जुनः ॥२५॥
प्रायुंक्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोषितम्।

अन्धकार के नाश होने पर बड़ा भारी भयानक जलप्रवाह आया। इस जलप्रवाह के विनाश के लिए अर्जुन ने आदित्यास्त्र का प्रयोग किया। इस अस्त्र से वह सारा जल सूख गया ॥२५॥

एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ॥२६॥
जघानाऽस्त्रबलेनाऽऽशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा।

इस प्रकार सुबल पुत्र शकुनि द्वारा फैलाई हुई अनेक प्रकार की माया को हँसते २ अर्जुन ने अपने अस्त्रों के बल से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥२६॥

तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ॥२७॥
अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा।

जब सारी माया नष्ट हो चुकी, तो अर्जुन के बाण से पीड़ित शकुनि, साधारण मनुष्य की तरह वेगशाली अश्वों के द्वारा रणभूमि से भाग गया ॥२७॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छ्रैष्ठ्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ॥२८॥
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।

अस्त्रविद्या में कुशल अर्जुन, अब शत्रुओं को अपना हस्त-लाघव (फ़ुर्ती) दिखाने और कौरवों की सेना को अपने शर समूह से व्याकुल करने लगा ॥२८॥

सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी ॥२९॥
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवाऽऽसाद्य पर्वतम् ।

हे महाराज ! अर्जुन के बाणों से आहत हुई तुम्हारे पुत्र की सेना, पर्वत से टकराई हुई गङ्गा की तरह दो भागों में विभक्त हो गई ॥२९॥

द्रोणमेवाऽन्वपद्यन्त केचित्तत्र नरर्षभाः ॥३०॥
केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना ।

हे राजन् ! मुकुटधारी अर्जुन द्वारा पीड़ित हुए अनेक वीर द्रोण के समीप और कुछ राजा दुर्योधन के पास पहुंचे ॥३०॥

नाऽपश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसाऽऽवृते ॥३१॥
गाण्डीवस्य निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया ।

इस समय सेना में बड़ा अन्धकार छा रहा था, इससे मुझे अर्जुन दिखाई नहीं दे रहा था, परन्तु मैं अपने दक्षिण की ओर अर्जुन के गाण्डीव धनुष की टङ्कार अवश्य सुन रहा था ॥३१॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥३२॥
गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्याऽस्पृशद्दिवम् ।

इस समय शङ्ख और दुन्दुभियों की ध्वनि, बाजों का शब्द और गाण्डीव धनुष का निर्घोष, सारे शब्दों को दाब कर आकाश में छा रहा था ॥३२॥

ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥३३॥
सुयुद्धं चाऽर्जुनस्याऽऽसीदहं तु द्रोणमन्वियाम् ।

अब युद्ध-भूमि में दक्षिण की ओर विचित्र युद्ध करने वाले, योद्धाओं का युद्ध होने लगा और अर्जुन का भी युद्ध यहीं हो रहा था। मैं उस समय द्रोणाचार्य के पास पहुंचा॥३३॥

यौधिष्ठिराण्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥३४॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाऽभ्राणि मारुत ॥३५॥

हे भारत ! इस समय राजा युधिष्ठर और अनेक प्रकार की तुम्हारे पुत्रों की सेना इधर उधर युद्ध-भूमि में अपने २ हाथ दिखा रही थीं। अर्जुन इस समय आकाश में मेघों को वायु की तरह वीरों को छिन्न-भिन्न कर रहे थे ॥३४-३५॥

तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिदवारयन् ॥३६॥

जलधारा की झड़ी लगाने वाले इन्द्र के तुल्य उग्र अर्जुन को शर-समूह की अत्यन्त वर्षा करते देख कर कोई भी आपके महाधनुर्धर वीर उसके रोकने में समर्थ नहीं हुए ॥३६॥

ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम् ।
स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥३७॥

अर्जुन द्वारा आहत किए गए तुम्हारे वीर बड़े ही पीड़ित हो उठे। वे इधर उधर भागते हुए भ्रम से अपने ही अनेक वीरों पर हाथ छोड़ देते थे ॥३७॥

तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥३८॥

कङ्क पक्षी के पत्रों से सुशोभित, शरीर को बींध देने वाले, अर्जुन के द्वारा छोड़े हुए बाण, दशों दिशाओं को घेर कर शलभ पक्षियों की तरह तुम्हारे वीरों पर गिर रहे थे ॥३८॥

तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥३९॥

हे आर्य ! अश्व, रथी, हाथी और पैदल सैनिक आदि सेना के अङ्गों को बींध २ कर अर्जुन के बाण, वल्मीक में सर्पों की की तरह बाण, भूमि में घुस रहे थे ॥३९॥

न च द्वितीयं व्यसृजत्कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
पृथगेकशरा रुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥४०॥

हाथी, अश्व और वीरों पर अर्जुन को दूसरा बाण नहीं छोड़ना पड़ता था। वे एक बाण से ही कट कर व्यथित हुए प्राण छोड़ कर रण भूमि में गिर जाते थे ॥४०॥

हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः शराभिसृष्टैश्च हयैर्निपातितैः ।
तदाश्वगोमायुबलाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव तत्

मारे हुए मनुष्य, हाथी और बाणों से बिंधे हुए भूमि में पड़े हुए अश्वों से रणभूमि व्याप्त होगई। इस समय कुत्ते, गीदड़ और कौवे आदि पक्षियों से व्याप्त रणाङ्गण, विचित्र ही दिखाई दे रहा था ॥४१॥

पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः ।
स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

पितापुत्र को, मित्र मित्र को, पुत्र पिता को छोड़ कर बाण से आहत हुए वीर अपनी ही रक्षा की चिन्ता में निमग्न थे। अर्जुन के बाण से पीड़ित वीर अपने वाहनों को छोड़ २ कर प्राण बचाने को भाग रहे थे ॥४२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में शकुनि-पलायन का तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इकतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।
चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! जब पाण्डुपुत्र अर्जुन द्वारा सारी सेनाभगादी गई--तो उस समय सेना को इधर उधर बिखरती देख कर तुम लोगों के मनों की क्या दशा हुई ॥१॥

अनीकानां प्रभग्नानामवस्थानमपश्यताम् ।
दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२॥

हे सञ्जय ! जब सेनाएँ भाग निकलती हैं और ठहरती दिखाई नहींदेती, तो उस समय उसका रोकना बड़ा ही दुष्कर होता है। हमारी सेना कैसे रोकी जासकी, तुम इन सब घटनाओं को मुझे सुनाओ ॥२॥

सञ्जय उवाच—

तथाऽपि तव पुत्रस्य प्रिय .ामा विशाम्पते ।
यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते ! इस प्रकार अर्जुन ने बड़ी भयानक दशा खड़ी करदी थी, तो भी तुम्हारे पुत्र का प्रिय करने के अभिलाषी अनेक महारथी, वीर, संसार में अपने यश की रक्षा करते हुए द्रोणाचार्य के समोप पहुँचे ॥३॥

समुद्यतेषु चाऽस्त्रेषु सम्प्राप्ते च युधिष्ठिरे ।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत् ॥४॥

अस्त्र उठा कर प्रहार करते हुए राजा युधिष्ठिर के वीर ज्योंही आगे बढ़े—उस समय भी आर्यकर्म में तत्पर तुम्हारे वीर, निर्भीक भाव से युद्ध करते रहे, यद्यपि यह समय बड़ा ही भीषण था ॥४॥

अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः ।
सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥५॥

हे राजन् ! अब ये तुम्हारे वीर, अत्यन्त तेजस्वी, भीमसेन, सात्यकि और वीर धृष्टद्युम्न के मध्य में पहुँच गए ॥५॥

द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समचोदयन् ।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून्सर्वानचोदयन् ॥६॥

अत्यन्त पराक्रमी, पञ्चाल वीर, द्रोण को मारो—ये द्रोण रहे—इत्यादि वचन कह कर अपनी सेना को प्रेरित कर रहे थे और द्रोण पर कोई आंच न आने पावे—कह कर तुम्हारे पुत्र कौरव वीरों को उत्साहित कर रहे थे ॥६॥

द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति चाऽपरे ।
कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥७॥

द्रोण पर प्रहार करो—यह शब्द एक ओर, और द्रोण पर प्रहार न होने दो—यह शब्द एक ओर हो रहे थे। इस समय कौरव और पाण्डवों के वीरों में द्रोण का पण (दाव) लगाकर द्यूत-हो रहा था ॥७॥

यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् ।
तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥८॥

आचार्य द्रोण, जिस २ रथ समूह पर जाकर आक्रमण करता था, वहाँ २ पर्षतवंशोद्भव पाञ्चाल सेनापति धृष्टद्युम्न पहुँच जाता था ॥८॥

तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति ।
वीराः समासदन्वीरान्कुर्वन्तो भैरवं रवम् ॥९॥

अपनी २ जोट बांध कर भीषण संग्राम का आरम्भ होने पर फिर कोई युद्ध का नियम नहीं रहा। अब एक वीर दूसरे वीर पर भयानक गर्जना करता हुआ बड़े वेग से झपटा ॥९॥

अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः ।
अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥१०॥

पाण्डव वीर इस समय भी अपने शत्रुओं द्वारा विचलित नहीं किये जासके और उन्होंने अपने वनवास आदि के क्लेशों का स्मरण कर तथा आवेश में भर कर कौरव सेना को विकम्पित कर दिया ॥१०॥

ते त्वमर्षवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्वचोदिताः ।
त्यक्त्वा प्राणान्न्यवर्त्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे ॥११॥

युद्ध में पराजित होने को बड़ा ही अपमान मानने वाले लज्जाशील पाण्डव, बड़े ही आवेश में (जोश) में भरे हुए थे। ये इस महाघोर संग्राम में अपने प्राणों का मोह छोड़ कर द्रोणाचार्य पर प्रहार करने लगे ॥११॥

अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाऽभवत् ।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥१२॥

इन अत्यन्त ओजस्वी पाण्डव और कौरवों के इस घोर युद्ध में प्राणों का पण लगाकर खेलने पर लोहों के गोले और पत्थरों के प्रहार भी होने लगे ॥१२॥

न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम् ।
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥१३॥

हे महाराज ! आज ऐसा युद्ध हो रहा था, जैसा वृद्ध वीरों ने न तो कभी देखा था और न अपने कानों से ही सुना था ॥१३॥

प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन्वीरावसादने ।
निवर्तता बलौघेन महता भारपीडिता ॥१४॥

इन वीरों के विनाश में विशाल सेना के इधर उधर दौड़ने से बड़े भारी भार से आक्रान्त हुई पृथिवी डगमगाने लगी ॥१४॥

घूर्णतोऽपि बलौघस्य दिवं स्तब्धेव निःस्वनः ।
अजातशत्रोस्तत्सैन्यमाविवेश सुभैरवः ॥१५॥

जब इस प्रकार सेना घूम रही थी, तो आकाश स्तब्ध सा होकर बिलकुल निःस्वन (शब्द रहित) था, राजा युधिष्ठिर की सेना में बड़ा ही भीषण कोलाहल हो रहा था ॥१५॥

समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्ना निशितैः शरैः ॥१६॥

द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना में पहुँच कर रणभूमि में घूमते हुए सहस्रों वीरों को अपने तीक्ष्ण बाणों से व्याकुल करने लगे।

तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाऽद्भुतकर्मणा।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥१७॥

अद्भुत पराक्रम करने वाले आचार्य द्रोण द्वारा सेना के व्याकुल कर देने पर सेनापति धृष्टद्युम्न ने शीघ्र पहुँच कर उनका सामना किया ॥१७॥

तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा।
नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः ॥१८॥

इस द्रोणाचार्य और पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न का बड़ा घोर युद्ध हुआ- मेरी यह दृढ़ सम्मति है, कि इस युद्ध की अन्य किसी युद्ध से उपमा नहीं दी जा सकती है ॥१८॥

ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम्।
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥१९॥

अब पाण्डव पक्ष के महारथी राजा नील ने कौरवों की सेना को तृणराशि को अग्नि की तरह भस्म करना आरम्भ किया। इसके बाण अग्नि की चिनगारी और इसका धनुष आग की लपट के तुल्य था ॥१९॥

तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥२०॥

इस प्रकार कौरव सेना को दग्ध करते देख कर बड़ा स्पष्ट मधुर और सुन्दर भाषण करने वाले प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा मुसकुराते हुए राजा नील से बोले ॥२०॥

नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा ।
मयैकेन हि युद्ध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाऽऽशु माम् ॥

हे नील ! तुम अपने बाण की ज्वाला से बहुत योद्धाओं को क्यों भस्म कर रहे हो, यदि अपना पराक्रम दिखाना है, तो क्रोध-पूर्वक बहुत तीखा प्रहार तुम मेरे ऊपर करके दिखाओ ॥२१॥

तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः २२॥

अब खिले हुए नील कमल के समान सुन्दर मुख वाले ,नील ने कमल के समूह के तुल्य आकार धारी और कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले अश्वत्थामा को अपने बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥२२॥

तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत ॥२३॥

राजा नील के तीन तीखे बाणों से आहत हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने एक दम अपने शत्रु राजा नील के धनुष, ध्वजा और छत्र को काट गिराया ॥२३॥

स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत् ।
द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत्पतत्रिवत् ॥२४॥

अब राजा नील बड़ी तीखी तलवार और ढाल लेकर अपने रथ से कूद पड़ा और इसने पक्षी की तरह उछल कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का शिर शरीर से पृथक् कर देना चाहा ।।२४।।

तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
भल्लेनाऽपाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवाऽनघ ।।२५।।

हे अनघ ! इसी अन्तर में अश्वत्थामा ने सुन्दर नासिका वाले ऊंचे स्कन्धों से युक्त, कुण्डलों से समन्वित, राजा नील के मस्तक को हँसते २ अपने तीखे बाण से काट गिराया ।।२५।।

सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
प्रांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतद्भुवि ।।२६।।

पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य कान्तिधारी, कमलपत्र के तुल्य नेत्र वाले, बड़े उन्नत, कमलवत् सुन्दर, कान्तिमान्, राजा नील प्राणहीन होकर पृथिवी पर गिर पड़े ।।२६।।

ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला ।
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ।।२७।।

आचार्य द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा द्वारा प्रज्वलित अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजा नील के मार लेने पर सारी पाण्डवों की सेना व्याकुल हो उठी और बड़ी चिन्ता करने लगी ।।२७।।

अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः ।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष ।

हे आर्य ! इस समय सारे पाण्डवों के महारथी यही सोच रहे थे, कि किसी प्रकार इन्द्रपुत्र अर्जुन आवे और हमारी इन शत्रुओं से रक्षा करे ॥२८॥

दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली ।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः

महाबली अर्जुन, इस समय युद्ध के दक्षिण की ओर संशप्तक वीर और नारायण सेना के संहार में लगे हुए हैं ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में राजा नील के वध का इकतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बत्तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रतिघातं तु सैन्यस्य नाऽमृष्यत वृकोदरः ।
सोऽभ्याहनद्गुरुं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः ।

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार पाण्डव सेना का विध्वंस वृकोदर भीम से नहीं सहा गया । इसने साठ बाणों से द्रोणाचार्य और दश बाणों से अङ्गराज कर्ण को आहत किया ।१।

तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः ।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्मण्याशु जघान ह ।
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत् ।

आचार्य द्रोण ने भी भीमसेन के जीवन का अन्त कर देने को बड़ी तीक्ष्ण धार और सीधे गमन करने वाले, तीखे बाणों से भीमसेन के मर्म-स्थानों में प्रहार करना आरम्भ किया । अवसर देख २ कर आचार्य ने भीमसेन पर छब्बीस बाण चलाए ॥२॥

कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥३॥
षड्भिर्दुर्योधनो राजा तत एनमथाऽकिरन् ।

कर्ण ने बारह, अश्वत्थामा ने सात और स्वयं राजा दुर्योधन ने छः बाण मार कर भीमसेन को बुरी तरह घायल कर डाला ॥३॥

भीमसेनोऽपि तान्सर्वान्प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥४॥
द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः
दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः ॥५॥

महाबली भीमसेन ने भी इन सब योद्धाओं को अपने बाणों से आहत किया । इसने पचास बाणों से द्रोणाचार्य, दश बाणों से कर्ण, तथा राजा दुर्योधन को बारह और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को आठ शीघ्रगामी बाणों से बेध डाला । यह बड़ी भारी गर्जना करता हुआ रण में विचरण करने लगा ॥४-५॥

आरावं तुमुलं कृत्वाभ्यवर्त्तत तान्रणे ।
तस्मिन्सन्त्यजति प्राणान्मृत्युसाधारणीकृते ॥६॥
अजातशत्रुस्तान्योधान्भीमं त्रातेचोदयत् ।

भीमसेन का मृत्यु की अपेक्षा (परवाह) न करके प्राणों के त्याग की चेष्टा से युद्ध करते देख कर भीमसेन की रक्षा के निमित्त धर्मराज अपने महारथियों को उत्तेजित करने लगा ॥६॥

ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ॥७॥
युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।

अब बहुत से महारथी भीमसेन की रक्षा के निमित्त आगे बढ़े, जिनमें सात्यकि और माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव अग्रगामी थे ।

ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ॥८॥
महेष्वासवरैर्गुप्ता द्रोणानीकं बिभित्सवः ।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥९॥

ये पाण्डव पक्ष के महारथी वीर बड़े आवेश में भरे हुए थे । इन सब भीमसेन आदि महापराक्रमी वीरों ने द्रोणाचार्य की सेना के छिन्न-भिन्न कर देने के ध्यान से संगठित होकर एक दम आक्रमण किया ॥८-९॥

तान्प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
महारथानतिबलान्वीरान्समरयोधिनः ॥१०॥

रथियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य ने बिना किसी व्यग्रता के इन अत्यन्त बलवान्, युद्ध करने में कुशल, महारथी पाण्डव वीरों का सामना किया ।।१०।।

बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान्पाण्डवा ययुः ।

सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान् ।।११।।

हे राजन ! तुम्हारे पक्ष के महारथी भी मृत्यु का भय छोड़कर पाण्डव वीरों पर टूट पड़े । अश्वारोही अश्वारोहियों से और रथी रथियों से डट कर युद्ध करने लगे ।।१०।।

आसीच्छक्त्यसिसम्पातो युद्धमासीत्परश्वधैः ।

प्रकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम् ।।१२।।

कुञ्जराणां च सम्पाते युद्धमासीत्सुदारुणम् ।

इस युद्ध में शक्ति और खड्गों का बहुत भीषण ढंग से प्रयोग हो रहा था, परशुओं के प्रयोग से युद्ध बड़ा भीषण हो चला था। असि (तलवार) युद्ध तो इतना बढ़ गया, कि जिससे युद्ध में बहुत ही कटुता आगई । हाथियों के आगे बढ़ते ही युद्ध ने दारुण रूप ग्रहण किया ।।१२।।

अपतत्कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः ।।१३।।

नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष ।

हे आर्य-गुण-सम्पन्न ! महाराज ! महावीरों के बाणों से भिन्न होकर नीचे को शिर करके कोई वीर तो हाथी से और कोई वीर अश्व से और कोई रथ से नीचे गिर रहा था ।।१३।।

तत्राऽन्यस्य च सम्मर्दे पतितस्य विवर्मणः ॥१४॥
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ।

कवचहीन रणभूमि में पड़े हुए बहुत से योद्धाओं को इस युद्ध में हाथियों ने उनकी छाती पर चढ़ कर उनके मस्तकों को कुचल डाला ॥१४॥

अपरांश्चाऽपरे मृद्नन्वारणाः पतितान्नरान् ॥१५॥
विषाणैश्चाऽवनिं गत्वा व्यभिन्दन्रथिनो बहून् ।

हे राजन् ! बहुत से रणभूमि में पड़े हुए वीरों को हाथियों ने पैरों से कुचल दिया और पृथिवी में पड़े हुए बहुत से रथियों को अपने दांतों से वहीं पर चीर डाला ॥१५॥

नरान्त्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंश्रयैः ॥१६॥
बभ्रमुः समरे नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् ।

इस समय बहुत से हाथियों के दांतों में वीरों की आंतें उलझ गई। वे उन आंतों को ही दांतों पर लिए हुए सैंकड़ों वीरों को कुचलते हुए रणभूमि में घूमने लगे ॥१६॥

कार्ष्णायसतनुत्राणान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥१७॥
पतितान्पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव ।

दृढ़लोह के कवच पहने हुए, रणभूमि में पड़े हुए मनुष्य, अश्व, रथ और हाथियों को बहुत से मदोद्धत हाथी मोटे २ अन्ननाल की तरह कुचलने लगे ॥१७॥

गृध्रपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥१८॥
ह्रीमन्तः कालसम्पर्कात्सुदुःखान्यनुशेरते ।

इस समय रणभूमि में पड़े हुए गीध पक्षी के पांखों का ओढ़ना बिछोना बनाये हुए, राजा लोग, काल के सम्पर्क से बड़े दुःख के साथ सो रहे हैं, मानो लज्जाशील होने के कारण उन्होंने गीध-पत्र ओढ़ लिए हैं ॥१८॥

हन्ति स्माऽत्र पित्रा पुत्रं रथेनाऽभ्येत्य संयुगे ॥१६॥
पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्त्तत ।

इस समय अपने रथ को रण में आगे बढ़ाकर पिता, पुत्र को और पुत्र, पिता को मार रहे थे। प्राणों के मोह से किसी की कुछ भी मर्यादा नहीं रह गई थी ॥१६॥

रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम् । २०॥
युगार्द्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ।

रथ टूट गया, ध्वजा कट गई, छत्र फट का भूमि पर गिर गया। इस समय युग (जुये) का आधा भाग लेकर कोई अश्व, भागा जाता हुआ रण में दिखाई देता था ॥२०॥

सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम् ॥२१॥
गजेनाऽऽक्षिप्य बलिना रथः सञ्चूर्णितः क्षितौ ।

वीरों के खड्ग सहित भुजाएँ और कुण्डल सहित मस्तक, कट २ कर गिरने लगे। कहीं पर मदोन्मत्त हाथी ने झपटकर पृथिवी पर रथ को चकनाचूर कर दिया ॥२१॥

रथिना ताडितो नागो नाराचेनाऽपतत्क्षितौ ॥२२॥
सारोहश्चाऽपतद्वाजी गजेनाऽभ्याहतो भृशम् ।

रथी वीरों द्वारा बाण से आहत किया हुआ हाथी, रणभूमि में गिर रहा था और अपने आरोही (सवार) के साथ गज से अत्यन्त आहत होकर कहीं पर अश्व गिर रहा था ॥२२॥

निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्तत सुदारुणम् ॥२३॥
हा तात हा पुत्र सखे क्वाऽसि तिष्ठ क्व धावसि ।
प्रहराऽऽहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ॥२४॥
इत्येवमुच्चरन्ति स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ।

इस समय युद्ध में कोई मर्यादा नहीं रह गई थी। युद्ध बड़ा भारी दारुण होकर बढ़ा जा रहा था। हे तात ! हे पुत्र ! हे सखे ! तुम कहा हो ? ठहरो कहां भागे जा रहे हो ? इस पर प्रहार करो ? प्रहार करके इसे मार दो। इस प्रकार हंसते तथा सिंहनाद करते और गर्जते हुए वीरों की अनेक प्रकार की बाणी इधर उधर रणभूमि में सुनाई देती थी ॥२३-२४॥

नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥२५॥
उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरून्कश्मलमाविशत् ।

मनुष्य, अश्व और हाथियों का परस्पर रक्त संमिश्रित होकर बहने लगा। सारी पृथिवी की धूलि शान्त हो गई। इस समय डर पोकों के हृदय पर भय छागया ॥२५॥

चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥२६॥
अतीतेषुपथे काले जहार गदया शिरः ।

इस रणमें एक वीर दूसरे वीर पर चक्र का प्रहार कर रहा था और बाण के लक्ष्य के अयोग्य होने पर भी अवसर पाकर विरोधी वीर का गदा से शिर चकनाचूर कर देता था ॥२६॥

आसीत्केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् ॥२७॥
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ।

अब वीर लोग एक दूसरे के बाल पकड़ कर युद्ध करने लगे। दारुण मुष्टियुद्ध भी चल पड़ा। उस समय उनको अपना कोई रक्षक दृष्टिगोचर नहीं आता था। शूर वीरों के नख और दांतों के प्रयोग से युद्ध की भीषणता बहुत बढ़ गई थी ॥२७॥

तत्राऽच्छिद्यत शूरस्य सखड्गो बाहुरुद्यतः ॥२८॥
सधनुश्चाऽपरस्यापि सशरः सांकुशस्तथा ।

किसी वीर ने विरोधी वीर की खड्ग सहित उठी हुई भुजा काट डाली और किसी ने दूसरे की धनुष बाण या अंकुश सहित भुजा को काट गिराया ॥२८॥

आक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथाऽन्यो विमुखोऽद्रवत् ॥२९॥
अन्यः प्राप्तस्य चाऽन्यस्य शिरः कायादपाहरत् ।

कोई वीर अपने किसी साथी वीर को बुला रहा है और कुछ आह्वान करने वाले की बात न सुनकर मुख फेरे हुए भागे चले

जाते हैं। किसी वीर को अवसर मिलते ही वह विरोधी वीर का शिर शरीर से पृथक् कर देता है ॥२६॥

सशब्दमद्रवच्चाऽन्यः शब्दादन्योऽत्रसद्भृशम् ॥३०॥
स्वानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः ।

कोई रोता चिल्लाता भागा जारहा है और कोई उसकी चीत्कार सुनकर डर पड़ता है। कोई भागता हुआ अपने और कोई पराये को मार कर चलते बनते हैं ॥३०॥

गिरिशृङ्गोपमश्चाऽत्र नाराचेन निपातितः ॥३१॥
मातङ्गो न्यपतद्भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ।

पर्वत के समान उच्च आकारधारी हाथी बाण से आहत होकर वर्षा काल में नदी के तट की तरह अर्राकर रणभूमि में गिर रहे थे।

तथैव रथिनं नागः क्षरन्गिरिरिवाऽरुजत् ॥३२॥
अभ्यतिष्ठत्पदा भूमौ सहाश्वं सहसारथिम् ।

पर्वत के झरने की तरह मद के प्रवाह को बहाने वाला हाथी, सारथि और अश्वों के साथ रथी को अपने पैरों से दाब कर कहीं पर रणभूमि में खड़ा था ॥३२॥

शूरान्प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान्रुधिरोक्षितान् ॥३३॥
बहूनप्याविशन्मोहो भीरून्हृदयदुर्बलान् ।

अस्त्र विद्या में कुशल, रुधिर में भीगे हुए, प्रहार करने वाले, शूरवीरों को देखकर बहुत दुर्बल हृदय कायरों के मन में भय का सञ्चार होने लगा ॥३३॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥३४॥
सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्त्तत ।

इस समय सारे रणाङ्गण में खलबली मची हुई थी। कुछ भी जाना नहीं पड़ता था, सेना से उठाई धूलि से रणभूमि, भर गई और सारा युद्ध मर्यादाहीन होने लगा ॥३४॥

ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥३५॥
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् ।

अब सेनापति धृष्टद्युम्न ने नित्य शीघ्रता करने वाले पाण्डवों को बड़े वेग के साथ आक्रमण करने को कहा, कि बस ? यही समय आक्रमण करने का है ॥३५॥

कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥३६॥
सरो हंसा इवाऽऽपेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ।

भुजाओं के बल से सम्पन्न, पाण्डव, सेनापति की आज्ञा मान कर सरोवर पर हंस की तरह द्रोण के रथ पर प्रहार करते हुए झपटे ॥३६॥

गृह्णीताऽऽद्रवताऽन्योन्यं विभीता विनिकृन्ततः ॥७३॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ।

दुर्धर्ष द्रोणाचार्य के रथ के समीप यही घोर ध्वनि सुनाई देती थी, कि पकड़ो ? दौड़ो और निर्भय होकर काट डालो॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ॥३८॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैतान्न्यवारयन् ।

अब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, राजा जयद्रथ, अवन्ती राजकुमार विन्दानुविन्द और शल्य इनको रोकने लगे ॥

ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवारा दुरासदाः ॥३९॥
शरार्त्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।

ये बड़े दुर्धर्ष और आर्यधर्म में तत्पर थे, जो किसी प्रकार भी नहीं हटाये जा सकते थे । यद्यपि पाण्डव, वीर पाञ्चालों के साथ बाणों से पीड़ित हो रहे थे, परन्तु वे द्रोणाचार्य का पीछा छोड़ना नहीं चाहते थे ॥३९॥

ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विसृजञ्शतशः शरान् ॥४०॥
चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत्कदनं महत् ।

द्रोणाचार्य ने कुपित होकर सैंकड़ों बाण छोड़ना आरम्भ किया । इन्होंने चेदि, पञ्चाल और पाण्डवों की सेनाका महान् विनाश कर डाला ॥४०॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ॥४१॥
वज्रसंह्लादसङ्काशस्त्रासयन्मानवान्बहून् ।

हे आर्य ! द्रोणाचार्य के करतल और प्रत्यञ्चा की ध्वनि सारी दिशाओं में वज्रकी कड़कसी सुनाई देती थी, जिससे अनेक वीरों को भय उत्पन्न होता था ॥४१॥

एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान्बहून् ॥४२॥
अभ्यायात्तत्र यत्राऽसौ द्रोणः पाण्डून्प्रमर्दति ।

इसी समय बहुत से संशप्तक वीरों का विनाश करके विजयी अर्जुन वहीं पहुंचा, जहां पर द्रोणाचार्य, पाण्डव सेना का प्रमर्दन कर रहा था ॥४२॥

ताञ्शरौघान्महावर्त्तान्शोणितोदान्महाह्रदान् ॥४३॥
तीर्णः संशप्तकान्हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।

रक्त के समूह से भरे हुए, बड़े तड़ागों (तालाबों) को, जिसमें बाणों का समूह आवर्त के तुल्य था, उलांघते हुए अर्जुन, संशप्तकों को जीत कर वहां अचानक दिखाई पड़े ॥४३॥

तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥४४॥
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ।

हम लोगों ने उस कीर्तिशाली अर्जुन का तेज से देदीप्यमान, सूर्य के समान चमकीला, वानर ध्वजा का देदीप्यमान चिन्ह दूर से देखा था ॥४४॥

संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्याऽस्त्रगभस्तिभिः ॥४५॥
स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् ।

सूर्य की किरणों के समान अपने अस्त्रों की किरणों से संशप्तक रूपी समुद्र को सुखाकर अर्जुन रूपी प्रलय कालीन सूर्य, कौरवों को सन्तप्त करने लगा ॥४५॥

प्रददाह कुरून्सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ॥४६॥
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ।

अर्जुन अपने शस्त्र के तेज से सारे कौरवों को दग्ध करने लगा, जो प्रलय काल में सारे भूतों को जलाने वाले धूमकेतु की भांति उदय को प्राप्त होरहा था ॥४६॥

तेन बाणसहस्त्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥४७॥

ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः ।

अर्जुन ने सहस्रों बाण छोड़कर हाथी, अश्व, रथ और योधाओं को आहत कर दिया । वे बाण से पीड़ित होकर बाल बिखरे हुए रणभूमि में गिरने लगे ॥४७॥

केचिदार्त्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥४८॥

पार्थबाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः ।

कोई रणभूमि में आर्तस्वर से चीत्कार कर रहे थे और कोई नष्ट हो रहे थे । अर्जुन के बाण से आहत हुए अनेक वीरों के प्राण पखेरू उसी क्षण उड़ जाते थे ॥४८॥

तेषामुत्पतितान्कांश्चित्पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥४९॥

न जघानाऽर्जुनो योधान्योधव्रतमनुस्मरन् ।

अर्जुन, योद्धाओं के नियमों को जानते थे, इससे भागने, छुपने गिरने रण से पराङ्मुख होने वाले वीरों पर वे प्रहार नहीं करते थे ॥४९॥

ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥५०॥

कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः ।

इन बड़े २ विचित्र योद्धाओं के रथ छिन्न-भिन्न होगए और वे अधिक संख्या में युद्ध से विमुख होकर भाग चले। इस समय कौरव सैनिक कर्ण को पुकारने लगे। उनकी सेना में बड़ा ही हाहाकार मच गया ॥५०॥

तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम् ॥५१॥
मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम्।

इस आर्त-क्रन्दन को सुनकर अधिरथ के पुत्र कर्ण, अपने वीरों को शरण के अभिलाषी देखकर अर्जुन के सन्मुख पहुंचे और उनसे उच्चस्वर में कहने लगे-अब तुम भय मत करो ॥५१॥

स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥५२॥
प्रादुश्चक्रे तदाऽऽग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः।

कौरव वंश के राजा का सर्वोत्तम महारथी, सारे कौरवों के हर्ष का बढ़ाने वाला, अस्त्रविद्या में कुशल कर्ण ने, आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया ॥५२॥

तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥५३॥
शरौघाञ्शरजालेन विदुधाव धनञ्जयः।

देदीप्यमान धनुष के द्वारा प्रदीप्त बाणसमूह के छोड़ने वाले कर्ण के बाणसमूह को अपने बाण के जाल से अर्जुन ने काटना आरम्भ किया ॥५३॥

तथैवाऽऽधिरथिस्तस्य बाणाञ्ज्वलिततेजसः ॥५४॥
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद्विसृजञ्शरान्।

इसी तरह अधिरथ पुत्र कर्ण भी, अर्जुन के प्रज्वलित तेज वाले बाण और अस्त्र को अपने अस्त्र से रोक कर बाणवर्षा करता हुआ गर्जना कर रहा था ॥५४॥

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥५५॥
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।

इसी समय सेनापति धृष्टद्युम्न, भीमसेन, महारथी सात्यकि पहुंचे और इन्होंने तीन २ सीधे जाने वाले बाण मार कर कर्ण को क्षत-विक्षत कर दिया ॥५५॥

अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥५६॥
तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।

राधापुत्र कर्ण ने अपनी बाणवर्षा से अर्जुन के अस्त्र का निवारण करके इन तीनों महारथी, भीम, धृष्टद्युम्न और सात्यकि के धनुषों को काट डाला ॥५६॥

ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ॥५७॥
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवाऽनदन् ।

जब इन महारथियों के शस्त्र कट गए-तो ये विष-हीन सर्पों की तरह अशक्त दिखाई देने लगे। इस समय इन्होंने रथ पर से ही शक्तिनाशक शस्त्रों का प्रयोग करके सिंह की तरह बड़े वेग से गर्जना की ॥५७॥

ता भुजाग्रैर्महावेगा निसृष्टा भुजगोपमाः ॥५८॥
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति ।

ये भुजाओं के बल से प्रेरित, सर्पों के समान भीषण, महावेगवाली प्रदीप्त शक्तियां अधिरथ-पुत्र कर्ण के रथ पर जाकर लगी

ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥५६॥
ननाद बलवान्कर्णः पार्थाय विसृजञ्शरान् ।

सीधे जाने वाले तीन २ बाणों से कर्ण ने इन शक्तियों को छिन्न भिन्न करके अर्जुन पर बाणवर्षा करते हुए बड़ी भारी गर्जना की ॥५६॥

अर्जुनश्चापि राधेयं विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥६०॥
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः ।

अर्जुन ने भी सात बाणों से राधा-पुत्र कर्ण को आहत करके अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के छोटे भ्राता का वध कर डाला ।

ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः ॥६१॥
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् ।

अब अर्जुन ने फिर छः बाण छोड़े । उन सीधे जाने वाले बाणों से कर्ण के भ्राता शत्रुञ्जय को मार कर अर्जुन ने एक बाण से झटपट विपाट नामक भ्राता का शिर काटकर रथ से नीचे गिरा दिया ॥६१॥

पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ॥६२॥
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ।

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि के देखते २ अकेले अर्जुन ने सूत पुत्र कर्ण के तीन सहोदर भाई उसके ही सन्मुख मार गिराए ॥६२॥

ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥६३॥
वरासिना कर्णपत्ताञ्जघान दश पञ्च च ।

अब भीमसेन गरुड़ की तरह उछल कर अपने रथ से नीचे कूदा और इसने कर्ण पक्ष के पन्द्रह महारथियों को अपनी तीक्ष्ण करवाल (तलवार) से मार गिराया ॥६३॥

पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ॥६४॥
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः ।

भीमसेन फिर रथ पर जा चढ़ा और उसने दूसरे धनुष को उठाया । इसने दश बाण छोड़कर कर्ण को और पाँच बाणों से चार अश्व और एक सारथि को आहत किया ॥६४॥

धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चाऽऽदाय भास्वरम् ॥६५॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधम् ।

धृष्टद्युम्न ने भी, उत्तम असि, (तलवार) और प्रदीप्त चर्म (ढ़ाल) लेकर चन्द्रवर्मा और निषधराज बृहत्क्षत्र का वध कर डाला।

ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम् ॥६६॥
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन्रणे ।

पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न ने अपने रथ पर चढ़कर दूसरा धनुष उठाया और बड़ी भारी गर्जना करके तेहत्तर बाणों से कर्ण को घायल कर दिया ॥६६॥

शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥६७॥
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या विध्वा सिंह इवाऽनदन् ।

शिनिपौत्र, चन्द्रमा के समान दिव्यकान्तिधारी, सात्यकि ने भी दूसरा धनुष लिया और उसके द्वारा चौंसठ बाण मारकर सिंह की तरह गर्जना की ॥६७॥

भल्लाभ्यां साधु मुक्ताभ्यां छित्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥६८॥
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।

सात्यकि ने अपने दो तीक्ष्ण बाणों से कर्ण का धनुष काटकर फिर तीन बाण, दो भुजा और छाती पर मारे ॥६८॥

ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ॥६९॥
निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात् ।

अब सात्यकिरूपी समुद्र में डूबते हुए राधा-पुत्र कर्ण को राजा दुर्योधन, आचार्य द्रोण और राजा जयद्रथ ने झपट कर बचाया।

पत्त्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोऽपरे ॥७०॥
कर्णमेवाऽभ्यधावन्त त्रास्यमानाः प्रहारिणः ।

प्रहार करने में कुशल, तुम्हारे पक्ष के सैंकड़ों पैदल, अश्वारोही रथी और गजारोही, घबराकर कर्ण के बचाने के लिए दौड़ पड़े।

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ॥७१॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे ।

इस रण में सेनापति धृष्टद्युम्न, भीमसेन, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने सात्यकि की रक्षा की।

एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥७२॥
तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद्रणः ।

इस प्रकार महाभयानक सारे धनुष धारियों में विनाश करने वाला युद्ध चल रहा था, जिसमें तुम्हारे और पाण्डवों के वीर, अपने २ प्राणों की आशा छोड़कर युद्ध में संलग्न थे ॥७२॥

पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपत्तिभिः ॥७३॥
रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः ।
अश्वै रश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ॥७४॥
संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः ।
एवं सुकलिलं युद्धमासीत्क्रव्यादहर्षणम् ॥
महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥७५॥

पैदल, रथी, गजारोही और अश्वारोही, गजारोही, अश्वारोही, रथी और पैदलों से भिड़ रहे थे। महारथी, गजारोही, पैदल और अश्वारोहियों से मुठभेड़ ले रहे थे। कहीं पर रथी और पैदल रथी और गजारोहियों से लड़ रहे थे। अश्वारोहियों से अश्वारोहियों का, गजारोहियों से गजारोहियों का रथियों से रथियों का और पैदलों से पैदलों का घमसान युद्ध हो रहा था। इस प्रकार मांसभोजी जन्तुओं के हर्ष का बढ़ाने वाला बड़े २ योद्धाओं के साथ निर्भीक योद्धाओं का यह भीषण युद्ध प्रवृत्त था, जो यमराज के राष्ट्र की वृद्धि करने वाला था ॥१४-१५॥

ततो हता नररथवाजिकुञ्जरैरनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः ।
गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥

इस प्रकार इस भीषण युद्ध में अनेक वीर रथी, अश्वारोही और गजारोहियों ने अनेक गजारोही, रथी, पैदल और अश्वारोही मार डाले। गजों ने गज, रथियों ने शस्त्रधारी रथी, अश्वारोहियों ने अश्वारोही और पैदलों ने पैदलों का संहार किया ॥७६॥

रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया हतैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।
निरस्तजिह्वा दशनेक्षणाः क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः

रथियों ने हाथी, हाथियों ने बड़े २ अश्व, अश्वों ने मनुष्य, एवं उत्तम २ महारथियों ने अश्व, नष्ट कर डाले। सबकी जिह्वाएँ बाहर निकली पड़ी थी। दांत और आंखें टूटफूट रही थी। इस प्रकार कवच और भूषणों से हीन हुए अनेक वीर, पृथिवी में पड़े हुए मृत्यु के वश में पहुंच गए ॥७७॥

तथाऽपरैर्बहुकरणैर्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।
विपोथिताहयगजपादताडिताभृशाकुलारथमुखनेमिभिःक्षताः

बहुत से वीरों ने अपने २ उत्तम शस्त्रों तथा अन्य साधनों से अनेक सेना के अश्वादि अङ्गों को मार २ कर पृथिवी में गिरा दिया, जिनके देखने से भी भय होने लगता था। बहुत से सैनिक हाथियों के पैरों से कुचल गए और बहुत से उत्तम रथों की नेमि से आहत होकर तड़फड़ाने लगे ॥७८॥

प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां जनक्षये वर्त्तति तत्र दारुणे ।
महाबलास्ते कुपिताः परस्परं निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥

इस प्रकार दारुण वीरों का क्षय हो रहा था जिससे वनैले मांस भोजी जन्तु, पक्षी और राक्षस, बड़े प्रहर्षित हो रहे थे। ये महा-बली राक्षस और जन्तु, कोप में भरकर एक दूसरे राक्षस और जन्तुओं पर आक्रमण करके बड़े ओज के साथ रणभूमि में घूमते थे

ततो बले भृशलुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसम्प्लुते।
दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिविराय भारत॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वितीयदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ समाप्तं च संशप्तकवधपर्व।

हे भारत! इस प्रकार सेना का बहुत नाश हो जाने पर दोनों ओर की सेना रुधिर से व्याप्त होकर एक दूसरे की ओर देखने लगी। अब सूर्य भी अस्ताचल पर धीरे २ पहुंच चुका था, इस लिए कौरव और पाण्डवों की दोनों सेना भी अपने २ शिबिर की ओर चल दी ॥८०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में द्वितीय दिवस के युद्ध की समाप्ति का बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर संशप्तकवधपर्व भी समाप्त हो गया।

अथाभिमन्युवधपर्व

तेंतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनाऽमितौजसा ।
द्रोणे च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥१॥

सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः ।
रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥२॥

अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्मते ।
लब्धलक्षैः शरैर्भिन्ना भृशावहसिता रणे ॥३॥

श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्याऽमितान्गुणान् ।
केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ॥४॥

अभिशस्ता इवाऽभूवन्ध्यानमूकत्वमास्थिताः ।
ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥५॥

प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः ।
शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥६॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अत्यन्त ओजस्वी अर्जुन ने प्रथम हमारी सेना को अत्यन्त विचलित कर दिया। आचार्य द्रोण का राजा युधिष्ठिर के पकड़ लेने का सङ्कल्प निष्फल हो गया और

अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर की रक्षा करली। तुम्हारे पक्ष के सारे वीरों के कवच फट गए। वे युद्ध में पराजित से हो गए। दशों दिशाओं में धूल मिट्टी में सने हुए अत्यन्त उद्विग्न तुम्हारे पक्ष के ही वीर दिखाई देते थे। इस समय भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य की आज्ञा से युद्ध की समाप्ति कर दी गई। रण में लक्ष्य के अनुसार जानेवाले पाण्डवों के बाणों से तुम्हारे वीर आहत होकर उपहास को प्राप्त हो रहे थे। सारे प्राणी, अमित गुण वाले अर्जुन के गुणों की प्रशंसा तथा श्रीकृष्ण के अर्जुन के प्रति विद्यमान स्नेह का कथन कर रहे थे। इस समय समस्त वीर पराजित एवं ध्यानमग्न से हुए, चुपचाप स्थित थे। प्रातःकाल होने पर आचार्य द्रोण के पास पहुंच कर द्रोणाचार्य के प्रेम अभिमान और शत्रु की वृद्धि से दुःखी, बोलने वालों में चतुर, राजा दुर्योधन, सारे योद्धाओं के सुनते २ बड़े आवेश के साथ यह वचन बोले ॥१-६॥

नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम।
तथा हि नाऽग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम् ॥७॥

हे द्विजसत्तम! इसमें अब कोई सन्देह नहीं रहा, कि हम को तुम अपना शत्रु समझते हो; यही तो बात है, जिससे राजा के सन्मुख आने पर भी तुमने उसे नहीं पकड़ा ॥७॥

इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः।
जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥८॥

यदि देवों के साथ लेकर भी पाण्डव, राजा युधिष्ठिर की रक्षा करते और आप पकड़ना चाहते-तो किसी की शक्ति नहीं थी, जो उसे बचा लेता। आपने तो रण में आंखों के सन्मुख आये हुए शत्रु को भी हाथ से निकाल दिया ॥८॥

वरं दत्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि ।
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्याऽऽर्याः कथञ्चन ॥९॥

आपने अपना प्रेम दिखाया और मुझसे धर्मराज के पकड़ने की प्रतिज्ञा की, परन्तु फिर न जाने आपका चित्त क्यों बदल गया। आर्यजन तो अपने भक्त का कभी आशाभङ्ग नहीं किया करते॥

ततो प्रीतस्तथोक्तः सन्भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम् ।
नाऽर्हसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥१०॥

जब राजा दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को इस प्रकार फटकार बतलाई-तो इससे आचार्य अप्रसन्न हो उठे। भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य ने राजा दुर्योधन से कहा। मैं तो सदा तुम्हारे हित की अत्यन्त चेष्टा कर रहा हूँ, फिर तुम्हें इस प्रकार मुझे शत्रुओं का पक्षपात करने वाला नहीं समझना चाहिए ॥१०॥

ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
नाऽलं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥११॥

देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग और राक्षस भी, रण में उस व्यक्ति के जीतने में समर्थ नहीं हो सकते हैं, जिसकी किरीट-धारी अर्जुन रक्षा करते हों ॥११॥

विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथाऽर्जुनः ।
तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यम्बकात्प्रभोः ॥१२॥

संसार के रचने वाले श्रीकृष्ण, जिनके सहायक हों, अर्जुन जैसा सेना का नेता हो—उस सेना में भगवान् शङ्कर की शक्ति के अतिरिक्त किसी की नहीं चल सकती है ॥१२॥

सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
अद्यैकं प्रवरं कश्चित्पातयिष्ये महारथम् ॥१३॥

हे तात ! मैं आज तुम से सत्य कहे देता हूं, यह कभी विपरीत नहीं होगा, कि मैं आज पाण्डव सेना के किसी न किसी सर्वश्रेष्ठ महारथी को लुढ़का कर रहूंगा ॥१३॥

तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि ।
योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥१४॥

हे राजन ! आज मैं स्वयं ऐसा व्यूह बनाने वाला हूं, जिसको देवता भी किसी उपाय से नहीं तोड़ सकते हैं, परन्तु तुम लोग आज भी अर्जुन को कहीं अन्यत्र दूर लेजाना ॥१४॥

न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किञ्चन ।
तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥१५॥

युद्ध में कोई ऐसी बात नहीं है, जिसको अर्जुन जानता हो या कर नहीं सकता हो । उसने अस्त्र विषयक सारा ज्ञान इधर उधर घूम कर बहुत अधिक प्राप्त कर लिया है ॥१५॥

द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः ।
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥१६॥

जब द्रोणाचार्य ने इतना कहा—तो संशप्तक वीरों ने फिर अर्जुन को रण में ललकारा और वे उसे दक्षिण दिशा में खैंच ले गये ॥१६॥

ततोऽर्जुनस्याऽथ परैः सार्धं समभवद्रणः ।
तादृशो यादृशो नाऽन्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित् ॥

इस समय अर्जुन और शत्रुभूत संशप्तक गणों का इतना भीषण रण मचा, कि जो आज तक न देखा गया और न सुना ही गया ॥१७॥

तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन्व्यरोचत ।
चरन्मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥१८॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर आचार्य द्रोण ने व्यूह रचना की । जो व्यूह मध्यान्ह काल के सूर्य की तरह सन्तापित करता हुआ चारों ओर चक्कर लगाता था । इस समय व्यूह की ओर देखना भी बड़ा कठिन था ॥१८॥

तं चाऽभिमन्युर्वचनात्पितुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
बिभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥१६॥

हे भारत ! अपने ज्येष्ठ-पिता धर्मराज के कथन से महावीर अभिमन्यु ने इस दुर्भेद्य चक्र-व्यूह के भी रण में टुकड़े २ उड़ा दिए ॥१६॥

स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान्सहस्रशः ।
षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशङ्गतः ।
सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान्परन्तपः ।
वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्शिताः ।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥२१॥

हे महीपाल ! अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में घुस कर सहस्रों वीरों को परलोक भेज दिया। वह इस प्रकार दुष्कर कर्म करके छः महारथियों से घेरा हुआ अन्त में दुःशासन पुत्र द्वारा मार डाला गया। इस प्रकार सुभद्रापुत्र परन्तप अभिमन्यु ने अपने प्राण छोड़े। इस घटना को देखकर हम लोग बड़े प्रसन्न होगए और पाण्डवों की ओर शोक के बादल छागए। हे राजन् ! अभिमन्यु की मृत्यु होते ही युद्ध समाप्त कर दिया गया॥२०-२१॥

धृतराष्ट्र उवाच —

पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाऽप्राप्तयौवनम् ।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥२२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पुरुषप्रवीर अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु अभी तक तो पूर्ण यौवन को भी प्राप्त नहीं हुआ था। इस सुकुमार बालक की रण में मृत्यु सुनकर मेरा मन बहुत ही विदीर्ण होता है ॥२२॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः ।
यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥२३॥

धर्माचार्यों ने क्षत्रियधर्म को बड़ा ही दारुण बनाया है, जो राज्य के लोलुपी-शूरवीर, ऐसे बालक पर भी शस्त्र प्रहार कर देते हैं ॥२३॥

बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् ।
कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि गावल्गणे कथम् ॥२४॥

हे गवलगण के पुत्र ! सञ्जय ! अभिमन्यु तो अत्यन्त सुख के योग्य निर्भीक घूमने वाला बालक था, उस सुकुमार को बहुत से अस्त्रविद्या कुशल, शूरवीरों ने कैसे मार गिराया, तुम मुझे इस कथा को सुनाओ ॥२४॥

बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणाऽमितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२५॥

हे सञ्जय ! अत्यन्त ओजस्वी सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने किस तरह चक्रव्यूह की रथों की सेना का भेदन किया और किस तरह उसने रण में क्रीड़ा की—यह सब कुछ मुझे बताओ ॥२५॥

सञ्जय उवाच—

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् ।
तत्ते कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन्समाहितः ॥२६॥

विक्रीडितं कुमारेण यथाऽनीकं विभित्सता ।
आरुग्णाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि विप्लवे ॥२७॥

सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! आपने सुभद्रापुत्र अभिमन्यु की मृत्यु का जो वृत्तान्त पूछा है, मैं उसे तुम्हें ज्यों का त्यों सुनाता हूं।

हे राजन् ! तुम ध्यान से सुनो, कि जिस तरह चक्रव्यूह का भेदन करके कुमार अभिमन्यु ने रणक्रीड़ा की तथा रण में दुःसाध्यवीरों को किस तरह क्लेशित करके छकाया ॥२६-२७॥

दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे ।
वनौकसामिवाऽरण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

इस समय तुम्हारे पक्ष के वीरों को ऐसा भय खड़ा होगया, जैसा बहुत सी झाड़ी, तृण और वृक्षों से भरे हुए वन में आग लगने पर वनचारी जन्तुओं को खड़ा हो जाता है ॥२८॥
इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तिगत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु वध की संक्षिप्त कथा के कथन का तेतीसवां अध्याय समाप्त हुआ

——※※——

चौंतिसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः ।
सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! पाण्डव, रण में बड़ा ही भीषण कर्म कर दिखाने वाले हैं। वे रण में इतना तीव्र पराक्रम दिखाते हैं।

कि जिससे उनका परिश्रम स्फुट दिखाई देता रहता है। ये कृष्ण सहित पांचों पाण्डव, देवों से भी नहीं जीते जा सकते हैं ॥१॥

सत्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया ।
नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् ॥२॥

सात्विक कर्मों के लगातार करने, बुद्धि, कीर्ति, यश, और राज्यश्री से धर्मराज इतने विभूषित हैं, कि उनके बराबर गुणी पुरुष, आजतक संसार में कोई हुआ न आगे होगा ॥२॥

सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः ।
सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥३॥

यह राजा युधिष्ठिर, सत्य धर्म में निरत, उदार और ब्राह्मणों के पूजा सत्कार आदि उत्तम २ गुणों से इतना समन्वित है, मानों जीवन में ही इसने स्वर्ग प्राप्त कर लिया है ॥३॥

युगान्ते चाऽन्तको राजञ्जामदग्न्यश्च वीर्यवान् ।
रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥४॥

हे राजन् ! प्रलयकाल अत्यन्त भीषणरूपधारी काल, वीर्यवान् जमदग्निपुत्र परशुराम और रथ में स्थित भीमसेन-ये तीनों एक से भयङ्कर कहलाते हैं ॥४॥

प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।
उपमां नाऽधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥५॥

रण में अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके दिखाने वाले, गाण्डीव धारी अर्जुन की तो पृथिवी पर कोई उपमा ही नहीं दिखाई देती है ॥५॥

गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः ।
नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि षट् ॥६॥

नकुल में अत्यन्त गुरुभक्ति, धैर्य, विनय, जितेन्द्रियता, सुन्दरता और शूरवीरता-ये छः गुण पूर्ण रूप में विद्यमान हैं ॥६॥

श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्यरूपपराक्रमैः ।
सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाऽश्विनोः ॥७॥

पाण्डु-पुत्र वीर सहदेव भी, शास्त्रज्ञान, गम्भीरता मधुरभाषण सत्य, सौन्दर्य और पराक्रम में अश्विनीकुमार के तुल्य है ॥७॥

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसञ्चयाः ॥८॥

जो गुण श्रीकृष्ण में विख्यात हैं और पाण्डवों में जिन बहुत से गुणों की स्थिति है, वे सारे गुण, अकेले अभिमन्यु में देखे गए हैं

युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥९॥
धनञ्जयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात्सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥१०॥

यह अभिमन्यु, शौर्य में धर्मराज, आचरण में श्रीकृष्ण रण कर्मों में भीषण कर्म करनेवाले भीमसेन, रूप, पराक्रम और शास्त्रज्ञान में अर्जुन तथा विनय में नकुल और सहदेव के तुल्य था ॥९-१०॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
श्रोतुमिच्छामि कात्स्न्येंन कथमायोधने हतः ॥११॥

धृतराष्ट्र बोले–हे सूतपुत्र ! सञ्जय ! मैं पराजित नहीं होने वाले सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु का सारा वृत्तान्त सुनना चाहता हूं, कि वह रण में किस प्रकार मारा गया ॥११॥

सञ्जय उवाच—

स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम् ।
महान्तं बन्धुनाशं ते कथयिष्यामि तच्छ्रुणु ॥१२॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अब तुम धैर्य धारण करके दुर्धर शोक को रोको-मैं तुमको इस महान् बन्धु विनाश के समाचार सुनाता हूं ॥१२॥

चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाऽभिकल्पितः ।
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥१३॥

हे महाराज ! जब आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की-तो उसमें उसने इन्द्र के तुल्य पराक्रमी राजाओं को नियुक्त किया।

आरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
सङ्घातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत्तदा ॥१४॥

द्रोणाचार्य ने सूर्य के तुल्य तेजस्वी राजकुमारों को इस चक्र व्यूह के आरों के स्थानों पर लगाया। उसमें अनेक राज-पुत्रों का एक ही स्थान पर सखूह इकट्ठा हो गया ॥१४॥

कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ।
रक्ताम्बरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥१५॥
सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः ॥१६॥
सहिताः पर्यधावन्त कार्ष्णिं प्रति युयुत्सवः ।
तेषां दशसहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥१७॥

इन सब राजपुत्रों ने रण से पीठ नहीं फेरने की प्रतिज्ञा कर ली। सब ने उज्ज्वल सुवर्ण की ध्वजा अपने रथों पर लगाई। इन सारे राजपुत्रों के लाल वस्त्र और लाल ही आभूषण थे। सब की लाल पताकाएँ थी और ये सारे सुवर्ण की माला पहने हुए थे। उन सव के शरीर चन्दनों से लिप्त थे। सब ने सूक्ष्म वस्त्र और पुष्पों की माला पहन रखी थी। इन सबने इकट्ठे होकर युद्ध की इच्छा से कृष्ण (अर्जुन) पुत्र अभिमन्यु पर एक दम आक्रमण कर दिया। इनके दश सहस्र दृढ़ धनुष धारी वीर थे ॥१६-१७॥

पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ॥१८॥
अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रताः ।

इन सारे राजपुत्रों ने तुम्हारे पौत्र, सुन्दर आकारधारी लक्ष्मण को अपना नेता बनाया। ये एक दूसरे के दुःख में सम्मिलित हुए और इन सबका समान ही साहस था। ये एक दूसरे से अधिक पराक्रम दिखाने की स्पर्धा करते थे और एक दूसरे के हितकारी सहायक थे ॥१८॥

दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥१९॥
कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः ।

हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधन इन सेना के मध्य में स्थित थे। इनको महारथी कर्ण, दुःशासन और कृपाचार्य आदिने घेर रखा था।

देवराजोपमः श्रीमाञ्श्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥२०॥
चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः ।

राजा दुर्योधन का इन्द्र के तुल्य ऐश्वर्य दिखाई देता था। इस पर श्वेतच्छत्र तना हुआ था। चामर और व्यजन (पंखों) के सञ्चालन से यह उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के सदृश दिखाई देता था ॥२०॥

प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायकः ॥२१॥
सिन्धुराजस्तथाऽतिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाऽचलः ।

इस सेना के मुख पर सेनापति द्रोणाचार्य स्वयं स्थित हुए। इनके साथ मेरुपर्वत की भाँति अचल रहने वाला, कान्तिमान्, सिन्धुराज जयद्रथ खड़े हुए ॥२१॥

सिंधुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः ॥२२॥
सुतास्तव महाराज त्रिंशत्त्रिदशसन्निभाः ।

सिन्धुराज जयद्रथ के पास में ही अश्वत्थामा के सहित, देवों के सदृश तुम्हारे तीस पुत्र स्थित हुए ।।२२।।

गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ।।२३।।
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः ।

गान्धारराज, जुआरी शकुनि, शल्य, भूरिश्रवा आदि महारथी भी सिन्धुराज के समीप में ही सुशोभित थे ।।२३।।

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।।२४।।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ।।२५।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि चक्रव्यूहनिर्माणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

अब इन दोनों कौरव और पाण्डवों की सेनाओं में घमसान लोम हर्षण युद्ध का आरम्भ हुआ, जिन को मृत्यु का कुछ भी भय नहीं था इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में चक्र व्यूह निर्माण का चौंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

पैंतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् ।

पार्थाः समभ्यवर्त्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य द्वारा सुरक्षित कौरवसेना बड़ी दुराधर्ष थी। भीमसेन आदि को प्रधान करके पाण्डववीरों ने उन पर आक्रमण किया ॥१॥

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः ॥२॥
आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् ।
चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥३॥
युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः ॥४॥
द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् ।
केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥५॥
एते चाऽन्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
समभ्यधावन्सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥६॥

इनके साथ, सात्यकि, चेकितान, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, महापराक्रमी कुन्तिभोज, महारथी द्रुपद, अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, क्षत्रधर्म, वीर्यवान् बृहत्क्षत्र, चेदिराज धृष्टकेतु, माद्री-पुत्र नकुल

सहदेव, घटोत्कच महाविक्रमशाली युधामन्यु, पराजित नहीं होनेवाला शिखण्डी, दुर्धर्ष उत्तमौजा, महारथी विराट, आवेश में भरे हुए द्रौपदीकुमार, वीर्यवान् शिशुपालपुत्र, महावीर्यशाली पांच केकय राजकुमार तथा अन्य सहस्रों सृञ्जय वीर, अपनी २सेना लेकर कौरवों पर झपटे। ये सारे युद्धदुर्मद और अस्त्रविद्या में कुशल थे। इन्होंने युद्ध की अभिलाषा से भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य पर एक दम आक्रमण किया ॥२-६॥

समीपे वर्त्तमानांस्तान्भारद्वाजोऽतिवीर्यवान् ।
असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत् ॥७॥

अत्यन्त पराक्रम से समन्वित द्रोणाचार्य ने इनको अपने समीप आता देख कर विना किसी व्याकुलता के इनको बड़े भारी बाण समूह से व्याप्त करना आरम्भ किया ॥७॥

महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम् ।
द्रोणं ते नाऽभ्यवर्त्तन्त वेलामिव जलाशयाः ॥८॥

जल का महान् प्रवाह दुर्भेद्य पर्वत को चीर कर चले जाने पर भी जैसे समुद्र में जाकर वेला का उल्लंघन नहीं कर सकता है, यही दशा द्रोणाचार्य के पास पहुंच कर पाण्डव सेना की हुई ॥

पीड्यमानाः शरै राजन्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥६॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाणों से व्यथित हुए पाण्डव वीर, द्रोणाचार्य के सन्मुख ठहरने में समर्थ नहीं हो सके ।६॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम् ।
यदेनं नाऽभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ॥१०॥

इस रण में द्रोणाचार्य के भुजाओं का बहुत अद्भुत बल देखा गया, जो पाञ्चाल वीर, सृञ्जयों को साथ लेकर भी द्रोणाचार्य का अतिक्रमण नहीं कर सके ॥१०॥

तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥११॥

राजा युधिष्ठिर, क्रोध में भर कर झपटते हुए द्रोणाचार्य को देखकर उनके रोकने का बहुत से उपाय सोचने लगे ॥११॥

अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।
अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत् ॥१२॥

धर्मराज ने जब देखा, कि द्रोणाचार्य के रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है, तो उन्होंने आचार्य के रोकने का असह्य भार सुभद्रापुत्र अभिमन्यु को सौंपा ॥१२॥

वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चाऽमितौजसम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥१३॥

अभिमन्यु श्रीकृष्ण और अर्जुन से पराक्रम में न्यून नहीं था, इससे धर्मराज ने अत्यन्त ओजस्वी, शत्रुवीरनाशक अभिमन्यु से यह बचन कहा ॥१३॥

एत्य नो नाऽर्जुनो गर्हेद्यथा तात तथा कुरु ।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथञ्चन ॥१४॥

हे तात! अर्जुन, संशप्तक गणों के साथ युद्ध करके लौटने पर हमारी कोई त्रुटि न बता सके--आज तुम्हें वही करना चाहिये। हम लोग तो इस चक्रव्यूह का भेदन करना जानते नहीं हैं ॥१४॥

त्वं वाऽर्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात्प्रद्युम्न एव वा।
चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते ॥१५॥

हे महाबाहो! चक्रव्यूह का भेदन तो श्रीकृष्ण और उनके पुत्र प्रद्युम्न, अर्जुन या तुम (अर्जुनपुत्र अभिमन्यु) ही जानते हो। पांचवां कोई इसका भेदन नहीं कर सकता है ॥१५॥

अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि।
पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥१६॥

हे तात! अभिमन्यो! अब तुम अपने पिता हम लोग, मातुल पक्ष के सात्यकि आदि तथा सारी सेना की मन की अभिलाषा को पूर्ण करके उनकी भावना पूरी करो ॥१६॥

धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात्।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥१७॥

यदि आज द्रोणाचार्य की सेना का कुछ भी नाश नहीं किया-तो रण से लौटने पर अर्जुन हम लोगों को बहुत फटकारेगा। अब तुम शीघ्र शस्त्र लेकर इस द्रोणसेना का विध्वंस करो ॥१७॥

अभिमन्युरुवाच—

द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि।
पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥१८॥

अभिमन्यु बोले—हे राजेन्द्र ! यद्यपि आज रण में द्रोणाचार्य की सेना बड़ी दुर्धर्ष और उग्र है, तो भी अपने पिता की विजय के निमित्त मैं शीघ्र ही इस चक्रव्यूह में आलोडन मचा ऊँगा ॥१८॥

उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने ।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्याञ्चिदापदि ॥१६॥

मुझे पिता (अर्जुन) ने इस चक्रव्यूह के भेदन करके सेना में मारकाट मचाने की विधि तो बता रखी है, परन्तु यदि मैं किसी आपत्ति में फँस गया-तो वहाँ से निकलना कठिन हो जावेगा ॥१६॥

युधिष्ठिर उवाच—

भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
वयं त्वाऽनुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि ॥२०॥

धर्मराज बोले—हे वीरश्रेष्ठ ! तुम इस सेना को तोड़ कर हमको द्वार बना दो । हे तात ! जिस मार्ग से तुक घुसोगे-हम लोग भी तुम्हारे ही साथ घुसे चले चलेंगे ॥२०॥

धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे ।
प्रणिधायाऽनुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः ॥२१॥

हे तात ! हम लोग रण में धनञ्जय अर्जुन के तुल्य तुमको पराक्रमी समझते हैं । इसतरह हम सब तुम्हारी रक्षा करते हुए तुम्हारे पीछे २ चक्रव्यूह में तुम्हारी रक्षा के निमित्त घुस चलेंगे ॥२१॥

भीम उवाच—

अहं त्वाऽनुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥२२॥

सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः ।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान्वरान् ॥२३॥

भीमसेन ने कहा—मैं, सेनापति धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पञ्चाल, केकय, मत्स्य, सारे प्रभद्रक वीर, तुम्हारे एक बार इस सेना के व्यूह के तोड़ देने पर घुस पड़ेंगे और कौरवों के उत्तम २ महारथियों को चुन २ कर मार गिरावेंगे ॥२२-२३॥

अभिमन्युरुवाच—

अहमेतत्प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं जातवेदसम् ॥२४॥

अभिमन्यु बोले—हे राजन् ! मैं दुर्धर्ष द्रोणसेना में प्रज्वलित अग्नि में क्रुद्ध हुए पतङ्ग की तरह प्रवेश करने में कुछ भी नहीं हिचकिचाऊँगा ॥२४॥

तत्कर्माऽद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः ।
मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे ॥२५॥

आज मैं इतना दुष्कर कर्म दिखाऊँगा, जिससे मातृकुल और और पितृकुल दोनों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी तथा युद्ध से लौटकर आने पर मामा श्रीकृष्ण और पिता (धनञ्जय) की मुझ पर बड़ी प्रीति होगी ॥२५॥

शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि सङ्घशः ।
द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया ॥२६॥

आज सारे प्राणी यह देखेंगे, कि मैं साधारण क्षत्रिय बालक होकर अकेला ही सारे शत्रु महारथियों के समूहों का रण में आह्वान करूँगा ॥२६॥

नाऽहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया ।
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाऽद्य मुच्यते ॥२७॥

आज युद्ध में मेरे सम्मुख आने पर कोई जीता निकल गया—तो मुझे अपने पिता अर्जुन और सुभद्रा का पुत्र ही नहीं समझना ॥२७॥

यदि चैकरथेनाऽहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् ।
न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥२८॥

जो मैं अपने अकेले रथ की सहायता से सारे क्षत्रियसमूह को आठ टुकड़ों में विभाग न कर डालूं—तो मुझे अर्जुनपुत्र न समझना ॥२८॥

युधिष्ठिर उवाच—

एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् ।
यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥२९॥

युधिष्ठिर बोले—हे सुभद्रापुत्र ! अभिमन्यु ! तुम जो अपने बल का कीर्तन कर रहे हो—इस बल की वृद्धि हो । आज तुम, दुरासद द्रोणाचार्य की सेना के भेदन का जो उत्साह दिखा रहे हो—यह सफल हो ॥२९॥

रक्षितं पुरुषव्याघ्रै र्हेष्वासैर्महाबलैः ।
साध्यरुद्रमरुत्तुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥३०॥

साध्य, रुद्र, मरुत्, वसु, अग्नि, आदित्य के तुल्य पराक्रमी, महाधनुर्धर, महाबली पुरुषप्रवीर महारथी, तुम्हारी रण में रक्षा करेंगे ॥३०॥

सञ्जय उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् । ॥३१॥
सुमित्राऽश्वान्रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वण्यभिमन्युप्रतिज्ञायां
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

सञ्जय ने कहा—धर्मराज के इतने वचन सुनकर अभिमन्यु ने ने सारथि से कहा—हे सुमित्र ! अब तुम शीघ्र मेरे अश्वों को द्रोणाचार्य की सेना की ओर प्रेरित करो ॥३१-३२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु प्रतिज्ञा का पैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छत्तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत ! इस प्रकार बुद्धिमान धर्मराज के वचन सुनकर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने अपने सारथि को द्रोणाचार्य की सेना की ओर बढ़ने के लिए आज्ञा दी ॥१॥

तेन सञ्चोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥२॥

हे राजन् ! जब अभिमन्यु ने अपने सारथि को बड़े वेग से द्रोण के पास पहुंचने की प्रेरणा की—तो वह सारथी अभिमन्यु से यह वचन बोला ॥२॥

अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः ।
सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥३॥

हे आयुष्मन् ! पाण्डवों ने तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा भार रख दिया है, तुम इस पर थोड़ी देर शान्ति से विचार करके फिर युद्ध में प्रवृत्त होओ ॥३॥

आचार्यो हि कृती द्रोणः परमस्त्रे कृतश्रमः ।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चाऽयुद्धविशारदः ॥४॥

आचार्य द्रोण, युद्ध विद्या में बड़ा प्रवीण है और उसने बड़े २ उत्तम अस्त्रों के चलाने का महान अभ्यास कर रखा है। तुम एक सुकुमार बालक हो, जो बड़े सुख के साथ पाले गए हो और तुम उनके समान रण-पण्डित भी नहीं हो ॥४॥

ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत् ।
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥५॥
ऐरावतगतं शक्रं सहाऽमरगणैरहम् ।
अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् ॥
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥६॥
न ममैतद् द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् ।

इस बात को सुनकर अभिमन्यु, मुसकुराकर सारथि से कहने लगा--हे सारथे ! इस द्रोण या सारे क्षत्रिय-समाज की गणना ही क्या है--यदि समस्त देवों के साथ ऐरावत हाथी पर बैठकर देवराज इन्द्र तथा सम्पूर्ण भूतों गणों को लेकर शक्तिशाली रुद्र भी मेरे सन्मुख रण में चला आवे-तो मैं उससे भी युद्ध करने से पीछे नहीं हट सकता। इस क्षत्रियसमूह को देखकर तो मुझे कुछ भी विचार नहीं होता है। मैं तो इस सारी शत्रुसेना को अपनी शक्ति के सन्मुख सोलहवां भाग भी नहीं समझता ॥६॥

अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥७॥
पितरं चाऽर्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति ।

हे सारथि ! विश्व भर के विजेता मातुल श्रीकृष्ण और पिता अर्जुन को सहायक देख कर मुझे इस रण में कुछ भी भय नहीं है

अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥८॥
याहीत्येवाऽब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् ।

इस प्रकार अभिमन्यु ने सारथि की वाणी का खण्डन करके आज्ञा दी, कि तुम शीघ्र अश्वों को द्रोणाचार्य की सेना की ओर चलाओ--देर न करो ॥८॥

ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ॥९॥
नाऽतिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ।

इस प्रबल आज्ञा को सुन कर सारथि, सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित तीन वर्ष के युवा अश्वों को शीघ्रता से द्रोणाचार्य की सेना की ओर हाँकने लगा ॥९॥

ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥१०॥
द्रोणमभ्यद्रवन्राजन्महावेगपराक्रमम् ।

हे राजन् ! जब अभिमन्यु के सारथि सुमित्र ने अपने अश्वों को द्रोणाचार्य की ओर चलाया-तो वे महापराक्रमशाली द्रोणाचार्य पर बड़े वेग से झपटे ॥१०॥

तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ॥
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥११॥

इस प्रकार वेग से आक्रमण करते हुए अभिमन्यु को देखकर कौरव उसके सन्मुख होने को दौड़े और पाण्डवों ने उसकी रक्षार्थ उसका अनुगमन किया ॥११॥

स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्माऽऽर्जुनिरर्जुनाद्वरः
युयुत्सया द्रोणमुखान्महारथान्समासदत्सिंहशिशुर्यथा द्विपान्

कर्णिकार (कनेर) के वृक्ष के चिह्न से युक्त, ऊपर उड़ती हुई ध्वजा से सुशोभित, सुवर्णकवचधारी, अर्जुन से भी अधिक पराक्रमी अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, मदोद्धत गजों पर सिंहके शिशु की भांति द्रोण आदि कौरवों के महारथियों पर युद्ध की आकांक्षा से बड़ी तीव्रता के साथ झपटा ॥१२॥

ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
आसीद्गाङ्ग इवाऽऽवर्त्तो मुहूर्त्तमुदधाविव ॥१३॥

अब बीस पद के अन्तर से दोनों ओर की सेना के सावधान वीर प्रहार करने लगे । थोड़ी देर तक समुद्र में गङ्गा के प्रवाह के प्रवेश के तुल्य रणभूमि की दशा हो गई ॥१३॥

शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥१४॥

हे राजन ! इस समय दोनों के वीरों के युद्ध करने और एक दूसरे को मारने से बड़ा घमसान और दारुण युद्ध होने लगा।१४।

प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्वा प्राविशदार्जुनिः ॥१५॥

जब इस प्रकार घोर संग्राम हो रहा था, तो द्रोणाचार्य के देखते २ चक्रव्यूह को भेद कर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु उसमें घुस गया ॥१५॥

तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसङ्घान्महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥१६॥

शत्रुसमूह को मारता चीरता हुआ महाबलसम्पन्न अभिमन्यु को चक्रव्यूह में घुसते देखकर कौरवपक्ष के हाथी, अश्व, रथी और पैदल सैनिक, शस्त्र लेकर रोकने को दौड़े ॥१६॥

नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः ।
हुङ्कारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥१७॥
घोरैर्हलहलाशब्दैर्मागास्तिष्ठैहि मामिति ।
असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥१८॥
बृंहितैः सिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि ।
सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥१९॥

अनेक भांति के बाजों के शब्द, भयानक जन्तुओं की सी वाणी, चीत्कार और गर्जना, सिंहनाद, हुंकार, ठहरो ? ठहरो ? की ध्वनि, घोर हलहल शब्द, आगे न बढ़ो, मुझसे युद्ध करो—इत्यादि आह्वान, ऊँची घोषणा, रथसिञ्जिनियां (घुंघरुओं)की ध्वनि, अट्टहास, हाथ और रथ नेमिके स्वर के साथ मैं तुम्हारा शत्रु तो यहाँ खड़ा हूँ, इस प्रकार बार २ कह कर पृथिवी को गुञ्जाते हुए कौरववीर, अर्जुनपुत्र अभिमन्यु पर झपटे ॥१७-१९॥

तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥२०॥

हे राजन् ! इन वीरों के आक्रमण करने पर शीघ्रता के साथ युद्ध करने वाला महाबली, बड़ी तीव्रता से अस्त्र प्रयोग में कुशल, अभिमन्यु, शत्रुओं के मर्मस्थानों को लक्ष्य करके बाण-प्रहार करने लगा ॥२०॥

ते हन्यमानाः विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।

अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥२१॥

अनेक भांति के तीक्ष्ण बाणों से आहत हुए परवश कौरव वीर, अधिक संख्या में अग्नि में पतङ्गों की भांति आ २ कर गिरने लगे ॥२१॥

ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः ।

सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाऽध्वरे ॥२२॥

अब अभिमन्यु ने यज्ञ में वेदी को कुशा से ढक देने की भांति इन कौरव वीरों के शरीर और शरीर के अवयवों से सारी रणभूमि को बहुत शीघ्र ढक दिया ॥२२॥

बद्धगोधांगुलित्राणान्सशरासनसायकान् ।

सासिचर्मांकुशाभीषून्सतोमरपरश्वधान् ॥२३॥

सगदायोगुडप्रासान्सर्ष्टितोमरपट्टिशान् ।

सभिन्दिपालपरिघान्सशक्तिवरकम्पनान् ॥२४॥

सप्रतोमदमहाशङ्खान्सकुन्तान्सकचग्रहान् ।

समुद्गरक्षेपणीयान्सपाशपरिघोपलाम् ॥२५॥

सकेयूराङ्गदान्बाहून्हृद्यगन्धानुलेपनान् ।
सञ्छिच्छेदाऽऽर्जुनिस्तूर्णं त्वदीयानां सहस्रशः ॥२६॥

हे राजन् ! गोधा (गोह) के चर्म के अंगुलित्राण पहने हुए, धनुष बाण धारण करने वाले, खड्ग, चर्म (ढाल) अंकुशों, अश्वों की रश्मि (रास) तोमर, परशु, गदा, अयोगुड, प्रास, ऋष्टि बड़े २ तोमर, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, उत्तम २ शक्ति, कम्पन, प्रतोद, महाशङ्ख, कुन्त आदि शस्त्रों से समन्वित, एक दूसरे के बालों के पकड़ने में संलग्न, मुद्गर, क्षेपणीय, पाश, विशाल परिघ, और पत्थर के गोलों से युक्त, केयूर और अङ्गद आदि आभूषणों से सुशोभित, सुगन्धित चन्दन आदि गन्ध द्रव्यों से चर्चित, तुम्हारे पक्ष के सहस्रों वीरों की भुजाओं को काट २ कर अर्जुन पुत्र अभिमन्यु, झटपट गिराने लगा ॥२३-२६॥

तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः ।
पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥२७॥

हे आर्य-गुण-सम्पन्न ! महाराज ! इन रक्त मिश्रित देदीप्यमान लाल भुजाओं से पृथिवी इस तरह व्याप्त हो गई-जैसे पांच फन-वाले, गरुड़ द्वारा नष्ट भ्रष्ट होकर पड़े हुए सर्पों से दिखाई पड़ती है।

सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः ।
सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रोधात्क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥२८॥
सचारुमुकुटोष्णीषैर्मणिरत्नविभूषितैः ।
विनालनलिनकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥२९॥

हितप्रियम्वदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
द्विषच्छिरोभिः पृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः ॥

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने, उत्तम २ नासिका मुख और सुन्दरबालों से युक्त, व्रणहीन, सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित, क्रोध से ओष्ठपुट दावे हुए तथा बहुत सा रक्त वमन करते हुए, सुन्दर मुकुट और पगड़ी से अलंकृत, मणि और रत्नों से विभूषित, नाल रहित कमल पुष्प के तुल्य सुन्दर, सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य तेजधारी, समय पर प्रिय और हितकारी बोलने वाले, पवित्र केशर चन्दन से युक्त, बहुत से शत्रुओं के मस्तकों से रणभूमि को आच्छादित कर दिया ॥२८-३०॥

गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
वीषामुखान्वित्रिवेणून्न्यस्तदण्डकबन्धरान् ॥३१॥

विजङ्घाकूबरांस्तत्र विनेमिदशनानपि ।
विचक्रोपस्करोपस्थान्भग्नोपकरणानपि ॥३२॥

प्रपातितोपस्तरणान्हतयोधान्सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत॥ ३३॥

हे महाराज ! इस समय वीरश्रेष्ठ अभिमन्यु ने, अपने बाणों से गन्धर्वनगर के तुल्य, विधि-पूर्वक बनाये हुए, रथों की उत्तम ईषा (पेटी) को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। रथ के तीनों वेणु (पृष्ठावयव) तोड़ डाले। इसने रथ के उत्तम दण्डों के टुकड़े २ उड़ा दिए और रथों की जङ्घा (नीचे का स्थान) और कूबर (जुए के धारक काष्ठ)

तोड़ ताड़ दिए। अनेक रथ नेमिदशन (चक्रान्त भाग) से विहीन कर डाले। बहुत से रथों के पहिए, उपस्कर (चक्रों के फिरने से ऊपर का स्थान) और उपस्थ (रथ के बैठने का स्थान) नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अनेक रथों की युद्ध सामग्री छिन्न भिन्न कर दी। बहुतों की छतरी तोड़ डाली। इस प्रकार रथों में स्थित सहस्रों योद्धाओं के टुकड़े २ करता हुआ अभिमन्यु ही रणभूमि में सब ओर दिखाई दे रहा था ॥३१-३३॥

पुनर्द्विपान्द्विपारोहान्वैजयन्त्यंकुशध्वजान् ।
तूणान्वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयाँश्च सकम्बलान् ॥३४॥
घण्टाः शुण्डाविषाणाग्रान्छत्रमालाः पदानुगान् ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥३५॥

उसी तरह इस महावीर अभिमन्यु ने, शत्रुओं के गज, गजारोही, उन के झण्डे, अंकुश, ध्वजा, तूणीर, कवच, कक्ष्या (बन्धुनरज्जु) कण्ठाभूषण, कम्बल, (झूल) घण्टा, सूंड, दांत, छत्र, माला और गजानुचरों अपने तीक्ष्ण बाणों की धारा से काट गिराया ॥३४-३५॥

वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजानथ बाह्लिकान् ।
स्थिरवालधिकर्णाक्षाञ्जवनान्साधुवाहिनः ॥३६॥
आरूढाञ्शिक्षितैर्योधैः शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभिः ।
विध्वस्तचामरमुखान्विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥३७॥

निरस्तजिह्वानयनान्निष्कीर्णान्त्रयकृद्घनान् ।
हतारोहांश्छिन्नघण्टान्क्रव्यादगणमोदमान् ॥३८॥
निकृत्तचर्मकवचाञ्शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।
निपातयन्नश्ववरांस्तावकान्स व्यरोचत ॥३९॥

इस भीषण युद्ध में अभिमन्यु ने तुम्हारे, वनायु (फारस) पर्वत प्रान्तीय, काम्बोज और वाल्हिक देशोत्पन्न, पूंछ कान और आँखों को निश्चल करके दौड़ने वाले, अच्छी तरह सवारी देने में कुशल, शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि धारण करके युद्ध करने वाले, युद्ध शिक्षा में निपुण योद्धा से सवारी किये हुए बहुत से अश्वों को मार गिराया। इनके चामर (ग्रीवा के बाल) बाणों से उड़ा दिए। बहुतों को बींध कर क्षत-विक्षत कर दिया। बहुत से अश्वों की जीभ और नेत्र निकाल दिए। अनेकों के आंत और यकृत् (जिगर) काट डाले। बहुतों के आरोही (सवार) मार दिए। बहुत से गजों की घण्टाएँ छिन्न भिन्न हो गई। इन अश्वों को देखकर माँस भोजी जन्तु प्रसन्न हो रहे थे। बहुतों की चमड़े की जीन और कवच काट डाले। अनेक अश्व, अपनी शकृत् (विष्टा) मूत्र और रक्त में सने हुए थे। इस प्रकार अभिमन्यु बड़े २ उत्तम २ अश्वों को मारता हुआ रणाङ्गण में सुशोभित हो रहा था ॥३६-३९

एको विष्णुरिवाऽचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तथा निर्मथितं तेन त्र्यङ्गं तव बलं महत् ॥४०॥
यथाऽसुरबलं घोरं त्र्यम्बकेन महौजसा ।

इस अकेले ही महारथी अभिमन्यु ने विष्णु की तरह विचार में नहीं आने वाले, दुष्कर कर्म को करके तुम्हारी राक्षस, हाथी और अश्वों से युक्त विशाल सेना को इस तरह मथ डाला, जैसे असुर सेना को महाओजस्वी रुद्र, मथ डालता है ॥४०॥

कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ।४१॥
अभिनच्च पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः ।

इस रणाङ्गण में अर्जुन पुत्र, अभिमन्यु ने, अपने शत्रुओं के साथ इतना असह्य कर्म कर दिखाया, जिससे इसने तुम्हारी सेना के बहुत से पैदल सैनिक मार २ कर सब ओर बिछा दिए ॥४१॥

एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥४२॥
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवाऽऽसुरीं चमूम् ।
त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ॥४३॥
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जपे ॥४४॥

इस प्रकार अकेले सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु द्वारा, तीक्ष्ण बाणों से स्कन्द द्वारा आहत असुर सेना की तरह अपनी सेना को अत्यन्त छिन्न-भिन्न देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि दशों दिशाओं की ओर देखने लगे। उनके मुख सूख गए, आंखें डगमगाने लगी, स्वेद (पसीने) आ गए और रोमाञ्च खड़े हो गए। इस समय इन को भागने की सूझ रही थी और शत्रु के जीतने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता था ॥४२-४४॥

गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः।

हतान्पुत्रान्पितॄन्भ्रातॄन्बन्धून्सम्बन्धिनस्तथा ॥४५॥

प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

हे राजन्! इस समय तुम्हारे पक्ष के वीर, अपने जीवन की अभिलाषा से, अपने २ सहायकों को गोत्र और नाम का उच्चारण करके बुला रहे थे। ये अपने मरे हुए पुत्र, पिता, भाई, बन्धु और सम्बन्धियों को छोड़कर अपने हाथी और अश्वों को वेग से दौड़ाते हुए रणभूमि से भागने की चेष्टा कर रहे थे ॥४५-४६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु के पराक्रम का छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।
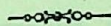
सैंतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽऽमितौजसा।

दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत ! अत्यन्त-तेजस्वी, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु द्वारा अपनी सेना को विद्रावित देखकर राजा दुर्योधन क्रोध में भर गया और इसने स्वयं अभिमन्यु पर बड़े वेग से आक्रमण किया-

ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान्परिप्सध्वं नराधिपम् ॥२॥
पुराऽभिमन्युर्लक्षं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥३॥

हे राजन् ! जब द्रोणाचार्य ने राजा दुर्योधन को अभिमन्यु के सन्मुख जाते देखा-तो वह अपने वीरों से बोला, कि तुम लोग शीघ्र राजा दुर्योधन की रक्षा करो। वीर्यवान् अभिमन्यु, अपने लक्ष्य राजा दुर्योधन पर जब तक बाण न छोड़ दे-उससे पूर्व ही तुम उनकी रक्षा के निमित्त पहुंच जाओ। शीघ्र दौड़ो ? डरो मत और कुरुराज की रक्षा करो ॥२-३॥

ततः कृतज्ञा बलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।
त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिवव्रुस्तवाऽऽत्मजम् ॥४॥

इसके अनन्तर कृतज्ञ, बलवान्, जीतने के अभिलाषी, मित्र राजाओं ने तुम्हारे वीर पुत्रको घेर लिया, यद्यपि वे अभिमन्यु से भयभीत हो रहे थे ॥४॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः ।
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिभूरिश्रवाः शलः ॥५॥

पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्शरान् ।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥६॥

अब द्रोणाचार्य, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृत वर्मा, सुबल-पुत्र शकुनि, बृहद्बल, मद्रराज शल्य, भूरिश्रवा, शल, पौरव, वृषसेन और अन्य महारथी तीक्ष्ण बाणों को छोड़ते हुए सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु पर टूट पड़े। इन्होंने अपनी महान् बाण-वर्षा से अभिमन्यु को पाट दिया ॥५-६॥

संमोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।
आस्याद्ग्रासमिवाऽऽक्षिप्तं ममृषे नाऽर्जुनात्मजः ॥

इन्होंने अभिमन्यु को चौकड़ी चुकाकर राजा दुर्योधन को उससे छुड़ा लिया, परन्तु अर्जुनपुत्र ने अपने मुख से निकाले हुए ग्रास की तरह इनकी इस चेष्टा को सहन नहीं किया ॥७॥

ताञ्शरौघेण महता साश्वसूतान्महारथान् ।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथाऽनदत् ॥८॥

अब सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने बड़ी भारी बाणवर्षा करके अश्व और सारथियों के सहित इन सारे महारथियों को रण से विमुख कर दिया। इनके लौटते ही अभिमन्यु ने प्रहर्षित होकर सिंहनाद किया ॥८॥

तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवाऽऽमिषैषिणः ।
नाऽमृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥९॥

मांस के अभिलाषी सिंह की सी अभिमन्यु की सुनी हुई गर्जना द्रोण आदि महारथियों से नही सहीं गई। वे सारे आवेश में भर गए ॥६॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि संघशः ॥१०॥

हे आर्य ! इन्होंने बड़े भारी रथसमूह से अभिमन्यु को घेर लिया और ये अनेक ढंग के बाणसमूह अपनी २ टोली से छोड़ने लगे ॥१०॥

तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः ।
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥११॥

हे राजन्! उन बाणों को तुम्हारे पौत्र अभिमन्यु ने अपने तीक्ष्ण बाणों से आकाश में ही काट डाला । यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था ॥११॥

ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥१२॥

अब अभिमन्यु ने सर्प के तुल्य भीषण बाण छोड़कर उनको कुपित कर दिया। ये सुभद्रा-पुत्र विजयशील अभिमन्यु के मारने की अभिलाषा से उसको घेरकर खड़े हो गए ॥१२॥

समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम् ।
दधारैकोऽर्जुनिर्बाणैर्वेलेव भरतर्षभ ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारी सेना का समुद्र, समुद्र की भांति उछल रहा था, परन्तु उसको भी अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, वेला की भाँति रोकने में समर्थ हो रहा था ॥१३॥

शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
अभिमन्योः परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥१४॥

हे राजन् ! एक दूसरे को मारते हुए युद्ध करने वाले शूरवीरों में अभिमन्यु और उसके शत्रुओं का कोई वीर युद्धसे मुख नहीं मोड़ता था ॥१४॥

तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयङ्करे ।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥१५॥
दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥१६॥
विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ।
बृहद्बलस्तथाऽष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥१७॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥१८॥

जब इस प्रकार घोर भयङ्कर संग्राम चल रहा था, तो तुम्हारे पुत्र दुःसह ने नौ, दुःशासन ने बारह, शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने तीन, द्रोणाचार्य ने सतरह, विविंशति ने सत्तर, कृतवर्मा ने सात, बृहद्बलने आठ, अश्वत्थामा ने सात, भूरिश्रवा ने तीन, मद्रराज

शल्य ने छः, शकुनि ने दो, राजा दुर्योधन ने तीन, सर्प के तुल्य विषैले बाणों से अभिमन्यु को क्षत-विक्षत कर डाला ॥१५-१८॥

स तु तान्प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥१९॥

हे महाराज ! अभिमन्यु भी रण में नांच सा कर रहा था, इस प्रतापी ने भी हाथ में धनुष लेकर तीन २ सीधे गमन करने वाले बाणों से इन सारे महारथियों को बींध दिया ॥१९॥

ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवाऽऽत्मजैः ।
विदर्शयन्वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥२०॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रों द्वारा पीड़ित किया हुआ, अभिमन्यु, क्रोध में भर गया। इसने अब अपनी रण निपुणता और हृदय (छाती) के बल को प्रदर्शित किया ॥२०॥

गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः ।
दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ॥२१॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

इसके पीछे गरुड़ पक्षी और वायु के समान वेगधारी, सारथि के संकेत में उड़ने वाले उत्तम अश्वों के द्वारा सन्मुख आये हुए राजा अश्वक के पुत्र ने अभिमन्यु को रोका। इस अश्मक राजा के पुत्रने दश बाणों से अभिमन्यु को बींधकर कहा-ठहरो ? ठहरो ? मैं अभी तुम्हें देखे लेता हूं ॥२१॥

तस्याऽभिमन्युर्दशभिर्हयान्सूतं ध्वजं शरैः ॥२२॥
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत् ।

अभिमन्यु ने उसके ऊपर दश बाण छोड़े, जिनसे उसके चार अश्व, सारथि, ध्वजा, दो भुजा, धनुष और शिरको शरीरसे पृथक् करके हँसते २ रणभूमि में गिरा दिया ॥२२॥

ततस्तस्मिन्हते वीरे सौभद्रेणाऽश्मकेश्वरे ॥२३॥
संचचाल बलं सर्वं पलायनपरायणम् ।

ज्योंही वीरश्रेष्ठ अभिमन्यु ने अश्मकेश्वर को मार गिराया-त्योंही उसकी सारी सेना वेग के साथ भाग खड़ी हुई ॥२३॥

ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः ॥
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः ।
वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥२५॥
वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः ।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥२६॥

इसके अनन्तर कर्ण, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा, गान्धारराज शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति, वृषसेन सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और स्वयं राजा दुर्योधन, क्रोध में भरकर अभिमन्यु पर बाण-वर्षा करने लगे २४-२६॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः ।
शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥२७॥

इन महाधनुर्धर महारथियों के सीधे जाने वाले बाणों से विद्ध हुए अभिमन्यु ने कवच और शरीर के भेदन करने में समर्थ बाण को कर्ण पर छोड़ने के निमित्त धनुष पर चढ़ाया ॥२७॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाऽऽशुगः ।
प्राविशद्धरणीं वेगाद्वल्मीकमिव पन्नगः ॥२८॥

अभिमन्यु का शीघ्रगामी बाण, कर्ण के कवच और देह को बींधकर बल्मीक में सर्प की तरह बड़े वेग से भूमि में घुस गया।

स तेनाऽतिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ।
सञ्चचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥२९॥

अभिमन्यु के इस तीव्र प्रहार से व्यथित हुआ, कर्ण, कुछ विह्वल हो गया। यह रण में पृथिवी के काँपने पर पर्वत के कांपने के समान कुछ कम्पित हो उठा ॥२९॥

तथाऽन्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥३०॥

अब अन्य तीक्ष्ण बाणों से राजा सुषेण, दीर्घलोचन और कुण्डभेदी इन तीनों को क्रोध में भरे हुए महाबली अभिमन्यु ने तीन बाणों से आहत किया ॥३०॥

कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ॥३१॥

अब कर्ण ने पच्चीस, अश्वत्थामा ने बीस, कृतवर्मा ने सात बाण अभिमन्यु पर छोड़े ॥३१॥

स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्मजात्मजः।
विचरन्ददृशे सैन्ये पाशहस्त इवाऽन्तकः ॥३२॥

इन बाणों से इन्द्र-पुत्र अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु अत्यन्त ही क्षत-विक्षत (लोहूलुहान) हो गया। इसके सारे शरीर में बाण गड़ चुके थे, तो भी यह सेना में चक्कर लगाता हुआ पाशधारी अन्तक सा प्रतीत होता था ॥३२॥

शल्यं च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत्।
उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥३३॥

मद्रराज शल्य लड़ता २ अभिमन्यु के निकट पहुंचा। महाबाहु अभिमन्यु ने बाणवर्षा से उसे पाट दिया और तुम्हारी सेना को भयभीत करते हुए उसने बड़ी जोर से गर्जना की ॥३३॥

ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः।
शल्यो राजन्रथोपस्थे निषसाद मुमोह च ॥३४॥

हे राजन्! अस्त्र विद्या में निपुण अभिमन्यु द्वारा सीधे गमन करने वाले बाणों से आहत किया हुआ मद्रराज शल्य, रथ की गोद में चुपचाप बैठ गया और मूर्छित सा होगया ॥३४॥

तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥३५॥

सुभद्रापुत्र यशस्वी अभिमन्यु द्वारा अत्यन्त बिंधे हुए शल्य को देखकर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य के देखते २ सारी सेना भाग खड़ी हुई ॥३५॥

संप्रेक्ष्य तं महाबाहुं रुक्मपुङ्खैः समावृतम् ।
त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥३६॥

सुवर्ण के मूल से सुशोभित, महाबाहु अभिमन्यु को देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर सिह से पीड़ित मृगों की भांति भाग निकले ।

स तु रणयशसाऽभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्धयक्षसङ्घैः
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घैरतिविबभौ हुतभुग्यथाऽऽज्यसिक्तः

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

पितर, देवता, चारण, सिद्ध, यक्ष तथा पृथिवी पर रहने वाले प्राणिसमूह से प्रशंसित होकर वीरता की कीर्ति से सम्पन्न अभिमन्यु, घृत से प्रदीप्त अग्नि की भांति इस भीषण रण में प्रज्वलित हो उठा ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्यु के पराक्रम का सैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

अड़तीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगः ।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! इस प्रकार अपने सीधे जाने वाले बाणों से हमारे पक्ष के महाधनुर्धरों को व्यथित करते हुए अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को हमारे पक्ष के किन योद्धाओं ने रण में रोका ॥१॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् ।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अब आप भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य से सुरक्षित रथसेना को रण में छिन्न-भिन्न करने वाले कुमार अभिमन्यु के महापराक्रम की चर्चा सुनो ॥२॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽऽशुगै रणे ।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन्बाणान्समभ्ययात् ॥३॥

जब अभिमन्यु ने शीघ्रगामी बाणों से रण में मद्रराज शल्य को पीड़ित कर दिया—तो यह देखकर क्रोधातुर हुआ शल्य का छोटा भाई बाणवर्षा करता हुआ अभिमन्यु पर झपटा ॥३॥

स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम् ।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥४॥

इसने दश बाण छोड़ कर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के अश्व, सारथि और स्वयं अभिमन्यु को भी आहत कर दिया तथा बड़ी भारी गर्जना करके ठहरो ? ठहरो ?—इस प्रकार अभिमन्यु का युद्ध के लिए आह्वान किया ॥४॥

तस्याऽर्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान् ।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥५॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः ।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ॥६॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन ।

अनर्जुपुत्र अभिमन्यु ने शल्य के छोटे भ्राता के शिर और ग्रीवा, हाथ और पैर, धनुष, अश्व, छत्र ध्वजा, सारथि, रथ के तीन वेणु, रथ के बैठने के स्थान, चक्र, युग (जुआ) तूणीर, अनुकर्ष, (रथ के नीचे के काष्ठ) पताका, चक्ररक्षक तथा युद्ध की सामग्री को बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) से काट डाला, जिसे कोई वीर देख भी न सका ॥५-६॥

स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ॥७॥
वायुनेव महाशैलः सम्भग्नोऽमिततेजसा ।

इसके सारे आभरण और वस्त्र कट-फट गए। यह क्षीण होकर अत्यन्त ओजस्वी अभिमन्यु द्वारा आहत हुआ वायु द्वारा महान् पर्वत की तरह पृथिवी में गिर गया ॥७॥

अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन्सर्वतो दिशः ॥८॥
आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः ।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥९॥

शल्य के लघु भ्राता के सहचारी अनुचर घबरा कर सब दिशाओं को भाग गए। ये अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के इस भीषण

कर्म को देखकर सब ओर से गर्जना करने लगे। हे भारत! इसको सुनकर सारे प्राणी धन्य २ कहने लगे ॥८-६॥

शल्यभ्रातर्यथाऽऽरुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः ।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥१०॥

जब शल्य का भ्राता मारा गया—तो उसके बहुत से सैनिक अपने कुल, स्थान और नाम सुना कर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु पर झपटे ॥१०॥

अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
रथैरश्वैर्गजैश्चाऽन्ये पद्भिश्चाऽन्ये बलोत्कटाः ॥११॥

इन सैनिकों ने अनेक भांति के अस्त्र शस्त्र अपने हाथ में ले रखे थे और ये बड़े ही क्रोध में भरे हुए थे। बहुत से सैनिक, अनेक रथ, अश्व, गज और पैदल सैनिक लेकर अभिमन्यु की ओर दौड़े ॥११॥

बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च ।
हुङ्कारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥१२॥
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् ।
ब्रुवन्तश्च न नौ जीवन्मोक्ष्यसे जीवितादिति॥१३॥

इस समय बाणों की भारी सनसनाहट, रथनेमि की ध्वनि, हुङ्कार, कलकलाहट, उच्चस्वर, सिंहनाद, गर्जना करतलत्राण की ध्वनियों के साथ गर्जते हुए ये वीर अर्जुननन्दन अभिमन्यु पर

झपटे और कहने लगे, कि अब जीवित रहते हुए तुम हमारे सामने से बचकर नहीं जा सकते हो ॥१३॥

तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव ।
यो योऽस्मै प्राहरत्पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥१४॥

इनके ये वचन सुनकर अभिमन्यु मुसकुराने लगा; और जिन २ वीरों ने इसपर प्रथम प्रहार किया, इसने उसे ही अपने बाणों से बींध लिया ॥१४॥

सन्दर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च ।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥१५॥

इस समय यह अपने विचित्र शीघ्रगामी अस्त्रों की कुशलता दिखाने लगा, परन्तु फिर भी यह शूरवीर अभिमन्यु अभी तक मृदुता के साथ ही युद्ध कर रहा था ॥१५॥

वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् ।
अदर्शयत तत्कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥१६॥

अभिमन्यु ने जिन अस्त्रों को श्रीकृष्ण तथा धनञ्जय अर्जुन से सीखा था, उन २ अस्त्रों का प्रयोग अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, श्रीकृष्ण और अर्जुन के ही सदृश कर रहा था ॥१६॥

दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः ।
सन्दधद्विसृजंश्चेषून्निर्विशेषमदृश्यत ॥१७॥

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को इस युद्ध में इस भारी बोझे की कुछ चिन्ता नहीं थी और न कुछ घबराहट थी। यह बाण छोड़ता हुआ श्रीकृष्ण और अर्जुन से कुछ भी न्यून नहीं प्रतीत होता था।

चापमण्डलमेवाऽस्य विस्फुरद्दिक्ष्वदृश्यत ।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥१८॥

हे राजन् ! शरतकाल में प्रचण्ड सूर्य के मण्डल के सदृश अभिमन्यु के धनुष का मण्डल सारी दिशाओं में चमक रहा था।

ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः ।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥१९॥

इस समय रण में केवल अभिमन्यु के करतलत्राण और धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) की ध्वनि ही सुनाई देती थी। यह ध्वनि प्रलयकालीन महान् बिजली छोड़ने वाले मेघ की सी प्रतीत होती थी ॥१९॥

ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत्प्रियदर्शनः ।
संमिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाऽप्ययुध्यत ॥२०॥

लज्जाशील, आवेश में भरा हुआ, सब का आदर करने वाला सुन्दर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, अन्य वीरों का आदर प्रदर्शित करता हुआ केवल बाणों के प्रयोग से ही युद्ध करने लगा ॥२०॥

मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत ।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्शरदीव दिवाकरः ॥२१॥

हे महाराज ! यह प्रथम तो मृदुता के साथ युद्ध कर रहा था, परन्तु फिर आगे चलकर दारुण होने लगा, जैसे-वर्षा के अनन्तर शरत्काल में सूर्य प्रचण्ड हो जाता है ॥२१॥

शरान्विचित्रान्सुबहून्रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥२२॥

हे राजन् ! क्रोध में भरा हुआ, अभिमन्यु, सुवर्ण के मूल से सम्पन्न, शिलापर तीक्ष्ण किये हुए विचित्र २ बहुत से बाणों को इस ढंग से छोड़ने लगा जैसे-सूर्य अपनी किरण संसार पर फेंकता है ॥२२॥

क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः ।
नाराचैरर्द्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥२३॥
अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः ।
ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥२४॥

क्षुर के समान तीक्ष्ण, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्धचन्द्र, अञ्ज-लिक आदि विशेष २ बाणोंसे अभिमन्यु द्रोणाचार्य के देखते २ उसकी रथसेना को आच्छादित करने लगा। अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित हुई आचार्य द्रोण की सेना रण में विमुख होकर भागने लगी।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु के पराक्रम का अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ

उनचालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

द्वैधीभवति मे चित्तं भिया तुष्ट्यां च सञ्जय ।
मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥१॥
विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः ।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवाऽसुरैः सह ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने जो मेरे पुत्रों की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया—इसको सुनकर मेरा मन, भय और सन्तोष से दो भागों में बँटता है। मुझे अभिमन्यु के इस पराक्रम को देख कर बड़ा ही सन्तोष हुआ है। हे गवल्गण के पुत्र! तुम मुझे इस युद्ध के सारे समाचार विस्तार के साथ सुनाओ, जो अभिमन्यु ने असुरों के मध्य में स्कन्द की भांति रणभूमि में पराक्रम कर दिखाया है ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम् ।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत्तुमुलो रणः ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जो अत्यन्त दारुण अकेले अभिमन्यु का बहुत से महारथियों के साथ युद्ध हुआ—वह मैं तुमको सुनाता—तो हूं, परन्तु उसके भीषण युद्ध के सुनाने में मुझे बड़ा ही खेद होता है ॥३॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिन्दमान् ।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत् ॥४॥

इस समय रथ में स्थित अभिमन्यु बड़े रणोत्साह में भरकर रणोत्साह में भरे हुए, शत्रुओं के नाशक, तुम्हारे महारथियों पर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगा ॥४॥

द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम् ।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥५॥
नानानृपान्नृपसुतान्सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत्सर्वांश्चरन्बाणैः समापर्यत् ॥६॥

अलातचक्र (प्रज्वलित पलीते) की तरह रणभूमि में चक्कर लगाते हुए—अभिमन्यु ने आचार्य द्रोण, कर्ण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, भोजराज बृहद्बल, राजा दुर्योधन, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, महाबली शकुनि तथा अन्य बहुत से राजा, राजपुत्र और अनेक प्रकार के सैनिक वीरों को अपने बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥५-६॥

निघ्नन्नमित्रान्सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥७॥

हे भारत ! प्रतापी सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, अपने भीषण-अस्त्रों द्वारा अपने शत्रुओं को मारता हुआ रणभूमि में सब ओर दिखाई दे रहा था ॥७॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्याऽमितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥८॥

अत्यन्त ओजस्वी सुभद्रापुत्र अभिमन्यु के इस अद्भुत वीर चरित को देख कर तुम्हारे सहस्रों वीर, कांपने लगे ॥८॥

अथाऽब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥९॥
घटयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥१०॥

हे राजन ! रणविशारद अभिमन्यु को रणमें इस प्रकार भीषण कर्म करते देखकर महाबुद्धिमान्, प्रतापी, भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य, कृपाचार्य को सम्बोधित करके कहने लगे। इस समय हर्ष से इनके नेत्र खिल रहे थे। हे भारत ! आचार्य के वचन सुन कर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन का हृदय, विदीर्ण सा होने लगा ॥९-१०॥

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन्सुहृदः सर्वान्राजानं च युधिष्ठिरम् ॥११॥

द्रोण ने कहा—हे कृपाचार्य ! तुम देख रहे हो-यह पाण्डवोंका युवा वीर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, किस तरह युद्ध में बढ़ा आरहा है, जिसको देखकर सारे मित्र और राजा युधिष्ठिर को कितना आनन्द हो रहा है ॥११॥

नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बन्धून्सम्बन्धिनश्चाऽन्यान्मध्यस्थान्सुहृदस्तथा ॥१२॥
नाऽस्य युद्धे समं मन्ये कञ्चिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन्हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥१३॥

मैं इस अभिमन्यु के तुल्य रण में नकुल, सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन, इनके बन्धु, सुहृद्, सम्बन्धी तथा अन्य किसी को भी नहीं मानता हूँ। यह चाहे तो सारी कुरुसेना को मार सकता है, परन्तु किसी कारण से यह ऐसी इच्छा नहीं करता हुआ प्रतीत होता है ॥१२-१३॥

द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवाऽऽत्मजः ।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥१४।

जब द्रोणाचार्य के प्रीति से भरे हुए वाक्य तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने सुने--तो वह द्रोणाचार्य की ओर कुछ मुसकुरा कर क्रोधातुर हुआ अर्जुनपुत्र अभिमन्यु पर झपटा ॥१४॥

अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथाऽन्यान्महारथान् ॥१५॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नाऽयं हन्तुमिहेच्छति ॥१६॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन, कर्ण, बाह्लिकराज दुःशासन, मद्रराज शल्य तथा अन्य महारथियों से कहने लगा, कि सारे उत्तमवीर क्षत्रियों का आचार्य, वेद का ज्ञाता द्रोण, इस मूढ़

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को मारना नहीं चाहता है, ऐसा प्रतीत होता है ॥१६॥

न ह्यस्य समरे युद्ध्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।
किमङ्ग पुनरेवाऽन्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥१७॥

इस आततायी दुष्ट अभिमन्यु से तो इस समय मृत्युभी युद्ध नहीं कर सकता । फिर अन्य मनुष्य की तो चर्चा ही क्या है, यह मैं तुम से सत्य कहता हूं ॥१७॥

अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥१८॥

आचार्य द्रोण, अर्जुन के शिष्य होने के प्रेम से यह उनके पुत्र को भी मारना नहीं चाहते हैं, क्योंकि धर्मात्मा बनने वाले लोग अपने शिष्य के शिष्य और पुत्रों तथा उनकी सन्तानों तक से प्रेम करते हैं ॥१८॥

संरक्षमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥१९॥

द्रोण तो इसको बचा रहे हैं और यह अपना पराक्रम समझता है । यह मूर्खतो इससे अपने को बहुत ही आगे बढ़ा रहा है । अब तुम लोग इसे शीघ्र मारो-देर न करो ॥१९॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥२०॥

जब राजा दुर्योधन ने यह आज्ञा दी, तो ये राजा लोग आवेश में भरकर द्रोणाचार्य के देखते २ सात्वती (सुभद्रा) पुत्र अभिमन्यु के वध की इच्छा से उस पर वेग के साथ टूट पड़े।

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा।
अब्रवीत्कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥२१॥

हे कुरुशार्दूल ! जब दुःशासन ने राजा दुर्योधन के ये वचन सुने-तो वह दुर्योधन से इस प्रकार कहने लगा ॥२१॥

अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥२२॥

हे महाराज ! मैं सारे पाण्डव और पाञ्चालों के देखते २ इस अभिमन्यु को अभी मारे लेता हूँ ॥२२॥

ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम्।
उत्क्रुश्य चाऽब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥२३॥

मैं तो सूर्य को राहु की तरह इसे अभी निगले लेता हूं। इस प्रकार क्रोधपूर्ण बात करके फिर कुरुराज दुर्योधन से बोला॥२३॥

श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ।
गमिष्यति प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥२४॥

जब मुझ द्वारा अभिमन्यु का नाश अत्यन्त मनस्वी श्रीकृष्ण और अर्जुन सुनेंगे-तो इस मृत्युलोक को छोड़कर वे निश्चय प्रेतलोक को चलते बनेंगे ॥२४॥

तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ।२५।

जब कृष्णार्जुन इन दोनों को मृतक सुनेंगे-तो पाण्डु के क्षेत्र में उत्पन्न हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी, घबराकर एक ही दिन में अपने मित्रवर्ग के साथ अपने प्राणों को छोड़ देंगे ॥२५॥

तस्मादस्मिन्हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥२६॥

हे राजन् ! बस ? केवल इस अकेले शत्रु अभिमन्यु के मार लेने पर तुम्हारे सारे शत्रुओं का नाश ही समझो । अब तो तुम केवल मेरे कल्याण की कामना करो-मैं तुम्हारे सारे शत्रुओं को इस तरह अभी मारे देता हूं ॥२६॥

एवमुक्त्वाऽनदद्राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात्क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥२७॥

हे राजन् ! इतना कहकर तुम्हारा पुत्र दुःशासन गर्जना करने लगा और वह बाणों की झड़ी लगाता हुआ सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु पर बड़े क्रोध के साथ दौड़ा ॥२७॥

तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिन्दमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥२८॥

जब अरिमर्दन अभिमन्यु ने दुःशासन को आगे बढ़ते देखा-तो इसने छब्बीस तीक्ष्ण बाण छोड़कर उसे क्षत-विक्षत कर दिया ।

दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥२६॥

इस आक्रमण से दुःशासन भी मदस्रावी गजराज की तरह बिगड़ उठा और यह अभिमन्यु से युद्ध करने लगा। अभिमन्यु भी बड़े वेग से इसके साथ युद्ध में प्रवृत्त हुआ ॥२६॥

तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम्।
चरमाणावयुद्धयेतां रथशिक्षाविशारदौ ॥३०॥

ये दोनों महारथी युद्धशिक्षा में बड़े ही कुशल थे। अब ये दांये बांयें होकर विचित्र २ मण्डल बनाकर रण में घूमते हुए युद्ध करने लगे ॥३०॥

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम्।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रुर्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६॥

इस समय बाजे बजाने वाले वीर, पणव, मृदङ्ग, दुन्दुभि, क्रकच, बड़े २ आनक, भेरी, झर्झर आदि बाजों के शब्द करने लगे। इन बाजों के शब्दों के साथ समुद्र गर्जना के तुल्य गम्भीर वीरों का सिंहनाद भी मिला हुआ था ॥३१॥

इति महाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में दुःशासन के युद्ध के आरम्भ का उनचालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

चालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

शराचितगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन्धीमान्दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ ! इस समय अभिमन्यु का शरीर बाणों से बिल्कुल छिदा हुआ था, परन्तु फिर भी धैर्यशील अभिमन्यु, अपने शत्रु दुःशासन को सन्मुख उपस्थित देखकर मुसकुराकर उससे यह वचन बोला ॥१॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥२॥

हे कौरव्य ! आज बड़े हर्ष की बात है, कि रण में अपने को शूरवीर मानने वाले तुम आज मेरे सन्मुख आ पहुंचे हो । मैं तो तुमको केवल कठोरभाषी, धर्मत्यागी, गाली देने वाला, नीच पुरुष समझता हूं ॥२॥

यत्सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥३॥

तुमने ही राजा धृतराष्ट्र के सुनते २ सभा में कठोर वाक्य बोलकर धर्मराज युधिष्ठिर को कुपित किया था ॥३॥

जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्याऽऽत्मनो बलम् ॥४॥

तुमने ही अपनी विजय में उन्मत्त होकर बहुत सी टेढ़ी सीधी बात कहकर भीमसेन को कुपित किया । उसमें केवल सुबल-पुत्र शकुनि के द्यूत (जुआ) के निजी बल का ही तुमको सहारा था ।।४।।

तत्त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।
परवित्तापहारस्य क्रोधस्याऽप्रशमस्य च ।।५।।
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्याऽत्याहितस्य च ।
पितृणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ।।६।।

अब उन्हीं महात्मा धर्मराज के कोप से तुमको उसका फल मिलने वाला है । अन्य के धन के अपहरण, क्रोध, अशान्ति, लोभ, ज्ञान के नाश, द्रोह, साहस तथा उग्र धनुषधारी मेरे पूर्वजों के राज्यहरण के फल प्राप्ति के निमित्त आज तुम मेरे सन्मुख आए हो ।

तत्त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद्वै महात्मनाम् ।
स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।।७।।

हे दुर्मते ! उन महात्मा पाण्डवों के कोप से ही यह रणभेरी तुमको प्राप्त हुई है । अब तुम शीघ्र अपने अधर्म का उग्र फल प्राप्त करोगे ।।७।।

शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
अद्याऽहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ।।८।।

आज मैं सारी सेना के देखते २ बाणों से तुमको शिक्षा दूंगा और इसी रण में अपने पिताओं के कोपका बदला लेकर उनके ऋण को चुकाऊंगा ।।८।।

अमर्षितायाः कृष्णायाः कांक्षितस्य च मे पितुः ।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥९॥
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ।

हे कुरुवंशोद्भव ! क्रोध में भरी हुई द्रौपदी, आवेश में भरे हुए मेरे पिता अर्जुन और भीमसेन के ऋण के चुकाने का आज इस युद्धमें ही अच्छा अवसर है। आज जो तुम रण छोड़कर नहीं भागे-तो मेरे सामने से जीते बचकर नहीं निकल सकोगे ॥९॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥१०॥
सन्दधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ।

इतना कहकर शत्रुवीरनाशक, महाबाहु अभिमन्यु ने कालाग्नि के समान प्रज्वलित और वायु के तुल्य वेगशील बाण को दुःशासन के वध के लिए शरासन पर चढ़ाया ॥१०॥

तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥११॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ।

यह बाण, दुःशासन की छाती से ऊपर जत्रु-प्रदेश को चीर कर बल्मीक में सर्प की भांति अपने मूल सहित सारा घुस गया।

अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥१२॥
शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः ।

अभिमन्यु ने फिर अग्नि के समान स्पर्श वाले, कान तक खैंचे हुए पच्चीस बाणों से फिर दुःशासन को छेद डाला ॥१२॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥१३॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाऽविशन्महत् ।

प्रहारों से दुःशासन बहुत व्याकुल हो उठा और वह व्यथित होकर रथ की शय्या में चुपचाप बैठ गया। हे महाराज! इस दुःशासन को बड़ी भारी मूर्छा-सी आगई ॥१३॥

सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥१४॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ।

जब सारथि ने सुभद्रापुत्र अभिमन्यु के बाण से पीड़ित होकर मूर्छित हुए :शासन को देखा--तो वह बड़ी शीघ्रता से अचेत दुःशासन को रण के बीच में से दूर निकाल ले गया ॥१४॥

पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीच्य तम् ॥१५॥
पश्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथाऽनदन् ।

पाण्डव, द्रौपदीपुत्र, पाञ्चाल और केकय, इस घटना को देखकर सिंहनाद करने लगे ॥१५॥

वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥१६॥
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः ।

इस समय पाण्डवों के सैनिक प्रफुल्लित होकर सब ओर से अनेक भांति के बाजे बजाने लगे ॥१६॥

अपश्यन्स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥१७॥
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ।

जब इन वीरों ने अत्यन्त वैरी मदोद्धत शत्रु दुःशासन का पराजित होते देखा—तो वे मुसकुरा २ कर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु की चेष्टा का अवलोकन करने लगे ॥१७॥

धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमांस्तथा ॥१८॥
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥१९॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृञ्जयाः ।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥२०॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं बिभित्सवः ।

धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों की मूर्ति के आकार को अपनी ध्वजा में धारण करने वाले महारथी द्रौपदीपुत्र, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय, धृष्टकेतु, मत्स्य, पाञ्चाल और सृञ्जयवीर तथा राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव, आनन्द के साथ द्रोण के चक्रव्यूह को चीरने को बड़े वेग से झपटे ॥१८-२०॥

ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥२१॥
जयमाकांक्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।

इस समय तुम्हारे पक्ष के वीर और पाण्डवों के वीरों में बड़ा घोर युद्ध होने लगा। ये शूरवीर युद्ध से नहीं हटने वाले और अपनी २ विजय के अत्यन्त अभिलाषी थे ॥२१॥

तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयङ्करे ॥२२॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।

हे महाराज ! जब इस प्रकार घोर भयंकर युद्ध प्रवृत हो रहा था--तो राजा दुर्योधन राधापुत्र कर्ण से यह वचन बोले ॥२२॥

पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशङ्गतम् ॥२३॥
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।

हे कर्ण ! तुम देखो-कि वीरश्रेष्ठ दुःशासन को भी अभिमन्यु ने पराजित कर दिया है--जो सूर्य की तरह चमक रहा था और रण में शत्रुओं को मार रहा था ॥२३॥

अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥२४॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।

इसके अनन्तर सिंह के तुल्य बलवान, पाण्डव भी, आवेश में भरकर बड़ी सावधानी से अभिमन्यु की रक्षा करने को आगे दौड़े ॥२४॥

ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥२५॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत्तव ।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र के हित में तत्पर कर्ण, क्रोधातुर होकर दुर्धर्ष वीर अभिमन्यु पर बाणों की वर्षा करने लगा ॥२५॥

तस्य चाऽनुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥२६॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।

इस रणाङ्गण में शूरवीर कर्ण ने बड़ी ही अवज्ञा (बेपरवाही) के साथ अपने तीक्ष्ण बाणों से सुभद्रापुत्र अभिमन्यु के अनुचरों को बींधना आरम्भ किया ॥२६॥

अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥२७॥
अविध्यत्त्वरितो राजन्द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः।

हे राजन्! महामनस्वी अभिमन्यु ने भी द्रोण के समीप पहुंच जाने के लिये मध्य में स्थित विघ्न कर्ण के हटाने के निमित्त उसे तेहत्तर बाणों से आहत किया ॥२७॥

तं तथा नाऽशकत्कश्चिद् द्रोणाद्वारयितुं रथी ॥२८॥
आरुजन्तं रथव्रातान्वज्रहस्तात्मजात्मजम्।

इस प्रकार मारकाट मचाकर द्रोणाचार्य के समीप गमन के लिये उद्यत वज्रधारी इन्द्रपुत्र अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को रथियों के समूह को पीड़ित करने से कोई भी कौरव वीर रोकने में समर्थ नहीं हो सका॥२८॥

ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥२९॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन्।

अब अङ्गराज कर्ण ने भी अपने अस्त्रों की कुशलता दिखाना आरम्भ कर दिया। इसको सारे धनुषधारियों में अपनी श्रेष्ठता का अभिमान था। यह कौरवों की विजय के लिये प्राण-पण से प्रयत्न कर रहा था। इसने बड़ी शीघ्रता से अभिमन्यु को सैंकड़ों स्थानों से छेद डाला ॥२९॥

सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥३०॥
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ।

अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम के शिष्य प्रतापी कर्ण ने अपने अस्त्रों से रण में दुर्धर्ष शत्रु अभिमन्यु पर भीषण प्रहार करके उसे व्यथित कर दिया ॥३०॥

स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनाऽस्त्रवृष्टिभिः ॥३१॥
समरेऽमरसङ्काशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।

इस प्रकार राधापुत्र कर्ण द्वारा अस्त्रवर्षा से अत्यन्त पीड़ित किया हुआ भी अभिमन्यु रण में कुछ भी विचलित नहीं हुआ, क्योंकि यह देवों के तुल्य महापराक्रमी था ॥३१॥

ततः शिलाशितस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥३२॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥३३॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साऽश्वमाशु स्मयन्निव ।

अब अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने भी शिला (शाण) पर तीक्ष्ण किये हुए, झुके पर्व वाले तीक्ष्ण बाणों से शूरवीरों के धनुषों को काट कर मण्डलाकार घूमते हुए, धनुष से निकले हुए विषैले सर्प के सदृश भीषण बाणों से हँसते २ छत्र, ध्वजा, सारथि और अश्वों के सहित अङ्गराज कर्ण को भी आच्छादित कर दिया ॥३२-३३॥

कर्णोऽपि चाऽस्य चिक्षेप बाणान्सन्नतपर्वणः ॥३४॥
असम्भ्रान्तश्च तान्सर्वानगृह्णात्फाल्गुनात्मजः ।

कर्ण ने भी इसके ऊपर नतपर्व वाले बाण छोड़े—जिनको किसी भी प्रकार की घबराहट के बिना ही अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने सहन कर लिया ॥३४॥

ततो मुहूर्तात्कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥३५॥
स ध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्वा भूमावपातयत् ।

अब वीर्यवान् अभिमन्यु ने बड़ी शीघ्रता से बाण छोड़कर झटपट एक ही बाण में कर्ण के ध्वजा और धनुष को काटकर भूमि में गिरा दिया ॥३५॥

ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥३६॥
सौभद्रमभ्ययात्तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।

कर्ण को इस समय संकट में फंसा देखकर कर्ण का छोटा भाई, अपने दृढ़ धनुष को उठाकर बड़ी शीघ्रता से सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु पर झपटा ॥३६॥

तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुऽचरा जनाः ।
वादित्राणि च सञ्जघ्नुः सौभद्रं चाऽपि तुष्टुवुः ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

इस घटना को देखकर पाण्डव बड़े प्रफुल्लित होकर उच्चस्वर में गर्जना करने लगे। अभिमन्यु के अनुचरों के आनन्द की सीमा न रही। ये लोग, बड़े २ बाजे बजाकर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु को उल्लास युक्त करने लगे ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में कर्ण और दुःशासन के पराभव का चालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

इकतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सोऽतिगर्जन्धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत! कर्ण का लघुभ्राता धनुष हाथ में लेकर और बार २ उसकी प्रत्यञ्चा (डोरी) को खैंचता हुआ इन दोनों वीर, कर्ण और अभिमन्यु के रथों के बीच में उपस्थित हुआ।

सोऽविध्यद्दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम् ।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥२॥

इसने हँसते २ छत्र, ध्वजा, सारथि और अश्वों के सहित दुरासद अभिमन्यु को अपने दश बाणों से क्षत-विक्षतकर दिया।

पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
दृष्ट्वाऽर्पितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन् ॥३॥

अपने पिता (अर्जुन) और पितामह (पाण्डु) के सदृश मनुष्यातिशायी महान् पराक्रम कर दिखाने वाले अभिमन्यु को बाणों से आच्छादित देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥३॥

तस्याऽभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा ।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात्प्रापतद्भुवि ॥४॥

इसी समय अभिमन्यु ने धनुष खैंचा और मुसकुराकर एक ही ऐसा बाण छोड़ा, कि जिससे उसका शिर शरीर से पृथक् हो कर रथ से नीचे भूमि पर गिर पड़ा ॥४॥

कर्णिकारमिवाऽऽधूतं वातेनाऽऽपतितं नगात् ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन्कर्णो व्यथां ययौ ॥५॥

कर्ण का भ्राता, वायु से प्रकम्पित होकर पर्वत से नीचे गिरा। हे राजन् ! अपने भाई की मृत्यु देखकर कर्ण बड़ा ही चिन्तित हुआ।

विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः ।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाऽभिदुद्रुवे ॥६॥

इस प्रकार सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने कर्ण को रण में पीछे हटाकर बड़ी शीघ्रता से अन्य धनुर्धर वीरों पर आक्रमण किया।

ततस्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत् ।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा महारथः ॥७॥

इसके अनन्तर हाथी, अश्व, रथ और पैदलों से समन्वित कर्ण की सेना को महातेजस्वी, महारथी अभिमन्यु, क्रोधातुर हो कर छिन्न-भिन्न करने लगा ॥७॥

कर्णस्तु बहुनिर्भिन्नः शरैरर्द्यमानोऽभिमन्युना।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥८॥

अभिमन्यु के तीक्ष्ण बाणों से कर्ण भी बहुत छिद चुका था, इससे वह भी अपने वेगशील अश्वों से शीघ्र रणभूमि से बाहर निकल गया-यह देखकर उसकी सेना भाग खड़ी हुई ॥८॥

शलभैरिव चाऽऽकाशे धाराभिरिव चाऽऽवृते ।
अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥९॥

हे राजन् ! इस समय शलभ पक्षियों तथा वर्षा की धारा के तुल्य अभिमन्यु के बाणों से आवृत्त हुए आकाश में अन्धकार के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥९॥

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः ।
अन्यत्र सैन्धवाद्राजन्न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥१०॥

हे राजन् ! जब अभिमन्यु आपके योद्धाओं पर प्रहार कर रहा था, इस समय सिन्धुराज जयद्रथ को छोड़कर अन्य कोई योद्धा रण में अभिमन्यु के सन्मुख नहीं ठहर सके ॥१०॥

सौभद्रस्तुः ततः शङ्खं प्रध्माय पुरुषर्षभः ।
शीघ्रमभ्यपतत्सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥११॥

हे भरतर्षभ ! अब पुरुषप्रवीर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने बड़े आवेश से शंख बजाकर कौरवसेना पर वेग के साथ आक्रमण किया ॥११॥

स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्यं भारत सैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत ॥१२॥

हे भारत ! तृणसमूह में डाले हुए अग्नि के तुल्य, वेग से शत्रुओं को दग्ध करता हुआ अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, सेना के मध्य में पहुंचा ॥१२॥

रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः ।
सम्प्रविश्याऽकरोद्भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥१३॥

इसने सेनामें घुसकर रथ, गज, अश्व और मनुष्यों को तीक्ष्ण बाणों से क्षत-विक्षत करके रणभूमि को कबन्धों (मस्तक हीन शरीरों) के समूह से व्याप्त कर दी ॥१३॥

सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः ।
स्वानेवाऽभिमुखान्घ्नन्तः प्राद्रवञ्जीवितार्थिनः ॥१४॥

अभिमन्यु के धनुष से निकले हुए बाणों से आहत हुए वीर सैनिक, अपने प्राणों के बचाने के लिए भागते हुए मार्ग के बीच में रुकावट करने वाले अपने ही सैनिकों को मारकर भागे चले जाते थे ॥१४॥

ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः ।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुन्धराम् ॥१५॥

अभिमन्यु के बड़े घोर भयङ्कर तीक्ष्ण किये हुए विपाठ-संज्ञक बाण, रथी और अश्वोंको मारकर शीघ्र पृथिवी में घुस जाते थे।

सायुधाः सांगुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥१६॥

आयुध, अङ्गुलित्राण, गदा और अङ्गदों (बाजूबन्द) तथा अन्य सुवर्णों के आभूषणों से अलङ्कृत भुजाएँ सब ओर रणभूमि में पड़ी हुई दिखाई दे रही थीं ॥१६॥

शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन्सहस्रशः ॥१७॥

बाण, धनुष, खड्ग (तलवार) शरीर, कुण्डलोंसहित सहस्रों शिर और मालाएँ रणभूमि में बिखरी पड़ी थीं ॥१७॥

सोपस्करै रधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पतितैर्युगैः ॥१८॥
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः ।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥१९॥
निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनाऽऽसीत्सुदारुणा ॥२०॥

हे विशाम्पते! रथारम्भक काष्ठ, बैठने की शय्या, उठे हुए ईषा और दण्ड, अक्ष, (चक्र के मध्य भाग) टूटे हुए चक्र और बहुत से जूड़े बिखरे पड़े हुए शक्ति, धनुष और बाण, ढाल तलवार, बड़े २ झण्डे, मरे हुए क्षत्रिय, अश्व और हाथियोंसे व्याप्त होकर रणभूमि क्षण भर में गमन के अयोग्य हो गई ॥१८-२०॥

वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥२१॥

राजपुत्रों के प्रहार करते हुए और एक दूसरे को ललकारते हुए इतना भीषण कोलाहल उठा, कि जिससे कायरों को बड़ा भय खड़ा हो गया ॥२१॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
सौभद्रश्चाऽद्रवत्सेनां प्रवराश्वरथद्विपान् ॥२२॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस शब्द से सारी दिशाएँ भर गईं । इस समय सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, उत्तम २ अश्व, रथ और हाथियों को मारता हुआ कौरवसेना पर बुरी तरह झपटा ॥२२॥

कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्ये भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥२३॥

हे भारत ! तृणसमूह (बाग) में फैंकी हुई अग्नि की तरह बड़े वेग से शत्रुसमूह को भस्म करता हुआ सेना के मध्य में केवल अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ही दिखाई दे रहा था ॥२३

विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चाऽपि भारत ।
तं तदा नाऽनुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥२४॥

हे भारत ! यद्यपि अभिमन्यु रणभूमि में दिशा और विदिशाओं में चक्कर लगा रहा था, परन्तु रणभूमि में रज के आवृत हो जाने के कारण उसको हम देख ही नहीं रहे थे ॥२४॥

आददानं गजाश्वानां नृणां चाऽऽयूंषि भारत ।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यन्दिने यथा ॥२५।
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान् ।

हे भारत ! अभिमन्यु, गज और अश्वों की आयुका विनाश करता हुआ, थोड़ी ही देर में उस रज से आवृत रण में चमक उठता था, जैसे मध्यान्ह काल में सूर्य चमक उठता है। हे महाराज ! उस समय शत्रुसमूह के विनाशक अभिमन्यु को हम क्षण भर के लिए देख लेते थे ॥२५॥

स वासवसमः संख्ये वासवस्याऽऽत्मजात्मजः ॥
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

इन्द्रपुत्र अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु, रण में इन्द्र के तुल्य ही पराक्रमी था। हे महाराज ! इस समय सेनाओं के मध्य में केवल अभिमन्यु ही सब ओर चमक रहा था ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु के पराक्रम का इकतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

~~~

दसवां भाग
समाप्त
~~~